RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 75 अंक : 05

अगस्त, 2025

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के संस्थापक अध्यक्ष
भारतरत्न लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै जी को उनकी 75वीं पुण्यतिथि पर

विनम्र श्रद्धांजलि

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

www.arpsguwahati.com

वर्ष : 75 **अंक : 05** **अगस्त, 2025**

परामर्श मंडल

भारतभूषण महंत (असम) • **प्रो. आर. एस. सर्राजु** (तेलंगाना) • **प्रो. किरण हाजरिका** (पंजाब)
• **प्रो. प्रदीप के शर्मा** (सिक्किम) • **प्रो. एच. एन. वाघेला** (गुजरात) • **डॉ. रीतामणि वैश्य** (असम)

संपादक मंडल

प्रो. देवाशीष महापात्र (तेजपुर) • **डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन** (गुवाहाटी) • **प्रो. दिलीप कुमार मेधी** (गुवाहाटी)
• **डॉ. अनुशब्द** (तेजपुर) • **डॉ. कुसुम कुंज मालाकार** (गुवाहाटी) • **डॉ. जुरी दत्त** (तेजपुर)
• **डॉ. अंबेश्वर गोगोई** (गुवाहाटी) • **डॉ. प्रांजल शर्मा वशिष्ठ** (गुवाहाटी) • **डॉ. स्वप्नाली दास** (गुवाहाटी)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

संपादक

प्रो. मोहन

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा. लिमिटेड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

© सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	हिंदी विभाग		
	संपादकीय		*5*
1.	राजभाषा हिंदी के विकास में अनुवाद की भूमिका	✍ डॉ. चंदम इन्गो सिंह	7
2.	भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना और नवजागरण	✍ डॉ. दीपक. के आर	12
3.	मानवीय सरोकार के कवि : संत कबीर	✍ डॉ. मजीद शेख	17
4.	दलित साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	✍ डॉ. नागेश्वर यादव	24
5.	स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की यात्रा परिधि	✍ डॉ. अनूप प्रसाद सेमवाल	30
6.	स्त्री-विमर्श के आईने में मोहन राकेश की कथा नायिका मिस पाल	✍ डॉ. पंकज कुमार सहनी	33
7.	डॉ. नागेश पांडेय 'संजय' के काव्य संग्रह 'रोचक बाल कविताएँ' में बाल मनोभावों का चित्रण	✍ डॉ. मो. सहिदुल इस्लाम	39
8.	तुलसीदास के अनन्य भक्त हिंदी प्रेमी डॉ. फादर कामिल बुल्के	✍ प्रो. प्रदीप के. शर्मा	44
9.	असम के नव वैष्णव भक्ति चेतना के प्रसार में संत माधवदेव का योगदान	✍ माधुर्ज्य कमल हजारिका ✍ डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय	49
10.	तुलसी के काव्य में समरसता	✍ त्रिपुरेश गोंड ✍ प्रो. स्नेह लता नेगी	59
11.	कवि पाश के काव्य में नारी जीवन की यथार्थपरक अभिव्यक्ति	✍ आकाश दीप ✍ तुषार माहन	64
12.	नई कविता : व्यष्टि, समष्टि एवं संवेदना का स्वर	✍ ब्रजेश कुमार चौधरी	69
13.	हिंदी दलित कहानियों में स्त्री प्रश्न	✍ अनूप प्रसाद	74
14.	गढ़वाल हिमालय के लोक गीतों में प्राचीन चैती पसारा और कुलाचार की परंपरा	✍ नवीन चंद्र भट्ट ✍ प्रो. गुड्डी बिष्ट पंवार	79
15.	ज्योति प्रसाद अगरवाला के साहित्य का हिंदी अनुवाद : एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण	✍ मंजूरी डेका ✍ डॉ. विनय कुमार शुक्ल	85
16.	'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में सामाजिक यथार्थ	✍ अखिलेश यादव	92
17.	विनोद कुमार शुक्ल की लेखनी में जीवन मूल्य एवं सामाजिक सरोकार	✍ अरुण सिंह	98
18.	कार्बी शोक गीतों में स्त्री स्वर : संस्कृति और स्मृति का अध्ययन	✍ लोंगबिर इंग्ती	103
19.	हिंदी उपन्यासों में चित्रित अक्टूबर 1947 का कश्मीरी नरसंहार	✍ सुनंदा गराई ✍ डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव	109
20.	मोदीनगर तहसील के पुरातात्विक स्थल	✍ कीर्ति चौधरी ✍ डॉ. दीपक कुमार	115
21.	डॉ. अम्बेडकर के चिंतन में महिला सशक्तीकरण एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता	✍ राजेश कुमार शाह ✍ प्रो. (डॉ.) रंजना रावत	122
22.	समकालीन हिंदी कहानियों में पर्यावरणीय चिंता	✍ मंजरी	127
23.	युवाओं के परिप्रेक्ष्य में इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य	✍ डॉ.मनोहर भंडारे	131

অসমীয়া বিভাগ

24.	ৰাভা ভাষাৰ প্ৰবাদ-প্ৰবচনত ৰাভা সমাজ-সংস্কৃতিৰ প্ৰতিফলন	✍ ড° প্ৰনীতা বৰ্মন	136
25.	বৈদিক সমাজত নাৰীৰ স্থান	✍ ড° মদন হালৈ	143
26.	ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত কিছু প্ৰাসংগিক চেতনা ঃ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ ড° মীৰা বৈশ্য	146
27.	মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গদ্যৰীতি ঃ এক আলোচনা	✍ ড° বিনীতা চহৰীয়া	151
28.	উজনি অসমত প্ৰচলিত মাতৃভাষাৰ ভাওনা ঃ এক সামগ্ৰিক বিশ্লেষণ	✍ ড° মানৰ জ্যোতি বৰা	158
29.	প্ৰপীয় পদ্ধতিৰে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'বুঢ়ী আইৰ সাধু'ৰ ৰূপতাত্ত্বিক বিশ্লেষণ ('তেজীমলা' সাধুটিৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)	✍ গুলতাজ ইয়াচমিন ✍ নুৰুল ইছলাম শইকীয়া	164
30.	'অয়নান্ত' উপন্যাসত লোকসাংস্কৃতিক প্ৰসংগৰ অনুসন্ধান	✍ জয় জ্যোতি ডেকা ✍ ড° দীপাঞ্জলি দাস গোস্বামী	170
31.	সাম্প্ৰতিক সময়ত জীৱন-জীৱিকা, অৰ্থনৈতিক বহনক্ষমতা তথা গ্ৰাম্য উন্নয়নত অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ ভূমিকা ঃ মেৰাগড় গাঁও, মাজুলীত এক ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়ন	✍ জ্ঞানদীপ শইকীয়া ✍ ড° উৎপল ডেকা	179
32.	ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ ৰাহুল কলিতা ✍ ড° হিমাদ্ৰী শইকীয়া	187
33.	ৰূপান্তৰকামী তত্ত্বৰ দৃষ্টিৰে অসমীয়া চুটিগল্পত তৃতীয় লিংগৰ প্ৰসংগ	✍ পূৰবী শইকীয়া ✍ ড° স্বাতী কিৰণ	192
34.	এবছার্ড নাট্যতত্ত্বৰ আলোকত গুণধৰৰ অসুখ নাটক ঃ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ ৰিঙ্কা দে ✍ ড° কণিমা পাঠক	201
35.	নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতা ঃ এটি তুলনামূলক আলোচনা ("মনত পৰেনে অৰুন্ধতী" আৰু "সাগৰ দোলা" কবিতা দুটিৰ বিশেষ উল্লিখনসহ) (সোণটিৰ দিনবোৰ আৰু সিহঁতে খেলিছিল —	✍ অপূর্ব নাথ	207
36.	সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন (বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ 'মৃত্যুঞ্জয়' উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লিখনেৰে)	✍ গীতা কেওঁট ✍ ড° হিমাদ্ৰী শইকীয়া	213
37.	কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং জনগোষ্ঠীৰ 'কাতিগাছা' উৎসৱ ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন	✍ ৰূপম মজুমদাৰ ✍ ড° ললিত চন্দ্ৰ ৰাভা	219
38.	চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত ঃ এক চমু অৱলোকন	✍ লুহিতা নায়ক	224
39.	প্ৰথম মহাসমৰত যোগদান কৰা উত্তৰ-পূৰভাৰতৰ কুলি শ্ৰমিকসকলৰ অৱদান ঃ এক ঐতিহাসিক অন্বেষণ	✍ গৌৰৱ শইকীয়া ✍ সুপ্ৰিয়া দত্ত	232
40.	ঔপনিবেশিক অসমত মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়ন ঃ এক সমীক্ষা	✍ মমী পেগু	242

❑❑❑

संपादकीय

राष्ट्र-निर्माण में लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै जी का योगदान

भारत की स्वतंत्रता संग्राम की लंबी और कठिन यात्रा में अनेक महान नेताओं ने अपनी भूमिका निभाई। उन्हीं में से एक थे भारत रत्न लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै जी। उन्होंने न केवल असम की राजनीतिक एकता और स्वायत्तता की रक्षा की, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, शिक्षा और सामाजिक न्याय के आदर्शों को अपने कार्यों के माध्यम से मूर्त रूप दिया। उनका राष्ट्र निर्माण में योगदान केवल राजनीतिक सीमाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सांस्कृतिक, शैक्षिक, सामाजिक और नैतिक पुनर्जागरण से भी गहराई से जुड़ा था। बरदलै जी का जीवन त्याग, नैतिकता और सेवा का उदाहरण है, जो एक सच्चे राष्ट्रनिर्माता की पहचान है। वे महात्मा गांधी के सिद्धांतों–अहिंसा, सत्य और स्वराज से गहराई से प्रभावित थे।

1920 के दशक में उन्होंने असहयोग आंदोलन में भाग लेकर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असम की जनता को संगठित किया। उन्होंने लोगों को विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने, स्वदेशी अपनाने और अंग्रेजी शासन से मुक्ति के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। उनकी समदर्शी और ईमानदार छवि के कारण वे लोकप्रिय कहलाए।

उनका राष्ट्रप्रेम केवल ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था; वे एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना करते थे जो समानता, न्याय और करुणा पर आधारित हो।

भारत की स्वतंत्रता के समय जब 1947 में देश का विभाजन हुआ, तब असम पर भी राजनीतिक संकट के बादल छा गए। तत्कालीन योजनाओं के अनुसार असम के सिलहट और कछार क्षेत्रों को पूर्वी पाकिस्तान में मिलाने का प्रस्ताव था। इस कठिन समय में बरदलै जी ने दृढ़ राष्ट्र भक्ति और राजनीतिक कुशलता से असम की अखंडता और अस्तितता की रक्षा की। उन्होंने असम को भारत का अभिन्न अंग बनाए रखने में निर्णायक भूमिका निभाई। यदि उस समय उनका साहसिक नेतृत्व न होता, तो असम का एक बड़ा हिस्सा आज भारत का हिस्सा न रहता। यह कार्य किसी भी दृष्टि से राष्ट्र निर्माण का ऐतिहासिक योगदान माना जाता है। उन्होंने असम के विविध जातीय और धार्मिक समूहों को एकता के सूत्र में बाँधा और उन्हें यह विश्वास दिलाया कि भारत की एकता में ही असम की शक्ति और सुरक्षा निहित है।

1946 में जब असम को प्रांतीय स्वायत्तता मिली, तब गोपीनाथ बरदलै जी राज्य के पहले मुख्यमंत्री बने। इस पद पर रहते हुए उन्होंने एक सच्चे लोकतांत्रिक नेता की तरह कार्य किया। उन्होंने प्रशासन में पारदर्शिता, नैतिकता और जवाबदेही के सिद्धांत स्थापित किए। उनके शासन में जनता का हित सर्वोपरि था। उन्होंने असम में लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत करने, ग्राम पंचायतों को सशक्त बनाने और नागरिक अधिकारों की रक्षा पर बल दिया। उनकी राजनीति सत्ता की नहीं, सेवा की राजनीति थी। उन्होंने कहा था—राजनीति का उद्देश्य जनसेवा है, न कि व्यक्तिगत लाभ। उनकी इस सोच ने असम के प्रशासनिक ढाँचे को नैतिक मूल्यों पर आधारित बनाया, जो राष्ट्र निर्माण की दिशा में एक बड़ा कदम था।

गोपीनाथ बरदलै जी का मानना था कि शिक्षा किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है। इसलिए उन्होंने अपने शासनकाल में शिक्षा के प्रसार को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। उनके नेतृत्व में असम में हजारों प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना हुई, शिक्षक प्रशिक्षण केंद्र खुले और शिक्षा के बजट में उल्लेखनीय वृद्धि की गई। सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में एक थी असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (1938) की स्थापना, जिसे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के आदेश पर उन्होंने स्थापित की और इसके संस्थापक अध्यक्ष बनें। इसके अतिरिक्त बरदलै जी ने अनेक शैक्षिक संस्थानों की स्थापना की। उनके द्वारा स्थापित गुवाहाटी विश्वविद्यालय (1948) पूर्वोत्तर भारत के लिए उच्च शिक्षा का केंद्र बना। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि असम के युवाओं को अपनी मातृभूमि में ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले। इसके साथ–साथ उन्होंने

महिला शिक्षा, तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण को भी प्रोत्साहित किया ताकि शिक्षा सीधे आत्मनिर्भरता और राष्ट्र की उत्पादकता से जुड़ सके। उनका विश्वास था कि शिक्षित समाज ही सच्चा राष्ट्र निर्माता होता है। राष्ट्र निर्माण केवल राजनीतिक कार्य नहीं है; यह समाज के सुधार से भी जुड़ा है। बरदलै जी ने असम में जातीय भेदभाव, छुआछूत और सामाजिक विषमता के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने समाज के सभी वर्गों—विशेष रूप से गरीब, किसान, मजदूर और जनजातीय समुदायों—को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया। उनकी नीतियाँ सामाजिक न्याय और समानता पर आधारित थीं। उन्होंने कहा था—जब तक समाज का सबसे कमजोर व्यक्ति आगे नहीं बढ़ेगा, तब तक राष्ट्र मजबूत नहीं हो सकता। उनके शासनकाल में भूमिहीन किसानों को भूमि वितरण की योजना शुरू की गई। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्थिरता आई और लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी।

गोपीनाथ बरदलै जी एक ऐसे राष्ट्रभक्त थे जो स्थानीय संस्कृति और राष्ट्रीय एकता को साथ लेकर चलते थे। उन्होंने असमिया भाषा, साहित्य और कला के संरक्षण को शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बनाया। उनका मानना था कि मातृभाषा और स्थानीय परंपरा का सम्मान किए बिना कोई राष्ट्र अपनी पहचान नहीं बना सकता। उनके प्रयासों से असमीया भाषा को शिक्षा, प्रशासन और साहित्य में उचित स्थान मिला। इससे असम की सांस्कृतिक अस्मिता और आत्मगौरव को बल मिला।

गोपीनाथ बरदलै जी गांधीजी के सच्चे अनुयायी थे। उन्होंने अपने जीवन में सत्य, अहिंसा, स्वावलंबन और सेवा को अपनाया। वे स्वयं अत्यंत सादगीपूर्ण जीवन जीते थे। उनकी ईमानदारी और विनम्रता ने उन्हें जनता के हृदय में विशेष स्थान दिलाया। उन्होंने राजनीति में नैतिकता की स्थापना की और यह संदेश दिया कि नेता का असली कर्तव्य जनकल्याण है, न कि व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा। उनकी यह विचारधारा आज भी भारत के लोकतांत्रिक मूल्यों को दिशा प्रदान करती है।

गोपीनाथ बरदलै केवल असम तक सीमित नेता नहीं थे। उन्होंने पूरे पूर्वोत्तर भारत के विकास और एकीकरण की कल्पना की। उनकी पहल पर कई योजनाएँ बनाई गईं — जैसे कृषि विकास, सिंचाई, परिवहन और स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार। उन्होंने इस क्षेत्र के विविध जनजातीय समूहों के बीच आपसी सौहार्द और सहयोग की भावना को प्रोत्साहित किया। उनका विश्वास था कि यदि पूर्वोत्तर भारत को शिक्षा, रोजगार और संचार के माध्यम से जोड़ा जाए, तो यह क्षेत्र राष्ट्र की शक्ति बन सकता है।

भारत की विविधता ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है—यह विचार बरदलै जी के राष्ट्रवाद का आधार था। उन्होंने असम में हिंदू-मुस्लिम एकता को बनाए रखने के लिए अनेक कदम उठाए। सांप्रदायिक तनाव के समय वे हमेशा शांति और भाईचारे के दूत के रूप में कार्य करते थे। उनकी नीति थी—धर्म व्यक्ति का, लेकिन राष्ट्र सबका है। इस प्रकार उन्होंने असम को राष्ट्रीय एकता की प्रयोगशाला बना दिया, जहाँ विविधता के बीच एकता का उदाहरण प्रस्तुत हुआ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब भारत एक नए राष्ट्र के रूप में उभर रहा था, तब बरदलै जी ने संविधान निर्माण, राज्य पुनर्गठन और असम की आर्थिक योजनाओं में सक्रिय योगदान दिया। उनकी दूरदर्शिता के कारण असम में शांति और विलक्षण प्रतिभा स्थिरता बनी रही।

माँ भारती का यह सपूत 5 अगस्त, 1950 को हमारे बीच से सदा के लिए चल बसा। उस समय यह संस्था मात्र 12 वर्ष की थी, परंतु इसके कर्मठ प्रचारकों ने हिंदी शिक्षा को अपना राष्ट्रधर्म मानकर संकल्प और समर्पण भाव से पूर्वोत्तर में गांव-गांव, गली-गली पहुंचकर राष्ट्रभाषा हिंदी की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखा। असम के सैकड़ों हिंदी प्रेमीजनों के लाड़-प्यार से धीरे-धीरे पल्लवित-पुष्पित होकर आज यह असंख्य लोगों के जीवन का आधार बनी हुई है। समिति अपने संस्थापक अध्यक्ष एवं असम के पहले मुख्यमंत्री लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै जी की पुण्यतिथि अति श्रद्धा और आदर के साथ मनाती आई है। आज उनके 75वें स्मृति दिवस पर राष्ट्रभाषा परिवार उन्हें कृतज्ञता पूर्वक नमन और वंदन करता है। ❑

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

राजभाषा हिंदी के विकास में अनुवाद की भूमिका

डॉ. चंदम इन्गो सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय
कांचीरपुर-795003
8118926110
cisingh123@gmail.com

शोध-सार :

भारत एक विविधतापूर्ण देश है, जहाँ विभिन्न भाषाएँ, बोलियाँ और परंपराएँ प्रचलित हैं। इन भाषाओं में से हिंदी, भारतीय गणराज्य की राजभाषा होने के नाते देश के एकजुटता और समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हिंदी का विकास एक निरंतर प्रक्रिया है, जो समय के साथ विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई प्रभावों से समृद्ध हुई है। इस प्रक्रिया में अनुवाद ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि यह भाषा को विभिन्न विचारों, ज्ञान, साहित्य और सांस्कृतिक धरोहरों से जोड़ता है।

बीज शब्द :

हिंदी, अनुवाद, भाषाएँ, परंपराएँ, राजभाषा, प्रशासन, शब्दावली।

उदेश्य :

इस शोधालेख का उद्देश्य 'राजभाषा हिंदी के विकास में अनुवाद की भूमिका' का गहन अध्ययन करना है। इस शोध में यह विश्लेषण किया जाएगा कि किस प्रकार अनुवाद ने राजभाषा हिंदी के विकास में इसका क्या योगदान है। साथ ही यह भी देखा जाएगा कि अनुवाद के माध्यम से हिंदी की वैश्विक उपस्थिति और प्रभाव में कैसे वृद्धि हुई है।

विश्लेषण :

राजभाषा हिंदी के विकास में अनुवाद का योगदान बहुआयामी है। अनुवाद न केवल अन्य भाषाओं से शब्दों और विचारों का आदान-प्रदान करता है, बल्कि यह हिंदी को वैश्विक संदर्भ में प्रासंगिक और प्रभावशाली बनाता है। विदेशी साहित्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और कला को हिंदी में रूपांतरित करने से हिंदी भाषा ने एक नया आयाम प्राप्त किया है। साथ ही अनुवाद ने हिंदी में नई शब्दावली, विचारधारा और दृष्टिकोण को शामिल किया, जिससे यह भाषा और अधिक समृद्ध और जीवंत बनी है।

आज का युग भूमंडलीकरण का युग है, भूमंडलीकृत विश्व की कल्पना अनुवाद के बिना लगभग असंभव-सा है, क्योंकि पूरे विश्व में हजारों की संख्या में भाषाएँ बोली जाती हैं। अनुवाद ही इन भाषाओं को जोड़ने का एकमात्र सेतु है।

वर्तमान संदर्भ में अनुवाद बहुत महत्वपूर्ण एक स्वतंत्र अनुशासन बन गया है। उसका पारंपरिक रूप अब वह नहीं रह गया, जो पहले कभी था। किंतु इस बढ़ती हुई प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में जब हम अनुवाद के विभिन्न क्षेत्रों पर दृष्टि डालते हैं तो

उसमें एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक तत्व है- प्रशासनिक अनुवाद का क्षेत्र। इसमें अनुवाद के अनेक आयाम हमारे समक्ष आते हैं। उन्हीं समस्त आयामों को केंद्र में रखकर आज के इस विषय पर प्रकाश डालना चाहूँगा। 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को राजभाषा घोषित करने के साथ इसके प्रयोग के लिए संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक विशेष प्रावधान दिए गए हैं। भारत सरकार की राजभाषा निति के तहत अनुवाद को विशेष महत्व दिया गया है। यह सुनिश्चित किया गया है कि संसद और विधानसभाओं के कार्यों को जनता तक उनकी भाषा में पहुँचाने के लिए अनुवाद किए जाएँ।

राजभाषा, जो कि कार्यालयी या प्रशासनिक भाषा कहलाती है, केंद्र सरकार के समस्त कार्यालयों में राजभाषा के रूप में हिंदी की जो स्वीकृति है वह काफी हद तक अनुवाद पर आधारित है। ऐसे में वह जो अनुवाद है, उसकी प्रक्रिया वास्तव में एक अलग तरह की प्रक्रिया है और उसकी भाषा भी अन्य अनुशासनों की भाषा से भिन्न है। हिंदी के अनेक रूप देख सकते हैं, देखते भी हैं। साहित्य की हिंदी थोड़ी भिन्न हिंदी है, मीडिया की हिंदी थोड़ी भिन्न है। इसी प्रकार प्राद्यौगिकी की हिंदी का रूप थोड़ा भिन्न है।

हमारे संविधान में राजभाषा हिंदी के जब प्रावधान किए गए हैं, तब अनुवाद को भी स्वीकृती दी गई, क्योंकि द्विभाषिकता की अनिवार्यता ने अनुवाद पर आधारित होने का मार्ग प्रशस्त किया। स्वतंत्र भारत में हमारे पास अपनी कोई भी भाषा, राजकाज की भाषा उस तरह से नहीं थी, क्योंकि मध्यकालीन भारत मुगलकाल था। उस समय प्रशासन की भाषा फारसी थी और उसी में समस्त कार्यों के निष्पादन की अनिवार्यता भी थी। किंतु मुगलकाल के बाद अंग्रेज हम पर काबिज हुए तो हम पर अंग्रेजी थोपी गई। इसलिए शिक्षा-दीक्षा में, ज्ञान-विज्ञान में, शासन-प्रशासन में, अंग्रेजी का वर्चस्व हो गया और अंग्रेजी की अनिवार्यता भी हो गई। परिणामत: उस समय भी यानी मध्यकालीन भारत में जन सामान्य से संवाद की भाषा यदि फारसी थी तो वह समस्त भारतीयों की भाषा नहीं थी। बाद में अंग्रेजी हुई तो भी वह समस्त भारत की भाषा नहीं थी तो अनुवाद आधारित रहने की आवृत्ति की यह परंपरा, व्यवस्था मध्यकाल से थी। इसलिए अंग्रेजों के शासनकाल में अंग्रेजी में लिखित या व्यक्त मौखिक रूप से जो भी शासकों की कार्यवाही आदि से संबंधित दस्तावेज थे, संवाद थे, उनको जनसामान्य तक ले जाने के लिए अनुवाद तो करना ही पड़ता था। इस प्रकार संवैधानिक प्रावधानों से पोषित राजभाषा हिंदी का विकास हुआ और ऐसी राजभाषा हिंदी ने अनुवाद के आधार पर एक अपना विशिष्ट रूप, संरचना बना ली, क्योंकि द्विभाषिकता उसका मुख्य आधार था। अब ऐसे में हम देख सकते हैं कि जो यह संरचना है, यह समान्य बातचीत की वाक्य संरचना से या व्याकरणिक व्यवस्था से थोड़ी भिन्न है, क्योंकि हम अंग्रेजी में लिखित प्रशासन संबंधी सामग्री का हिंदी में अनुवाद करके उसे अंतरित करते रहे, चाहे बात शब्दावली की हो, जिसे हम पारिभाषिक शब्द कहते हैं, अवधारणात्मक शब्द कहते हैं क्योंकि अगर अंग्रेजी में डायरेक्टर शब्द था तो हिंदी में उसका समतुल्य हमने निदेशक और निर्देशक दो अलग-अलग क्षेत्रों में प्रयोग होने वाले शब्द बना लिए। ठीक उसी तरह चीफ मेडिकल ऑफिसर को हमने मुख्य चिकित्सा अधिकारी बना लिया। बात शब्दावली की है तो यह शब्दावली, जिसको हम कन्सेप्टचुअल कहते हैं, अवधारणात्मक शब्दावली कहते हैं, यह शब्द केवल अर्थ से व्यक्त नहीं होते, बोधगम्य नहीं होते, इसलिए इसको शब्दावली कहा, क्योंकि इसकी अपनी एक अवधारणा है। उस अवधारणा को परिभाषित किया जाता है इसलिए बात चाहे प्रशासन में शब्दावली की हो, चाहे प्रयुक्तियों की हो, अभिव्यक्तियों की हो, जिसको हम टिपण्णियाँ कहते हैं, यहाँ तक की पद आदि की बात हो, पदनामों के साथ-साथ विभागों, अनुभागों के नामों की बात हो, उनके अनुवाद की बात हो, इन सब में अंग्रेजी स्रोत भाषा रही है। और उस प्रशासनिक सामग्री का अनुवाद जो हिंदी में हुआ है तो हिंदी लक्ष्य भाषा रही है। प्रयास यह रहा की यथासंभव मूल शब्द, वाक्य, अभिव्यक्ति, प्रयुक्ति या पत्र प्रारूप आदि उसके समतुल्य अनुवाद हिंदी में किए जा सकें। इसलिए प्रशासन में यह द्विभाषिकता की अनिवार्यता आई। इसको कार्यान्वित करने में हिंदी अधिकारियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गई, जिनको हम हिंदी ऑफिसर कहते हैं। फिर राजभाषा अधिकारी या प्रबंधक राजभाषा, कनिष्ठ और वरिष्ठ अनुवादक— इस रूप में उनकी नियुक्तियाँ होती रहीं। इन सबकी अपेक्षा,

आवश्यकता प्रशासनिक अनुवाद के क्षेत्र में रोजगार की बड़ी संख्या में जरूरत को रखांकित करने लगे। यही कारण है कि समस्त सरकारी कार्यालयों में हिंदी अधिकारियों, कनिष्ठ अनुवादक, वरिष्ठ अनुवादकों की आवश्यकता पड़ने लगी। हिंदी अनुभाग बनने लगे और उसमें इन सभी पदों पर नियुक्ति- यहाँ तक की हिंदी टंकण के लिए हिंदी टाइपिस्ट, हिंदी सहायक जैसे पद बने तो अनुवाद ने हिंदी के क्षेत्र में, प्रशासनिक अनुवाद ने विशेष रूप से नए-नए पदों का सृजन किया। नियुक्तियों के, रोजगार के अवसर पैदा किए।

प्रशासनिक अनुवाद या कार्यालयी भाषा की संरचना, इसकी शब्दावली और काफी हद तक इसका व्याकरण भी हम अंग्रेजी से आयात कर रहे हैं। उसकी प्रकृति को, उसकी आवधारणा को हिंदी में अंतरित करने के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में जो कर्यालयी भाषा है, उसकी संस्कृति भी विशेष हो गई। इसलिए वाक्य संरचना को हम स्रोत भाषा यानी अंग्रेजी के आधार पर बनाने लगे। शब्द संपदा या शब्दावली की जो संपदा, सटीक पर्याय शब्द चयन जो है, इसको हम अप्रोप्रिएट सिलेक्शन ऑफ दी वर्ड भी कहते हैं तथा सहज संप्रेषणीयता के कारण इस क्षेत्र का अनुवाद विषयनिष्ठ होता है। कौन शब्द कहाँ प्रयुक्त होगा? क्यों होगा? इस प्रकार विचार किया जाता है। कहीं वाटर शब्द है तो उसके लिए जल होगा कि नीर होगा? वारी होगा या पानी होगा? अब जो भारतीय मंत्रालय है, उसमें जल शब्द का प्रयोग है। लेकिन सामान्य जीवन में पानी का प्रयोग है। वारी या नीर शब्द का प्रयोग साहित्य में मिलता है। इस प्रकार साहित्य में, शासन-प्रशासन में, मीडिया में, तकनीकी में, प्राद्यौगिकी में, उद्योग में, शब्द की जो संपदा है, शब्दावली की जो संपदा है- उसका भी वैशिष्ट्य है। तो सटीक पर्याय शब्द चयन, इन सबके मूल में है, साथ ही सहज संप्रेषणीयता यानी कि जो कम्युनिकेशन है, वह भी बहुत ही सरल होना चाहिए। ऐसी भाषा, ऐसे शब्द, ऐसी वाक्य संरचना, लेकिन उसकी मर्यादा व गरिमा से कोई समझौता हम सहजता और सरलता के नाम पर नहीं करेंगे, क्योंकि हर भाषा का, हर क्षेत्र की भाषा का अपना एक अनुशासनपरक स्वरूप होता है, उसकी एक मर्यादा होती है। प्रशासन में कर्यालयी भाषा और अनुवाद के क्षेत्र में विषयनिष्ठता रहती है, जिसको हम कहते हैं टू दी पॉइंट बात करना। अवांछित विस्तार वहाँ नहीं होता और उसकी गुंजाइश भी नहीं होती। इसलिए राजभाषा हिंदी केंद्र सरकार के समस्त प्रशासनिक कार्यों के निष्पादन की भाषा बनी। जैसे कहा गया है कि 343 से 351 अनुच्छेद के जब प्रावधान किए गए तो द्विभाषिकता एक व्यवस्था थी- संविधान में प्रावधान करते हुए इसी तरफ संकेत भी किया गया कि जब तक हिंदी में, राजभाषा हिंदी में कार्य करने का विश्वास न मिल जाए, अधिकार न मिल जाए, तब तक हम अंग्रेजी की मदत लेते रहेंगे। अंग्रेजी को भी रखेंगे। लेकिन धीरे-धीरे प्रयत्न होगा की हम राजभाषा हिंदी में कार्य करने में आत्मनिर्भर हो जाएँ और फिर हम निकट भविष्य में अंग्रेजी से मुक्त हो जाएँ। यह प्रक्रिया आज भी चल रही है। इसके लिए वर्तमान संदर्भ में भी प्रशासनिक अनुवाद के महत्व को ज्यादा-से-ज्यादा बढ़ावा देने की आवश्यकता है। साथ ही हमारी शिक्षा नीति में भी परिवर्तन लाना बहुत जरूरी है ताकि हम सभी भारतवासी राजभाषा हिंदी के प्रयोग में सक्षम बनें।

हम जानते है कि हमारा भारत बहुभाषा भाषी देश है यानी multilingual है। यहाँ सैकड़ों भाषाएँ-बोलियाँ, उपबोलियाँ बोली जाती हैं। 1928 में प्रकाशित जॉर्ज ग्रिअर्सन की किताब लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया के अनुसार, 723 भाषाएँ या बोलियाँ भारत में बोली जाती हैं, जिनमें 179 प्रमुख भाषाएँ हैं और 544 बोलियाँ हैं। इसलिए यह सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत समृद्ध और संपन्न देश है। मूल कारण क्या है कि एक भाषा या एक बोली किसी एक संस्कृति का प्रतिनिधत्व करती है तो बहु संस्कृति हो गई, बहु भाषी भी हो गई। इस प्रकार संविधान की 8वीं अनुसूची में 22 भाषाओं को राष्ट्र की भाषा का दर्जा दिया गया। राजभाषा के रूप में हिंदी का रूप और उसका स्वरूप जो विशिष्ट है, वह एक तकनीकी शब्द है राजभाषा यानी राजकाज की भाषा यानी समस्त प्रशासनिक कार्यों के निष्पादन के लिए जिस हिंदी का प्रयोग होता है, उसे राजभाषा हिंदी कहा जाता है। इसलिए राजभाषा हिंदी को उसी तरह जान सकते हैं, समझ सकते हैं-जैसे राष्ट्र ध्वज विशिष्ट है। कहने का तात्पर्य है, यह हमारे राष्ट्र का गौरव है, क्योंकि अनेक प्रकार के ध्वज हमारे देश में मिलते हैं। राजनीतिक दलों के

अलग-अलग ध्वज हैं, समुदायों के ध्वज हैं, संस्थाओं के, संगठनों के बहुत से ध्वज मिलते हैं, किंतु भारत देश का ध्वज एक ही है, तिरंगा-वह विशिष्ट है। इसलिए उसको राष्ट्र ध्वज कहते हैं। इस तरह शासन-प्रशासन में शासनिक-प्रशासनिक विधान में कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के क्षेत्रों में जो हिंदी भाषा प्रयुक्त होती है, जिससे प्रशासनिक समस्त कार्यों का निपटान होता है, निष्पादन होता है, उसमें सहायता मिलती है, उसी को राजभाषा हिंदी कहा जाता है। स्पष्ट है कि प्रशासनिक हिंदी ही कार्यालयी हिंदी है और इसी को राजभाषा हिंदी कहा गया है। प्रशासन के अंतार्गत जब हम किसी राज्य का, किसी राष्ट्र का प्रशासन देखते हैं तो उसमें बहुत से नियम होते हैं, कार्याविधियाँ होती हैं, कार्य प्रणालियाँ होती हैं, कार्यज्ञापन होते हैं। ये सब कुछ इसमें समाहित रहते हैं। प्रशासन को अनुशासन की आवशकता होती है, नियमों की आवश्यकता होती है, जनकल्याण से संबंधित कार्यों की योजनाओं को बनाने और क्रियान्वित करने की आवश्यकता होती है। उन सबके संदर्भ में हम इस भाषा को, राजभाषा को देख सकते हैं। यह जो राजभाषा हिंदी है, मौलिक हिंदी नहीं है, साहित्य और सृजन की हिंदी नहीं है। इसकी जो शब्दावली है, वह कृत्रिम है। अंग्रेजी के शब्द सामने रखकर हिंदी के शब्द बनाए गए। अंग्रेजी की वाक्य प्रक्रिया को सामने रखकर इनके समतुल्य हिंदी में प्रयुक्तियाँ बनाई गईं, जो प्रशासन के, केंद्र सरकार और राज्य सरकारों की कार्य विधियों से संबद्ध होती हैं। यानी जो एडमिनिस्ट्रेशन के, जो कार्यालय की कार्यपद्धति है, वह सेंट्रल गवर्नमेंट और स्टेट गवर्नमेंट-इन दोनों की कार्यविधियों से जुड़ी होती है। इसलिए सभी मंत्रालय, विभाग, अनुभाग, अधीनस्थ कार्यालय, संबद्ध शाखाएँ, सरकरी बैंक और लिमिटेड कंपनियाँ, सार्वजानिक क्षेत्रो-ये सभी प्रशासनिक क्षेत्र में गिने गए हैं।

केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त जितने भी आयोग हैं- जैसे पे कमीशन, enquiry commission आदि, इतना ही नहीं, बहुत सारे आयोग समय-समय पर गठित होते रहते हैं। कभी बाढ़ आ जाती है तो आयोग का गठन होता है। कभी सूखा पड़ता है तो भी आयोग बन जाता है। इन सभी समस्त सरकारी आयोगों द्वारा पारित उद्घोषणाओं के लिए राजभाषा हिंदी का प्रयोग किया जाता है और अंग्रेजी में इन समस्त कार्यों का निष्पादन किया जाता है।

इस तरह भारत के सभी राज्यों में हिंदी का प्रयोग किस रूप में होता है, किस स्तर तक होता है, इसके प्रयोगकर्ता कौन-कौन हैं? उनकी मातृभाषा क्या है? उस राज्य या क्षेत्र की भाषा क्या है और वहाँ सभी, लगभग सभी कार्य हिंदी में होते हैं? वहाँ हिंदी के साथ क्षेत्रीय भाषा के भी प्रयोग का प्रावधान है? और हिंदी की जो जानकारी है, वह तुलना में कम है? इस तरह के सर्वेक्षण को आधार बनाकर राजभाषा प्रयोग संबंधी तीन क्षेत्र- 'क', 'ख' और 'ग' निर्धारित किए गए। इसमें 'क' क्षेत्र वह है, जहाँ सभी प्रांतों में सामान्यत: हिंदी भाषा में अधिकांश कार्य संपन्न किए जाते हैं। इन क्षेत्रों के सभी कार्यालय, कंपनियाँ, स्थानीय कार्यलय, केंद्रीय प्रशासन से पत्राचार अधिकांशत: हिंदी में ही करते हैं, उन्हें करना होता है। न्यायालय, तहसील, नगरपालिका, कलक्टर कार्यालय, कानून-व्यवस्था आदि से संबद्ध सभी कार्यालयों का पत्र व्यवहार भी हिंदी में ही होता है।

उस क्षेत्र में स्थित राज्य सरकारों के कार्यलयों में भी समस्त पत्र व्यवहार हिंदी में ही होना चाहिए, लेकिन मजबूरन हमें अंग्रेजी में काम चलाना पड़ा, क्योंकि हिंदी में कार्यसाधक ज्ञान सबके पास नहीं था। आजादी के तत्काल बाद राजभाषा के प्रावधान किए गए। उसमें अंग्रेजी को भी रखा गया और यह कहा गया कि प्रारंभ में हम ऊपर अंग्रेजी रखें और उसके नीचे उसका हिंदी अनुवाद भी रखें। इस तरह धीरे-धीरे यह लक्ष्य भी निर्धारित किया गया कि बाद में हम अंग्रेजी को हटा दें, उससे मुक्त हो जाएँ और फिर समस्त कार्य हिंदी में करें। इसलिए हर केंद्र सरकार के कार्यालयों के आस-पास जैसे दिल्ली की बात करें तो दिल्ली में राज्य सरकार के कार्यालय भी बहुत हैं, इनमें जो भी पत्र व्यवहार आदि केंद्र के साथ हो वह हिंदी में होना चाहिए। समस्त लेखा सामग्री, रबड़ की मोहरें, नाम पट, सभी प्रकार के आदेश पत्र, नाम, पत्ते, प्रविष्टियाँ आदि सब कुछ प्रशासनिक हिंदी में होते हैं या होना चाहिए। इस प्रकार 'क' क्षेत्र के अंतर्गत बिहार, हरियाणा, हिमाचल, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, झारखंड तथा इनके साथ-साथ केंद्र शासित अंडमान निकोबार द्वीप समूह और संघ राज्य को रखा गया।

'ख' क्षेत्र के अंतर्गत गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र तथा संघ राज्य चंडीगढ़ शामिल है। इनमें क्षेत्रीय भाषा और हिंदी दोनों के प्रयोग की बहुलता को आधार बनाया गया। इसलिए 'ख' क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ाने की बात की गई।

'ग' क्षेत्र के अंतर्गत अन्य सभी राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र समाहित हैं। ये सभी हिंदीतर भाषा क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में हिंदी के कार्य और शिक्षण प्रशिक्षण को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

इस प्रकार प्रशासनिक हिंदी यानी राजभाषा, सरकार की विशिष्ट कार्य प्रणाली पर आधारित है और सरकार कोई मूर्त सत्ता नहीं है, अमूर्त है। इसलिए सरकारी अधिकारी किसी अधिकार विशेष के नहीं होते। ये सरकारी अधिकारी सरकारी तंत्र में अलग-अलग स्तर पर वर्गीकृत होते हैं। इसलिए कार्यालयी हिंदी के प्रयोग में उसकी संरचना में कोई वास्तविक कर्ता प्रकट नहीं होता, लुप्त रहता है।

किसी भी सरकारी अधिकारी द्वारा लिया गया निर्णय, उसका निजी निर्णय नहीं होता। यह निर्णय अमूर्त सरकार का होता है। अधिकारी तो सरकार का प्रतिनिधि मात्र होता है। अत: प्रशासनिक या कर्यालयी हिंदी मौलिक या अनूदित किसी भी रूप में हो- उसका कर्ता प्रकट नहीं होता। इसमें 'मैं' या 'तू' अथवा 'तुम' का प्रयोग नहीं होता।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि राजभाषा हिंदी और प्रशासनिक अनुवाद में जो लक्ष्य है- वह बोधगम्यता होती है, एकार्थता होती है, विषयनिष्ठता होती है, भाषा की औपचारिकता का निर्वाह होता है। प्रशासन द्वारा निर्धारित मानक शब्दावली का प्रयोग होता है। असंदिग्धता अर्थात संदेह रहित शब्दावली और वाक्य संरचना होनी चाहिए। प्रशासनिक भाषा या प्रशासनिक अनुवाद की भाषा संरचना में निर्वैयक्तिकता का विशेष ध्यान रखा जाता है, जैसे- मुझे निर्देश हुआ है कि मैं आपको सूचित करूँ (i am directed to inform you), यथासंशोधित प्रारूप प्रस्तुत है (draft as amended is put up)। इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग इस बात को दिखाता है कि जो कर्ता है, वह प्रकट नहीं होता। कर्मचारियों और अधिकारियों की प्रशासन में कई श्रेणियाँ होती हैं। किंतु कोई अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारी/अधिकारी को आदेश देते हुए भी कर्ता का प्रयोग नहीं करता, जैसे- 'इस पत्र के उत्तर को अभी रोक लिया जाए', 'यह पत्र शीघ्र जरी किया जाए'। इस तरह के वाक्यों का प्रयोग हम देख सकते हैं।

प्रशासनिक भाषा और अनुवाद में शिष्टाचार, औपचारिकता अवश्य होती है, होनी चाहिए। इसलिए सेवा में, महोदय, सादर, आपका, सधन्यवाद आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि प्रशासनिक हिंदी, जिसे हम राजभाषा हिंदी कहते हैं, वह अनुवाद पर अधारित भाषा के रूप में विकसित हुई है, हो रही है। उसकी मानक कृत्रिम शब्दावली है, जिसका निर्माण सरकारी संस्थाएँ, जैसे-वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग आदि संस्था करती हैं। इस तरह प्रशासनिक अनुवाद की आधारशिला प्रशासनिक शब्दावली की संरचना और संरचना के अंग होते हैं। तो कुल मिलाकर हम देख सकते हैं कि प्रशासनिक भाषा के रूप में जिस राजभाषा हिंदी का विकास हो रहा है, उसकी संरचना या स्वरूप अंग्रेजी से आधारित है। अत: अनुवाद के महत्व को समझते हुए ज्ञान के सभी क्षेत्रों से संबंधित शब्दावलियों का निर्माण कर राजभाषा हिंदी की शब्द संपदा को समृद्ध एवं संपन्न बनाया जाए। हमारी राजभाषा को सशक्त एवं समर्थ बनाने के लिए हमें और अग्रसर होने की आवश्यकता है। आइए, हम सभी अनुवाद को एक सशक्त उपकरण के रूप में अपनाएँ और राजभाषा हिंदी, हिंदी के अन्य रूप तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में अपना योगदान दें। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. राजभाषा हिंदी, 2017, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली- 110002
2. डॉ. कमल किशोर गोयल, राजभाषा हिंदी और अनुवाद, 2005, पता : 18-18, गुरु नानक मार्ग, दिल्ली-110001
3. डॉ. शिवराज पाटिल, हिंदी अनुवाद : सिद्धांत और व्यवहार, राजकमल प्रकाशन, 2010, 7/16, अंसारी रोड, दिल्ली -110002
4. डॉ. जय कुमार शर्मा, राजभाषा हिंदी और अनुवाद की आवश्यकता, प्रगति प्रकाशन, 2008, 15/29, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश - 202001
5. डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा, हिंदी अनुवाद : समस्याएँ और समाधान, महेन्द्र प्रकाशन, 2012, 47/32, मैन बाजार, इलाहाबाद -211003
6. डॉ. कमल किशोर गोयल, अनुवाद और हिंदी का भविष्य, वाणी प्रकाशन, 2015, 4699/10, 2ndd Floor, Daryaganj, Delhi - 110002

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना और नवजागरण

डॉ. दीपक. के आर

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
तिरुवनंतपुरम- 695581
9447616483
drdeepakkrsde@gmail.com

शोध-सार :

हिंदी आलोचना के इतिहास में नवजागरण निस्संदेह एक प्रभेदक तत्व है। हिंदी आलोचना को नवीन रूप नवजागरण के कारण ही प्राप्त हुआ था। वास्तव में आधुनिक हिंदी आलोचना का प्रारंभ नवजागरण से अभिन्न रूप से संबंधित है। हिंदी आलोचना को एक नया दृष्टिकोण नवजागरण के कारण ही प्राप्त हुआ था। रीतिकालीन सैद्धांतिक निरूपण को 'आलोचना' की संज्ञा देकर उसे 'हिंदी आलोचना' का प्रारंभिक रूप मानना युक्तिसंगत नहीं है। रीतिकालीन आलोचना में कोई मौलिक सिद्धांतों की स्थापना नहीं हुई थी। सामाजिक जीवन से उसका कोई सरोकार नहीं था। हिंदी आलोचना की जातीय परंपरा के उदय या विकास का कोई भी लक्षण इस समय की आलोचना में दृष्टिगोचर नहीं होता। रीतिकालीन आलोचना में जीवंतता का नितांत अभाव रहा था। आधुनिक युग में नवजागरण से प्रभावित होकर जब साहित्य में नवीन चेतना आई, तब उस चेतना का प्रभाव आलोचना के क्षेत्र में भी दिखाई देने लगा।

बीज शब्द :

आलोचना, नवजागरण, जनवादी, दृष्टिकोण, साहित्किक मूल्यांकन।

नवजागरण से प्रभावित आधुनिक हिंदी आलोचना के बारे में विचार करने से पहले पूर्ववर्ती आलोचना से वह किन कारणों से भिन्न है, इसकी ओर दृष्टि डालना समीचीन होगा। इसका सबसे मुख्य कारण सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का बदल जाना था। शिक्षा के प्रचार के कारण एक नए पाठक वर्ग का उदय हुआ। कहना न होगा कि इन परिवर्तनों के मूल में नवजागरण ही था। परिमाण की दृष्टि से हिंदी आलोचना का प्रारंभिक काल (भारतेंदु युग) उतना समृद्ध नहीं था। इसमें गंभीर एवं सूक्ष्म विवेचन पद्धति का भी अभाव है। किंतु पूर्ववर्ती आलोचनात्मक दृष्टि से भिन्न, बिल्कुल एक नई दृष्टि का एहसास इस समय की आलोचना पर सरसरी निगाह डालने से ही स्पष्ट हो जाती है। इस काल की परिस्थितियाँ वास्तव में नवीन ढंग की आलोचना के लिए अनुकूल हो रही थीं।

आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास में पाश्चात्य या अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव को नकारना इतिहास-निषेध के अलावा और कुछ नहीं है। नवजागरण के मूल्यों को रूपायित करने में, उसको विकसित करने में पाश्चात्य साहित्य एवं सोच का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा था। इस संबंध में डॉ. रामचंद्र तिवारी का कथन उल्लेखनीय है, *''आधुनिक युग के आरंभ अर्थात भारतेंदु के उदय (सन 1850-85) के साथ हिंदी-साहित्य-चेतना पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ने लगा था।*

उन्नीस्वीं शती ईस्वी में अंग्रेजी साहित्य जिन जीवन-मूल्यों को स्वीकार करके पर्याप्त प्रगति कर चुका था, धीरे-धीरे हिंदी का साहित्यकार उनसे परिचित होने लगा। वैज्ञानिक अनुसंधान, औद्योगिक क्रांति, राष्ट्रीय एकता, जनतांत्रिक जीवन-व्यवस्था, विचार-स्वातंत्र्य, जीवन के प्रति बौद्धिक एवं उपयोगितावादी दृष्टिकोण आदि नवीन मान्यताओं से हिंदी का साहित्यकार परिचित, प्रेरित एवं प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप हमारे परंपरागत साहित्य-संस्कार बदलने लगे।''[1] इस संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा के विचार काफी महत्वपूर्ण हैं। अंग्रेजी एवं बंगला साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करने की बात को स्वीकारते हुए भी वह हिंदी नवजागरण की मौलिकता के समर्थक हैं। उनके मत में हिंदी नवजागरण की कुछ महत्वपूर्ण जातीय विशेषताएँ भी हैं। *''भारतेंदु-युग के साहित्य ने न केवल अंग्रेजी साहित्य से वरन बंगला साहित्य से भी प्रेरणा पाई है। लेकिन उसके साहित्य की जड़ें इसी धरती में हैं और ऊपर बताई हुई उसकी जातीय विशेषताएँ अपनी हैं, मौलिक हैं। उनके लिए हम किसी के ऋणी नहीं हैं।''*[2] जाहिर है कि भारतेंदु जैसे प्रारंभिक आलोचकों पर पाश्चात्य मूल्यों का प्रभाव पड़ा था, किंतु पाश्चात्य साहित्य की नकल करना उनका उद्देश्य नहीं था। श्री विश्वानाथ त्रिपाठी के शब्दों में, *'''आलोचना' उन विधाओं में से है, जो पश्चिमी साहित्य की नकल पर नहीं, बल्कि अपने साहित्य को समझने-बूझने और उसकी उपादेयता पर विचार करने की आवश्यकता के कारण जन्मी और विकसित हुई है। 'वहाँ होता है इसलिए यहाँ भी होना चाहिए' इस विचार की भावना के वशीभूत होकर भारतेंदु ने 'नाटक' पर अपने विचार नहीं प्रकट किए हैं। 'हिंदी के नाटकों का स्वरूप कैसा होना चाहिए' इसका ध्यान रखकर उन्होंने अपने विचार प्रकट किए हैं।''*[3] संक्षेप में भारतीय नवजागरण के मूल में पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों चिंतन पद्धतियों का योगदान रहा था। रोचक तथ्य यही है कि अंग्रेजी साहित्य के अध्यन से जो नया प्रकाश मिला था, उसका प्रयोग भारतेंदु, बालकृष्ण भट्ट जैसे साहित्यकारों ने हिंदी की साहित्यिक रुचि के परिष्कार के लिए प्रयुक्त किया।

वास्तव में भारतेंदु जैसे साहित्यकारों ने 'हिंदी साहित्य को युग के अनुरूप' बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। साहित्य और जनता के विचारों के बीच जो खाई थी, उसे मिटाने का भरपूर प्रयास भारतेंदु ने किया। जनता नए-नए विचारों से परिचित हो रही थी। लेकिन साहित्य पुराने मार्ग पर ही चल रहा था। इस स्थिति में परिवर्तन हिंदी साहित्य क्षेत्र में भारतेंदु के प्रवेश के साथ ही प्रारंभ होता है। जनता के बढ़ते हुए विचारों का मेल देश के परंपरागत साहित्य से कराने वाले साहित्यकार थे भारतेंदु हरिश्चंद्र। आचार्य शुक्लजी के शब्दों में, *''बात यही थी कि जिन लोगों के मन में नई शिक्षा के प्रभाव से नए विचार उत्पन्न हो रहे थे, जो अपनी आँखों काल की गति देख रहे थे और देश की आवश्यकताओं को समझ रहे थे, उनमें अधिकांश तो ऐसे थे, जिनका कई कारणों से-विशेषत: उर्दू के बीच में पड़ जाने से हिंदी-साहित्य से लगाव छूट-सा गया था और शेष-जिनमें नवीन भावों की कुछ प्रेरणा और विचारों की कुछ स्फूर्ति थी- ऐसे थे जिन्हें हिंदी-साहित्य का क्षेत्र इतना परिमित दिखाई देता था कि नये-नये विचारों को सन्निविष्ट करने के लिए स्थान ही नहीं सूझता था। उस समय एक ऐसे सामंजस्य पटु, साहसी और प्रतिभा-संपन्न पुरुष की आवश्यकता थी, जो कौशल से इन बढ़ते हुए विचारों का मेल देश के परंपरागत साहित्य से करा देता। ऐसे ही पुरुष के रूप में बाबू हरिश्चंद्र साहित्य-क्षेत्र में उतरे। उन्होंने हमारे जीवन के साथ हमारे साहित्य को फिर से लगा दिया। बड़े भारी विच्छेद से उन्होंने हमें बचाया।''*[4]

संक्षेप में उस समय जनता और साहित्य के बीच के संबंध को स्थिर करने का काम, प्रतिष्ठित करने का काम कर रहे थे भारतेंदु हरिश्चंद्र। अर्थात वह हिंदी साहित्य को जनवादी बना रहे थे अथवा लोक चेतना के साथ साहित्य के संबंध को स्थापित कर रहे थे। साहित्य और लोक के बीच का जो संबंध भक्तिकाल में विकसित हुआ था, रीतिकाल में उसका विच्छेद हो जाता है। उसकी पुन:स्थापना करने का कार्य किया था भारतेंदु ने। इस पुन:स्थापना का प्रयास उस समय की प्रत्येक साहित्यिक विधा में परिलक्षित होता है। जहाँ तक हिंदी आलोचना का संबंध है- नवजागरण से प्रभावित हिंदी आलोचकों का ध्यान भी मुख्यत: आलोचना के माध्यम से जनता और साहित्य के

बीच के संबंध को प्रतिष्ठित करना ही था। यह भी विचारणीय बात है कि आधुनिक युग में जो नई-नई साहित्यिक विधाएँ विकसित हुई थीं, उनके उचित मूल्यांकन करने की क्षमता रीतिकालीन आलोचना पद्धति में नहीं थी। इस आलोचना पद्धति का लोक जीवन से कोई सरोकार भी नहीं थी। अत: हिंदी के प्रारंभिक आलोचकों का प्रथम प्रयास समाज और साहित्य के अविच्छिन्न संबंध को दर्शाने पर केंद्रित रहा। बालकृष्ण भट्ट का निबंध 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' इस संदर्भ में विशेष स्मरणीय है। वे साहित्य को जन समूह के चित्त का चित्रपट मानते थे। *''प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है। जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वे सब उसके भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं।... इसलिए साहित्य यदि जनसमूह के चित्त का चित्रपट कहा जाए तो संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल बाहरी हाल हम उस देश का जान सकते हैं, पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय-समय के आभ्यंतरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।''*[5]

विश्वनाथ त्रिपाठी के विचार में भट्टजी का यह कथन हिंदी अलोचना में युगांतर की घोषणा है। वे लिखते हैं, *''यह रस-निर्जीव रस के प्रति जनसमूह के हृदय का विद्रोह था, जिसकी अभिव्यक्ति भारतेंदु युग कर रहा था। साहित्य को देखने-समझने की दृष्टि बदली तो उसके मूल्यांकन की कसौटी भी बदली और हिंदी आलोचना में युगांतर उपस्थित हुआ।''*[6] उनका यह कथन भी ध्यान देने योग्य है कि *'''जनसमूह के हृदय की भावनाओं' का आग्रह करके ही हिंदी की आलोचना रीतिकालीन केंचुल उतरकर आधुनिक बनी।''*[7]

परिमाण एवं गुण दोनों की दृष्टि से भारतेंदु युग की आलोचना उतनी समृद्ध नहीं है। इसका एक कारण यह रहा था कि आलोचना के गंभीर एवं सूक्ष्म स्वरूप को ग्रहण करने योग्य एक मानसिकता जनता अथवा पाठकों में पूरी तरह विकसित नहीं हुई थी। इसलिए इस समय के आलोचकों का ध्यान मुख्यत: एक स्वस्थ समाज, एक स्वस्थ साहित्यिक समाज के निर्माण पर अधिक केंद्रित रहा। इस दृष्टि से इस समय के निबंध साहित्य का विशेष महत्व है। वास्तव में अपने निबंधों के माध्यम से इस समय के निबंधकार परोक्ष रूप से ही सही, आगे की हिंदी आलोचना के विकास के लिए एक उचित पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे, जिसके अभाव में हिंदी आलोचना का आगे बढ़ना संभव नहीं था।

बालकृष्ण भट्ट ने लगभग 1000 निबंधों की रचना की थी। नवजागरण ने भट्टजी के साहित्यिक व्यक्तित्व एवं रचनाधर्मिता के निर्माण में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, वह दिविक रमेश के इस कथन से स्पष्ट है, *''सच तो यह है कि स्वतंत्रता के पहले नवजागरण और उससे जुड़े जितने भी मुद्दे हो सकते हैं, वे निबंधकार भट्ट की नजर से बच नहीं सके हैं। ... बालकृष्ण भट्ट के विषय प्रधान निबंधों का विशेष महत्व है। उन्होंने राजनीतिक विषयों पर तो साहित्यिक विषयों से भी अधिक लेखनी चलाई है। सामाजिक निबंधों में जहाँ उनका समाज सुधारक रूप व्यक्त होता है, वहीं बाल-विवाह, बाह्य आडंबर, जात-पात, छुआछूत, अंग्रेजी शिक्षा प्रदत्त फैशन-परस्ती आदि कितनी ही कुरीतियों पर उन्होंने तीखे प्रहार किए हैं। नारी केंद्रित निबंधों की दृष्टि से तो उन्हें नारी-विमर्श का सशक्त दावेदार कहा जा सकता है। विशेष रूप से स्त्रियों और उनकी शिक्षा पर उन्होंने बहुत बल दिया। 'पर्दा-प्रथा' के वे घोर आलोचक थे।''*[8]

भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना और पत्र-पत्रिकाएँ :

भारतेंदु युग में नई आलोचना दृष्टि के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा था। जनता की साहित्यिक रुचि बदलने में इन पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य के प्रभाव से जनता में जो नई चेतना विकसित हुई थी, उसे मजबूत बनाने का कार्य इन पत्रिकाओं ने किया। नई चेतना से युक्त नए पाठक वर्ग के निर्माण में भी इनकी देन असंदिग्ध रही थी। इस संबंध में डॉ. निर्मला जैन का कथन उल्लेखनीय है, *''इस युग में पत्र-पत्रिकाओं का निकलना एक बहुत बड़ी बात है। यह बात इसलिए और महत्वपूर्ण है कि ये पत्रिकाएँ जिस पाठक-समुदाय के लिए निकलीं वह राज-दरबार का सहृदय रसिक नहीं, बल्कि मध्य-वर्ग का शिक्षित पाठक था। इसलिए सवाल दरबारों और*

गोष्ठियों में वाहवाही लूटने का नहीं रहा गया, बल्कि जन-सामान्य की रुचि का ध्यान रखते हुए उसके संदर्भ में अपनी सार्थकता सिद्ध करने का हो गया। यह साहित्य का जनतंत्रीकरण था। जाहिर है आलोचना का दायित्व भी इसी पाठक-समुदाय की रुचि से संबद्ध हो गया।''[9]

समसामायिक साहित्य के अभाव में आलोचना का समसामायिक होना संभव नहीं है। इन पत्रिकाओं ने जहाँ एक ओर साहित्य द्वारा समाज को युग के अनुरूप बनाने का काम किया था तो दूसरी ओर साहित्य और साहित्यिक रुचि को भी युग के अनुरूप बनाने का प्रयास किया था। *''उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में अपने समय के मध्यवर्गीय जन-समुदाय की रुचि को ध्यान में रखते हुए समसामायिक साहित्य को स्थान मिला। परिणामत: आलोचना भी मुख्यत: इसी साहित्य और उससे उत्पन्न होने वाले प्रश्नों से संबंद्ध हो गई।''*[10]

हिंदी आलोचना का प्रारंभ वास्तव में इन पत्रिकाओं में प्रकाशित पुस्तक समीक्षाओं से ही हुआ था। हिंदी आलोचना को पल्लवित करने में इन पत्रिकाओं का योगदान निस्तैल रहा था। नई आलोचना दृष्टि विकसित करके भविष्य की आलोचना के लिए एक ठोस आधार प्रदान करने में इन पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में, *''यद्यपि भारतेंदु-युग में विशिष्ट साहित्यांग के रूप में आलोचना का उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ, किंतु आलोचना दृष्टि का भरपूर विकास हुआ। यह दृष्टि हमें मुख्यत: पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विकसित होती दिखलाई पड़ती है। हरिश्चंद्र मैगडीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका (मैगजीन का ही परिवर्तित नाम), भारत मित्र, सारसुधानिधि, ब्राह्मण आदि पत्रिकाओं में विविध विषयों पर लिखित लेखों और टिप्पणियों से यह दृष्टि विकसित होती हुई दिखलाई पड़ती है। जिस प्रकार देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं से लगाव यानी भावगत संबंध होने के कारण इस काल का साहित्य विकसित हुआ है, उसी प्रकार इन समस्याओं पर सोचने-विचारने के साथ आलोचना दृष्टि विकसित हुई है। इस काल की पत्र-पत्रिकाओं और साहित्यकारों के व्यक्तित्वों में साहित्य और देश की समस्याएँ घुल-मिलकर एकमेव हो गई हैं।''*[11]

नवजागरण और हिंदी :

भारतेंदु का यह कथन प्रसिद्ध है कि ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।'' नवजागरण से प्रभावित भारतेंदु जैसे साहित्यकारों ने लोकभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। लोकभाषा और संस्कृति के बीच के सुसंबद्धता से वे भलीभाँति परिचित थे। इसलिए साहित्य में लोकभाषा के प्रयोग के वे पक्षपाती थे। बालकृष्ण भट्ट के अनुसार बिना देश भाषा की उन्नति के पूर्ण सभ्यता पाना असंभव ही था। रीतिकालीन आलोचना अथवा लक्षण ग्रंथों की भाषा ब्रज थी। उसके स्थान पर आलोचना के क्षेत्र में जनता की भाषा हिंदी का प्रयोग करना, आधुनिक हिंदी आलोचना की महत्वपूर्ण उपलब्धि समझना चाहिए। हाँ, इस भाषा में कुछ कमजोरियाँ अवश्य थीं, फिर भी जनहित की दृष्टि से जनभाषा के प्रयोग का आग्रह कम महत्वपूर्ण नहीं है।

भारतेंदु युगीन हिंदी आलोचना-सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्ष:

हिंदी में सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आलोचना का प्रारंभ भारतेंदु युग में होता है। सैद्धांतिक आलोचना का प्रारंभ स्वयं भारतेंदु ने किया था और व्यावहारिक आलोचना का बालकृष्ण भट्ट ने। प्रारंभिक व्यावहारिक आलोचक के रूप में बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन का नाम भी विशेष महत्व रखता है। भारतेंदु ने 'नाटक' नाम का एक निबंध लिखा था, जिसमें सैद्धांतिक आलोचना पद्धति को अपनाया गया था। संस्कृत के प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर हिंदी नाटक लिखने की परिपाटी की उन्होंने आलोचना की। शेक्सपियर और कालिदास की लोकप्रियता का उल्लेख करने के बाद सफल नाटककार बनने के लिए नाटककार को मानव-जीवन का गंभीर अध्येता होने की बात पर उन्होंने जोर दिया था। वास्तव में यहाँ भी वे जनता और साहित्य के बीच के संबंध को ही स्थापित कर रहे थे। आलोचना का यह जनवादी रूप ही, जिसके सूत्रपात में नवजागरण के मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा था, उसे पूर्ववर्ती आलोचना से विशिष्ट बनाती है।

आचार्य शुक्ल, रामविलास शर्मा जैसे विद्वानों ने बालकृष्ण भट्ट को आधुनिक हिंदी आलोचना का जन्मदाता कहा था। हिंदी की व्यावहारिक आलोचना में नई दृष्टि

उसकी आलोचना में ही प्रथम बार परिलक्षित होती है। इस दृष्टि से 'हिंदी प्रदीप' में प्रकाशित उनके दो निबंध, 'सच्ची कविता' और 'सच्ची समालोचना' विशेष महत्व रखते हैं। 'सच्ची कविता' में नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन आदि की आलोचना वास्तव में प्राचीन साहित्यिक रूढ़ियों के विरुद्ध उसके विद्रोह की भावना का परिचायक है। यह आलोचना इस बात का भी प्रमाण है कि वे साहित्य को दरबारों से मुक्त करके जनता की वस्तु बनाने के लिए प्रयत्नरत थे।

बालकृष्ण भट्ट ने लाला श्रीनिवासदास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की आलोचना 'सच्ची समालोचना' में की। मनुष्य के हृदय से नाटककार के परिचय के महत्व को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया था, *''अर्थात नाटक में पांडित्य नहीं, वरन मनुष्य के हृदय से आप का कितना गाढ़ा परिचय यह दरसाना चाहिए।''* [12] वास्तव में उनके इस कथन के मूल में साहित्य और आलोचना को जनवादी बनाने का आग्रह ही था।

उपसंहार :

भारतेंदु युग के साहित्य का मूल स्वर जनवादी था। साहित्य का यह जनवादी रूप ही तत्कालीन आलोचना में व्यक्त हुआ था। इस समय की आलोचना का लक्ष्य भारतीय समाज और साहित्य के पुराने ढाँचे का सुधार था। इस समय के आलोचकों ने भविष्य के आलोचकों के लिए एक नवीन दृष्टि प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनकी प्रस्तुत जनवादी दृष्टिकोण का विकास ही आगे चलकर रामचंद्र शुक्ल, रामविलास शर्मा जैसे जातीय आलोचकों के प्रौढ़ एवं गंभीर आलोचना में परिलक्षित होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस युग की जनवादी आलोचना दृष्टि का पर्याप्त प्रभाव परवर्ती आलोचना पर भी स्पष्ट रूप से पड़ा है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, पृ-99
2. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास-परंपरा, तीसरे संस्करण की भूमिका
3. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी आलोचना, पृ-17-18
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिन्तामणी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ-131
5. बालकृष्ण भट्ट, साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है, निबंधों की दुनिया : बालकृष्ण भट्ट, पृ-25
6. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी आलोचना, पृ-17
7. वही
8. दिविक रमेश, भूमिका, निबंधों की दुनिया : बालकृष्ण भट्ट, पृ-13-14
9. डॉ. निर्मला जैन, हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी, पृ-9-10
10. वही
11. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी आलोचना, पृ-19
12. बालकृष्ण भट्ट, सच्ची समलोचना, निबंधों की दुनिया : बालकृष्ण भट्ट, पृ-38

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

मानवीय सरोकार के कवि : संत कबीर

डॉ. मजीद शेख

सहयोगी प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक
हिंदी स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान केंद्र,
प्रतिष्ठान महाविद्यालय, पैठण
जिला - छत्रपति संभाजीनगर - 431107
(मराठवाड़ा-महाराष्ट्र)
09765944586
majidmshaikh@gmail.com

भूमिका :

मानवीय मूल्यों की भूमिका को साधना के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने हेतु 'प्रेम-भाव' को मध्य-युग में स्वीकार किया गया है। कबीर के युग में पूरा समाज अनेकानेक जातियों और उप-जातियों में बँटता जा रहा था, अनेक मत-मतांतरों, पूजा-पद्धतियों, कर्म-कांडों, साधना-रूपों, देवी-देवताओं के स्वीकार-अस्वीकार में खंडित-विखंडित हो रहा था। और मूल्यों के स्तर पर समाज धर्म की जड़ताओं, कुंठाओं तथा हीनताओं के बीच छिन्न-भिन्न हो रहा था। धर्म के साधना क्षेत्र और विश्वास के स्तर की भिन्नताओं के स्वीकार के साथ जो धर्माचरण के मूल्यों का आधार स्वीकृत रहा था, वह भुलाया जा चुका था।

दर्शन के आधार पर विकसित होने वाली 'प्रेमा-भक्ति' लौकिक प्रेम की भावुकता नहीं है और न तर्क-बुद्धि से उसे समझा जा सकता है। वह मानवीय बुद्धि तथा हृदय, ज्ञान तथा भावना का अतिक्रमण कर आत्मा की रस-निष्पत्ति या रक्त - संचार है। इस अनुभव के स्तर पर कबीर का व्यक्तित्व माधुर्य भाव-भक्ति के परे आत्म-नियंत्रण और आत्मविश्वास को अभिव्यक्त करता है, क्योंकि उनकी प्रेम-साधना कोमल तथा कठोर एक साथ है। यानी कबीर की पाखंड, कुरीतियों, मान्यताओं के खंडन की शैली आक्रामक होकर भी उनके चरित्र के फक्कड़पन और मस्त भाव को व्यक्त करती है। अर्थात कबीर सीधी-सादी भाषा में व्यक्तित्व की सहजता से उपहास तथा व्यंग्य करते रहते हैं। उनकी लापरवाही की भावना की सारी उक्तियों में साधारण जन के मन को स्पर्श करने की सरसता भी है। पर सामाजिक जीवन में मानवीय मूल्यों को खंडित करनेवाले ऊँच-नीच भाव, पाखंड, कुरीतियों, निरर्थक कर्मकांडों के समर्थक प्रचारकों के प्रति वह निश्चय ही कठोर तथा निर्मम रहे हैं।

कबीर के ज्ञान का स्वरूप :

कबीर को अन्यों के दर्शन को अपनी दृष्टि से उलट-फेर कर व्याख्यायित करने की अपेक्षा नहीं हुई, अपितु बिना अहं भाव के उन्होंने अपने अनुभव परक सत्य को पूरे आत्मविश्वास के साथ प्रकट किया। डॉ. रघुवंश लिखते हैं, *''कबीर ने यह बार-बार निरूपित किया है कि परम तत्व सबसे परे है, वह न तो सगुण में विद्यमान है और न निर्गुण द्वारा वर्णित किया जा सकता है। निश्चय ही उसके न मुख है न माथा, वह न रूप है न रूपक। वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अनुपम तत्व पुष्प-गंध से भी सूक्ष्म है।''*[1] यह माना जाता है कि कबीर ज्ञान की आंधी लेकर आए थे। उनका एक बहुत प्रसिद्ध पद है -

''संतो भाई आई ग्यांन की आंधी रे।''[2]

कबीर का ज्ञान क्या था? उस ज्ञान की प्रकृति क्या है? कबीर ने जिस ज्ञान की चर्चा की है, उस ज्ञान की प्रकृति, अवधारणा एवं स्वरूप पर निश्चित रूप से हमें विचार करना आवश्यक है। यानी बुनियादी प्रश्न यह है कि कबीर का ज्ञान क्या है? उस ज्ञान के कुछ पहलू, कुछ सूत्र हैं, जो कबीर के दर्शन (Text) में मौजूद हैं। कबीर के अनुसार यह सारा व्यक्त जगत एक ही तत्व से उत्पन्न है। इसलिए सभी प्रकार की भेद-दृष्टि मिथ्या है। मानव-मानव में भेद तो परम अज्ञान का द्योतक है। इसी तत्व-दृष्टि से प्रेरित कबीर ने जाति-पाति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच और ब्राह्मण-शूद्र के भेद का विरोध किया है। कबीर के कथनों के माध्यम से ज्ञान के इन अलग-अलग अवधारणाओं, बिंदुओं को हम समझ सकते हैं। कबीर की विद्रोहात्मक प्रकृति, यथार्थपरक दृष्टि, प्रखर व्यक्तित्व, निर्भीक एवं ओजस्वी स्वर, अभेदात्मक जीवन-दर्शन तथा सामाजिक, धार्मिक विकृतियों को लेकर मन के भीतर बना रहनेवाला तनाव आदि ऐसे बिंदु हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं। अर्थात योग को सहज, ज्ञान को विनयशील, भक्ति को शुद्ध रागात्मक बनाने पर ही सामंजस्य का वह बिंदु प्राप्त हो सकता है, जहाँ खड़े होकर कबीर तथाकथित योगी, पंडित और भक्त तीनों को चुनौती देते हैं। डॉ. रामचंद्र तिवारी के शब्दों में, *''कबीर ने साधना के सभी क्षेत्रों में बाह्याचार का विरोध किया है। वे सारे औपचारिक कर्म-विधान जिनके मूल में कोई तत्व नहीं है, कबीर के लिए व्यर्थ हैं।''*[3]

1. शास्त्र की निरर्थकता :

कबीर के ज्ञान का पहला पहलू यह है कि ज्ञान का कोई भी जीवित संदर्भ शास्त्र नहीं है। शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञान तक पहुँचने का रास्ता नहीं है, बल्कि वह उसमें अवरोध पैदा करता है। दरअसल जो शास्त्र है, वह एक प्रकार की रचना यानी निर्मिति (Construct) है। शास्त्र के निर्माण में पंडितों और समाज के प्रभु वर्ग के पूर्वाग्रहों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए वह कोई भी चीज, जिसमें वर्गीय पूर्वाग्रहों या संस्कारों का दबाव हो यानी एक खास सामाजिक वर्ग के हितों का प्रभाव हो, वह ज्ञान का मुकम्मल अर्थात परिपूर्ण माध्यम नहीं हो सकता। कबीर ने निरंतर अपनी काव्य-सर्जना में अनुभव को प्रमुखता दी है और जब सत्य को अभिव्यक्त करना होता है तो अनुभव ही महत्वपूर्ण होता है। डॉ. रघुवंश लिखते हैं, *''कबीर घट-घट में व्याप्त राम के लिए मृग को नाभि में कस्तूरी की उपमा देते हैं। इसी प्रकार नेत्रों की पुतली के समान परम तत्व को मानव शरीर में आत्मा रूप स्वीकार करते हैं।''*[4]

दूसरी बात यह है कि शास्त्र एक समय में पैदा होते हैं और जिंदगी निरंतर परिवर्तनशील है। इसलिए शास्त्र और जिंदगी के बीच में कोई संबंध बन नहीं पाता। शास्त्र ठहरा हुआ है और जीवन निरंतर गतिशील है। इसलिए शास्त्र और जीवन के बीच में एक अंतराल पैदा होता है। यही कारण है कि शास्त्र के माध्यम से जिंदगी के जीवित प्रश्नों या समाज के जीवंत मूल्यों, बहसों या बिंदुओं को ठीक-ठीक पहचाना नहीं जा सकता। जाहिर है कि एक जड़ है और जिंदगी गतिशील है। जड़ के माध्यम से गतिशीलता को नहीं पकड़ा जा सकता। इसलिए कबीर की कविताओं में जहाँ कहीं शास्त्र आ रहा है, उसका वे निरंतर निषेध करते हुए दिखाई दे रहे हैं। कबीर का यह मानना है कि अगर हमें ज्ञान की दुनिया में प्रवेश करना है तो पहले हमें शास्त्रों से मुक्त होना होगा। और कई बार वे शास्त्र कहते भी हैं, कई जगह पुस्तक शब्द का प्रयोग करते हैं –

''कबीर पढ़िबा दूर करि, पुस्तक देइ बहाइ।''[5]

अगर तुम अपने संशयों से मुक्त होना चाहते हो तो तुम्हें पुस्तकों को नदी में फेंकना होगा, क्योंकि शास्त्र किताबें या पुस्तकें मूलत: जीवन के प्रवाह में बाधाओं की तरह खड़ी हैं। इस तरह के जो शास्त्र हैं, वे मूलत: हमारे संशयों को अनुर्वर बनाते हैं। जब तक संशयों की यातना से हम गुजरेंगे नहीं, तब-तक किसी जीवित उत्तर पर पहुँचना संभव नहीं होगा। तो शास्त्र का निषेध या शास्त्र की निरर्थकता का बोध कबीर के ज्ञान का पहला महत्वपूर्ण बिंदु है।

2. शास्त्र का विकल्प प्रेम :

जीवन के सत्य को या मर्म को यदि शास्त्र के द्वारा हम नहीं जान सकते, तब जीवन के मर्म तक पहुँचने का रास्ता क्या है? जीवन को हम किस तरह से जानें या समझें? तब उन्होंने शास्त्र का विकल्प 'प्रेम' दिया है। प्रेम

ही वह रास्ता है, जिसके द्वारा हम जीवन को समझ सकते हैं। जैसे–

''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ।।''[6]

कबीर जिस प्रेम की बात कर रहे हैं, उस प्रेम का अर्थ क्या है? चूँकि प्रेम की बहुत सारी अवधारणाएँ हैं तो फिर कबीर के प्रेम की प्रकृति क्या है? कबीर के पदों और उनके साखियों को पढ़ते हुए यह लगता है कि किसी विराट सत्ता के साथ जो संबंधहीनता है या जो दूरी है, उस दूरी की बेधक अनुभूति से प्रेम पैदा होता है। इसलिए प्रेम मूलत: एक विराट सत्ता से अलगाव की तड़प, बेचैनी और व्याकुलता की अनुभूति या उसका बोध है। कबीर की कविताएँ प्रेम की दृष्टि से बहुत मार्मिक कविताएँ हैं। उनकी कविता का जो प्राण तत्व है, वह मूलत: विरह की अनुभूति है। एक ऐसा विरह, जिस विरह का कोई तोड़, विकल्प या समाधान नहीं है। दरअसल, प्रेम समाधान है भी नहीं, सारे समाधान जब छूट, झर जाते हैं, तब केवल पीड़ा और बेचैनी रह जाती है। इसी भाव दशा को कबीर ने प्रेम कहा है। कबीर ने 'विरह कौ अंग' में ऐसे बहुत दोहों का निर्माण किया, जिसमें प्रेम की निर्विकल्प विकलता का बोध और अनुभव होता है। जैसे–

''अंखडियां झांई पड़ी, पंथ निहाररि निहारि।
जीभडियां छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि।।''[7]

कबीर के प्रेम की जो अवधारणा है, जो बेचैनी, तड़प और व्याकुलता है– इस तड़प, बेचैनी और व्याकुलता के भीतर से ही उस संबंध का जन्म होकर चेतना पैदा होती है, जो संबंध हमें अपना होने की अनुभूति और सार्थकता देता है। तो कबीर के ज्ञान का दूसरा पहलू यह हुआ कि शास्त्र नहीं, बल्कि वह प्रेम है।

3. संप्रदाय मुक्ति :

कबीर के ज्ञान का तीसरा पहलू ये है कि जितने भी संप्रदाय हैं–धर्म, मतों एवं पूर्वाग्रहों के नाम पर, ये सब अर्थहीन हैं। बुनियादी तौर पर संप्रदाय क्या है? संप्रदाय सामूहिक अहंकार के ही प्रतिरूप हैं। इसीलिए जब–तक संप्रदाय होंगे या रहेंगे तब–तक किसी भी प्रकार की मानवीय एकता संभव नहीं है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, *''कबीरदास ने आजीवन संप्रदायवाद, बाह्याचार और बाहरी भेषभाव पर कठोरतम आघात किया था।''*[8] कबीर की एक बहुत बड़ी चिंता संप्रदाय के संगठन के अहम और टकराव को लेकर है। कबीर अपने ज्ञान से यह जान पाते हैं कि संप्रदाय मूलत: लोगों और समाज को राह से भटकाने वाले हैं। उन्होंने एक जगह कहा है कि –

''अरे इन दोहुन राह न पाई।''[9]

दोनों को रास्ता नहीं मिला या भटक गए हैं। ये दोनों कौन हैं? उसमें एक तरफ इस्लाम है और दूसरी तरफ हिंदू हैं। हिंदू और मुसलमान के जो संगठन हैं–इन संगठनों ने दोनों की राहों पर अंधेरा बिछा दिया है। यदि हमें प्रकाश की तरफ, प्रेम की तरफ, सामाजिक और मानवीय एकता की तरफ चलना है तो हमें इन संप्रदायों से मुक्त होना होगा। इसलिए संप्रदाय मुक्ति ही मानवीय एकता का और प्रेम का मूल आधार हो सकता है। मध्य काल में कबीर यह बात उस ज्ञान के आलोक में कह रहे थे कि जब–तक धार्मिक प्रतीक बने रहेंगे, तब–तक धर्म संभव नहीं है। यानी धर्म के मार्ग में जो सबसे बड़ी बाधा है, वह बाधा मूलत: संप्रदाय और धार्मिक संगठन है। धर्म निष्प्राण होने लगता है, जब वह संगठन में बदलता है यानी धर्म आचरण, बोध और चेतना का विषय है। लेकिन जब हम उसे संगठन में या संप्रदाय में बदलते हैं तो मूलत: उसकी आत्मा खत्म होकर केवल कंकाल बच जाता है। कबीर के ज्ञान का तीसरा पहलू ये है कि धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करने के लिए हमें संप्रदाय के घेरे से बाहर निकलना आवश्यक है।

4. प्रश्नवाचक विशेषण का प्रयोग :

कबीर के ज्ञान का चौथा पहलू ये है कि प्रश्न साधक और व्यक्ति के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिए कबीर की कविता प्रश्नाकुलता की कविता है। कबीर सीधे श्रद्धा पर नहीं पहुँचते। कबीर का यह मानना है कि प्रश्न संशय की यातना से गुजरे बगैर जो श्रद्धा उपलब्ध होती है वह अनुर्वर, अप्रामाणिक, अविश्सनीय और अस्थायी है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को श्रद्धा तक पहुँचने के लिए संशय और प्रश्न की यातना से गुजरना ही होगा। इसलिए कबीर के यहाँ 'कौन', 'क्या' और 'क्यों' ये जो प्रश्नवाचक विशेषण

हैं- ये बहुत महत्वपूर्ण है। जैसे-

''काजी कौन कतेब बखानै।''[10]

काजी से पूछते हैं कि तुम क्या पढ़ते हो ? पढ़ते-पढ़ते तुम्हारी उम्र निकल गई, परंतु मैं देखता हूँ कि तुम यौवन के दिनों में जहाँ पर खड़े थे बुढ़ापे में भी ठीक वहीं खड़े हो। जबकि तुम लगातार कुरान पढ़ रहे हो, क्या कुरान की आयतें तुम्हारी चेतना, व्यक्तित्व और जिंदगी में किसी भी प्रकार का परिवर्तन लाने में सक्षम नहीं है। इसलिए सक्षम नहीं है, क्योंकि कुरान और काजी के बीच कोई जीवित संबंध न होकर वह सीधे रटंत मसला है। अर्थात वह केवल बात को दोहराना भर है। और बातों के दोहराने से व्यक्तित्व में रूपांतरण नहीं होता। दूसरा प्रश्न जो 'क्या' है, यह 'क्या' भी कबीर के यहाँ कई बार आता है। जैसे-

''कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लियो बनाय।
ता पर मुल्ला बांग दे, बहरो हुआ खुदाय।।''[11]

जो खुदा चींटियों के चलने से पैदा होने वाली आवाज को सुनने में सक्षम है, क्या उस खुदा के कान बहरे हो गए हैं कि तुम मस्जिद पर चढ़कर चिल्ला रहे हो। कबीर ने पंडितों से पूछा कि-

''जे तू बांभन बभनी जाया। तौ आन बाट व्है काहे न आया।''[12]

अगर तुम कहते हो कि मैं इसलिए ब्राह्मण हूँ, क्योंकि मैं ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुआ हूँ तो तुम किसी दूसरे मार्ग से पैदा क्यों नहीं हुए। तो जो 'क्यों' है यह भी बहुत महत्वपूर्ण है। कबीर के यहाँ तो 'क्या', 'कौन' और 'क्यों'- अगर इन प्रश्नों की यातना से हम गुजरेंगे नहीं तो हम सत्य और जीवन के अर्थ तक पहुँच नहीं पाएँगे। इसलिए जीवन की अर्थवत्ता तक पहुँचने का मार्ग प्रश्नाकुलता, प्रश्न की बीहड़ता से जूझना और प्रश्न के इलाके से गुजरना है।

5. संसार या जगत नश्वर है :

कबीर के ज्ञान का एक और पहलू है कि यह जगत नश्वर है। कबीर के यहाँ नश्वरता बहुत ज्यादा है। उन्होंने नश्वरता की चर्चा बहुत की है। जैसे -

''रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांट की बाड़ी उलझ-पुलझ मरि जाना है।''[13]

कबीर ने जीवन के समस्त ऐश्वर्य-विलास को क्षणभंगुर माना है। डॉ. रघुवंश लिखते हैं, *''कबीर ने अपनी ब्रह्म परिकल्पना के साथ जीव तथा जगत को भी विविध रूपों तथा स्तरों पर अभिव्यक्त किया है। भाव-भक्ति के अंतर्गत रूप (जगत) के गतिशील पक्ष पर बल दिया गया है और इसी के माध्यम से इस संसार से विरक्त होने की स्थिति को स्वीकार किया गया है। कबीर जगत के इस समस्त अस्थिर तथा गतिशील रूप में स्थिर अरूप परम तत्व की व्यंजना करते हैं।''*[14]

कबीर तत्वपरक संकेतों को देते हुए सामान्य जीवन के स्तर पर अपने अनुभव को व्यक्त करते हैं। उनका कहना है कि यह संसार सेमल के फूल के समान है, दस दिन की शोभा के बाद उसका सौंदर्य नष्ट हो जाता है। यह जीवन स्वप्न के समान है और जीव उसके भ्रम में लूट में पड़ा हुआ है। आँख खुल जाने पर कुछ भी लेना-देना शेष नहीं रहता। इस प्रकार सहज जीवनगत अनुभव के स्तर पर कबीर जगत की इस निस्सारता और उसमें पड़े हुए जीव की नश्वर शरीर में आसक्ति को अभिव्यक्त करते हैं। वह सचेत करते हुए कहते हैं- यह शरीर नश्वर है, इस जीवन में उस तत्व को पाने का प्रयास करना चाहिए। जैसे -

''कबीर ऐसा यहु संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार में, झूठै रंगनि भूलि।।''[15]

कबीर के यहाँ इस तरह के अनेक पद हैं, जिसमें संसार की नश्वरता और उसकी क्षणभंगुरता को बार-बार रेखांकित किया गया है। जैसे-

''आएगा सो जाएगा राजा रंक फकीर।''

इस जगत में जो भी आएगा, उसे एक-न-एक दिन जाना है। वह राजा, भिखारी चाहे फकीर हो। कबीर ने इस संसार की असत्यता, नश्वरता और क्षणभंगुरता पर बहुत अधिक बल दिया है। ये उनके ज्ञान का एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू है।

6. वास्तविक धर्म का दिग्दर्शन :

कबीर जब पैदा हुए तो उसकी एक खास ऐतिहासिक स्थिति थी। इस्लाम बेहद आक्रामक था और इस आक्रामकता की प्रतिक्रिया हिंदू समाज के भीतर मौजूद थी। इसलिए हिंदुओं और मुसलमानों के बीच में इतिहास के उस दौर में बहुत गहरे तनाव थे। इस तनाव का शमन होना चाहिए,

चूँकि यह तनाव बुनियादी न होकर कृत्रिम और मनुष्य विरोधी है। कबीर ने इसे समझने का प्रयास किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इन दोनों के बीच जो तनाव है, उस तनाव के मूल में या केंद्र में 'धर्म' है। इसलिए कबीर ने नकली धर्म और वास्तविक धर्म में भेद करना आवश्यक समझा। कबीर के नकली धर्म के कुछ लक्षण, अवधारणाएँ तथा आवरण हैं। कबीर ने उस आवरण को घूँघट कहा है। घूँघट धर्म की दी हुई अवधारणा है, जो अवास्तविक है, जिसे मौलवियों, पंडितों ने गढ़ा है। धर्म यदि समस्या का मूल कारण है तो वह वास्तविक धर्म न होकर अवास्तविक गढ़ा हुआ नकली धर्म है। कबीर ने उस नकली धर्म पर प्रहार करते हुए उसकी पोल-खोल की है। नकली धर्म तो चिह्नों में जैसे- छापा, तिलक, वेशभूषा, वस्त्र और रंग आदि में होता है। यानी ये सब धर्म के बाहरी आवरण हैं। इन आवरणों के कारण धर्म अपने वास्तविक रूप में नहीं है। कबीर ने इसलिए धर्म का जो आवरणपरक चरित्र था, उस पर प्रहार किया। बहुत सारे पदों में उन्होंने इसको रेखांकित भी किया हैं। जैसे -

''मन ना रंगाए रंगाए जोगी कपड़ा।''[16]

मन की जगह पर कपड़ा रंगा गया है, मन के विकास की जगह बाहरी दिखावा बढ़ा है। जिस धर्म का संबंध मनुष्य के मन से नहीं, वह वास्तविक नहीं है। इसी आवरण को उन्होंने घूँघट कहा है, जैसे-

''घूंघट के पट खोल रे, तोहे पिया मिलेंगे।''

घूँघट के पट को जब-तक हटाओगे नहीं, तब-तक तुम्हें प्रीतम से मुलाकात या तुम्हें प्रिय प्राप्त नहीं होंगे। यह घूँघट बाहरी न होकर भीतरी है। ये पूर्वाग्रहों, संस्कारों, सिद्धांतों, मान्यताओं और अहंकार का घूँघट है। इसलिए जो अवास्तविक धर्म है- वह अहंकार, पूर्वाग्रहों, धारणाओं अपितु अनुभूति, अनुभव या चेतना का विषय नहीं है। इस तरह से कबीर ने धर्म के जो अवास्तविक संदर्भ थे, उसको रेखांकित करना बहुत आवश्यक समझा। मध्यकाल में हिंदू और मुसलमानों के संबंधों में भाईचारा, एकता और मानवी रिश्ता पैदा करना ऐतिहासिक और मानवीय आवश्यकता थी। इस पूर्ति हेतु कबीर ने जिन समस्याओं का सामना किया, उसमें धर्म एक महत्वपूर्ण समस्या थी। इसी कारण धर्म के आवरण परक चरित्र को कबीर ने उद्घाटित किया और उस पर प्रहार किया। वास्तविक धर्म का एक और संदर्भ है, जिन्हें हम अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान में जैसे - माला, नमाज, तीर्थाटन। यह सब धर्म के अनुष्ठानिक रूप हैं। धर्म का जो अनुष्ठानिक रूप है, वह अपने मूल चरित्र में धर्म विरोधी है। कबीर ने मानवीय धर्म के आधार पर अपनी प्रेम-साधना के मार्ग पर चलने के लिए विभिन्न धर्म-संप्रदायों में प्रचलित ऐसे कर्मकांडों तथा बाह्याचारों का विरोध किया है, जो पाखंडवत हो गए हैं। सामाजिक अपराधों को करने वाला व्यक्ति तीर्थ-यात्रा करता है, यह उसी प्रकार है जैसे ज्ञान के बिना घाट के बीच डूब जाना। अनेक दर्शनों तथा बहुविध शास्त्रों का अध्ययन करके भी मनुष्य बिना केंद्रीय भाव-तत्व को जाने-समझे विभ्रमित ही होता है। जप-तप, नियम-संयम और पूजा-अर्चा करके भी व्यक्ति जीवन का सही मार्ग नहीं पाता। यानी मनुष्य संसार के अंधेरे कुहासे में भटकता है और जीवन के सत्य को नहीं पाता। इस भटकाव में हिंदू मूर्ति-पूजा करके और तुर्क हज जाकर जीवन गवाँ देता है। इसलिए कबीर ने धर्म के इन अनुष्ठान परक रूपों का विरोध किया। अर्थात कबीर का धर्म के पाखंडी और नकली रूप पर जो प्रहार है, वह साभिप्राय है। वह केवल प्रहार मात्र न होकर उसका मुख्य उद्देश्य हिंदू और मुसलमानों के बीच धर्म के नाम पर जो दीवार, घृणा, असहिष्णुता है उसको दूर करना है। और उसको दूर करने के लिए धर्म के इस अवास्तविक रूप को हटाना बहुत जरूरी है। कबीर के यहाँ इतनी नश्वरता क्यों है? कबीर के यहाँ मृत्यु की इतनी उदासी क्यों है? क्या कबीर मृत्यु के कवि हैं? कबीर के मृत्यु और जीवन की नश्वरता के दर्शन को मध्यकाल के आलोक में समझना आवश्यक है। मध्यकाल के इस सामंती समय में राजाओं और सामंतों के लिए भोग एक बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा है। भोग और विलास की चेतना बहुत प्रबल है। कबीर ने भोग और विलास की निरर्थकता, निस्सारता और उसकी अर्थहीनता को रेखांकित करने के लिए जीवन की नश्वरता पर अधिक बल दिया। दरअसल, जब जीवन समझ में आ जाए तो नकली आसक्तियाँ अपने आप में झर जाती हैं। जितने प्रकार के संग्रह मोह और लगाव तनाव का कारण ही नहीं, बल्कि जीवन के भटकाव और जीवन में दुख का कारण

भी हैं। यदि हम जीवन को इस तरह समझ ले कि यहां कुछ भी स्थायी और कोई भी संबंध अंत तक चलने वाला नहीं है तो मोह का और आसक्तियों का अंधेरा छटेगा और जीवन निर्भर हो जाएगा। जीवन की निर्भरता के लिए जरूरी है कि हम इस जीवन की नश्वरता को अवश्य समझें। जीवन में कोई भी संबंध अंतिम न होकर भौतिक रास्ता अस्थायी है। कबीर ने संसार की नश्वरता और संसार के प्रति जो अतिरिक्त आसक्ति है उस आसक्ति के जहर को उतारने हेतु इस नश्वरता का प्रयोग किया है। परंतु कबीर की जो नश्वरता है, वह मूलत: संन्यासमूलक नहीं है। वे संन्यास के पक्ष में नहीं हैं, अपितु संन्यास का जो मार्ग है, वह दमन या पलायन का मार्ग है। सारांश रूप में कबीर ने संसार को वास्तविक रूप में समझने की बात की है। कबीर की मृत्यु संबंधी कविताओं को देखकर मोटे तौर पर कह सकते हैं कि इनकी कविताओं में निरंतर मृत्यु आती है और उन्हें बेचैन करती है। जैसे –

''चलती चाकी देखकर दिया कबीरा रोए ।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोए।।''

इस तरह के अनेक पदों के कारण लगता है कि कबीर में एक बहुत गहरी उदासी है, जीवन है नहीं, बल्कि मृत्यु ही है। संसार या जगत को समझना यानी सत्य और वास्तविकता का बोध होना है। अर्थात कबीर की चेतना वैराग्यमूलक न होकर बोधमूलक है। कबीर की दृष्टि पूरी तरह से वैज्ञानिक और उनमें बुध्दि प्रामाण्यवाद कूट-कूट कर भरा हुआ था। यानी कबीर बुनियादी तौर पर प्रेम के कवि हैं। और प्रेम का कवि मृत्यु को लेकर अगर इतना संवेदनशील है तो क्या प्रेम और मृत्यु में कोई संबंध हो सकता है? प्रेम और मृत्यु के संबंधों को समझ लेने पर शायद हम कबीर की कविता के मर्म तक पहुँच पाएँ। दरअसल, जिस प्रेम के केंद्र में आसक्ति है, वह वास्तविक प्रेम नहीं है। दरअसल, वह प्रेम विराट की प्राप्ति के मार्ग में बाधा है। इसलिए इस लौकिक प्रेम से ऊपर उठना (Transcend) यानी इसका अतिक्रमण करना होगा। लौकिक प्रेम के अतिक्रमण के बगैर वह जो अलौकिक (Cosmic) प्रेम है, वह प्रेम की जो एक उज्ज्वल विराट अंतहीन कभी खत्म न होने वाली दुनिया है। उस दुनिया तक हम तभी पहुँच सकते हैं, जब लौकिक प्रेम की अर्थहीनता या उसकी पारिस्थितिकी (Ecology) या उसकी क्षणभंगुरता या उसकी अस्थिरता को हम समझ लें। कबीर की कविता में जो मृत्यु है, वह कहीं-न-कहीं इस लौकिक प्रेम की अर्थहीनता या उसकी क्षणभंगुरता की तरफ भी संकेत है। इसलिए कबीर ने कहा कि अगर प्रेम करना है तो प्रेम उससे करो जो कभी परिवर्तित नहीं हो सकता, प्रेम उससे करो जिस पर अंतिम रूप से विश्वास किया जा सकता है। यह जो सांसारिक प्रेम है और सांसारिक प्रेम का जो आलंबन है, वह खुद ही स्थिर नहीं है। और जो स्वयं स्थिर नहीं है, उसके साथ जो प्रेम है उसकी स्थिरता और प्रामाणिकता की गारंटी नहीं हो सकती। इसलिए मृत्यु की रोशनी में वे लौकिक प्रेम की नश्वरता की तरफ संभवत: संकेत करते हैं।

7. मानवीय सरोकार का रूदन :

कबीर के मन में जिस आदर्श मानव की मूर्ति विद्यमान थी-वह एक सहज, नैतिक, सात्विक भक्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनकी दृष्टि में आदर्श मानव को संसार के आकर्षणों से विरक्त, समस्त भेद-भाव से परे, सत्यनिष्ठ तथा मन, वाणी और कर्म से एक होना चाहिए। मन की विषयोन्मुखता आदर्श मानव के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए उसे मन को नियंत्रित रखना चाहिए। यदि 'मृत्यु' कबीर की कविता का स्थायी भाव है तो कबीर ने जिन सामाजिक प्रश्नों, बेचैनियों और व्याकुलता की बात की है, उनमें जो उदासी, निरुपायता दिखाई पड़ रही है, वह उनके संवेदनशीलता को उजागर करती है। कबीर उत्तरों के कवि न होकर उनके यहाँ संभवत: कोई समाधान भी नहीं है। जैसे –

''यह जग अंधा मैं केहि समझावों।''[17]

यह जगत तो अंधा है और मैं किसे समझाऊँ। अर्थात कबीर समझ रहे थे कि उनका जो विद्रोह, छटपटाहट, रास्ता खोजने की बेचैनी है- इस अंधेरे में रास्ता खोजना बड़ा कठिन है। कबीर की सामाजिक चेतना इस बात की तरफ संकेत करती है कि वे मृत्यु के कोण से जीवन या जगत को देखने के पक्षधर न थे। कबीर ने स्वयं से कुछ बातें की हैं और संसार या समाज और स्वयं में भेद किया है। जैसे-

''सुखिया सब संसार है, खाए अरू सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै।।''[18]

संसार खाने और सोने में मगन है और मैं दुखी कबीर रात में रोता हूँ और जगता हूँ। कबीर की कविता में बहुत ज्यादा रुदन है और रुदन इसलिए है, क्योंकि वे इस बहुमूल्य जीवन को अर्थहीन होते हुए देखते हैं। कबीर देखते हैं कि हमारे समय के समाधानों की रोशनियाँ बूझ गई हैं, वे देखते हैं कि कोई समझने वाला नहीं है, वे देखते हैं कि संप्रदाय की ताकतें मानवीय विवेक की तुलना में बहुत प्रबल है और इसलिए कबीर उदास होते हैं। कबीर की कविता गहरे मानवीय सरोकार की कविता है और उन तक यदि पहुँचना है तो हमें उस कबीर के यहाँ पहुँचना होगा, जो ऐतिहासिक, सामाजिक और मानवीय है। कबीर मनुष्य के रूप में या कवि के रूप में शायद समाधान तो नहीं, पर वे इशारा कर सकते हैं कि रास्ता इधर से है। कबीर की समन्वय दृष्टि समस्त धर्म-मतों में निहित व्यापक मानवीय मूल्यों के स्वीकार पर प्रतिष्ठित है। इस दृष्टि से सभी धर्म-मतों के आचारों तथा कर्मकांडों का खंडन करते हैं। उनके मन में मनुष्य की परिकल्पना व्यापक मूल्यों के आधार पर है और इस अखंड विश्वास के सहारे साहस के साथ उन्होंने समस्त धार्मिक विधि-विधान को अस्वीकार कर मनुष्य को सहज मूल्यों पर प्रतिष्ठित किया है। यह वह मानव-मिलन की भूमिका है, जिसकी प्रतिष्ठा के लिए कबीर को जाति, कुल, धर्म-मत, संस्कार, संप्रदाय, विश्वास तथा शास्त्र आदि के भ्रमजाल को छिन्न-भिन्न करना पड़ा।

निष्कर्ष :

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि संत कबीर ने अपने समय के जीवन प्रवाह को खुले नेत्रों से देखा था। वे 'कागद की लेखी' पर विश्वास नहीं करते थे। कबीर ने जो कुछ कहा है, उसके पीछे उनका अनुभव विद्यमान है। वे निर्भीक, स्पष्ट वक्ता, विवेकशील और पक्षपात रहित थे। उन्होंने किसी की झूठी खुशामद नहीं की। योगी हो या पंडित, मुल्ला हो या मौलवी यानी हिंदू हो या मुसलमान- उन्होंने सभी की दुर्बलताओं पर समान भाव से प्रहार किया। वे सच्चे विद्रोही थे। कबीर का विद्रोह अंधविश्वास, मिथ्याडंबर, जातिगत भेदभाव तथा धार्मिक एवं सांप्रदायिक संकीर्णता के विरुद्ध था। वे सहज जीवन के समर्थक थे और मनुष्यमात्र की एकता में विश्वस करते थे। दीन-हीन जनता एवं उपेक्षित मानव समुदाय के प्रति उनमें अपार सहानुभूति थी। वैभव, शक्ति और सत्ता के प्रति उनके मन में तनिक भी आकर्षण नहीं था। उनका भीतर-बाहर एक था। कबीर का सहज निर्मल मन समाजव्यापी मिथ्याचार को देखकर विद्रोह कर उठा। उनकी आत्मा तड़प उठी। अर्थात उनके दर्शन में उनकी आत्मा की यह तड़प स्पष्ट रूप में अभिव्यंजित होती है। ❑

संदर्भ :

1. डॉ. रघुवंश, कबीर : एक नई दृष्टि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (दि.सं. 1998), पृ. 87
2. सं. रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (7वाँ सं. 2008), पृ. 17
3. डॉ. रामचंद्र तिवारी, कबीर मीमांसा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (सं. 2000), पृ. 136
4. डॉ. रघुवंश, कबीर : एक नई दृष्टि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (दि.सं. 1998), पृ. 74
5. सं. रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (7वां सं. 2008), पृ. 41
6. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, (छठा सं.1999), पृ.145
7. उपर्युक्त, पृ. 153
8. उपर्युक्त, पृ. 226
9. उपर्युक्त, पृ. 271
10. उपर्युक्त, पृ. 111
11. सं. रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (7वाँ सं. 2008), पृ. 104
12. उपर्युक्त, पृ. 67
13. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, (छठा सं.1999), पृ. 235
14. डॉ. रघुवंश, कबीर : एक नई दृष्टि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (दि.सं. 1998), पृ. 78
15. सं. रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (7वाँ सं. 2008), पृ. 182
16. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, (छठा सं.1999), पृ. 209
17. उपर्युक्त, पृ. 273
18. सं. रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (7वां सं. 2008), पृ. 144

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

दलित साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि

डॉ. नागेश्वर यादव

सह-प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
रवींद्रनाथ ठाकुर विश्वविद्यालय
होजाई(असम)-782435
9954695285
anupprasad0905@gmail.com

शोध सारांश :

उत्तर आधुनिकतावादी दौर ने साहित्य जगत में जिन विभिन्न विमर्शों को जन्म दिया है, उनमें दलित विमर्श भी एक है। सदियों से दबे-कुचले और वंचित वर्गों ने अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति देने के लिए जिस ऊबड़-खाबड़ साहित्यिक भूमि की तलाश की है, वह दलित साहित्य है। इस साहित्य का मूल उद्देश्य है- भारतीय समाज की अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों पर चोट करते हुए मानवीय एवं समतामूलक समाज का निर्माण करना। किसी ने इसे 'प्रतिरोध का स्वर' तो किसी ने 'वेदना और यंत्रणा की कोख' से जन्मा साहित्य माना है। देश में आज भी दलितों की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। शिक्षा से दूर वह धर्म तथा समाज की तमाम सड़ी-गली मान्यताओं एवं परंपराओं की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। वह पद-पद पर अपमानित एवं लांक्षित हो रहा है। उनकी स्थिति पशुओं से भी बदतर रही है। उनकी महिलाएँ बालात्कार का शिकार हो रही हैं। दलित साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि को निर्मित करने में इन्हीं परिस्थितियों का योगदान रहा है। दलित साहित्य में निषेध और नकार का जो स्वर सुनाई देता है, उसका आरंभ वैदिक काल में शम्बूक, आजीवक, गौतम बुद्ध से होता हुई सिद्धों-नाथों तथा संत कवियों, महात्मा फुले एवं बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर तक पहुँचता है। सही मायने में बाबा साहेब की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा का साहित्यिक रूपांतरण ही दलित साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि है, जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्थापना के लिए 'अप्पो दीपो भव:' की भावना से अपल्लावित होकर जीवन पर्यंत संघर्षरत रहने की कामना है। दलित साहित्य का विद्रोह सृजनात्मक है। कारण कि वह सामाजार्थिक और धार्मिक विकृतियों का विध्वंस कर समता एवं समन्वय के संवर्धन में विश्वास करता है। एक स्तर पर यही चेतना उसे विश्व दृष्टि जोड़ती है।

बीज शब्द :

उत्तर आधुनिकतावाद-(साहित्य जगत में आधुनिकता के भीतर से फूटने वाली वह विचारधारा है, जो केंद्रीय वर्चस्ववाद को नकार कर हाशिए पर पड़े विचार को स्थापित करने पर जोर देती है। इसका मूल स्वर है- विकेंद्रीकरण, अलग पहचान, अलग आवाज आदि), वैचारिक पृष्ठभूमि-(अवधारणाओं से संबंधित सार) विमर्श-(विचार, विवेचन या परीक्षण) अंतर्विरोधी-(मन के स्तर पर विरोध की भावना), विश्व दृष्टि-(व्यापक दृष्टिकोण जिसमें समूहिक कल्याण की भावना निहित हो), सृजनात्मक- (पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया)।

लक्ष्य :

वंचितों, पीड़ितों, शोषितों और असहाय वर्ग की वेदना एवं टीस से रू-ब-रू होते हुए विषमतामूलक भारतीय समाज व्यस्था के इतिहास को समझना तथा आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना पर जोर देना ताकि देश में समानता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व की भावना को स्थापित किया जा सके।

साहित्य सर्वेक्षण :

दलित साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए हिंदी तथा मराठी से हिंदी में अदूदित दलित साहित्य से संबंधित साहित्येतिहास, समीक्षात्मक ग्रंथों, के साथ-साथ हिंदी की उन पत्रिकाओं का अवलोकन किया गया है, जो दलित चेतना से अनुप्रेरित रही हैं या दलित विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुई हैं। कृष्णदत्त पालीवाल (डॉ. अंबेडकर समाज व्यवस्था और दलित समाज), दलित प्रश्न संवाद और यूटोपिया (रमणिका गुप्ता), डॉ. रश्मि चतुर्वेदी (हिंदी दलित साहित्य विमर्श के विविध आयाम), ओमप्रकाश वाल्मीकि (दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र), संपादक- डॉ. एन. सिंह एवं अरुण कुमार (गाँव के लोग, जनवरा-फरवरी 2021 दलित विशेषांक), कमलेश्वर (सारिका-दलित विशेषांक, डॉ. महीप सिंह (संचेतना)

औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के बाद देश में जो लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम हुई। उसने सैद्धांतिक स्तर पर समता, स्वाधीनता और बंधुत्व स्थापित करने का दावा तो किया, परंतु व्यावहारिक स्तर पर हाथी का दाँत साबित हुआ, जो खाने के और दिखाने के और होता है। आजादी मिलने के बाद समाज के दलितों और पिछड़े वर्गों ने अपने सुखमय जीवन का जो स्वप्न देखा था - सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर समान अधिकार मिलेगा, शिक्षा-स्वास्थ्य एवं रोजगार के क्षेत्र में सुधार होगा, आजादी की लड़ाई में उनका नेतृत्व करने वाला नेता उनके हक और अधिकार की बात करेगा, पर ऐसा कुछ हुआ नहीं। विदेशी शासन के अंत होते ही सामंतों और जमींदारों ने अपनी साख बचाने और शोषण की व्यवस्था को बनाए रखने के उद्देश्य से चोला बदलकर राजनीति में कदम रखना आरंभ कर दिया। संसद, विधानसभाओं और सार्वजनिक संस्थाओं का नियंत्रण उनके द्वारा होने के कारण कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य और यातायात या कहें सभी सामुदायिक विकास योजनाएँ भ्रष्टाचार की दलदल में फँस गईं। चुनावों में राजनीतिक चेतना उतनी नहीं जगी, जितनी जातिवाद, संप्रदायवाद और क्षेत्रवाद की भावना पनपी। प्रेम, सद्भाव और भाईचारे के मूल्य नष्ट हो गए, पुराने संबंधों में दरारे पड़ने लगीं। इनके जीवन की विडंबना को रूपायित करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं- *''दलित जीवन के कई कोण हैं- जीवन से जूझने के, जिंदा रहने के, पीड़ा सहने के और उससे उबरने के।''*[1] (दलित प्रश्न संवाद और यूटोपिया, पृ.सं. 26) अर्थात समाज के हाशिए पर जीवन जीने वालों के सामने अपने अस्तित्व का संकट पहले से और विकराल रूप में सामने आने लगा। इसी कशमकश की दौर में माराठी साहित्य में दलितों एवं वंचितों के लिए लिखा जाने वाला साहित्य सामने आया, जिसने दलितों और पिछड़ों को अपने अधिकारों के लिए आगे आने प्रेरणा दी। इस साहित्य में जहाँ एक ओर सामाजिक रूढ़ मान्यताओं-जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच के भेदभाव को सिरे से खारिज करने की पुर कोशीश थी तो दूसरी ओर ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, परलोक, पुनर्जन्म, भाग्य आदि के प्रति नकार की भावना, जिसको आधार बनाकर दलितों का शोषण किया जाता था। हाशिए पर धकेले गए लोगों को अपनी मुक्ति की राह स्पष्ट रूप से कहीं दिखाई दे रही थी तो महात्मा फुले, डॉ. अंबेडकर, रमास्वामी पेरियार और ललई यादव की विचारधारा में।

किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं कि समानता और स्वतंत्रता का उद्घोष करते हुए यह नवीन काव्यांदोलन का उद्रेक माराठी साहित्य में पहली बार हुआ है। उपलब्ध साहित्येतिहास एवं आलोचनात्मक ग्रंथों के अन्वेषण से पता चलता है कि अमानवीय वर्ण व्यवस्था, जाति प्रथा, रूढ़ परंपराओं के विरूद्ध वैदिक काल में चर्वाक, शम्बूक, मखली गोसाल, आजीवक, गौतम बुद्ध, मोदगल्यायन आदि ने भी प्रतिरोध का स्वर उठाया था। तत्पश्चात नवजागरण के दौरान महात्मा फुले ने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना करके तथा 'गुलाम गिरी' की रचना करके

वंचितों को शिक्षा की ओर मोड़ा तो डॉ. अंबेडकर ने 'मूकनायक' तथा 'बहिष्कृत भारत' जैसी पत्रिकाओं के द्वरा उनमें आत्म -स्वाभिमान तथा अपने हक और अधिकार के प्रति चेतना की लहर पैदा की। इस प्रकार आज ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, श्योराज सिंह बेचैन, डॉ. एन.सिंह, डॉ. धर्मवीर, कँवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, रमणिका गुप्ता, कुसुम वियोगी आदि के द्वारा समाज के सबसे निचले तबके के लोग- मेहनतकश, सर्वहारा एवं असंख्य मानवजाति की तथा अपनी आप-बीति को आधार बनाकर जो साहित्य रचा जा रहा है। उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि शम्बूक, आजीवक, मखली गोसाल, बुद्ध, सिद्धों, नाथों और मध्यकालीन संत कवियों नामदेव, ज्ञानदेव, गुरुनानक, घना, पीपा, सेना, कबीर, दादू दयाल, रैदास आदि से होते हुए महात्मा फुले तथा भारतीय संविधान निर्माता डॉ. अंबेडकर तक पहुँचती है। क्योंकि यह साहित्य जाति, वर्ण एवं धर्म की आड़ में शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न पहुँचाने वाली सामाजिक, धार्मिक परंपराओं एवं मान्यताओं को एक सिरे से खारिज कर आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए सामाजिक वैषम्य को दूर करने के लिए प्रतिबद्ध है। इन्हीं वंचितों की संवेदनाओं को साहित्य के केंद्र में रखकर समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व स्थापित करने की माँग करते हुए हिन्दी साहित्य जगत में सन 1980 ई. के आस-पास जिस नवीन साहित्यिक विमर्श का प्रादुर्भाव हुआ, उसे आमतौर पर 'दलित विमर्श' के नाम से जाना जाता है।

दलित साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। प्रतिरोध की परंपरा एक सतत परंपरा है, जिसका प्रादुर्भाव अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध होता है। जब स्थापित व्यवस्था के मूल्य किसी व्यक्ति या वर्ग के किसी भी समुदाय को पूर्ण संतुष्टि प्रदान नहीं करता है, तब वह व्यक्ति या वर्ग उस स्थापित व्यवस्था के मल्यों के स्थान पर नवीन व्यवस्था की माँग करता है। प्राचीन काल में वेदों, उपनिषदों, स्मृति ग्रथों में मानव जीवन यापन करने वाले सभी साधनों को किसी खास वर्ग या समुदाय के लिए स्थिर करके समाज में विषमता की अमिट रेखा खींची दी थी। उसी विषमता ने सुख-सुविधा से वंचितों के मन में विद्रोह एवं आक्रोश की चिंगारी को जन्म दिया। तत्कालीन समाज में जितने भी गंदे, घिनौने एवं मेहनत के कार्य थे- वे सभी दलितों के माथे मढ़ दिया गया। शिक्षा से दूर रखकर उनकी चेतना को ही कुंठित कर दिया गया। इस बात की पुष्टि करते हुए ए.एल. बाशम लिखते हैं- *''जन्मजात असमानता धर्मसंगत मानी गई, जिसके फलस्वरूप निम्नकुल के व्यक्तियों का जीवन अभिशाप बन गया।''*[2] (अद्भुत भारत, पृ.सं. 6) वे आगे लिखते हैं, *''चांडाल का कार्य था- मृत शरीर को ले जाना तथा उनका दाह संस्कर करना तथा अपराधियों को फाँसी देने के लिए जल्लाद के रूप में कार्य करना। नीति-ग्रंथों के अनुसार चांडाल को उन मृतकों के वस्त्रों को धारण करना चाहिए, जिसका दाह संस्कार उसके द्वारा हुआ है तथा टूटे हुए बर्तनों में भोजन करना एवं लौह-आभूषण धारण करना चाहिए। उच्च श्रेणी के व्यक्तियों को उनसे कोई भी निकट का संबंध नहीं रखना चाहिए तथा यदि उनसे दूर के संबंध भी रखे जाते तो उच्च श्रेणी के व्यक्तियों को दंडस्वरूप अपनी धार्मिक पवित्रता की क्षति सहन करनी पड़ती तथा वे उसी चांडाल स्तर पर पहुँच जाते।''*[3] (अद्भुत भारत, पृ.सं. 102) ध्यान रहे कि दलितों की बदहाली के मूल में भारतीय समाज व्यवस्था की यही जाति-प्रथा और वर्णवाद है। उनमें शिक्षा के अभाव के कारण वह जागरूकता नहीं थी, जिसकी बदौलत वे अपने हक एवं अधिकार की लड़ाई लड़ सकते। फिर भी चर्वाक एवं शम्बूक ने सामाजिक एवं धार्मिक कर्मकांडों के विरुद्ध, यास्काचार्य नें वैदिक ऋचाओं के विरुद्ध, मोदगल्यान ने परंपरित वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध अवाज उठाते रहे हैं, किंतु बड़ी निर्ममतापूर्वक उनकी आवाज को दफना दिया गया। इतना ही नहीं बौद्धों के त्रिपिटक एवं थेरी गाथाएँ तत्कालीन जीवन की त्रासदी, दुख और संघर्षों से भरी पड़ी हैं। उसी बुझी हुई आग की चिंगारी सिद्धों एवं नाथों की वाणियों में प्रज्ज्वलित होती है। जिन चौरासी सिद्धों का उल्लेख साहित्य में मिलता है, उनमें अधिकांश दलित एवं वंचित वर्ग से आते हैं, इसीलिए उनकी प्रामाणिक अनुभूति कड़वाहट भरे लहजों में अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने पाखंड और आडंबर का विरोध किया, वंश, वर्ण एवं जाति श्रेष्ठत्व को नकारते हुए आचरण

की शुद्धता पर जोर दिया। इसीलिए इनका विद्रोह सृजनात्मक है। वह विकृति का विध्वंस कर संस्कृति का संवर्धन करता है।

उस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए भक्तिकालीन संत कवियों- नामदेव, गुरुनानक, कबीर, रैदास, घना, पीपा, सेन दादू दयाल आदि ने हिंदू एवं मुस्लिम धर्म में व्याप्त आडंबरों पर जम के प्रहार करते हुए एक समान मानव धर्म पर जोर दिया। जाति भेद, छुआछूत को नकारते हुए 'जाति-पाति पूछे नहीं कोय, हरि को भजे से हरि का होय' कह कर कर्म की श्रेष्ठता पर बल दिया। सच पूछा जाए तो इन्हीं कवियों की वाणियों में सामाजिक एवं धार्मिक क्रांति का उद्घोष पहली बार विधिवत प्रस्फुटित हुआ है। परंतु इसे और बल तब मिला जब महात्मा ज्योतिबा फुले ने 'सत्यशोधक समाज' आंदोलन चलाया तथा 'गुलामगीरी' नामक विचारात्मक काव्य की रचना करके दलितों एवं पिछड़ों की सोई हुई अस्मिता को जगाया। शेष कार्य बाबा साहेब अंबेडकर की विचारधारा ने पूरी की। इस संदर्भ में डॉ. राजेश पाल का कथन अवलोकनीय है- *''दलित समाज को डॉ. अंबेडकर के रूप में पहली बार एक ऐसा प्रखर व्यक्तित्व मिला, जो इसके लिए ज्योतिस्तंभ साबित हुआ और जिसने युगों से अंधेरे में भटकते हुए इस वर्ग को राह दिखाने का कार्य किया। डॉ. अंबेडकर के आगमन से दलितों में एक बेचैनी-सी उभर रही थी, जो सम्मान, सत्ता धन और धरती में हिस्सा चाहते थे। उनकी इसी बेचैनी को उन्होंने मूकनायक तथा बहिष्कृत भारत नामक पत्रिकाओं से वाणी प्रदान की।''*[4] (गाँव के लोग-दलित विशेषांक, जनवरी-फरवरी-2021, पृ.सं. 156) उन्हें ज्ञात था कि समाज के हाशिए पर धकेले गए लोगों की स्थिति में सुधार के लिए संवैधानिक आरक्षण अपरिहार्य है। स्वयं तथाकथित उपेक्षित कुल में पैदा होने और पलने-बढ़ने की पीड़ा ने उन्हें अंदर से झकझोर दिया था। संविधान-निर्माता होने के कारण नहीं, अपितु एक तर्कशील और न्यायप्रिय व्यक्ति होने के कारण उन्होंने आरक्षण के पक्ष में अपनी कलम चलाई। इस संदर्भ में प्रो. अजमेर सिंह काजल का कथन द्रष्टव्य है- *''ज्योतिबा फुले द्वारा सामाजिक भेदभाव एवं सांस्कृतिक शोषण की विचारधारा के विरुद्ध पैदा किए गए प्रतिरोध को बाबा साहेब अंबेडकर ने लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के जरिए आगे बढ़ाया, जिसकी पूर्णता संवैधानिक अधिकारबोध के रूप में हुई।''*[5] (मानवीय गरिमा के प्रश्नों की तलाश, गाँव के लोग, पृ.सं. 69) जैसा कि संकेत किया जा चुका है कि आजादी के उपरांत भी उनकी स्थिति में जो बदलाव होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। इसी बीच हिंदी साहित्य में कमलेश्वर ने दलितों की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों से रू-ब-रु कराने के उद्देश्य से सन 1975 में अपनी पत्रिका 'सारिका' में दो दलित विशेषांक तथा सन 1980 में डॉ. महीप सिंह ने 'संचेतना' में एक दलित विशेषांक निकाला। इस विशेषांक ने मुख्यधारा के साहित्यकारों, आलोचकों को ही नहीं प्रभावित किया, अपितु बड़े पैमाने पर दलित साहित्य के पाठकों की संख्या बढ़ाई। दलितों की पीड़ा को सर्वजनिक रूप मिलने के कारण लेखकों की लोकप्रियता में भी बढ़ोतरी हुई तथा समाज का एक बड़ा तबका दलितों के प्रति हुए या हो रहे अमानवीय दुर्व्यवहारों से परिचित हुआ।

आज जो दलित साहित्य सृजित हो रहा है, उसकी मूल चेतना नकार एवं प्रतिरोध है, जो अस्मिता एवं संघर्ष का प्रेरणास्रोत है। बानगी के तौर पर जयप्रकाश कर्दम की निम्नलिखित पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं, जिनमें सामाजिक परिवर्तन के लिए निरंतर प्रयासरत रहने की बात कही गई है-

''मेरे शब्दों/ केवल शब्द मत बने रहो / अपने अर्थों में जाओ, / तीर, तलवार में बदल जाओ, / धरती आसमान को हिला दो / अन्याय की दुनिया में / आग लगा दो / क्रांति का बिगुल बजा दो।'' [6] (जयप्रकाश कर्दम, तिनका तिनका आग, अमन प्रकाशन, 2019,पृ.सं. 17) कवि ने भूख, यंत्रणा, सांप्रदायिकता, उत्पीड़न और जाति भेद के प्रति जो क्रांति की आवाज उठाई है, वह इस बात का चश्मदीद गवाह है कि आज भी दलितों की अस्मिता को रौंदा जा रहा है, सवर्णों का उत्पीड़न तंत्र और शोषणतंत्र जगजाहिर है।।

विधा के रूप में चाहे कविता हो या कहानी, नाटक हो या उपन्यास या फिर आत्मकथा सर्वत्र दलित विमर्श की मूल अवधारणा (समाजिक न्याय, लोकतांत्रिक मूल्यों और जाति विहीन समाज की स्थापना) को ही प्रस्थापित

करने का प्रयत्न परिलक्षित होता है, जो दलित साहित्य को वैश्विक दृष्टि से जोड़ता है। समकालीन दलित साहित्य के अवलोकन से एक बात की पुष्टि होती है कि आज भी समाज के हर क्षेत्र में यथास्थितिवाद को बनाए रखने वाली विचारधाराएँ सक्रिय हैं, जो यह चाहती हैं कि समाज का जो दबा-कुचला या पिछड़ा वर्ग है, वह अपनी यथास्थिति से न उबर पाए। प्रसिद्ध सामाजवादी चिंतक चौथीराम यादव के शब्दों में-*''आप जान लें कि वर्चस्ववादी ताकतें लगातार आपका विरोध करती रहेंगी। आपके प्रतिरोध को हाशिए पर लाने की कोशीश करती रहेंगी।....सवर्ण सोसायटी की ताकत बहुत मजबूत है। वह पढ़ी-लिखी सोसायटी है। बहुत ही खुराफती दिमाग रखने वाला समाज है। वो आपको एकजुट होने ही नहीं देंगे। वो तोड़-फोड़ करते रहते हैं।''* [7] (गाँव के लोग, पृ.सं. 45)

लेकिन आज के प्रगतिशील समय में दलित एवं पिछड़ा वर्ग अपनी पूरी तकत के साथ सत्ता एवं सम्मान में अपनी हिस्सेदारी के लिए अडिग है। अब वह किसी डर या बहकावे में नहीं आना चाहता है। इसी बिंदु पर दलित साहित्यकार की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह अपने सृजित पात्रों को किस हद तक मानसिक पीड़ा से उबार पाया है तथा शोषण एवं कुंठा के मनोवैज्ञानिक पक्षों को उद्घाटित कर कहाँ तक उनमें अस्मिता तथा संघर्ष की चेतना को जागृत कर पाया है। इस संदर्भ में कुसुम वियोगी की निमनलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं, जिसमें दलित वर्ग अपने अधिकार की रक्षा हेतु दो-चार करने के लिए तैयार है-

''अब हम आजादी की साँस लेना सीख रहे हैं। युग बदला है / परिभाषाएँ बदली हैं / खुद बदला है / जनून बदला है / अब उनकी बन्दूकें / हमारी छातीयों पर नहीं तनेंगी / वरन् हम ही फटेंगे, बनके बारूद।'' [8] (टुकड़े-टुकड़े दंश, सामंती कविता से, पृ.सं. 90)

इसमें कोई दो राय नहीं कि आज दलित चेतना आंदोलन के रूप में सामने आ रही है और परिवर्तन के दौर को बड़ी गहराई से मससूस कर रही है । परंतु हर आंदोलन की तरह दलित आंदोलन में भी भटकाव के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। जरूरत है समय रहते उन कारणों को चिह्नित करने और शीघ्रातिशीघ्र दूर करने की। समाज का पिछड़ा वर्ग, जिसे आम तौर पर ओ.बी.सी. कहा जाता है, उसका सहयोग जिस तरह से मिलना चाहिए था, उस तरह से नहीं मिल रहा है। इस वर्ग के अंतर्गत छद्म जातीय गौरव की भावना इतनी ज्यादा भरी हुई है कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को मानने के लिए तौयार ही नहीं है कि वह भी दलितों की ही श्रेणी का एक उपेक्षित अंग रहा है। 1932 में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के दौरान बाबा साहेब ने पिछड़े वर्ग के संदर्भ में कहा था कि उनकी भी सामाजिक और शैक्षणिक स्थिति अच्छी नहीं है। अत: उन्हें भी आरक्षण का लाभ मिलना चाहिए । परंतु इस वर्ग के नेताओं ने अपने पूर्वजों को क्षत्रिय या ब्राह्मण बताना शुरू कर दिया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आजाद भारत में बहुत दिनों तक उन्हें आरक्षण से दूर रहना पड़ा और उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति दिन-पर दिन बद से बदतर होती चली गई। आज भी इस वर्ग की मानसिकता में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। यदि सच्चे दिल से यह वर्ग दलितों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर आगे आने का दृढ़ संकल्प कर लो तो जाति की दीवार को तोड़ने में देर नहीं लगेगी। परंतु अपने वर्चस्व को कायम रखने के लिए यथास्थितिवादियों ने इस वर्ग के चंद लोगों को कुछ सुविधाएँ दे रखी हैं ताकि ये दलितों की जमात में न शामिल हो सकें । वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलितों को अपनी रणनीति बदलनी होगी और स्वयं को एकजुट करके जाति के जुए को अपने कंधों से उतार फेंकना होगा, जैसा कि जयप्रकाश लीलवान का कहना है-

''आज के उदास समय को / क्रान्ति के नगमों में ढालने के लिए / जातियों के घास-फूस में माचिस लगाने / हमें ही चलना होगा।'' [9] (कथादेश, 2 अप्रैल, 2003 में प्रकाशित)।

दलित आंदोलन में भटकाव का दूसरा कारण है- अवसरवादिता को प्रश्रय देना। बहुत हद तक दलित आंदोलन सामाजिक परिवर्तन, समानता और जाति तोड़ो आंदोलन से विमुख होकर अवसरवादी समझौते करने लगा है और कई टुकड़ों में बँट गया है। यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि दलित आंदोलन को कमजोर

करने में दलित समाज के बुद्धिजीवियों, प्रशासनिक अधिकारियों, विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाओं के पदाधिकारियों का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से योगदान रहा है। ऐसे लोग येन-केन-प्रकारेण शक्ति, सामर्थ्य एवं सत्ता प्राप्त करने के पश्चात या तो अपने लक्ष्य से दिग्भ्रमित होते रहे हैं या अपने वर्गों की पीड़ा को भूलकर अपने व्यक्तिगत जीवन को सुधारने में दत्तचित्त हो गए हैं। ऐसे देखा जाए तो दलितों के अनेक संगठन हैं, परंतु ऐसा कोई सशक्त राष्ट्रीय संगठन नहीं है, जो उनके सामूहिक मुद्दों को राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर न सिर्फ उठाए, बल्कि जमीनी स्तर पर लोगों को सचेत कराए। जबकि आज भी औसतन दलितों की स्थिति मोहनदास नैमिशराय के कलम से अंकित निम्नलिखित शब्दचित्र से भिन्न नहीं है- *''हम गरीब जरूर थे। पर हमने न देश बेचा न अपना जमीर। न हम डंडीमार थे और न ही सूदखोर। चोर लुटेरों की श्रेणी में भी नहीं आते। हमारे पुरखों ने घर बनाए, शहर बनाए पर न हमारे पास ढंग के घर थे और न बस्तियाँ। शहरों के भीतर बसने की कल्पना भी करना हमारे लिए मुश्किल था।''* [10] (अपने-अपने पिंजर भाग-2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति, 2009,पृ.सं. 16)

उपरोक्त पंक्तियों में लेखक ने अपने या अपने जैसे औरों की हृदय के ताप को, उनकी विवशता, निरीहता और लाचारी को जिस तरह से अभिव्यक्त किया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि आजादी के सात दशक बीत जाने के बावजूद समाज का वंचित वर्ग प्रचलित वर्ण-व्यवस्था एवं जाति-भेद की मानसिकता का शिकार होता रहा है। उसका अतीत जितना यंत्रणापूर्ण था, वर्तमान उतना ही भयावह। उसे आज भी आदर्श, नैतिकता, धर्म, राष्ट्रीयता, उदारीकरण, नाजीकरण के नाम पर दिग्भ्रमित किया जा रहा है।

निष्कर्ष :

आजादी का अमृत महोत्सव मनाने वाला विश्व का सबसे वृहत्तम प्रजातांत्रिक देश के बहुसंख्यक नागरिकों का जो शब्दचित्र दलित साहित्य में मूर्तिमान हुआ है, वह इस बातका सबूत है कि हाशिए के लोग आज भी हाशिए पर ही हैं। इसके बावजूद दलित स्वर एक सफल प्रतिरोधी स्वर है, जो सत्ता और व्यवस्था में परिवर्तन करने की कूव्वत रखता है। वह अपने दम पर अपनी अलग परंपरा, संस्कृति के निर्माण के लिए संकल्पबद्ध है, जिसमें समानता, श्रम की महत्ता और लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर व्यक्ति की श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता का निर्धारण किया जाना है। दलित विमर्श की मूल संकल्पना है-जातिविहीन, वर्गविहीन, धर्मविहीन समाज का निर्माण करना, जिसमें न कोई शोषक होगा और न कोई शोषित, जहाँ भाग्य के आधार पर नहीं, कर्म के आधार पर व्यक्ति का जीवन परिचालित होगा। दलित विर्मश की यही मूल अवधारणा उसकी सामर्थ्य एवं सीमाओं से उबार कर वैश्विक दृष्टि से जोड़ती है। आज जब नव पूँजीवाद का जादू सभी के सिर पर चढ़कर बोल रहा है, ऐसे में दलित साहित्यकारों के ऊपर गुरु उतरदायित्व है कि वे दलित विमर्श की वैचारिक पृष्ठभूमि जो शम्बूक, आजीवक, बुद्ध आदि से होते हुए उन तक पहुँची है, उसकी ज्योति मलिन न होने दें। यह तभी संभव है, जब दलित अपनी हीन भावना का परित्याग कर 'अप्पो दीपो भव:' के सिद्धांत से परिचालित होकर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे। संपूर्ण दलित साहित्य वंचितों, उपेक्षितों और मजलुमों की यातना और पीड़ा का ही दास्तान नहीं, अपितु आक्रोश, क्रोध और विद्रोह का घोषणापत्र भी है, जिसकी अंतिम परिणति है- अपने आपको आदमी के रूप में स्थापित करना। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. गुप्ता, रमणिका दलित प्रश्न संवाद और यूटोपिया, आर.पी.एच. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, (2020), दिल्ली -110032, पृ.सं. 26
2. पांडेय, वेंकटेशचंद्र अनुवादक,(मूल लेखक-ए.एल बाशम), अद्भुत भारत शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा-282003, पृ.सं.06
3. पूर्ववत, पृ.सं. 102
4. सं-सिंह डॉ.एन, कुमार अरुण, गाँव के लोग- वर्ष-5, अंक 24 दलित विशेषांक, जनवरी-फरवरी-2021, पृ.सं. 156
5. पूर्ववत (मानवीय गरिमा के प्रश्नों की तलाश), गाँव के लोग, पृ.सं. 69
6. कर्दम, जयप्रकाश तिनका तिनका आग, अमन प्रकाशन, (2020), पृ.सं. 17
7. सं-सिंह डॉ.एन, कुमार अरुण, गाँव के लोग- वर्ष-5, अंक 24 दलित विशेषांक, जनवरी-फरवरी-2021, पृ.सं. 45
8. वियोगी, कुसुम, टुकड़े-टुकड़े दंश, (1996) सामंती कविता से, पृ.सं. 90
9. कथादेश, 2 अप्रैल, 2003 में प्रकाशित।
10. नैमिशराय, मोहनदास, अपने-अपने पिंजर भाग-2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, आवृत्ति, (2009),पृ.सं. 16

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की यात्रा परिधि

डॉ. अनूप प्रसाद सेमवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल
केंद्रीय विश्वविद्यालय
बिड़ला परिसर, श्रीनगर, गढ़वाल,
उत्तराखंड-246174
7500850003
dranoopsemwalhindi@gamil.com

सृष्टि के आरंभ से ही मानव की यायावरी प्रवृत्ति उसे प्रकृति से जोड़ती रही है। जैसे-जैसे मानव प्रकृति में विचरण करना शुरू करता है, वैसे-वैसे उसके मन में प्राकृतिक परिदृश्यों के प्रति एक नई सोच, धारणा तथा लगाव की भावना उत्पन्न होती है। इससे उसे आत्मीय संतुष्टि प्राप्त होती है तथा जीवन और जगत के मध्य एक शाश्वत सत्ता का निदर्शन होता है। यायावर व्यक्ति अपने समस्त बंधनों को तोड़कर समाज में विचरण करता हुआ मानव मन की सोच का विकास करता है। घुक्कड़ी प्रवृत्ति जहाँ प्रकृति और मानव के मध्य अंत:संबंध जोड़ने का कार्य करती है, वहीं अन्य प्रकृति प्रेमियों के मन में भी इसी प्रवृत्ति की भावना जागृत करती है।

वस्तुत: मनुष्य का रचनाशील मानस प्राप्त अनुभवों की समृद्धि ही नहीं, बल्कि उनकी सार्थक अभिव्यक्ति भी चाहता है। यात्रा के दौरान प्राप्त अनुभवों से उसकी सृजनात्मक प्रतिभा से किया गया शब्दबद्ध प्रयास यात्रा-साहित्य के रूप में प्रतिफलित हुआ है।

''सौंदर्य बोध की दृष्टि से उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं। और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा-साहित्य कहा जा सकता है।''[1]

हिंदी के अंतर्गत यात्रा साहित्य की परंपरा का सूत्रपात भले ही आधुनिक युग में हुआ हो, किंतु प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति के पुरातन स्वरूप के अंतर्गत यात्रा-साहित्य के संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन जी कहते हैं-

''हमारा देश महान घुमक्कड़ों का देश रहा और इतिहास के आरंभ से ही यदि हमारी लेखनी के धनी घुमक्कड़ों ने अपनी यात्राओं पर कलम चलाई होती तो सैकड़ों नहीं, हजारों पुस्तकें तैयार होतीं।'' [2]

हिंदी यात्रा साहित्य के अंतर्गत महापंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम अग्रणी है। इसी क्रम में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का नाम भी यात्रा साहित्य के अंतर्गत प्रसिद्ध रूप से जुड़ा है। स्वामी दयानंद के जीवन चरित्र तथा सत्यार्थ प्रकाश से अंकुरित बुद्धिवाद ने स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के भीतर रूढ़िवाद से विद्रोह, स्वतंत्र विचारों का आकर्षण और स्वतंत्र जीवन की कामना की भावना का बीजारोपण किया। आर्य समाज के आंदोलन से जागृत भावनाओं ने स्वामी सत्यदेव को संस्कृत के ज्ञान की महत्ता एवं विदेशी राज्य की अवधारणा के परिणाम से परिचित करवाया।

मध्यकालीन संत परंपरा के संस्कारों और आर्य समाज के नवीन विचारों से

प्रभावित होने के कारण प्रगतिशील चेतना का विकास तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन के उपरांत संन्यास लेना उनके जीवन का एक विशेष पड़ाव रहा है। काशी में रहकर शास्त्र अध्ययन तथा हिंदी भाषा को शुद्धता से पढ़ने, लिखने, बोलने और सुनने की प्रवृत्ति का सबल विकास किया। तदोपरांत अमेरिका की यात्रा के अंतर्गत स्वाधीन और बीसवीं सदी की सबसे उन्नत जाति के आचार विचार ग्रामीण और शहरी जीवन को जीवंत रूप में देखने की लालसा ने उन्हें अमेरिका की छह रियासतों का भ्रमण करवाते हुए 2300 मील की पदयात्रा का सफर तय करवाया।

सन 1911 ई. प्रकाशित 'अमेरिका दिग्दर्शन' में सत्यदेव परिव्राजक ने अपने अमेरिका प्रवास के अनुभवों का समायोजन किया। सत्यदेव द्वारा अमेरिका प्रवास के दौरान ली गई स्नातक की डिग्री एवं प्रकाशित पुस्तक के संदर्भ में श्री टेकचन्द्र धींगरा ने लिखा है-

उस युग में भारतवर्ष का कोई पढ़ा-लिखा विदेश की डिग्री पाकर हिंदी में ग्रंथ लिखने और प्रचार करने का साहस नहीं कर सका । *''भागलपुर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति श्री स्वामी श्रद्धानंद जी ने स्वामी जी से पूछा कि आप क्या काम करेंगे। जब स्वामी जी ने हिंदी में पुस्तकें लिखने की बात बताई तो उन्होंने व्यंग्य वचनों में कहा.... 'आपकी हिंदी पुस्तकें कौन खरीदेगा ? आप भूखे मर जाएँगे। सारे भारतवर्ष में हमें कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि विदेशों से डिग्री पाया हुआ कोई नवयुवक हिंदी में पुस्तकें लिखकर आर्थिक सफलता प्राप्त करने की हिम्मत करता।' स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ही एक ऐसे हिंदी लेखक हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा में ग्रंथ लिखकर सफल लेखक की पदवी पाई है। और कभी किसी के सामने झोली नहीं फैलाई।''*[3]

सन 1916 ई. में प्रकाशित 'कैलाश यात्रा' शीर्षक से उनकी यात्रा पुस्तक के संदर्भ में जयचन्द्र विद्यालंकार का मत है कि- *''वह जीवन जगाने वाली, ज्ञान देने वाली कहानी है, जो हिंदी में यात्रा की पहली मौलिक पोथी है।''*[4]

इसी प्रकार सन 1933 ई. में ज्वालापुर कनखल के अंतर्गत उन्होंने सत्यज्ञान निकेतन की स्थापना की। उनकी प्रतिभा, साहस, ध्यान शक्ति एवं स्मरण शक्ति की अपूर्वता के कारण अंधेपन में भी अकेला जीवन बिना किसी समस्या के व्यतीत किया। ब्रह्मचर्य, सदाचार और बुद्धिवाद रूपी वास्तविक शक्तियाँ ही उनकी सबल ताकत रही हैं।

30 नवंबर, 1943 ई. को अपनी संपूर्ण सम्पत्ति नागरी प्रचारिणी सभा काशी को दान देना हिंदी भाषा और साहित्य के विकास हेतु स्वामी जी के प्रेम को दर्शाता है। वस्तुत: देश की स्वतंत्रता और हिंदी प्रेम रूपी प्रेरणाएँ स्वामी जी के व्यक्तित्व को विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं। हिंदी के प्रति उनके अगाध लगाव के संदर्भ में सुरेंद्र माथुर जी कहते हैं-

''यूरोप महाद्वीप से हिंदी में रेडियो भाषण सर्वप्रथम स्वामी जी ने ही अपने देशवासियों को सुनाया था।''[5]

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक सदैव ही हिंदी को आधुनिकता के दृष्टिकोण से आगे बढ़ाने की चेष्टा के साथ देश को आधुनिक ज्ञान से परिपोषित करवाना चाहते थे। यात्रा-साहित्य लेखन के अंतर्गत अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रणयन करते हुए हिंदी साहित्य की इस विधा को सदैव ही परिपोषित किया है। साहित्य के सामाजिक अवदान को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है-

''मै हूँ उपयोगितावादी, मुझे छायावादी और रहस्यवादी लटकें कभी भी पसंद नहीं आते । दिमागी ऐयाशी की पुस्तकें और कविताएँ मेरे निकट दो कौड़ी कीमत भी नहीं रखतीं। साहित्य भी एक साधन है। मानव में उत्कर्ष के लिए जो भाषा तथा साहित्य समाज को ऊपर नहीं उठाते, दैनिक जीवन की समस्याओं को हल नहीं करते, मनोविज्ञान के चमत्कारों पर प्रकाश नहीं डालते और सत्यज्ञान की प्राप्ति में सहायक नहीं बनते, वह साहित्य और भाषा केवल समय नष्ट करने वाले हैं।''[6]

एक आध्यात्मिक जिज्ञासु होने के दृष्टिगत स्वामी जी धार्मिक मतों की भूल-भुलैया से दूर रहे। एशिया के पतन और गुलामी के कारण को वस्तुसत्य से दूर रहने को बताते हुए सामाजिक सार्थकता के संदर्भ में लिखा है-

''निस्संदेह दो प्रकार के जगत हैं। बाह्य और आभ्यांतरिक, किंतु बाह्य जगत के बिना आभ्यांतरिक जगत की रचना नहीं की जा सकती है। जो ब्रह्म जगत

का बुद्धिपूर्वक अध्ययन कर सकता है, उसी का आभ्यांतरिक जगत भी निर्दोष हो सकता है। यह बात गलत है कि मिट्टी से लथ-पथ रहने वाली गंदी से गंदी चीज खा लेने वाला और आवारा घूमने वाला अघोरी आभ्यांतरिक जगत को भली प्रकार देख सकता है। समाज में फैले हुए इन झूठे सिद्धांतों का मैं घोर विरोधी हूँ। इसी कारण एशिया की उन्नति रुक गई और ऐसे ही भ्रांतिपूर्ण सिद्धांतों के मानने से आज भारतवर्ष के लोग अपनी बेहूदा मूर्तियों का पीछा न छोड़ सके। मस्तिष्क शून्य हृदय की अनुभूति एक ऐसी भ्रमात्मक उक्ति है, जिसकी लीला भारत के बड़े ग्रेजुएट और दिग्गज पंडित भी आज तक नहीं जान सके। हृदय की अनुभूति के साथ मस्तिष्क का विकास भी लाजिमी है। दोनों साथ-साथ चलने चाहिए, तभी निर्दोष कला का स्वरूप संसार के सामने आ सकेगा और सौंदर्य की महिमा हम समझ सकेंगे।''[7]

सत्यदेव परिव्राजक जी का लेखन सदैव ही उस कोटि का रहा है, जिसके अंतर्गत एक-एक शब्द अपने अनुभव और ज्ञान से स्वयं ही परिणित होते हैं। साहित्य और कला जगत के औद्योगिक होते स्वरूप के उपरांत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के विचार एवं यात्रा साहित्य हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए आज भी प्रासंगिक हैं। उनके यात्रा ग्रंथों में देश-विदेश के प्रति व्यापक दृष्टिकोण के संदर्भ में विश्वमोहन तिवारी जी ने कहा है-

''सत्यदेव परिव्राजक के यात्रा ग्रंथ आज भी पढ़ने योग्य हैं, क्योंकि वे देश-विदेश के जीवन की व्यापकता को उसके सही परिप्रेक्ष्य में उभारना चाहते हैं।''[8]

स्वामी जी के यात्रा साहित्य में विवरणों की बहुलता के कारण ज्ञानात्मक मूल्यों की अधिकता व्याप्त है। साथ ही हिंदी मानसों के प्रति स्थापित दृष्टिकोण और अभिरुचि का होना और भी सार्थक महत्व प्रतिपादित करता है। प्रकृति और समाज का यथार्थपरक वर्णन इनके यात्रा साहित्य में परिलक्षित होता है। अपने यात्रा साहित्य के अंतर्गत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने स्वाधीनता के भाव, बुद्धिवादी दर्शन, क्रांतिकारी दृष्टिकोण तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया है। परिव्राजक जी के यात्रा लेखन के अंतर्गत श्रेष्ठ यात्रा साहित्य के सभी गुणों का समावेशण भी मिलता है।

निष्कर्षत: यह स्पष्ट है कि विवरणात्मक और वर्णनात्मक स्वरूप में लिखित स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का समग्र साहित्य तत्कालीन समाज का एक जीवंत दस्तावेज है। सरल और मुहावरेदार भाषा के दृष्टिगत स्वामी जी का समग्र साहित्य पाठकों हेतु पूर्णरूपेण प्रासांगिक और हिंदी यात्रा-साहित्य की विकास यात्रा में अग्रणी शिखर की स्थापना करता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. हिंदी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा- भाग 1 पृ.सं. 663
2. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास -रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. सं. 186-187
3. सत्यदेव परिव्राजक-श्री टेकचन्द्र धींगरा-पृ.सं. 08
4. सत्यदेव परिव्राजक-श्री जयचन्द्र विद्यालंकार-पृ.सं. 03
5. हिंदी यात्रा साहित्य का उद्‌भव एवं विकास-सुरेन्द्र माथुर-पृ. सं. 130
6. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक-देवधर्म विद्या वाचस्पति-पृ.सं. 20
7. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक-श्री संतराम- पृ. सं. 71
8. हिंदी का यात्रा साहित्य : एक विहंगम दृष्टि- विश्वमोहन तिवारी-पृ. सं. 50

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

स्त्री-विमर्श के आईने में मोहन राकेश की कथा नायिका मिस पाल

डॉ. पंकज कुमार सहनी

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
रवींद्रनाथ ठाकुर विश्वविद्यालय
होजाई, असम-782435
9678843823
pankajsahani568@gmail.com

'स्त्री-विमर्श' ने संसार के प्राय: सभी देशों में एक वैचारिक आंदोलन का रूप ले लिया है। इस विमर्श की ताकत यह रही है कि यह प्रतिशोध की भावना से पीड़ित न होकर उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करता है, जो स्त्रियों को उसके अधिकारों से वंचित रखने की कोशिश करती है। आज की तारीख में 'स्त्री-विमर्श' के ऊपर साहित्य में हजारों काम हो चुके हैं, जिससे समाज में कई हद तक महिलाओं की स्थिति में बदलाव आया है। भारी संख्या में स्त्रियाँ शिक्षा की ओर अग्रसर हुई हैं। आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ-साथ अपनी एक अलग पहचान भी स्थापित की है, परंतु अभी भी स्त्री पूरी तरह पितृसत्तात्मक प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाई है। आज भी अधिकांश मामलों में स्त्री को हीन दृष्टि से ही देखा जाता है। स्त्रियों का उसके रूप-रंग को लेकर भी मानसिक शोषण किया जाता है। प्रस्तुत पत्र में स्त्री-विमर्श पर चर्चा करते हुए मूलत: मोहन राकेश की कहानी 'मिस पाल' में चित्रित एक स्त्री की अंतर्द्वात्मक संवेदना को स्त्री-विमर्श के विशिष्ट संदर्भ में रेखांकित करने की कोशिश की गई है। इस कहानी की नायिका है मिस पाल। उसका मर्दाना डील-डौल तथा कुरूपता आसपास के लोगों के बीच हास-परिहास का विषय है। इस कारण उसके मन में कुंठा घर कर जाती है। सहकर्मियों द्वारा उसके रूप-रंग के ऊपर किए गए तीक्ष्ण व्यंग्य उसके अंदर गहरा अवसाद और झुंझलाहट पैदा कर देता है। ये तमाम कारण उसे कभी सहज जीवन जीने नहीं देते। अंतत: उसे अपनी नौकरी भी छोड़नी पड़ती है और अकेले सब से कटकर एकांत जीवन जीने को मजबूर बना दी जाती है।

'स्त्री-विमर्श' अथवा 'फेमिनिज्म' की अवधारणा पाश्चात्य साहित्य की देन है। भारतीय साहित्य में 'स्त्री-विमर्श' को 'नारीवाद' के नाम से भी जाना जाता है। 'स्त्री-विमर्श' के उदय का मुख्य कारण रहा है मानव-अधिकारों के मुद्दों को उठाना और समाज में गढ़ जमाए हुए पुरुषवादी मानसिकता वाली सत्ता का नाश करके उसको जड़ से उखाड़ फेंकना। स्त्री एवं पुरुष को एक समान धरातल पर समान अवसर प्रदान करना। इस कार्य के प्रति सबसे प्रथम प्रयास अमेरिका एवं ब्रिटेन ने किया। हालाँकि स्त्री-विमर्श की शुरुआत की अवधारणा काफी विवादास्पद है।

'स्त्री-विमर्श' के उदय के कारणों को मैंने पुरानी मान्यताओं से जोड़कर देखने का प्रयास किया है। सदियों से यह मान्यता चली आ रही थी कि स्त्री पुरुषों की तुलना में प्रत्येक क्षेत्र में कमजोर होती है, चाहे वह शारीरिक रूप से हो या बौद्धिक रूप से। दरअसल, एक लंबे समय से ही पुरुषों ने स्त्रियों पर अपना

आधिपत्य जमा रखा है। इसी मानसिक दबाव के कारण स्त्री में हीनता की भावना उत्पन्न हुई होगी। पुरुषों ने हमेशा स्त्री को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया, उसे भोग्य मात्र ही समझा गया तथा उसे बच्चे पैदा करने वाली मशीन बना दी गई। भारतीय नारी की विडंबना यह रही कि उसने इसी झूठ को सच मान लिया और इसी वजह से लगातार समाज में उनका शारीरिक व मानसिक शोषण होता रहा।

नारी जाति की स्थिति समाज में हमेशा से ही दयनीय एवं शोचनीय रही है। प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरुषों द्वारा शोषण का शिकार होती रही है। स्त्री हमेशा से ही दोयम दर्जे एवं परिवार के बंधनों में बँधकर रह गई। उस बंधन की जकड़न से वह कभी उभर न सकी और घुटन भरी जिंदगी जीने को मजबूर रही। उसे लगातार अत्याचार और उत्पीड़न को सहना पड़ा, साथ ही उसके साथ जानवरों जैसा अमानवीय व्यवहार भी होता रहा है। विशेषकर उन महिलाओं के साथ जो गाँवों, कस्बों में जीवन-यापन कर रही थीं। शहरों की महिलाओं के साथ इस मायने में कुछ कम ज्यादतियाँ हुईं, परंतु वहाँ भी घरेलू हिंसा एवं पितृसत्तात्मकता से बच पाना मुश्किल था। किसी-न-किसी रूप में उसे औरत होने का एहसास दिलाया जाता रहा है। उसे केवल अपनी सुविधाओं के अनुकूल ही व्यवहार में लिया जाता रहा है। खाना बनाने से लेकर पुरुषों के पाँव के जूते खोलने तक का काम लेते रहे हैं। परंतु इतिहास इस बात का गवाह है कि जब-जब धरती पर दमनकारियों का अत्याचार बढ़ा है, तब-तब उसका विनाश भी किसी-न-किसी विधि द्वारा अवश्य हुआ है। स्त्रियों पर हो रहा अत्याचार व बदसलूकी पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। पुरुषवादी मानसिकता वाले पापियों के पाप का घड़ा भी भर चुका था। अत: इस समस्या का समाधान भी जरूरी था। 'स्त्री विमर्श' इसी समाधान की प्रस्थान बिंदु है।

मोहन राकेश मध्य वर्ग के चितेरे हैं। इसी वर्ग की कहानी कहने में उन्हें महारत हासिल है। वैसे तो उन्होंने उपन्यास, नाटक कई विधाओं का संवर्द्धन किया है और हिंदी साहित्य में नाटककार के रूप में ही उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। परंतु कहानी लेखन में उनकी विशेष रुचि रही है। उन्होंने इस क्षेत्र में उपलब्धि भी हासिल की है। मोहन राकेश 'नई कहानी आंदोलन' के प्रमुख हस्ताक्षर भी रहे हैं। 'नई कहानी आंदोलन' में उनका विशेष योगदान यह रहा है कि वे स्वातंत्र्योत्तर समाज की बदलती हुई संवेदना पर अपनी पैनी नजर रखते हुए यथार्थ के धरातल पर सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसीलिए उनकी कहानियों में अनुभव की प्रामाणिकता और परिवेश की विश्वसनीयता नजर आती है। वे अपनी कहानियों में पात्रों और स्थान का बेहद उम्दा प्रयोग करते हैं। सामान्य-सी लगने वाली घटनाओं को वे इस प्रकार यथार्थ रूप में पिरोते हैं कि वह कहानी विशिष्ट हो जाती है। कहानी को पढ़ते हुए निजी अनुभव ही मालूम पड़ता है। ऐसा लगता है जैसे वह स्वयं के आस-पास की कहानी हो। उनके पात्र उन तमाम रूढ़ियों, परंपराओं से भिड़ते रहते हैं। उनके अंदर विद्रोह करने और सतत संघर्षरत रहने की प्रवृत्ति कोई आरोपित न होकर उस पात्र का स्वयं का विकास होता है, जो जीवन की प्रत्येक स्थितियों में स्वयं को उसी रूप में उभारता है। उनका नारी पात्र निर्जीव नारी के रूप में न आकर यथार्थ रूप में ही प्रस्तुत होता है, जिसमें उसकी सफलता और असफलता दोनों अपने वास्तविक रूप में ही परिलक्षित होती है। यह यथार्थ रूप सहज ही पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित करता है।

कितना अजीब लगता है यह देख-सुनकर कि आज भी समाज में पुरुष वर्ग स्त्रियों के प्रति कितना संवेदनहीन है। हालाँकि वर्तमान समय में हम तेजी से विकास की ओर आगे बढ़ रहे हैं, परंतु हमारी सोच, हमारा नजरिया अभी भी पुराने जमाने की बैल गाड़ी की तरह ही है। हम परंपराओं के बंधन से बाहर नहीं निकलना चाहते हैं। जबकि मोहन राकेश अपनी कहानियों में उस परंपरा को तोड़ते हैं, जो मनुष्य हित में नहीं है। समाज में कई संकीर्ण मानसिकता वाले व्यक्ति रहते हैं, जो जहाँ भी रहते हैं वहाँ के आस-पास के माहौल को असहज बना देते हैं, जहाँ सभ्य समाज सहज जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। बहुत दु:ख होता है यह देखकर जब फटे हाल में कोई भिखारिन या कोई असहाय स्त्री सड़क के किनारे अपने बिलखते बच्चे को दूध पिलाती है, उस वक्तत कुछ तथाकथित सभ्य पुरुष उसके अधखुले अंगों को

ललचाई हुई नजरों से निहारते रहते हैं, बस में या कॉलेज की किसी कक्षा में कुरूप लड़की का मजाक उड़ाया जाता है। उसके साथ उठने-बैठने से परहेज किया जाता है। उससे बात करने पर भी शर्मिंदगी महसूस करते हैं। मानो उसकी कुरूपता उसके लिए अभिशाप हो। कहने को तो हम 21वीं सदी में जी रहे हैं। हमारे खाने-पीने, उठने-बैठने, चलने-फिरने सबका तौर-तरीका बदल चुका है, परंतु आज भी स्त्रियों को लेकर सोच में कोई भारी परिवर्तन नहीं आया है। उसके रूप-रंग को लेकर भी सोच नहीं बदली है। यह सुनकर इतना दु:ख नहीं होता कि विदेशी मुल्क के लोग हम भारतीयों को 'काले' कहकर संबोधित करते हैं, जितना कि हमारे यहाँ ही काले-गोरे, सुंदर-कुरूप आदि को लेकर तरह-तरह की सोच रखते हैं, विशेषकर स्त्री को लेकर। लड़का कितना भी कुरूप क्यों न हो, अपनी पत्नी के रूप में एक सुंदर स्त्री की ही चाह रखता है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि मोहन राकेश की चर्चित कहानी 'मिस पाल' कई अर्थों में बहुत महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील है। आधुनिकता एवं बाजारवाद के परिणामस्वरूप बदलती हुई सामाजिक संवेदना व्यक्ति को एक ऐसे मार्ग पर ले जा रही है, जिस पर जीवन जीने का अर्थ केवल विडंबनाबोध रह गया है। इस बदलते हुए समाज में महिलाओं की स्थिति शोचनीय एवं दयनीय है। खासकर अकेली औरतों के प्रति व्यक्ति की अलग कुंठित सोच देखने को मिलती है। इस कहानी की पात्र मिस पाल ऐसा ही चरित्र बनकर सामने आती हैं, जिनके लिए 'आधुनिक समाज' का चरित्र बहुत बदला हुआ दिखाई देता है। इस कहानी के संदर्भ में नंद किशोर नवल जी ने कहा है कि- *''हिंदी की स्त्री-केंद्रित पहली कहानी गैंग्रीन है और दूसरी गुल की बन्नों और तीसरी कहानी मोहन राकेश की मिस पाल। 'गैंग्रीन' की मालती और 'मिस पाल' की मिस पाल दोनों ही निम्न मध्य वर्गीय चरित्र हैं। लेकिन दोनों के सामाजिक और मानसिक परिवेश में काफी अंतर है। मालती एक घरेलू औरत है, जिसमें अपने तिल-तिल कर छीजते जाते जीवन का कोई एहसास नहीं है। कहना चाहिए कि उसके व्यक्तित्व की चेतना सिरे से लुप्त है। दूसरी तरफ मिस पाल हैं, जिनका घर नहीं बसा है, बल्कि जिनकी मूल समस्या यही है कि वह अपने व्यक्तित्व के प्रति शुरू से ही इतनी सचेत हैं कि अपने परिवेश में मिसफिट हैं। संभवत: इसी कारण उनका परिवेश उनके प्रतिकूल हो जाता है। परिणामत: वह अकेलेपन का जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं।*[1]

इस तरह से यदि स्त्री-विमर्श की दृष्टि से 'मिस पाल' कहानी का विश्लेषण किया जाए तो यह औरत के प्रति लगातार अमानवीय होती जा रही दुनिया को दिखाने का प्रयास करती है। ऐसा सदैव कहा जाता है कि यह दुनिया पुरुषों की है, जहाँ औरत जो चाहे और जैसे चाहे नहीं रह सकती। यह कहानी इस सामाजिक-यथार्थ को प्रस्तुत करती है, जहाँ एक कुरूप दिखने वाली औरत की स्थिति बदतर है।

मोहन राकेश की 'मिस पाल' कहानी एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जिसे अपने रूप-रंग के कारण सामाजिक-उपहास और उपेक्षा का पात्र बनना पड़ता है। उसका मरदाना डील-डौल चेहरा तथा उसकी कुरूपता आस-पास के लोगों के लिए हास्य-व्यंग्य का विषय है। इस कारण उसके मन में कुंठा घर कर जाती है। गहरी निराशा में जी रही मिस पाल को प्रति क्षण जीवन की व्यर्थता का बोध सालता रहता है। 'मिस पाल' कहानी के विषय में गोपाल राय लिखते हैं कि -*''मिस पाल पुरुषसत्ता प्रधान व्यवस्था में अपनी कुरूपता से उत्पन्न हीनता भाव से ग्रस्त, पर संवेदनशील औरत के अकेलेपन की पीड़ा की कहानी है। इस कहानी में आधुनिक कामकाजी लड़की की 'एकांत विडंबना' का, जो निराशा की सी बिंदु पर पहुँच गई है कि अब उसके जीने का कोई अर्थ नहीं रह गया है, बहुत बढ़िया चित्रण हुआ है।''*[2] कहते हैं कि स्त्री को समाज में अपना अस्तित्व बचाए रखने एवं प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए उसका शिक्षित एवं आत्मनिर्भर होना आवश्यक है-यह सच भी है, लेकिन इस कहानी की नायिका शिक्षित एवं आत्मनिर्भर दोनों ही है, फिर भी उसके अपने ही दफ्तर में सहकर्मियों द्वारा उसके रूप-रंग के ऊपर की गई छींटाकशी उसके अंदर गहरा अवसाद और झुंझलाहट पैदा कर देता है। लड़की होने का दंश उसे अपने घर से लेकर बाहर तक झेलना पड़ता है। घर में भी उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। मिस पाल

संगीत सीखना चाहती थी, लेकिन उसके पिता चूँकि पुरुष प्रधान समाज के हैं, इस लिहाज से उसे ये सब करने की इजाजत नहीं देते हैं। मजबूरन मिस पाल को घर छोड़ना पड़ता है। *''माँ को मेरा घर में होना ही बुरा लगता था। पिताजी को मेरे संगीत सीखने से चिढ़ थी। वे कहा करते थे कि मेरा घर, घर है, कोई रंडीखाना नहीं।''*[3] घर से निकल कर वह बाहर आत्मनिर्भर होकर जीवन यापन करना चाहती है और दफ्तर ज्वाइन भी करती है, परंतु वहाँ भी पितृसत्तात्मक समाज उसे रहने नहीं देता है। यही सब कारण उसे कभी भी सहज जीवन व्यतीत करने नहीं देता है। अपनी कुरूपता और भद्देपन को वह जितना छिपाने की कोशिश करती है, उतने ही तानों के बाण और तीखे हो जाते हैं। *''क्या बात है मिस पाल आज रंग बहोत निखर रहा है...मिस पाल इस नयी कमीज का डिजाईन बहुत अच्छा है आज तो गजब ढाह रही हो तुम''* [4] हमेशा उस पर व्यंग्य कसे जाते हैं। प्रतिदिन का ताना सुनकर मिस पाल का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। अपनी कुरूपता के कारण ही वह अपने आपको घर से दफ्तर और दफ्तर से घर तक ही सीमित रखती हैं। उसके साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार के कारण ही जब वह शाम को अपने टेबल पर से उठती हैं तो उसे ऐसा लगता है मानो किसी जेल से छुटकारा मिली हो। तभी तो वह कहती हैं कि दफ्तर के आठ घंटे वह बर्बाद करती हैं। मिस पाल उसी समाज से आई हैं, जहाँ स्त्रियों को छेड़ने में पुरुषों को बड़ा मजा आता है। लेकिन कभी तथाकथित पुरुष यह समझने की कोशिश नहीं करते कि उनकी इस हरकत का उस स्त्री पर क्या प्रभाव पड़ता है। मिस पाल एक आधुनिक लड़की है, जो खुले आसमान में विचरना चाहती है, चित्र बनाना चाहती है, लेकिन एक अकेली लड़की के लिए यह संभव नहीं है। मोहन राकेश यहाँ समाज में स्त्रियों की सुरक्षा के ऊपर प्रश्न चिह्न खड़ा करते नजर आते हैं। मिस पाल अपनी असुरक्षा की भावना को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि *''मैंने आज तक कितनी-कितनी मुश्किल से अपनी अम्...अ...पवित्रता को बचाया है, यह मैं ही जानती हूँ तुम सोच सकते हो कि एक अकेली लड़की के लिए यह कितना मुश्किल होता है। मेरा लाहौर की तरफ घूमने को मन था; वहाँ की कल तस्वीर बनाना चाहती थी, मगर मैं वहाँ नहीं गयी, क्योंकि मैं सोचती थी कि मर्द की पशु-शक्ति के सामने अम्...अ... मैं अकेली क्या कर सकूँगी।''* [5] हमारे तथाकथित सभ्य समाज में पुरुषों द्वारा छेड़छाड़ के मामले में पुरुषों को अपराधी मानने के बजाए स्त्रियों को ही दोषी ठहराया जाता है। इस संदर्भ में सहज ही निर्भया कांड हमारे जेहन में कौंध जाता है। उनके द्वारा यह भद्दी टिपण्णी की जाती है कि लड़की के पहनावे में ही कोई कमी रही होगी। लड़की यदि दफ्तर से रात को घर पर थोड़ी देर से पहुँचे तो उससे हजारों सवाल पूछे जाते हैं, किंतु दूसरी ओर लड़का इन सब सवालों से बरी है। समाज के उन ठेकेदारों से यह पूछना चाहिए कि स्त्री-पुरुष को लेकर उनके मन में यह दोहरे मापदंड क्यों हैं? इन्ही दोहरे मापदंडो की वजह से आए दिन स्त्रियाँ हादसे का शिकार होती हैं और पुरुषों के मनोरंजन का साधन बनती हैं। ऐसे ही लोगों की वजह से मिस पाल अपने को नितांत अकेली महसूस करती हैं। वह जिस दफ्तर में काम करती हैं, वहाँ के लोग इतने वाहियात और घटिया मानसिकता के हैं कि वहाँ एक प्रगतिशील स्त्री रह नहीं सकती। मिस पाल जिस दफ्तर में काम करती हैं, वहाँ के सहकर्मी पितृसत्तात्मक समाज की उपज हैं। उनकी नजरों में स्त्रियों के मान-सम्मान की कोई जगह नहीं है। ये लोग इतने कुंठित और जाहिल मानसिकता के हैं, जो छोटी-छोटी बातों पर लड़ा करते हैं और एक-दूसरे को चैन से रहने नहीं देते हैं। मिस पाल ऐसे माहौल में रहने में असमर्थता प्रकट करते हुए कहती है कि *''ये लोग इतने ओछे और बेईमान हैं, इतनी छोटी और कमिनी बातें करते हैं कि मेरा इनके बीच काम करते हर वक्त दम घुटता रहता है। जाने क्यों ये लोग इतनी छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे से लड़ते हैं और अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए एक-दूसरे को कुचलने की कोशिश करते रहते हैं।''*[6]

दरअसल, पुरुषवादी मानसिकता इस बात को हजम नहीं कर सकती कि कोई स्त्री उनके समक्ष बैठ सके। यही सोच उन्हें आधुनिक स्त्री को अपनाने में बाधा उत्पन्न करती है। मिस पाल एक प्रगतिशील महिला हैं, जो स्वतंत्र रहकर जीना चाहती हैं, परंतु समाज के कुंठित

लोग उन्हें इसकी अनुमति नहीं दे पाते हैं। तभी तो जब बीमार रंजित को अस्पताल में मिस पाल खाना पहुँचाती हैं, तब लोगों में कई तरह की बातें अनायास ही फैल जाती हैं। मिस पाल अपनी यह वेदना रंजीत से कहती हैं, *''तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारे लिए सुबह दूध और सब्जियाँ लेकर जाती रही हूँ, उसे लेकर भी ये लोग क्या-क्या बातें करते रहे हैं। जो लोग अच्छे-से-अच्छे काम का ऐसा कमीना मतलब लेते हों उनके बीच आदमी रह ही कैसे सकता है। मैंने यह सब बहुत दिन सह लिया है, अब और मुझसे सहा नहीं जाता।''*[7] मिस पाल की यह वेदना केवल उन तक ही सीमित नहीं है, वह पूरी आधी आबादी की वेदना है।

मिस पाल पर हो रहे मानसिक अत्याचार उन्हें पूरी तरह तोड़ देता है। उनके जीवन का एकाकीपन और व्यर्थता का बोध उन्हें इस हद तक निराश और हताश बना देता है कि जिंदगी के रोजमर्रा के काम जिनसे जीवन सुंदर बनता है, उनसे भी उन्हें भयंकर ऊब होने लगती है। उनके जीवन की संपूर्ण सकारात्मकता नकारात्मकता में तब्दील हो जाती है। अंततः उन्हें वह नौकरी छोड़नी पड़ती है तथा शांति की तलाश में वह रायसन चली जाती हैं। परंतु वहाँ भी उनकी बदकिस्मती पीछा नहीं छोड़ती है। उन्हें रंजीत से यह कहना पड़ता है कि- *''मै बहुत बदकिस्मत हूँ रंजीत, हर लिहाज से मैं बहुत ही बदकिस्मत हूँ''*[8] मिस पाल की मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है। वह घुटन भरी जिंदगी जी रही होती हैं। उनके घर में चारों तरफ सामान का बिखराव, मैले कपड़ों का ढेर, किसी भी सामान का उसके उचित स्थान पर न होना वातावरण का ऐसा चित्रण मिस पाल की मनःस्थिति को और स्पष्ट रूप से उकेर देता है। सिर्फ घर की अस्त-व्यस्तता ही नहीं, मिस पाल का स्वयं के प्रति भी उदासीन रवैया गहन संवेदना जगा जाता है। हफ्ते भर के लिए बनाकर रखी गई सब्जी और रोटी जैसे-तैसे उनको जिंदा रखने का काम करती है। उनके जीवन का सारा उत्साह मानो झर चुका है। उनकी कुरूपता के कारण जो उसके मन में कुंठा भरी है, वह उनके द्वारा बनाए गए चित्रों में भी झलकती है। मिस पाल की यह कुंठा उनकी खुद की नहीं है, बल्कि समाज द्वारा उनको उपहार स्वरूप मिली है। जीवन की निरर्थकता में भी सार्थकता को तलाशते हुए वह रंजीत के प्रति आकर्षित होती हैं, लेकिन रंजीत की ठंडी प्रतिक्रिया उन्हें और गहरी रिक्तता और अवसाद में डाल देती है। कहानी के अंत तक आते-आते हम देखते हैं कि मिस पाल की आहत भावनाएँ उन्हें रंजीत से भी जुड़ने नहीं देती। रंजीत की विदाई के समय स्कूली बच्चों के लिए उनका तमाशबीन होना और उसका 'मर्द है कि औरत' के विषय में भ्रम मिस पाल की पीड़ा और निराशा को और घनीभूत कर देता है। छिप-छिप कर देखते और आपस में खुसर-फुसर करते बच्चों को पास आकार उसे चुनौतीपूर्ण निमंत्रण देना मानो पूरे समाज के लिए है कि वो ऐसी हैं। अंततः बस में जाते रंजीत को नम आँखों से विदाई देती मिस पाल की मानो यही नियति रह जाती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मोहन राकेश अपनी कहानी 'मिस पाल' में एक ऐसे परिवेश को दिखाते हैं, जहाँ कामकाजी महिलाओं के साथ मानसिक शोषण होता है। शारीरिक ढाँचे और रूप-रंग को लेकर एक सामान्य महिला को अवसादपूर्ण जीवन जीने को बाध्य हो जाना पड़ता है। लड़की यदि सुंदर हो तो बलात्कार का शिकार और यदि कुरूप हो तो हास्य-परिहास का शिकार। पितृसत्तात्मक विचाराधीन समाज में लड़कियाँ सुरक्षित एवं स्वस्थ जीवन जीने के लिए अनेकों संघर्ष करती हैं। किसी भी सूरत में वह सामान्य जीवन यापन नहीं कर पाती हैं। मोहन राकेश भले ही पुरुष रचनाकार हैं, उनके पास वह अनुभव नहीं है, जो एक महिला रचनाकार के पास हो सकती है फिर भी उन्होंने औरत की उस पीड़ा को बखूबी समझा है और उसे अपनी रचना में यथार्थ रूप देने की कोशिश की है। यह कोशिश लगातार होती रहनी चाहिए, जिससे समाज में स्त्रियों को लेकर पुरुषों में संवेदनशीलता का संचार हो सके और मानवीयता का विकास हो सके। इस समाज में प्रत्येक स्त्री को आत्मसम्मान प्राप्त होने का अधिकार है। उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना पड़ेगा, पुरुषों के द्वारा हो रहे आत्याचारों के विरूद्ध अपना स्वर बुलंद करना पड़ेगा। अगर अत्याचार करना

पाप है तो उसे चुपचाप सहना भी कम बड़ा अपराध नहीं। 'मिस पाल' कहानी की नायिका मिस पाल अत्याचार को सहती है, जिसके कारण उसे दफ्तर से पलायन करना पड़ता है। अगर वह विरोध करती तो उसे अपना दफ्तर छोड़कर कहीं और जाना नहीं पड़ता। वस्तुत: इस कहानी में संवेदनहीन होते जा रहे समाज में सौंदर्य संबंधी स्त्री की पीड़ा और उसके एकाकीपन को सामने लाने का प्रयास किया गया है। निस्संदेह इस प्रयास में मोहन राकेश को अद्वितीय सफलता हासिल हुई है। ❑

संदर्भ सूची :

1. सं. नंदकिशोर, नवल, हिंदी की कालजयी कहानियाँ, पृष्ठ – 17
2. गोपाल, राय, हिंदी कहानी का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, 2019, नई दिल्ली, पृष्ठ – 73
3. सं. मोहन, गुप्त, प्रतिनिधि कहानियाँ मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, 2019, नई दिल्ली, पृष्ठ – 27
4. वही, पृष्ठ – 12
5. वही, पृष्ठ – 28
6. वही, पृष्ठ – 11
7. वही, पृष्ठ – 14
8. वही, पृष्ठ – 27

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

डॉ. नागेश पांडेय 'संजय' के काव्य संग्रह 'रोचक बाल कविताएँ' में बाल मनोभावों का चित्रण

डॉ. मो. सहिदुल इस्लाम

सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
हिंदी विभाग, एस.आर.एम.आई.एस.टी.
कट्टनकुलथुर, चेन्नई
तमिलनाडु- 603203
9176813982
shwahidulislam.md@gmail.com

सारांश :

साहित्य की एक प्रमुख विधा है-बाल साहित्य। वर्तमान समय में अन्य साहित्य की तरह बाल साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान है। बालक भगवान का रूप होते हैं। उनका मन कोमल, निष्पक्ष, कल्पनाप्रिय और जिज्ञासावादी होता है। कभी-कभी उनकी जिज्ञासाएँ बड़ों को भी चकित कर देती हैं। उनके मन में कोई चालाकीपन नहीं होता है। बालक हमेशा सच बोलते हैं। इसीलिए बालकों को निष्पाप और भगवान का रूप माना जाता है। बालक के सामने अगर बड़े कोई गलत काम करते हैं तो बालक उसका विरोध करते हैं। उनके मन में भेदभाव की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। बालक का मन हमेशा सहज-सरल होता है। अगर घर में कोई उत्सव-पर्व होता है, नई चीजें खरीदी जाती हैं, तब विशेष रूप से बालकों में खुशियों का ठिकाना नहीं रहता है। उस समय उनके बाल मनोभावों को हम सुंदर रूप से परख सकते हैं।

मूल शब्द : जिज्ञासा, कल्पना, निष्पक्षता, सहजता, बाल मनोभाव, रोचकता।

भूमिका :

'रोचक बाल कविताएँ' डॉ. नागेश पांडेय 'संजय' द्वारा लिखित एक प्रमुख बाल काव्य संग्रह है। प्रस्तुत काव्य संग्रह के माध्यम से उन्होंने बाल मनोभावों का सुंदर रूप से चित्रण किया है। सहज- सरल भाषा का प्रयोग उनकी प्रमुख विशेषता है। प्रस्तुत काव्य संग्रह में कवि नागेश जी ने विभिन्न विषयों के माध्यम से बालकों के मन की भावनाओं को परिस्थितियों के अनुसार कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। वर्तमान के इस भागदौड़ की जिंदगी में माता-पिता और बच्चों में दूरियाँ बढ़ गई हैं। अनेक माता-पिता कर्म जीवन की व्यस्तता के कारण अपने बच्चों से दूर हो गए हैं। इसका बुरा असर बच्चों में पड़ने लगा है।

बाल मनोभाव :

बाल मनोभाव का अर्थ है बालक के अनुभव, विचार, मन की भावना तथा उसके मन की अभिव्यक्ति। बालक के मन की अभिव्यक्ति ही बाल साहित्य का मूल उद्देश्य है। बाल साहित्यकार बालकों की अनुभूति एवं भावनाओं के साथ अधिक घुल-मिल जाने के कारण बाल साहित्य सृजन में सफल हो पाते हैं। प्रस्तुत काव्य संग्रह में कवि नागेश पांडेय 'संजय' जी ने विभिन्न विषयों में बालकों के मन में उत्पन्न विचार एवं भावों का चित्रण किया है।

साधारणत: बच्चों के स्कूल जाते समय जब ड्राइवर गाड़ी तेज से चलाता है,

तब बच्चे घबरा जाते हैं। वे असहज महसूस करते हैं, क्योंकि गाड़ी तेज चलाने से दुर्घटना हो सकती है। उनके जीवन का नुकसान हो सकता है। इसीलिए बच्चे ड्राइवर को गाड़ी तेज से चलाने के लिए कहते हैं कि –

''अरे! ड्राइवर अंकल, थोड़ा
धीरे चलिए न।
यह बच्चों की बस है, कोई एयरप्लेन नहीं।
इतनी तेज चलने पर क्या,
कोई बैन नहीं?''[1]

स्कूल जाते समय गाड़ी तेज चलाने से उनके दिलों की धड़कन तेज हो जाती है। अचानक ड्राइवर के गाड़ी का ब्रेक लगाने से बच्चे टकरा जाते हैं। गाड़ी तेज चलाने से बच्चे की स्थिति किस तरह होती है, उसका चित्रण करते हुए कवि कहते हैं कि–

''जब जल्दी में ब्रेक लगाते,
हम सब जाते हिल।
कोई बार तो टकरा जाते,
धुक- धुक करता दिल।''[2]

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में बच्चों में पढ़ाई के साथ-साथ किताब का बोझ अधिक हो गया है। इतनी कम उम्र में उन्हें किताबों का भारी बैग पीठ पर ढोकर स्कूल ले जाना पड़ता है। भारी बैग को ढो न पाने के कारण बच्चों को कभी-कभी अपने माता अथवा पिता का भी सहारा लेना पड़ता है। बच्चे स्कूल जाते समय काफी परेशान हो जाते हैं। कभी-कभी उन्हें होमवर्क करने में काफी परेशानी का सामना करना पड़ता है। एक तो कम उम्र तथा दूसरी ओर पढ़ाई के बोझ के कारण कभी-कभी स्कूल छूट जाता है। वह स्कूल न जाकर घर में आराम करना चाहते हैं। कवि 'बच्चों का कोर्स अगर कुछ कम होता है' कविता में अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि–

''क्लास वर्क ही है कितना!
उस पर होमवर्क इतना।
देर रात तक कम करें,
बोलो कब आराम करें?''[3]

आजकल के अभिभावक अपने बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास से अधिक अंक लाने पर ज्यादा जोर देते हैं। बच्चे अपने अभिभावक से विरेध करने लगते हैं। पढ़ाई के बोझ के कारण ज्यादा क्लास वर्क तथा होमवर्क के कारण दबाव में आकर उससे निजात पाने के लिए अपने पैरेंट्स से कह भी देते हैं कि काश अगर कोर्स कम होता तो उन्हें इतना होमवर्क करना न पड़ता। बच्चे किताब की पढ़ाई के बोझ में खेलकूद को भूल गए। बच्चे कहते हैं कि–

''खेलकूद की बात कहाँ,
खुशियों की सौगात कहाँ
बातें केवल नंबर की,
यही कहानी हर घर की।''[4]

बच्चे हमेशा अपनी खुशियों के बहाने खोजते रहते हैं। यह उनकी मूल प्रवृत्ति है। विशेष रूप से घर में नई कार आने पर बच्चों में अपार खुशियाँ होती हैं। अपनी खुशियों के कारण वह उछलने-कूदने लग जाते हैं। बच्चे घर में नई कार आने पर किस तरह आनंदित होते हैं, कवि ने 'नई कार आई' कविता में चित्रण किया है। कवि कहते हैं कि–

''दादी ने आरती उतारी,
झट से भोग लगाया।
रखा थाल में फिर प्रसाद को
घर-घर में बंटवाया।''[5]

जब अभिभावक नई गाड़ी खरीद कर लाते हैं, तब घर में अन्य लोगों का भी आगमन होता है। उस समय बच्चों में ज्यादा चहल-पहल होती है। नई गाड़ी में बैठने के लिए काफी उत्सुकता होती है। उनका मन गाड़ी चलाने के लिए मचलता है। जब आस-पड़ोस के लोग भी नई गाड़ी देखने आते हैं, तब उन्हें खिलाने के लिए गरम समोसे, इडली, डोसे और लड्डू लाने की बात करते हैं। बच्चों के मनोभावों को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि–

''मन करता है तनकर बैठूँ
मैं भी उसे चलाऊँ।
गरम समोसे, इडली डोसे,
लड्डू पेड़े लाऊँ।''[6]

परिवार में जब दादा-दादी रहते हैं, तब बच्चों की खुशियों के ठिकाने नहीं होते हैं। जब बच्चों को उनसे

प्यार मिलता है, तब और अधिक पुलकित हो जाते हैं। कवि 'परिवार' नामक कविता में बच्चों के परिवार के प्रति की प्रेम की भावना है, उसका सुंदर रूप से चित्रण किया है। कवि कहते हैं कि–

''दादा दादी प्यार लुटाते,
नयी कहानी रोज सुनाते।
मम्मी-पापा जग से न्यारे गया ,
कितने अच्छे, कितने प्यारे
छोटा-सा भैया तो अपना,
है सबकी आंखों का तारा।
ताऊ भोले, ताई भोली,
चाचा हैं मिश्री की गोली।''[7]

घर में जब छोटों पर बड़े अनुशासन करते हैं, तब छोटे अक्सर बड़ों के अनुशासन से नाराज हो जाते हैं। कभी-कभी वह उनके खिलाफ विद्रोह कर बैठते हैं। यह हर घर की बात है। जब दीदी छोटे भाई पर किसी भी काम में या बात में अनुशासन करने लगती है, तब छोटा भाई दीदी के प्रति क्रोधित हो जाता है। छोटा भाई अपनी दीदी को चेतावनी देते हुए कहता है कि–

''माना तुम हो बड़ी और तुम
होशियार हो, मान रहा हूँ।
समझदार हो, जानकार हो,
मैं अच्छे से जान रहा हूँ।
लेकिन इसका रोब जताना,
अच्छी बात नहीं है दीदी।''[8]

परिवार में जब दीदी अच्छे कामों के लिए छोटे भाई को हिदायत देती है और खुद जब उसका अनुपालन नहीं करती है, तब छोटे भाई दीदी को हिदायत देते हुए कहता है कि–

''ऐसा करो, करो मत वैसा,
मुझको तो बतलाती हो जी।
खुद लेटे-लेटे पढ़ती हो
आलस खूब दिखती हो जी।
कभी न मां का हाथ बंटाना,
अच्छी बात नहीं है दीदी।''[9]

साधारणत: बच्चे जब बीमार पड़ते हैं, तब वह बहुत ही जिद्दी हो जाते हैं। वह दवाई लेने में आनाकानी करते हैं। माता-पिता उसे बहुत ही लाड़-प्यार से दवाई खिलाने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन बच्चे दवाई से ज्यादा चटपटा खाने की इच्छा जताते हैं। बच्चा अपनी मम्मी को आश्वासन देते हुए कहता है कि दवाई खाने के बाद अभी उसका बुखार कम हुआ है, अब वह बिना दवाई से ठीक हो जाएगा। सिर दर्द में वह बाम लगाता है। अब उसे कोई दवाई की आवश्यकता नहीं है। दवाई की जगह चटपटा खाने से उसका बुखार ठीक हो जाएगा। 'प्लीज! दवाई नहीं पिलाओ' कविता में कवि किस तरह बच्चे दवाई लेने के बदले चटपटा खाने के लिए जिद करते हैं, देखिए–

''मम्मी! बात मान भी जाओ,
प्लीज! दवाई नहीं पिलाओ।
अब बुखार तो बचा तनिक-सा,
छूमंतर हो गया जुकाम।
आज नहीं सर दर्द हुआ जी
लगा लिया था मैंने बाम।
अब तो कुछ चटपटा खिलाओ
प्लीज! दवाई नहीं पिलाओ।''[10]

कभी-कभी बच्चे बीमार पड़ने पर खुद ही अपने माता-पिता से जल्दी से डॉक्टर बुलाने की जिद करते हैं। बालक डॉक्टर से पूछता है कि कौन-सी दवाई लेने बीमारी ठीक होगी। बालक डॉक्टर से कहता है कि वह कम खाता है, फिर भी उसका वजन बढ़ जाता है। जब वह सुस्त पड़ जाता है, तब वह अति शीघ्र ठीक होने के लिए बेचैन हो जाता है। बालक खुद ही अपनी तबीयत के बारे में डॉक्टर को बताते हुए कहता है–

''मुझको भूख नहीं लगती,
जल्दी से भर जाता पेट।
थोड़ा-सा ही खाता हूँ मैं,
फिर भी बढ़ रहा वेट।
तबीयत अलसाई रहती है,
सुस्ती-सी छायी रहती है।
मेरे लिए दवा कोई,
चुनो डॉक्टर अंकल जी।
सुनो डॉक्टर अंकल जी।''[11]

फिर गर्मी के मौसम में अधिक मात्रा में गर्मी पड़ने पर आम जनजीवन पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

जीव-जानवर गरमी के कारण बेचैन हो जाते हैं। इसके साथ-साथ पेड़-पौधे भी सूख जाते हैं। लोग गर्मी से राहत पाने के लिए बारिश का बेसब्री से इंतजार करते हैं ताकि बारिश आने पर राहत मिले। बच्चे भी गरमी से प्रभावित होते हैं। बच्चे बादल आने का इंतजार करते हुए कहते हैं-

''आओ, आओ, जल्दी आओ बादल जी,
खूब झमाझम जल बरसाओ बादल जी।
गर्मी से सब की ही हालत खस्ता है,
थोड़ी राहत अब दिलवाओ बादल जी।
आम डाल पर लटके-लटके सूख रहे,
बरसो, उनमें रसभर जाओ बाद जी।''[12]

किसान बहुत ही मेहनत करके खेतों में अनाज उगाते हैं। किसान के उगाए हुए अनाज को खाकर हम जीवित रहते हैं। किसान गर्मी, जाड़ा, वर्षा किसी भी प्रतिकूल परिस्थितियों में निस्वार्थ भाव से श्रमदान कर हमें पालते हैं। किसान खुद भूखे रहकर जग की भूख मिटाते हैं। इसीलिए हमें उनका सम्मान करना चाहिए। बालक किसानों के श्रमदान को देखकर कहते हैं :-

''खून पसीना एक बनाकर,
धरती पर सोना उपजाते।
खुद भूखे नंगे रहकर भी,
सारे जग की भूख मिटाते।
पर सेवा में लीन कभी भी,
करें न अपना ध्यान किसान।''[13]

किसान अथक श्रमदान कर अनाज उगाकर घर में लेकर आते हैं। अनाज को हमें बर्बाद नहीं करना चाहिए। उसे सुरक्षित रूप से बचत करना चाहिए। अनाज में एक-एक दाने की कीमत है। इसीलिए खाना खाते समय अन्न को जाया नहीं करना चाहिए। खाना खाते समय हमें जितनी आवश्यकता पड़ती है, उतना ही खाना थाली में लेना चाहिए। जरूरत पड़े तो दुबारा भी लेकर खाना चाहिए। मगर इसे किसी भी कीमत पर फेंकना नहीं चाहिए। क्योंकि अनाज मनुष्य का जीवन धन है। इस जीवन धन रूपी अन्न की अहमियत समझ कर इसके दुरुपयोग से हमें बचना चाहिए। बालक किसानों के श्रमदान को देखते हुए अनावश्यक अनाज तथा अन्न को जाया न करने के लिए कहते हैं :-

''कितना श्रम करते किसान हैं,
तब फसलें इठलातीं।
खेतों में यह अन्न उगाना,
सहज नहीं बतलातीं।
एक-एक दाने का दिल से,
मोल लगाओ जी।
अन्न हमारा जीवन धन है,
खूब समझ ले भाई।
सबको मिले पेट भर भोजन,
रहे सदा भरपाई।''[14]

पर्यावरण का संरक्षण करने के लिए हमें पर्याप्त पैमाने पर पेड़-पौधे लगाने चाहिए, तभी तो आसपास का वातावरण शुद्ध एवं निर्मल होगा। पेड़ रहेंगे तो हम रहेंगे। अत: हमें अनावश्यक पेड़-पौधे की कटाई नहीं करनी चाहिए। पेड़ अगर धरती पर नहीं होंगे तो सर..सर..हवा कहाँ से मिलेगी ? ऑक्सीजन कहाँ से मिलेगा ? पक्षी का निवास स्थान कहाँ होगा ? पेड़ प्रकृति का गहना है। पेड़-पौधे मानव जीनव के लिए बड़े उपहार हैं। धरती का श्रृंगार हैं। हमें पेड़-पौधे काटने के बजाय लगाने चाहिए। बालक पेड़ लगाने के संबंध में कहता हैं :-

''पेड़ लगाओ, पेड़ लगाओ जी,
धरती माँ को स्वर्ग बनाओ,
स्वर्ग बनाओ जी।
पेड़ हमारे जीवन दाता,
सच पूछो तो भाग्य विधाता।
पेड़ से है धरती माँ का
भैया जनम-जनम का नाता
इस नाते पर कभी कुल्हाड़ी
नहीं चलाओ जी।
पेड़ लगाओ.... ।''[15]

निष्कर्ष :

अत: निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि डॉ. नागेश पांडेय 'संजय' द्वारा लिखित 'रोचक बाल कविताएँ' में बाल मनोभाव का सुंदर चित्रण हुआ है। इसमें कवि ने अलग-अलग कविताओं के माध्यम से बाल मनोभाव

का बहुत ही सरलता से चित्रण किया है। कवि ने बालकों के मनोभावों को बारीकी से परखा, समझा और उसे पाठकों तक लाने में अथक प्रयास किया और इसमें सफल भी हुए। उनकी भाषा की सहजता ने काव्य को अधिक रोचक और उपादेय बनाई है। यह बाल साहित्य का एक सकारात्मक पहलू है। ❑

मूल ग्रंथ :

रोचक बाल कविताएँ- डॉ. नागेश पांडेय 'संजय'

1. धीरे चलिए, पृष्ठ सं. 17
2. धीरे चलिए, सं. 17
3. कोर्स अगर कुछ कम होता!, पृष्ठ सं. 18
4. कोर्स अगर कुछ कम होता!, पृष्ठ सं. 18,19
5. नयी कार आई, पृष्ठ सं. 15
6. नयी कार आई, पृष्ठ सं. 15
7. परिवार, पृष्ठ सं. 26
8. अच्छी बात नहीं है, दीदी, पृष्ठ सं. 40
9. अच्छी बात नहीं है, दीदी, पृष्ठ सं. 40
10. प्लीज ! दवाई नहीं पिलाओ, पृष्ठ सं. 64
11. सुनो डॉक्टर अंकल, पृष्ठ सं. 68
12. बादल जी, पृष्ठ सं. 72
13. किसान, पृष्ठ सं. 85
14. अन्न बचत, पृष्ठ सं. 86
15. पेड़ लगाओ, पृष्ठ सं. 94

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

तुलसीदास के अनन्य भक्त हिंदी प्रेमी डॉ. फादर कामिल बुल्के

प्रो. प्रदीप के. शर्मा

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्याल, गेंगटोक
8056067674

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के माध्यम से भारतीय समाज के सामने शिष्टाचार, शालीनता, नैतिकता, उच्च मानवीय मूल्य आदि लोक मर्यादाओं को प्रस्तुत किया है, जो मानस के हर एक पात्र में कूट-कूट कर भरी हुई है। सभी पात्र अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं, जो मानव समाज के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं। रामचरितमानस के कारण ही तुलसीदास का प्रभाव आज विश्वव्यापी हो रहा है।

हिंदी और भावी चुनौतियाँ :

अनेक देशों में उद्‌भट विद्वानों ने तुलसी साहित्य के अध्ययन एवं शोध के महत्वपूर्ण कार्य संपन्न कर चुके हैं। तुलसीदास पर प्रमुख रूप से चार विदेशी विद्वानों ने अद्भुत कार्य किया है। उनमें सर्व प्रथम विदेशी विद्वान थे डॉ. थुइजिपियो तेस्सीतोरी, जिन्होंने तुलसी के 'रामचरितमानस' पर शोथ कार्य किया। इटली के फ्लोरंस विश्वविद्यालय से सर्वप्रथम सन् 1911 में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' और 'वाल्मीकि रामायण' शीर्षक शोथ ग्रंथ लिखने के बाद भारतवासी हो गए। दूसरे विदेशी विद्वान थे रूस के वारान्निकोव। वारान्निकोव भारत आये ही नहीं, मगर रूस में रहते हुए ही साढ़े दस वर्षों तक तुलसी की रामायण का अध्ययन कर अपने अथक प्रयास के फलस्वरूप रूसी भाषा में इसका काव्यानुवाद किया। इस महान कार्य से प्रभावित होकर उन्हें रूस का सर्वोत्तम सम्मान 'आर्डर ऑफ लेनिन' प्रदान किया गया। तीसरे विदेशी विद्वान थे बेल्जीयम निवासी ईसाई पादरी रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्के जिन्हें तुलसी का आकर्षण अपनी मातृभूमि से भारत खींच लाया। चौथे विदेशी विद्वान हैं चीन के हिंदी विद्वान डॉ. डिन जियान जिन्होंने चीनी भाषा में इसका पद्यानुवाद भी किया है।

फादर कामिल बुल्के तुलसी साहित्य पर शोध कार्य संपन्न कर प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् 1949 में डी. फिल. की उपाधि प्राप्त की और स्थायी रूप से रांची-बिहार में बस गए। उनका निधन दिल्ली में सन् 1982 में हो गया।

कामिल बुल्के पर तुलसी का आकर्षण और रामचरित मानस का प्रभाव कैसे पड़ा इसे उन्हीं की आत्मोक्ति के माध्यम से समझना हमारे लिए प्रेरणादायक होगा।

''कविकुल शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास से मेरा प्रथम परिचय किस प्रकार हुआ, यह मुझे भलिभांति याद है। आज से लगभग छत्तीस वर्ष पहले मैं अपनी जन्मभूमि बेल्जीयम में विश्व साहित्य विषयक एक जर्मन ग्रंथ के पन्ने

पलट रहा था, कि मेरी आँखें रामचरित मानस की पक्तियाँ पढ़ने लगीं।

'धन्य जन्म जगतीतल तासु ।

पितहि प्रमोद चरित सुनि जासु ।।

चारि पदारथ करतल ताके।

प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके।।'

उस समय तो नागरी लिपि का काला अक्षर भैंस बराबर मेरे लिए लागू था। और मैं अवधी भाषा का एक शब्द भी नहीं समझता था। किंतु ग्रंथ के उद्धरणों का जर्मन अनुवाद दिया हुआ था, मैंने यह चौपाई पढ़ ली। मेरी हित्तंत्री के तार झंकृत हो उठे और मुझे मानो एक मधुर संगीत सुनाई देने लगा। क्या मुझे उस समय अदृष्ट का संकेत मिल रहा था कि मैं उस कवि के देश में जाकर बस जाऊँगा, उसकी रचना से मोहित होकर उसके साहित्य का विशेष अध्ययन करूँगा, उसी काव्य के कथानक पर अनुसंधान करूँगा। बाद में उस कवि की जयंती के अवसर पर उसका गुणगान करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो सकेगा? तो मैं यह सब नहीं जान सका, किंतु इतना अवश्य जानता हूँ कि मैं प्रभावित हुआ, उसी समय से मेरे हृदय में तुलसी के प्रति श्रद्धा का अनुभव हुआ था। सन् 1935 में भारत पहुँचकर मैंने उसी वर्ष हिंदी का अध्ययन आरंभ कर दिया था। खड़ीबोली का साधारण ज्ञान प्राप्त करने के बाद में तुलसी की रचनाएं पढ़ने लगा। उसके फलस्वरूप मुझ पर एक प्रकार का जादू हो गया। मैं आज तक तुलसी साहित्य का अनुशीलन करता रहता हूँ और ऐसा लगता है कि आजीवन करता रहूँगा। मेरे हृदय और मेरे मानस दोनों पर तुलसी की अमिट छाप लग गयी है। मेरा तो यहाँ आजीवन रहने का विचार है। किंतु किसी कारण से मुझे भारत छोड़ना पड़े तो मैं अवश्य ही रामचरितमानस की एक प्रति अपने साथ ले जाऊँगा।''

कुछ पाठकों के मन में संभवत: यह प्रश्न उठता होगा कि आखिर एक विदेशी ईसाई के लिए तुलसी की रचना में क्या आकर्षण हो सकता है। इस आकर्षण में व्यक्तिगत रुचि का समावेश भले ही हो, किंतु इसका वास्तविक कारण यह है कि तुलसी इतने महान हैं कि वह काल, देश और धर्म विशेष की सीमाएँ पार कर मानव मात्र को मुग्ध करने में समर्थ हैं।

एक तो परंपरागत कथा में मानव हृदय को द्रवित करने की जो क्षमता विद्यमान है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। दूसरे, तुलसी की रचना में कला और आदर्श का समन्वय है, वह इतना आकर्षक है कि कोई भी साहित्य प्रेमी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। तीसरे, तुलसी की रचनाओं में जो सगुण दास्यभक्ति का मार्ग प्रतिपादित किया गया है, उसे जीते जागते नैतिक आदर्श नितांत स्वाभाविक एवं सरल भाषा में नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं, इन सब बातों से जो व्यक्ति आकर्षित नहीं होता, उसे मैं धार्मिक और ईश्वर का भक्त कहलाने योग्य नहीं मानता।' संत विनोबा भावे ने तो यहाँ तक कहा कि महात्मा बुद्ध के बाद हिंदुस्तान में इतना महान कोई नहीं। बिल्कुल आम लोगों के साथ एक रूप होनेवाला, अत्यंत क्षमाशील, परम नम्र, अंदर से ही अपने को माननेवाला, अलंकारों के तौर पर नहीं, पर अपने को पापी समझने वाला पापियों में शिरोमणि हूँ- इसी तरह तुलसीदास अपने को पतितों का प्रतिनिधि मानते थे।

इस प्रकार दूर देश बेल्जीयम से आकर भारत भूमि को अपनी मातृभूमि बनानेवाले और कठिन जेसुएट धर्मसंघ के वीतरागी संन्यासी थे फादर कामिल बुल्के। वे अवश्य विद्वान हैं, परंतु विद्वत्ता उनपर भार नहीं बनी। यह भी मानव जीवन का एक दम है जो दूसरों में आत्मीयता जगाती है। अपने धर्म के प्रति एकांत समर्पित तथा निष्ठावान होते हुए भी दूसरों के धर्मों का न खंडन-मंडन करते हैं, न उनके प्रति अनादर प्रदर्शित करते हैं।

प्रयाग विश्वविद्यालय से उन्होंने हिंदी में एम.ए. किया और रामकथा पर शोध कार्य करके डी. फिल. की उपाधि प्राप्त की, उसकी कथा भी बड़ी रोचक है।

सन् 1945 से 1974 तक का समय था। प्रयाग विश्वविद्यालय एम.ए. हिंदी कक्षा में प्रवेश पाने यह विदेशी पादरी प्रयाग पहुंचा। कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत में बी. ए. करने के उपरांत हिंदी में उच्चतर ज्ञान प्राप्त करने के इरादे से वे प्रयाग पहुँचे। उस समय हिंदी के उद्भट आचार्य एवं प्रख्यात भाषा शास्त्री डॉ. धीरेंद्र वर्मा प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष

थे। उनके मन में यह पशोपेश था कि यह विदेशी पादरी हिंदी में एम.ए. करने की क्या योग्यता रखता होगा। लेकिन कामिल बुल्के ने हिंदी में एम.ए. किया। हिंदी नई कविता के प्रख्यात कवि डॉ. जगदीश गुप्त उनके क्लास फेलो थे। एम.ए. करने के उपरांत तुलसी साहित्य पर शोध करने की उनकी बड़ी लालसा जगी। सुप्रसिद्ध हिंदी विद्वान एवं आलोचक डॉ. माता प्रसाद गुप्त जी के निर्देशन में 'रामकथा : उद्भव और विकास' विषय पर शौध कार्य करने लगे। वे इतने कर्मठ और अध्यवसायी निकले कि बीस ही महीनों के निर्धारित समय में ही अपना इतना बड़ा शोध कार्य संपन्न कर डाला और डी. फिल. की उपाधि से विभूषित हो गए। उनका शोथ प्रबंध हिंदी में लिखा गया था, लेकिन उस समय के विश्वविद्यालय के नियमानुसार शोथ प्रबंध केवल अंग्रेजी में ही लिखा जाना चाहिए था। लेकिन कामिल बुल्के ने जिद्द किया कि मैं अपना शोध प्रबंध हिंदी में ही सब्मिट करूँगा, चाहे मुझे शोथ उपाधि मिले या न मिले। बड़ी मुश्किल से डॉ. धीरेंद्र वर्माजी ने हिंदी में लिखे उनके शोथ प्रबंध को सब्मिट करने की विशेष स्वीकृति सिंडिकेट से प्राप्त की। मगर बुल्के की यह माँग थी कि भविष्य में हिंदी विभाग से निकलने वाले सारे शोध प्रबंध हिंदी में ही हों। फिर एक बार डॉ. धीरेंद्र वर्मा को सिंडिकेट मनवाकर पूर्व नियमों में परिवर्तन लाने के लिए प्रयास करना पड़ा और ये इस कार्य में सफल हुए। हिंदी के प्रति उनकी निष्ठा और समर्पित भाव का यह ज्वलंत उदाहरण है। इस बीच डॉ. बुल्के ने भारत की नागारिकता भी प्राप्त कर ली।

डॉ. बुल्के की अनवरत हिंदी सेवा, रामकथा पर केंद्रित उनके शोध कार्य, तथा भारत की नागरिकता प्राप्त करने के प्रसंग को लेकर प्राय: लोग आश्चर्य प्रकट करते थे कि आखिर वे कौन सा कारण है कामिल बुल्के को हिंदी की सेवा करने, रामकथा पर शोधकार्य करने तथा भारतीय नागरिकता प्राप्त करने की प्रेरणा मिली।

डॉ. बुल्के के देश बेलजीयन की भाषा का नाम फ्लेमिश है, पर वहाँ फ्रेंच भाषा का वर्चस्व जारी था। लोग अपनी भाषा फ्लेमिश के बदले फ्रेंच का प्रयोग करना ज्ञान की बात समझते थे। फ्रेंच की इस प्रभुता को समाप्त करने तथा फ्लेमिश की महत्ता की स्थापना के लिए जो आंदोलन चलाया गया था, डॉ. बुल्के उनमें सक्रिय भाग लेने वालों में एक थे। इस आंदोलन का परिणाम यह निकला कि बेल्जीयम में फ्रेंच का महत्व कम हुआ और धीरे-धीरे वहाँ फ्लेमिश की महत्ता बढ़ने लगी।

भारत पहुंचने पर डॉ. बुल्के को लगा कि भारत की भाषाई स्थिति भी बिल्कुल उनके अपने देश की जैसी ही है। देश की वास्तविक एवं प्रमुख भाषा तो हिंदी है, पर जीवन के हर क्षेत्र में उन्हें अंग्रेजी का ही प्रभुत्व देखने को मिला। भारत में हिंदी को उन्होंने अपनी मातृभाषा की ही दूरवस्था में पाया और यह बात उनके मर्म को छू गयी। उन्होंने यह निश्चय किया कि यह भारत की जनभाषा हिंदी का ही अध्ययन करेंगे और इसी की सेवा में लग जाएँगे। वह यह बात अच्छी तरह समझ गये थे कि भारत की सच्ची सेवा हिंदी के माध्यम से ही की जा सकती है, किसी अन्य भाषा की सहायता से नहीं। डॉ. बुल्के ने अपने इस संकल्प का आमरण निर्वाह किया। वे हिंदी के अपराजेय योद्धा प्रमाणित हुए। उन्होंने राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन तथा सेठ गोविंददास की तरह भले ही हिंदी के लिए प्रमुख संग्राम में भाग नहीं लिया था, पर हिंदी की सेवा जैसी मौन एवं अनवरत साधना उन्होंने की, वह अपने आप में अतुलनीय है। बहुधा उनकी गोरी चमड़ी को देखकर लोग उनसे अंग्रेजी में ही बातचीत करना चहते थे, लेकिन उनकी हिंदी में बात करना देख लोग लज्जित हो जाया करते थे। इस तरह डॉ. बुल्के ने पता नहीं, कितने लोगों के हृदय में स्वभाषा के प्रेम के बीज डाले थे। उन्होंने मंचों पर यह बार-बार कहा थी कि हिंदी संसार की एक ऐसी समृद्ध भाषा है, जिसमें गहन से गहन भाव को भी व्यक्त कर सकने की अद्भुत क्षमता है। भारत के अपढ़ और कुपड़ राजनेता हिंदी के विरुद्ध विष वमन करते थे, वहाँ डॉ. बुल्के विश्व मंचों पर हिंदी की इस सामर्थ्य का गुणगान करते हुए गौरव का अनुभव करते थे। वह तो यही चाहते थे कि लोग उन्हें फादर न कहकर बाबा कहा करें। उनकी यह कामना भी उनके हिंदी प्रेम का ही परिचायक है।

एक बार व्यक्ति उनसे मिलने आया। उसने अपने

साथ दूसरे व्यक्ति का परिचय देते हुए बुल्के से कहा- फादर, यह मेरे अंकल है। यह सुनकर डॉ. बुल्के ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा-अंकल! अंकल का क्या अर्थ हुआ?'

'अंकल यानी अंकल उस व्यक्ति ने दोहरा दिया।

'मगर अंकल कहने से यह कहाँ मालूम होता है कि ये आपके कौन हैं? ये आपके ताऊ हैं, चाचा है, मामा हैं, या फूफा है कि मौसा हैं? आपकी अपनी भाषा में तो प्रत्येक रिश्ते के लिए एक निश्चित शब्द है। उसका प्रयोग न कर आप एक विदेशी भाषा के अंकल शब्द का प्रयोग करना क्यों पसंद करते है?'

डॉ. बुल्के हिंदी भाषा की अकूत शक्ति के मुखर उद्‌गाता थे, उनकी बातों का लोगों पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ करता था।

कृतित्व :

डॉ. बुल्के ने 'रामकथा' को ही अपने शोध कार्य का विषय क्यों चुना? प्राय: लोग यह जानना चाहते हैं। बेल्जीयम में रहते हुए डॉ. बुल्के ने रामचरितमानस के कुछ अंशों का जर्मनी अनुवाद पढ़ा था, इसका उल्लेख इस आलेख के आरंभ में कहा जा चुका है।

एक बार डॉ. बुल्के के सहपाठी डॉ. जगदीश गुप्त ने ऐसा ही प्रश्न डॉ. बुल्के से पूछा तो उसके उत्तर में उन्होंने कहा था- 'पिता और पुत्र का ऐसा आदर्श संबंध, ऐसी उदात्त कल्पना मेरे देश में नहीं है, यूरोपीय साहित्य में मुझे मालूम नहीं हुई। मैंने मन में सोचा कि जिस देश में ऐसा साहित्य रचा गया है उसके निकट जाना ही चाहिए। जिसने उसे रचा उसके बारे में मुझे जानना चाहिए और उस ग्रंथ को पढ़ना चाहिए जिसमें ऐसी बात कही गयी हैं। उल्लेखित चौपाई से प्रेरित होकर ही डॉ. बुल्के ने रामचरितमानस का गहन अध्ययन किया था। उनकी दृष्टि में गोस्वामी तुलसीदास संसार के अन्यतम कवि है तथा रामचरित मानस एक अद्वितीय साहित्यिक कृति है।'

डॉ. बुल्के के शोथ प्रबंध 'रामकथा : उद्भव और विकास' का प्रकाशन सन् 1950 में हुआ। तब से बुल्के रामकथा के विशेषज्ञ एवं अधिकारी विद्वान के रूप में सुविख्यात होते चले गए।

सुयोग्य विद्वान बुल्के ने इस ग्रंथ की तैयारी में कितना परिश्रम किया, यह पुस्तक के अध्ययन से ही समझ सकते हैं। रामकथा से संबन्ध रखनेवाली किसी भी सामग्री को आपने छोड़ा नहीं है। ग्रंथ चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में 'प्राचीन रामकथा साहित्य' का विवेचन है। इसके अंतर्गत पाँच अध्यायों में 'वैदिक साहित्य और रामकथा' वाल्मीकि कृत रामायण, महाभारत की रामकथा' बौद्ध रामकथा और जैन रामकथा संबंधी सामग्री की पूर्ण परीक्षा की गई है। द्वितीय भाग का संबंध रामकथा की उत्पत्ति से है और इसके चार अध्यायों में दशरथ जातक की समस्या, रामकथा के मूल स्रोत के संबंध में विद्वानों के मत, प्रचलित वाल्मीकीय रामायण के मुख्य प्रक्षेपों तथा रामकथा के प्रारंभिक विकास पर विचार किया गया है। ग्रंथ के तृतीय भाग में 'अर्वाचीन रामकथा के साहित्य का सिंहावलोकन' है। इसमें भी चार अध्याय हैं। पहले और दूसरे अध्याय में संस्कृत के धार्मिक तथा ललित साहित्य में पाई जानेवाली रामकथा संबंधी सामग्री की परीक्षा है। तीसरे अध्याय में आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा संबंधी साहित्य का विवेचन है। इसमें हिंदी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, बंगला, कश्मीरी, सिंहली आदि समस्त भाषाओं के साहित्य की छानबीन की गई है। चीथे अध्याय में विदेश में पाई जानेवाली रामकथा के रूप का सार दिया गया है और इस संबन्ध में तिब्बत, खोतान, हिंदेशिया, हिंदचीन, श्याम ब्रह्मदेश आदि में उपलब्ध सामग्री का पूर्ण परिचय एक ही स्थान पर मिल जाता है। अंतिम और चतुर्थ भाग में रामकथा संबंधी एक एक घटना को लेकर उसका पृथक विकास दिखलाया गया है। घटनाएँ कांडक्रम से ली गई हैं। अत: यह भाग सात कांडों के अनुसार सात अध्यायों में विभक्त हैं। उपसंहार में रामकथा की व्यापकता, विभिन्न रामकथाओं की मौलिक एकता, प्रक्षिप्त सामग्री की सामान्य विशेषताएँ, विविध प्रभाव तथा विकास का सिंहावलोकन है।

डॉ. धीरेंद्र वर्मा जी के अनुसार 'इस संक्षिप्त परिचय से ही स्पष्ट हो गया होगा कि यह ग्रंथ वास्तव में रामकथा संबंधी समस्त सामग्री का विश्वकोश कहा जा सकता है। सामग्री की पूर्णता के अतिरिक्त विद्वान लेखक ने अन्य

विद्वानों के मत की यथास्थान उल्लेख किया है तथा कथा के विकास के संबन्ध में अपना तर्कपूर्ण मत भी दिया है। वास्तव में, यह खोजपूर्ण रचना अपने ढंग की पहली और अनूठी भी। हिंदी क्या, किसी भी यूरोपीय या भारतीय भाषा में इस प्रकार का कोई दूसरा अध्ययन आज तक उपलब्ध नहीं है।'

डॉ. बुल्के बहुत आसानी से अपनी मातृभूमि लौट सकते थे, मगर उन्होंने ऐसा नहीं किया। जीवन के अंतिम दिनों में उन्हें भारत पूरी तरह से पंसद आ गया था। यही कारण है कि उन्होंने भारत की नागरिकता प्राप्त कर ली थी। भारत की जीवन पद्धति, और भारतीय संस्कृति के डॉ. बुल्के प्रबल प्रशंसक थे। वह तो यहाँ तक कहा करते थे कि भारत के सभी पादरियों को सफेद चोगा छोड़कर, गेरूए वस्त्र का ही उपयोग करना चाहिए। वह मनसा, वाचा, कर्मणा भारतीय संन्यासी के प्रतीक थे। भारत में रहते हुए उन्होंने केवल भारत की नागरिकता ही प्राप्त नहीं की, बल्कि यही हर दृष्टि से वे पूरी तरह से भारतीय भी हो गए थे।

सन् 1975 में नागपुर में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हुआ था। उसमें डॉ. बुल्के सम्मानित अतिथि के रूप में आमंत्रित थे। इस समारोह में फादर कामिल बुल्के को बेल्जीयम के प्रतिनिधि के रूप में सम्मानित किया गया। आयोजकों ने उनका नाम पुकारते समय कहा कि वे बेल्जीयम और भारत दोनों देशों के हैं। उन्होंने उस समय हर्ष से गद्‌गद होकर कहा- 'मैं इस सम्मान को प्राप्त करने के लिए चालीस वर्ष पहले अपनी मातृभूमि से यहाँ आया हुआ हूँ।' संत विनोबाजी से पौनार में भेंट होते ही उन्होंने कहा था कि 'मैं हिंदी की सेवा करूँगा जब तक शरीर में प्राण है।'

रामकथा के विकास को अपनी चरम परिणति पर पहुँचानेवाले डॉ. बुल्के अपने आप में एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था थे। एक ओर रामकथा के विकास के रूप में उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय काम किया है। दूसरी ओर भाषा के क्षेत्र में अपने अंग्रेजी-हिंदी कोश के रूप में हिंदी को एक आदर्श कोश दिया है। डॉ. बुल्के का यह अंग्रेजी-हिंदी कोश भारतीय भाषाओं के द्विभाषिक कोशों में अप्रतिम है। डॉ. बुल्के ने अपने कोश में शब्दों का चयन बहुत सतर्कता और सफलता से किया है। यह कोश कई स्तर के लोगों का काम करता है। उनमें अंग्रेजी के अनेकानेक प्रकार के उच्चारण प्रचलित हैं। जिनमें 'King's English', 'American English' दो का प्रयोग अधिक प्रचलित है। डॉ. बुल्के ने 'King's English' को ही उच्चारण के मामले में मानक माना है जो भारत के लिए बिल्कुल ठीक है। बुल्के का यह कोश विज्ञान और कोश-कला की दृष्टि से एक आदर्श कोश है, यह डॉ. भोलानाथ तिवारी जैसे भाषाविद एवं कोशकार की मान्यता है।

कानपुर के मानस संगम के अध्यक्ष एवं प्रख्यात हिंदी सेवी, समाज सेवी विद्वान श्री बदरीनारायण तिवारी जी ने कानपुर के मध्य तुलसी उपवन की स्थापना कर तुलसीदास के रामचरितमानस के गौरव को बढ़ाया है। वहीं मानस के विदेशी भक्त तेस्सीतोरी, वारान्निकोव के साथ डॉ. कामिल बुल्के की भी प्रतिमा की स्थापना कर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। इससे मानस के इन विदेशी भक्तों का भी गौरव बढ़ा है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. रामकथा : उत्पत्ति और विकास, डॉ. कामिल बुल्के का शोध प्रबंध
3. हिंदी भाषा की संरचना : डॉ. भोलानाथ तिवारी
4. भाषा विज्ञान : डॉ. भोलानाथ तिवारी
5. हिंदी साहित्य कोश : डॉ. धीरेंद्र वर्मा

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

असम के नव वैष्णव भक्ति चेतना के प्रसार में संत माधवदेव का योगदान

माधुर्ज्य कमल हजारिका

शोध छात्र, हिंदी विभाग,
राजीव गांधी विश्वविद्यालय
रोनो हिल्स, दोईमुख
अरुणाचल प्रदेश-791112
9401690026
madhurjyahazarika3@gmail.com

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय

सह आचार्य, हिंदी विभाग,
राजीव गांधी विश्वविद्यालय
रोनो हिल्स, दोईमुख
अरुणाचल प्रदेश-791112
9612540643
arunpandya1975@gmail.com

हिंदी साहित्य के मध्यकाल को स्वर्णकाल माना जाता है। इस कालखंड में संपूर्ण भारत के संत-महात्माओं ने भक्ति दर्शन को जन-जन तक प्रचारित-प्रसारित किया। इस भक्ति चेतना की जनसापेक्षी प्रकृति को विद्वानों ने भक्ति आंदोलन का नाम देकर प्रचारित-प्रसारित किया। वस्तुत: भक्ति आंदोलन के दौरान भक्ति का जो स्वरूप उभरकर सामने आया, वह कई शताब्दियों के दौरान बना था। भक्ति काव्य के अध्येता डॉ. लक्ष्मीनारायण वर्मा के अनुसार, 'इसका महत्व इसलिए ही नहीं है कि यह बहुआयामी, बहुस्तरीय, देशव्यापी तथा बहुप्रभावी आंदोलन था, वरन इसलिए भी कि इसका काव्य संस्कृति व साहित्य के परावलंबन के साथ-साथ समाज के भौतिक विकास और साहित्य के परावलंबन का भी साक्ष्य प्रस्तुत करता है।' भक्ति चेतना का आलोड़न केवल साहित्य का आलोड़न नहीं था, न ही यह सिर्फ हिंदी भाषा तक सीमित था, बल्कि यह प्रथम धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना थी, जो अखिल भारतीय थी। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक इसकी व्याप्ति थी और लगभग तीन-चार शताब्दियों तक इसने भारत के संपूर्ण जनमानस को आंदोलित किए रखा। यह भारतीय चेतना का ऐसा प्रखर आलोड़न था, जिसने समाज के सभी वर्गों, वर्णों और धर्मावलंबियों को स्पर्श किया, जिसके प्रचार-प्रसार में निम्न वर्ण के कहे जाने वाले सामाजिक वर्गों के लोगों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। भक्ति चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति के दौरान लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में साहित्य रचा गया और सभी की भावधारा एक थी।

भक्ति अकस्मात उत्पन्न नहीं हुई। भक्ति के तत्व बीज रूप में प्राचीन भारतीय वाङ्मय में मिलते हैं। ऋग्वेद भारत का प्राचीनतम ग्रंथ है। इसमें भक्ति का विवेचन तो नहीं मिलता है, परंतु भक्ति की कुछ विशेषताएँ अवश्य दिखाई पड़ती हैं। ऋग्वेद के एक श्लोक में ब्रह्म में अनुरक्त होने तथा पूर्णरूपेण अपने को समर्पित करने का भाव प्रकट होता है :-

मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समिक्षन्ताम।।

अर्थात 'यह आत्मा उत्कृष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेधा के द्वारा प्राप्त नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिससे वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। उसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।' यहाँ ईश्वर की कृपा का वर्णन है, जो भक्ति का एक

रूप है। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ईश्वर की कृपा अर्जन करनी पड़ती है। जो मनुष्य ईश्वर की उपासना करता है, उसे ही ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है।

वेदों में भक्ति को ढूँढ़ने का अर्थ सिर्फ यही है कि ईश्वर की उपासना की विभिन्न पद्धतियों में से कुछ का वर्णन वेदों में भी मिलता है और वे पद्धतियाँ बाद में 'भक्ति' के अंतर्गत भी स्वीकार की गई हैं। इसलिए यह कहने की बजाए कि भक्ति वेदों में भी है, यह कहना ज्यादा उचित है कि ईश्वरोपासना के कुछ मार्ग वेदों और भक्ति में समान रूप से स्वीकार किए गए हैं। यही बात उपनिषदों के बारे में भी सत्य है, जिन्हें वेदांत की संज्ञा दी जाती है। कुछ पुराणों तथा भगवद्गीता में भक्ति पर विचार हुआ है, जो वेदों और उपनिषदों के बाद की रचनाएँ हैं।

रामानंद, कबीरदास, नामदेव तुलसीदास आदि संतों ने अपनी वाणियों के द्वारा साधारण लोगों को भक्ति तत्व से अवगत कराया। संपूर्ण भारत की तरह असम प्रदेश में भक्ति चेतना की शुरुआत संत श्रीमंत शंकरदेव द्वारा किया गया। 12 वर्षों तक संपूर्ण भारत के भ्रमण और अनेक संतों के समागम से श्रीमंत शंकरदेव ने जिस भक्ति सिद्धांत का प्रतिपादन किया, उसे नव वैष्णव भक्ति, नाम धर्म तथा एक शरण भागवती वैष्णव धर्म के नाम से जाना जाता है। शंकरदेव ने पूजा-पाठ, यज्ञ, बलि आदि के स्थान पर परम ब्रह्म के नाम को और बहुदेव के स्थान पर एक देव को महत्व दिया है। भागवत को आधार बनाकर उन्होंने परम ब्रह्म नारायण को मूल इष्ट के रूप में स्वीकार किया है।

''प्रथमे प्रणामो ब्रह्मरूपी सनातन,
सर्व अवतार कारण नारायण।''[1]

असम में इस नव वैष्णव भक्ति चेतना को सर्व ग्राह्य बनने में श्रीमंत शंकरदेव के साथ उनके शिष्य महापुरुष माधवदेव का योगदान अतुलनीय है। प्रसिद्ध असमिया इतिहासकार लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने माधवदेव का जन्म संवत 1411 जेठ महीने के कृष्ण प्रतिपदा तिथि को माना है। एक अन्य विद्वान डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा उनका जन्मकाल 1489 ई. मानते हैं। जन्म के समय ही उनका नाम माधव और रत्नाकर रखा गया। वे नारायणपुर के लेटेकुपुखुरी नामक स्थान पर अपने माता-पिता के साथ रह रहे थे। माधवदेव के पिता का नाम मनोहर था। पिता के देहावसान के बाद उनका अंतिम संस्कार करने के लिए वे बांडुका गए, जहाँ उनके बड़े भाई दामोदर रहते थे। क्रिया-कर्म पूर्ण करने के पश्चात माधवदेव नारायणपुर लौटे रहे थे कि रास्ते में उन्हें माँ की बीमारी के बारे में पता चला। उन्होंने मन में संकल्प लिया कि यदि माँ ठीक हो जाएगी तो शरद ऋतु की पूजा में माँ दुर्गा के चरणों में दो सफेद बकरे की बलि देंगे। घर आकर उन्होंने देखा की माँ बिल्कुल ठीक हो गई है। इससे आनंदित होकर उन्होंने बहन के पति रामदास कायस्थ को बलि हेतु बकरे लाने के लिए कहा। रामदास श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य बन चुके थे। उन्होंने ऐसा करने से मना कर दिया। माधवदेव द्वारा दबाव बनाने पर वे क्रोधित होकर कहने लगे :-

''आमार आगत देखुवाहा बर चोट।
शंकरक लाग पाइले हैबा लोटसोट।।''[2]

अर्थात मेरे सामने तुम क्रोध कर रहे हो, पर शंकर के सामने जाते ही शर्मिंदा हो जाओगे। उन्होंने कहा कि तुम इतने दिनों से दैविक कर्म के लिए बकरे ढूँढ़ रहे हो, ब्रह्म के अंश रूपी जीव को मारकर तुम क्यों दु:ख अर्जित करना चाहते हो। जीव हत्या द्वारा अगर किसी देव-देवी को पूजते हो तो स्वर्ग नहीं नरक ही प्राप्त होगा। यह सुनकर माधवदेव ने रामदास से पूछा कि यह दर्शन तुम्हें किससे प्राप्त हुई है। मैंने अनेक शास्त्रों में पढ़ा है कि बलि अर्पित करने से देवता प्रसन्न होते हैं और कामना पूर्ण करते हैं। इस पर रामदास ने कहा कि हम इस बात पर तर्क नहीं कर सकते हैं। गुरु शंकरदेव ही तुम्हारे इन प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे। दोनों शंकरदेव के पास पहुँचे। रामदास ने शंकरदेव को संपूर्ण घटना सुनाई और माधवदेव का परिचय करवाया। शंकरदेव मुस्कुराते हुए बोले कि माँ मनु का बेटा इतना बड़ा हो गया है कि सिर से सिर मिलाने पर भी नहीं पहचान पाएँगे। इसके उपरांत दोनों में वाद-विवाद शुरू हुआ। शंकरदेव ने निवृत्ति मार्ग के शास्त्रों के प्रमाण का उल्लेख किया तो माधवदेव ने प्रवृत्ति मार्ग के शास्त्रों के प्रमाण दिए। तर्क-वितर्क में तीन दिन बीत गए। तभी श्रीमंत शंकरदेव ने श्रीमद्भागवत

से एक श्लोक गाया :-

''यथा तलोर्मूल निशेचनेन।
तृप्यन्ति तत्स्कंध भुजोपशाखा:।।
प्राणोंपहाराच्च यथेन्द्रियानांग।
तथाच सर्व्वार्च्चनमुच्यतेभ्य:।।'' [3]

अर्थात जिस प्रकार वृक्ष के मूल में जल देने से सारे पत्र एवं पुष्प को जल प्राप्च होता है, यदि पत्र एवं पुष्प पर पानी दिया जाए तो वृक्ष कभी तृप्त नहीं होंगे। एक भूखे मनुष्य को अन्न देने से उसे तृप्ति प्राप्त हो सकती है, लेकिन यदि अन्न न देकर वस्त्र एवं अलंकार दिया जाए तो उसकी आत्म कभी शांत नहीं होंगी। उसी प्रकार कृष्ण को पूजने से सारे देवों की पूजा होती है, और अलग-अलग पूजने से कभी फल की प्राप्ति नहीं होती है। यह श्लोक सुनने के बाद माधवदेव शंकरदेव के चरण में अपने आपको समर्पित कर ब्रह्म ज्ञान के लिए प्रार्थना करने लगे। तत्पश्चात वह भागवती धर्म को समझकर उसके प्रचार-प्रसार के लिए गुरु के साथ काम करने लगे। माधवदेव को पाकर शंकरदेव ने अपने आपको संपूर्ण अनुभव किया। शंकरदेव एवं माधवदेव का मिलन असम के माजुली द्वीप स्थित 'धूआहाट बेलगुरि' नामक सत्र में हुआ था। इस घटना के बारे में सत्येन्द्रनाथ शर्मा अपने पुस्तक में लिखते हैं- *''यही ऐकांतिक निष्ठा, गहन भक्ति और बहुमुखी प्रतिभा को देखकर ही शंकर-माधव के इस मिलन को बेजबरुवा जी ने मणिकांचन संयोग के रूप में अभिव्यक्त किया है।''* [4] माधवदेव आजीवन अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए नव वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए संकल्पित रहे।

आहोम राज्य में भूयांओं का जीवन अस्थिर एवं अनिश्चित था। चुहुंगमुंग राजा के शासनकाल में भूयांओं को हाथी पकड़ने की जिम्मेदारी दी गई। शंकरदेव सहित अन्य भूयांगण इस कार्य को करने में विफल रहे। शंकरदेव को दोषी मानकर राजा ने मृत्युदंड की सजा सुनाई। शंकरदेव जान बचाने के लिए भूमिगत हो गए। राजा के सिपाही उन्हें खोजने में असफल रहे और बदले में उनके दामाद हरि और शिष्य माधवदेव को पकड़ कर राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। हरि का सिर विच्छेद कर दिया गया और माधवदेव को छोड़ दिया गया। इस घटना के उपरांत शंकरदेव और माधवदेव आहोम राज्य का परित्याग कर कोचबिहार राज्य में आ गए। शंकरदेव 'पाटबाउसी' और माधवदेव 'गणकुछि' नामक स्थान पर सत्र बनाकर रहने लगे। माधवदेव की गुरुसेवा से शंकरदेव अति प्रसन्न थे। संवत 1550 अर्थात सन 1618 ई. में शंकरदेव तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। उनके साथ 120 भक्त थे। शंकरदेव का मूल उद्देश्य वृंदावन दर्शन करना था। माँ कालिंदी को चिंता होने लगी कि यदि वृंदावन पहुँचकर वह घर के बारे में भूल गया तो क्या होगा? इसीलिए उन्होंने माधवदेव को यह कहकर साथ भेजा कि उन्हें वृंदावन न जाने देना। चरित पोथिओं के अनुसार इस यात्रा के दौरान उनका संपर्क चैतन्य महाप्रभु, रामानंद, हरिव्यास, कबीर के पौत्र एवं रूप सनातन के भांजे से हुआ। कोचबिहार में रहते समय माधवदेव दिन-रात गुरुसेवा में निमग्न रहते थे। माधवदेव का साथ पाकर शंकरदेव ने दुगनी शक्ति के साथ भक्ति चेतना को जन-जन तक पहुँचाया। दोनों गुरुओं ने अनेक गीतों, नाटकों, काव्यों तथा भक्तिमूलक ग्रंथों की रचना की। डॉ. कारबी डेका हजारिका अपनी पुस्तक 'माधवदेव' में लिखते हैं- *''साहित्य को धर्म प्रचार का वाहन बनाने के साथ ही असंख्य लोक इस धर्ममत की ओर आकर्षित होने लगे।''* [5] इस लोक प्रसिद्धि के कारण कोच राजा नरनारायण ने शंकरदेव से उन्हें दीक्षा देने के लिए प्रार्थना की। शंकरदेव की प्रतिज्ञा थी कि कर्म करने वाले ब्राह्मण, राजा और स्त्री को दीक्षा नहीं देंगे। इसीलिए उन्होंने राजा को मना कर दिया। राजा द्वारा बार-बार प्रार्थना करने के कारण उन्होंने देह त्याग करने का संकल्प ले लिया। शंकरदेव ने अपने पुत्र रामानंद से कहा कि मेरे उपरांत माधवदेव को धर्मीय उत्तराधिकारी बना दिया जाए। शंकरदेव के पश्चात नव वैष्णव भागवती धर्म का संपूर्ण भार माधवदेव के कंधे पर आ गया। शंकरदेव के तिरोभाव के एक वर्ष के भीतर ही गुरु दामोदरदेव के उत्तराधिकारी बनने की महत्वाकांक्षा जागृत हो उठी। इसके कारण नाम धर्म विभाजित होने के संकट से गुजरने लगा। माधवदेव के उत्तराधिकारी बनाने से वे अप्रसन्न थे और माधवदेव का नेतृत्व उन्हें मान्य नहीं था। इसीलिए कुछ कर्मकांडी ब्राह्मण शिष्यों को साथ लेकर उन्होंने अपना एक अलग पंथ शुरू किया, जिसे 'ब्रह्म

संगति' के नाम से जाना जाता है। शंकरदेव के देहावसान के एक वर्ष तक माधवदेव गणकुछि सत्र में ही रहकर पाटबाउसी सत्र में निवास कर रहे गुरु पत्नी और बेटों की सेवा करने लगे। कुछ दिनों बाद उन्होंने 'सुन्दरीदिया' नामक स्थान पर सत्र बनाया और बारह वर्ष तक यहीं रहकर नव वैष्णव भक्ति चेतना को और शक्तिशाली बनाया। उन्होंने असम के विभिन्न स्थानों में अनेक भक्तों को भेजकर नव वैष्णव भक्ति चेतना का प्रचार-प्रसार किया। सुन्दरीदिया के बाद माधवदेव 'ताँतिकुचि' नामक स्थान पर रहने लगे, जहाँ उनकी भेंट 'गोपालआता' और 'विष्णु आता' से हुई। बाद में ये दोनों उनके प्रिय शिष्य बन गए। ताँतिकुचि में निवास के पश्चात माधवदेव 'बरपेटा' आ गए और एक सत्र का निर्माण किया। इसी सत्र में 'संत बदला पद्म आता' को शिष्य बनाया और दीक्षा देकर ऊपरी असम में धर्म प्रचार करने के लिए भेजा। असम के कोने-कोने में वैष्णव भक्ति चेतना की ज्योति जलाने के उद्देश्य से उन्होंने गोपाल आता, विष्णु आता, बुढ़ा आता, मथुरादास आता, नारायणदास आता, बदलापद्मा आता आदि बारह भक्तों को तैयार किया और उन्हें धर्म प्रचार की जिम्मेदारी दी। इन भक्तों के कठोर परिश्रम एवं धर्म के प्रति समर्पण भाव के कारण अंतिम समय में उन्हें जीवन भर का सुख मिला। राजमहलों से लेकर आमजन के घरों में नाम-कीर्तन की भक्ति ध्वनि गूँजने लगी। उन्हें यह विश्वास हो गया कि असम के जन-मन के हृदय में यह भक्ति चेतना युगों-युगों तक दीप्त होती रहेगी। कोच राजा लक्ष्मीनारायण उनसे दीक्षा लेने के लिए व्याकुल थे। परंतु उनकी मनोकामना पूर्ण नहीं हो सकी। संवत 1528 अर्थात 1596 ई.में भाद्रपद शुल्क द्वितीया के दिन माधवदेव परलोक सिधार गए।

माधवदेव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे धर्म प्रचारक के साथ-साथ शास्त्र के ज्ञाता, भक्त, कवि, नाट्यकार तथा सुगायक भी थे। माधव कंदली द्वारा लिखित असमिया रामायण का आदिकांड माधवदेव द्वारा लिखा गया है। उनकी स्मृति बहुत तीक्ष्ण थी। एक प्रसंग मिलता है कि शंकरदेव द्वारा रचित बरगीतों को 'कमला गायन' नामक एक भक्त पढ़ने के लिए अपने घर लेकर गए। रात में उनके घर में आग लगने के कारण सारा बरगीत जल गया। कुछ बरगीतों को ही बचाया जा सका। गुरु शंकरदेव की आज्ञा से माधवदेव ने बहुत सारे बरगीतों की रचना कर डाली। गुरु शंकरदेव की आज्ञा और राजा शुक्लध्वज के प्रोत्साहन से उत्साहित होकर उन्होंने 'राजसूय काव्य' और 'जन्म रहस्य काव्य' की रचना भी की। गुरु शंकरदेव की स्वर्ग प्राप्ति के बाद सन 1590 से 1596 के बीच उन्होंने सर्वश्रेष्ठ कृति 'नामघोषा' को कोचबिहार के भेलाबाङ नामक स्थान पर लिखकर पूर्ण किया। कोच बिहार में रहते हुए पुरुषोत्तम गजपति द्वारा लिखित 'नाम मालिका' और विष्णुपुरी संन्यासी द्वारा लिखित 'भक्ति रत्नावली' को उन्होंने ब्रजावली भाषा में अनुवाद किया था। वर्तमान में इन दोनों ग्रंथों का असमिया समाज में बहुत महत्व है। डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा माधवदेव द्वारा लिखित रामायण के आदिकांड को वाल्मीकि के आदिकांड का लघु अनुवाद मानते हुए कृत्तिवास रामायण के प्रसंगों से जोड़ते हैं - *''आदिकांड की कई सारी कथाएँ कृत्तिवास रामायण के साथ मिलती हैं। इन कथाओं का वर्णन वाल्मीकि रामायण में नहीं है।''*[6] माधवदेव ने 'जन्म रहस्य' पोथी में सृष्टि और प्रलय का विवरण देते हुए हरि की श्रेष्ठता का वर्णन किया है। यह पोथी चिलाराय की पत्नी भुवनेश्वरी के आदेश से लिखा गया था। कई विद्वान इसे अनूदित पोथी कहते हैं। परंतु डॉ. करबी डेका हजारिका इसे स्वलिखित पोथी मानते हुए लिखते हैं- *''यह पोथी माधवदेव की मौलिक रचना है, ऐसा बोध होता है। महापुरुष माधवदेव के व्यक्तिगत अनुभूति और जीवन का अनुभव यहाँ उभरकर आया है। माधवदेव के अंतरमन में स्थित गुरु भक्ति का भी प्रभाव इस पोथी के अंतिम भाग में दिखाई देता है।''*[7] 'भक्ति रत्नावली' में भक्ति के प्रकारों के साथ-साथ, सत्संग के महत्व तथा विष्णु भक्ति की श्रेष्ठता की चर्चा की गई है। डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा अपनी पुस्तक में लिखते हैं- *''भक्ति रत्नावली में साहित्यिक सौंदर्य नहीं होने पर भी असमिया वैष्णव धर्म और संप्रदाय के लिए एक अति श्रद्धा की वस्तु है और भक्ति तत्व का प्रांजल प्रकाश है।''*[8] माधवदेव की सर्वश्रेष्ठ रचना 'नामघोषा' है। एक हजार पद होने के कारण इसे 'हजारी घोषा' भी कहते हैं। डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा लिखते हैं- *''माधवदेव के आध्यात्मिक जीवन की*

पूर्ण अभिव्यक्ति इस ग्रंथ में हुई है। उनके शास्त्र ज्ञान, पांडित्य, कवित्व, धार्मिक मतवाद, आध्यात्मिक आदर्श और धर्म के क्षेत्र में हुए अनुभवों का पूर्ण प्रकाश इस ग्रंथ दिखाई पड़ता है। गुरु से प्राप्त शिक्षा, शास्त्रों से प्राप्त सिद्धांत तथा हृदय में हुई सत्य की अनुभूति इस ग्रंथ में प्रकाशित हुआ है।''[9] डॉ. वाणीकांत काकति नामघोषा के बारे में लिखते हैं- *''नामघोषा में तीन भावों का मेल होकर विशाल आनंद सागर की ओर प्रवाहमान हुआ है, वह है पुण्यश्लोक शंकर की स्मृति, माधवदेव की आत्मभाव और कृष्णभक्ति माहात्म्य।''*[10] नामघोषा के एक हजार पदों में से प्राय: छह सौ पद विभिन्न पुराणों एवं भक्तिमूलक श्लोकों का अनुवाद है और अन्य चार सौ पद उनकी अपनी रचना है। देवीप्रसाद बागड़ोदिया नामघोषा के बारे में लिखते हैं- *''यह उनके धार्मिक-आध्यात्मिक जीवन के सुदीर्घ चिंतन और अनुभव सत्य का अंतिम और श्रेष्ठ संपूजन है।''*[11] माधवदेव ने छह नाटकों की रचना की है। श्रीमंत शंकरदेव ने श्रीकृष्ण के कुमार एवं युवा अवस्था को अपने नाटकों में वर्णित किया है तो माधवदेव ने कृष्ण के बाल्यावस्था को अपने नाटकों का विषय बनाया है। डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा उनके नाटकों के बारे में लिखते हैं- *'''चोरधरा', 'पिम्परा गुचोवा', 'अर्जुन-भंजन', 'भूमि-लेटोवा' और 'भोजन बिहार' नाटकों में शिशु कृष्ण के वाल्यावस्था के नटखट कार्य, अभिमान, चातुरता तथा अन्य आनंददायक पल का वर्णन किया गया है।''*[12] माधवदेव ने बरगीतों की रचना भी की है। डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा उनके बरगीतों की संख्या 'नकुरि एघारटा' माना है। एक कुरि में बीस होता है, नकुरि अर्थात 180 और एघार अर्थात ग्यारह, यानी कुल बरगीतों की संख्या 191 है, जो उनके पांडित्य को प्रदर्शित करता है। डॉ. महेश्वर नेओग अपनी पुस्तक में बरगीतों के बारे में लिखते हैं- *''माधवदेव ने अपने गीतों में कृष्ण के शिशु-चरित्र के मनोरम रूप का वर्णन किया है। उनके कई गीतों में कृष्ण के भुवन मोहन रूप का भी वर्णन मिलता है।''*[13] इसके अतिरिक्त उन्होंने भटिमा, टोटय, छपय आदि की भी रचना की है।

एक विष्णु की उपासना को महत्व देते हुए वह कहते हैं कि जो भक्त मुक्ति के लिए आतुर है, उस भक्त को मैं नमन करता हूँ और उनसे रसमयी भक्ति प्रवाह की कामना करता हूँ। मैं उस यदुपति को नमन करता हूँ, जिसका मस्तक मणि जैसा उज्ज्वल है और जो भक्तों के दास हैं-

''मुक्तित निस्पृह जिटो सेहि भकतक नमो रसमयी मागोहो भकति।

समस्त मस्तक मणि निज भकतर बश्य भजो हेन देव यदुपति।।''[14]

असम में प्रचारित नव वैष्णव धर्म मूलत: भक्ति प्रधान धर्म है। भागवत पुराण पर आधारित इस धर्म में शंकरदेव और माधवदेव ने भक्ति को सबसे उच्च स्थान दिया था। डॉ. करबी डेका हजारिका अपनी पुस्तक 'माधवदेव साहित्य, कला और दर्शन' में नव वैष्णव भक्ति चेतना को समझाते हुए लिखते हैं- *''उन लोगों ने अपने इस धर्म के माध्यम से जन-गण में यह संदेश प्रसारित किया कि तप-जप-तीर्थ-व्रत आदि द्वारा जिस भगवान को प्राप्त करना कठिन है, वह भगवान पवित्र हृदय से आह्वान करने से सहज ही प्राप्त हो सकता है।''*[15] माधवदेव ने मुक्ति से ज्यादा भक्ति को महत्व दिया है। भक्ति द्वारा ही सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है और भगवान भी भक्त की सहायता करने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। निष्काम भक्ति सदैव स्वार्थ रहित होती है, परंतु भक्ति में इतनी शक्ति है कि कुछ न माँगते हुए भी भक्त को सब कुछ प्राप्त हो जाता है :-

''जीवन्ते मुकुत भैल जिटो अति आत्मात मात्र रमय।
शास्त्र बहिर्भुत भैल हृदयतो दूर भैल ग्रंथिचय।।
तारा सबो सदा परम निष्कामे भकति करे कृष्णत।
मोक्षतो अधिक भकतिर सुख जानिया अति मनत।।
मुकुत सकलो नेङय भकति किनो अति अदभुत।''[16]

माधवदेव, द्विज, ऋषि, तप-जप, दान, तीर्थ, व्रत एवं भक्तिविहीन ज्ञान आदि को आडंबर मानते हुए केवल भक्ति द्वारा भगवान को प्रसन्न करने की बात करते हैं। सच्चा भक्त किसी जाति एवं श्रेणी से बँधा नहीं होता है, वह केवल अविचलित भक्ति द्वारा परम अनुग्रह प्राप्त करने में लगा रहता है :-

''देव द्विज ऋषि तप जप यज्ञ दान।
जत शौचाचार तीर्थ व्रत महाज्ञान।।

इटो सबे बिडंबन जाना निष्ठ करि।
केवले भक्तिते मात्र तुष्ट होन्त हरि।।''[17]

भागवत प्राप्ति के लिए मुख्यत: ज्ञान, कर्म और भक्ति को प्रधानता दी जाती है। माधवदेव इन तीनों साधनों में भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। वे भक्ति रत्नावली में लिखते हैं कि भक्ति के बिना ज्ञान और कर्म से मुक्ति की आशा करना व्यर्थ है। नामघोषा में भी उन्होंने कहा है कि इस संसार सागर को पार करने के लिए ज्ञान, कर्म आदि से ज्यादा भक्ति महत्वपूर्ण है। भक्त केवल भक्ति के सहारे इस भवसागर को पार कर सकते हैं :-

''भकति सहाय बिने ज्ञान कर्म्मे नसाधे कारो मुकुति।
काहाको सहाय नचावे मुकुति गरिष्ठ एहि जुगुति।।18
ज्ञान कर्मे तावे तरिते नपारे भक्ति नतरे जेवे।
*केवल भकति भकतक तरे सहाय कारो नचावे।।''*19

भागवत पुराण में वर्णित नवधा भक्ति के अतिरिक्त माधवदेव की भक्ति में तीन अन्य रूप दिखाई पड़ते हैं, यथा- भागवती भक्ति, प्रेम भक्ति और केवल भक्ति। भागवती भक्ति का परिचय देते हुए माधवदेव कहते हैं कि तप, जप, यज्ञ, दान, व्रत, धन, जन, गृह, पुत्र आदि सांसारिक बंधनों को प्रभु का ही सृष्टि मानकर शुद्धभाव से कृष्ण के चरणों में अर्पित करना ही भागवत धर्म है। उन्होंने भगवान के नाम-यश को ही भागवत रस माना है, जिसका पान करके भक्त मोक्ष आदि की कामना से विमुख हो जाता है :-

''तप जप यज्ञ दान व्रत सदाचार।
धन-जन-गृह-पुत्र भार्जा आपोनार।।
समस्तक शुद्धभावे अर्पिब कृष्णत।
इहाके बोलय महा धर्म भागवत।।''[20]

''महाभागवत रस माधवर नाम-यश आक पान करिले जिजने।
कृष्णर चरणे चित्त दिया मोक्ष आदि रसे रति आर नकरय मने।।''[21]

वे प्रेम भक्ति को सरल रूप में समझाते हुए कहते हैं कि अनन्य भक्ति द्वारा भक्त जब अपने आपको गदगद अनुभव करता है, वही प्रेम भक्ति है। भगवान प्रेम भक्ति के अधीन होता है। भक्त जब भगवान की सेवा से अपने-आपको वंचित अनुभव करता है, तब पीड़ा से रोने लगता है और सेवा का मौका मिलने पर आनंद से झूम उठता है :-

''वाक्य गदगद करे प्रेमर भरत।
द्रबे चित्त स्मरि मोर महिमा मनत।।
भकतर वश्य मइ हेनय आकलि।
परम आनन्दे हासि तोले खलखलि।।
एत काल भैलो तजु सेवाये बञ्चित।
एहि बुलि शोके आति कान्दे कदाचित।।
एवे पाइलो पाइलो बुलि कतो गावे गीत।
परम हरिषे उठि कतो करे नृत्य।।
एहि मत जार जार मिलल प्रचुर।
गुचे लज्जा आदि माया एड़ि होवे दूर।।''[22]

केवल भक्ति का अर्थ होता है अंतरंग भक्ति। भागवत पुराण में कृष्ण ने उद्धव को इस भक्ति के बारे में बताया है। केवल भक्ति के अनुकरण द्वारा भक्त सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। महापापियों को भी इस भक्ति के सान्निध्य से मुक्ति मिल जाती है। यह भक्ति सभी जातियों का आश्रय स्थल है। इसको जानकर भी सज्जन लोग भक्ति की निंदा करते हैं, जो अपने-आप में एक अद्भुत बात है। हरि नाम जप के द्वारा भक्तों को परमानंद की प्राप्ति होती है और इसके कारण मुक्ति की आशा छोड़कर भक्त, संत-महंत सभी भगवान के चरण कमल को प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं :-

''हरि नामे करे अंत्य जातिको मुकुट।
सज्जने नामक निन्दे किनो अद्‌भुत।।''[23]

''हरि-कीर्तनर महा-आनन्द-सुखक आशे कतो कतो सव महाजने।
मुकुति-सुखको तेजि महन्त जनर संग खोजे आति कृष्णर चरणे।।''[24]

अपने-आपको भगवान का दास मानकर शरीर एवं मन को भगवान की सेवा में न्योछावर करना नव वैष्णव धर्म का आदर्श स्वरूप है। नवधा भक्ति में श्रीमंत शंकरदेव एवं माधवदेव दोनों ने ही दास्य भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है। दोनों ने अपने गीत-भटिमा, काव्य एवं नाटकों में स्वयं को विष्णु के दास के रूप में प्रस्तुत किया है। माधवदेव ने भगवत आराधना के लिए भक्ति के नौ प्रकारों में दास्य भक्ति को उत्तम और श्रेष्ठ बताया है।

शंकरदेव के प्रति उनकी भक्ति दास्य भक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण है :-

''श्रीमंत शंकर हरि भकतर जाना जेन कल्पतरु।
ताहान्त बिनाइ नाहि नाहि नाहि आमार परम गुरु।।''[25]

शंकरदेव अपनी रचनाओं में सदैव अपने-आप को कृष्णर किंकर, शंकर दास आदि नाम से संबोधित करते हैं। माधवदेव ने भी सदैव अपने-आप को दासकु दासा, दीन, मुरुख मति आदि नाम से संबोधित किया है। दास्य भाव का वर्णन करते हुए शंकरदेव अपने भक्ति प्रदीप में कहते हैं कि जो भक्त, भगवान का दास बन जाता है, उसे वैकुंठ में निवास करने को मिलता है :-

''एतेके बोलन्ते प्रभु भगवन्ते भैल मोर निज दास।
संसार निकार दूर करि तार वैकुण्ठत देन्त बास।।
जानि हेन कृष्ण इष्ट देवताक भजा तेजि आन काम।
कृष्णर किङ्करे कहे निरन्तरे डाकि बोला राम राम।।''[26]

माधवदेव द्वारा रचित नामघोषा में दास्य भक्ति का अनुपम स्वरूप देखने को मिलता है। भगवान को सखा, सुहृद, प्रियतम आदि अनेक संबोधनों से संबोधित करने के बावजूद उन्हें अपना नाथ एवं स्वामी रूप में स्वीकार करते हुए स्वयं को भृत्य एवं दास रूप में उनके चरणों में प्रस्तुत करते हैं। वह कहते हैं कि अज्ञानता एवं अविद्या के कारण तुम्हारे चरणों की प्रार्थना नहीं कर पाया। तुम्हीं पिता-माता, गुरु, इष्टदेव, प्रिय आत्मा तथा परम देवता हो, यह जानकर भी मैं तुम्हारे चरणों की वंदना नहीं कर पाया एवं तुमसे विमुख रहा। यही कारण है कि इस संसार सागर में मैं दु:ख भोग रहा हूँ।

''जिहेतु तोमार चरण पङ्कजे नभजिलोँ नारायण।
सिहेतु अनादि अविद्या आमाक करिल ज्ञान उछन।।
तुमि निज पितृ गुरु इष्टदेव नभजोँ तोमार पावे।
एहि दोषे मोक यमदुते धरि यातना दु:ख भूञ्जावे।।
तुमि प्रिय आत्मा परम देवता तोमात भैलोँ विमुख।
एतेके तोमार मायाये आमाक दिलेक संसार दु:ख।।''[27]

माधवदेव अपने दास्य भक्ति के स्वरूप को समझाते हुए यह भी कहते हैं कि जिस भक्त को हरि के चरणों से प्रेम हो गया, उन्हें कभी भी दूसरी संपत्ति से प्रेम नहीं हो सकता :-

''हरि चरणत प्रेम मिलिल जाहार।
आन कोन संपत्ति हरियों भैल तार।।''[28]

माधवदेव भगवान से रूठकर प्रश्न भी पूछते हैं कि मुझे दास रूप में अपनाकर मेरे ऊपर कृपा करने से तुम्हारी क्या हानि होगी। इनके नाम धर्म में भक्त भगवान के अत्यंत करीब अनुभव करता है, जहाँ उनसे प्रेमपूर्वक बात भी कर सकता है और समय-समय पर रूठ भी सकता है :-

''मोक निज दास करि लैले हरि ए
कहियो कृपाल कि हय तोमार हानि।।''[29]

माधवदेव ने दास्य भक्ति के स्वरूप और महत्व को भक्ति रत्नावली में बताया है। उनका दास्य भक्ति मूलत: भागवत भक्ति के लिए ही है। भक्त सभी कर्मों को भगवान के चरणों में अर्पण करके नि:स्वार्थभाव से उनके चरणों की वंदना द्वारा सांसारिक आसक्तियों से दूर हो सकता है। वह कहते हैं कि कृष्ण नाम श्रवण एवं कीर्तन द्वारा मनुष्य परम निर्मलता को प्राप्त कर सकता है। सभी शास्त्रों में वर्णित है कि जहाँ भगवान के दास निवास करते हैं, वहीं तीर्थ स्थान है और इस कथन का प्रमाण ब्रह्मा देव भी देते हैं :-

''आरम्भिलो बिरचन आत अनन्तर।
दास्य भाव निरूपण करोहोँ कृष्णर।।
परम कृतार्थ श्रीकृष्णर दास जत।
कोने करिबेक तारा सवर महत्व।।
जार कृष्ण आदि नाम श्रवण मात्रके।
निरन्तरे नरे होवे निर्मल एतेके।।
हेन तीर्थ पद माधवर दास जत।
तासम्बार किबा रैल साध्य साधनत।।
दास मात्र कृतकृत्य होवे सर्बत्रत।
कहिलो निश्चय सर्ब शास्त्रर सम्मत।।
इहलोके कृतार्थ भैलन्त जेन मत।
लैलोक प्रमाण ब्रह्मा देवर बाक्यत।।''[30]

डॉ. करबी डेका हजारिका अपनी पुस्तक में लिखते हैं- *''माधवदेव ने अपने दास्य भक्ति के माध्यम से परमानंद तक पहुँचने का एक रास्ता निकाला है। इसीलिए*

उनकी रचनाओं में जहाँ भी व्यक्तिगत आवेग दिखाई देता है, वहीं एक मधुर आत्मसमर्पण भाव का भी उदय देखा जाता है।''[31]

श्रीमंत शंकरदेव एवं माधवदेव की सभी रचनाओं में मूलत: भागवत पुराण का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। दोनों गुरुओं ने भागवत की व्याख्या करने के लिए श्रीधर स्वामी द्वारा लिखित 'भागवत भावार्थ दीपिका' भाष्य से मदद ली है। उनके के अनुसार भागवत पुराण ही वेद-वेदांत का सार है। माधवदेव ने नामघोषा में भागवत को वेदांत का सार एवं अमृत रस कहा है :-

''समस्त वेदांत सार महा भागवत शास्त्र इहार अमृत रस पाइ।

परम संतोषे पान करीले जिजने तार अन्य रसत रति नाइ।।''[32]

नामघोषा में रचित एक हजार पदों में से 61 पद मूलत: भागवत पुराण से लिए गए हैं। नामघोषा के अंदर ब्रह्म, जीव तथा जगत की व्याख्या की गई है। उनके द्वारा रचित बरगीतों में वेदांत का ज्ञान का है। उनके बरगीतों का नायक नटखट शिशु कृष्ण हैं, जो ब्रह्म के अवतार हैं। माधवदेव बरगीत में कहते हैं कि भगवान की माया को इंद्र, ब्रह्मा, शिव आदि श्रेष्ठ देवगण भी नहीं समझ पाते हैं। इस माया के वशीभूत होकर जीव असत्य संसार को सत्य मानकर भ्रम में जीता है। वह यह भूल जाता है कि केवल हरि ही परम सत्य है।

''नारायण माया जानब कोई।
सुरपति, चतुरबयन, मुनि शंकर चिन्तिते आकुल होइ।।
अघट घटन पटु चातुरी जो नित अनित समान सब होइ।
जतये अनित नित सम भाषत ऐचन चातुरी हरि तोइ।।''[33]

माधवदेव द्वारा रचित नामघोषा में माया, अविद्या एवं प्रकृति की विस्तृत व्याख्या की गयई है। डॉ. करबी डेका हजारिका अपनी पुस्तक में माया, अविद्या एवं प्रकृति को समझाते हुए लिखते हैं- *''माया कपटी गुणों से युक्त है, इसीलिए उसे अविद्या कहा गया है। अनादि ब्रह्म के अंश होने के कारण माया भी अनादि है। ईश्वर की सहयोगी होने के कारण माया को प्रकृति भी कहा जाता है।''*[34] नामघोषा में माधवदेव माया को एक रहस्यमय शक्ति के रूप में देखते हैं, जो निरंतर दु:ख एवं यंत्रणा का कारण है। यह माया रूपी रहस्य से केवल भगवान ही रक्षा कर सकते हैं। इसीलिए माधवदेव भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह प्रसन्न होकर अपने महिमा द्वारा जीवों को माया के बंधनों से निकालकर रक्षा करें।

''नमो नमो नारायण प्रसन्न हुयोक हरि करियोक मायार निर्ज्यान।

अपुनार महिमाक आपुनि बेकत करि जीवक करियो परित्राण।।''[35]

वेदांत दर्शन के अनुसार ब्रह्म इस जगत का एकमात्र सत्य शक्ति है। अन्य शक्तियाँ जैसे जगत, देह, मन, बुद्धि, चित्त आदि सब उसी सत्य का रूप एवं नाम हैं। माधवदेव अपनी रचना 'जन्म रहस्य' में कहते हैं कि जिस प्रकार मिट्टी के बिना घट का कोई अस्तित्व नहीं है, जिस प्रकार सुत के बिना कपड़ा का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्म के बिना तीनों लोकों में किसी भी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है।

''जेन माटि बिने स्थिति नाहिको घटर।
घट ब्यतिरेके माटि थाके निरन्तर।।
तुमि मात्र सञ्का मिछा आन रूप जत।
जेन नाना लता चटा देखिया वस्त्रत।।
सुता मात्र सञ्का परमार्थ बिचारत।
एतेके तुमिसे सत्य तिनिओ लोकत।।''[36]

जीव जब ब्रह्म में विलीन होता है, तभी मुक्ति मिलती है। माया से मुक्त जीव अपने-आप को परमब्रह्म के अंश स्वरूप अनुभव करने लगता है। परमात्मा से मिलन की यही अनुभूति ही मुक्ति है। अविद्या के अंधकार में विलीन होकर जीव इस संसार सागर में घूमता रहता है और परमपिता के चरणों में मुक्ति के लिए प्रार्थना करता रहता है :-

''नारायण, मागो चरण रति तेरा। इति तिनि भुवन
तुमहि बर ठाकुर, नाहि जानत मति मेरा।।
भुवन चतुरदश काया फिरत मेरि बेरि बेरि अन्त नहोई।
तारु तारु तारु इबेरि नारायण थोरे करुणा करू मोई।।''[37]

माधवदेव के अनुसार ज्ञान, कर्म और भक्ति के इन तीनों मार्ग से भगवान की कृपा प्राप्त की जा सकती है, जिसमें भक्ति उत्तम पथ है। डॉ. करबी डेका हजारिका

शंकरदेव एवं माधवदेव के भक्ति स्वरूप को अद्वैत का विस्तार मानते हैं। श्रीमंत शंकरदेव कीर्तन घोषा में लिखते हैं :-

''तोमार अद्वेतरूप परम आनंद पद
ताते मोर मग्न हौक चित्त।
भैलोहो दासर दास जानि आवे नरहरि
आमाक नेरिबा कदाचित।।''[38]

माधवदेव की रचनाओं में भगवान के कई नामों और रूपों का वर्णन मिलता है। कहीं-कहीं सगुण स्वरूप का वर्णन करते हुए अंत में निर्गुण स्वरूप की उपासना पर जोर देते हैं। उनके अनुसार सगुण ब्रह्म की उपासना अंत में निर्गुण ब्रह्म की उपासना में विलीन हो जाता है। वही परमतत्व सत्य, शुद्ध, नित्य एवं अखंडित है। इस जड़ जगत में एक मात्र वही चैतन्य है।

''कृष्ण एक देव दु:खहारी काल मायादिरो अधिकारी
कृष्ण बिने श्रेष्ठ देव नाहि नाहि आर।
सृष्टि स्थिति अन्तकारी देव तान्त बिने आन नाहि केव
जानिबा विष्णुसे समस्त जगते सार।।
नमो नमो नित्य निरञ्जन नारायण शिव सनातन
अनादि अनन्त निर्गुण गुण नियन्ता।
परम पुरुष भगवन्त नाहि पूर्ब्बापर आदि अन्त
तुमिसे चैतन्य समस्त भव भावन्ता।।''[39]

श्री माधवदेव असमिया समाज के जातीय गुरु हैं, जिन्होंने श्रीमंत शंकरदेव के बाद संपूर्ण असम में वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। ऐसे कालखंड में जब भागवत पुराण आदि सभी शास्त्रीय ग्रंथों का पठन केवल ब्राह्मण आदि लोग ही करते थे, तब माधवदेव ने अपने तत्वमूलक रचनाओं, बरगीतों, नाटकों आदि के माध्यम से साधारण जनता को भागवत तत्व से परिचित करवाया। निरक्षर जनता को वेदांत ज्ञान से समृद्ध बनाने का प्रयास किया। गुरु के चरणों में जीवन न्योछावर करने वाले, वैष्णव भक्ति एवं आदर्श में एकनिष्ठ आस्था रखने वाले, संगठन शक्ति के सिद्धहस्त, कवित्त गुणों से प्रस्फुटित माधवदेव का व्यक्तित्व सदैव चीर स्मरणीय और वंदनीय रहेगा। ❑

संदर्भ :

1. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 3
2. श्रीशंकरदेव और श्रीमाधवदेव- लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा, साहित्य प्रकाश, गुवाहाटी, 1963, पृष्ठ 52
3. श्रीशंकरदेव और श्रीमाधवदेव- लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा, साहित्य प्रकाश, गुवाहाटी, 1963, पृष्ठ 53
4. असमीया साहित्य की समीक्षात्मक इतिवृत- डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2018, पृष्ठ 133
5. माधवदेव, साहित्य, कला और दर्शन-डॉ. करबी डेका हजारिका, वनलता प्रकाशन, डिब्रूगढ़, 2014, पृष्ठ 21
6. असमीया साहित्य की समीक्षात्मक इतिवृत- डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2018, पृष्ठ 135
7. माधवदेव, साहित्य, कला और दर्शन-डॉ. करबी डेका हजारिका, वनलता प्रकाशन, डिब्रूगढ़, 2014, पृष्ठ 21
8. असमीया साहित्य की समीक्षात्मक इतिवृत- डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2018, पृष्ठ 137
9. असमीया साहित्य की समीक्षात्मक इतिवृत्त- डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2018, पृष्ठ 137
10. पुरणी असमीया साहित्य- डॉ. वाणीकांत काकति, असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी, 2014, पृष्ठ 12
11. नामघोषा- देवीप्रसाद बागड़ोदिया, शांति प्रकाशन, गुवाहाटी, 2017, पृष्ठ 11
12. असमीया साहित्य की समीक्षात्मक इतिवृत्त- डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2018, पृष्ठ 138
13. असमीया साहित्य की रूपरेखा- डॉ. महेश्वर नेओग, चंद्र प्रकाश, गुवाहाटी, 2019, पृष्ठ 102
14. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हाजरिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 657
15. माधवदेव, साहित्य, कला और दर्शन- डॉ. करबी डेका हजारिका, वनलता प्रकाशन, डिब्रूगढ़, 2014, पृष्ठ 92
16. भक्ति रत्नावली- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 56
17. भक्ति रत्नावली- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 30
18. भक्ति रत्नावली- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 56
19. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 697
20. भक्ति रत्नावली - डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 39
21. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 660

22. भक्ति रत्नावली- डॉ. सूर्य हाजरिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 47
23. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 745
24. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 672
25.कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 732
26. भक्ति प्रदीप, पृष्ठ 18
27.कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 733
28. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 749
29. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 796
30. भक्ति रत्नावली- डॉ. सूर्य हाजरिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2015, पृष्ठ 220
31. माधवदेव, साहित्य, कला और दर्शन- डॉ. करबी डेका हाजरिका, वनलता प्रकाशन, डिब्रूगढ़, 2014, पृष्ठ 102
32. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 660
33. बरगीत- श्री रत्नेश्वर भराली (संपादक), बुक होम, जोरहाट, 2009, पृष्ठ 91
34. माधवदेव, साहित्य, कला और दर्शन- डॉ. करबी डेका हजारिका, वनलता प्रकाशन, डिब्रूगढ़, 2014, पृष्ठ 110
35. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 670
36. माधवदेव, साहित्य, कला और दर्शन- डॉ. करबी डेका हजारिका, वनलता प्रकाशन, डिब्रूगढ़, 2014, पृष्ठ 112
37. बरगीत- श्री रत्नेश्वर भराली (संपादक), बुक होम, जोरहाट, 2009, पृष्ठ 91
38. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 429
39. कीर्तन घोषा और नाम घोषा- डॉ. सूर्य हजारिका (संपादक), वाणी मंदिर, गुवाहाटी, 2021, पृष्ठ 757

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

तुलसी के काव्य में समरसता

त्रिपुरेश गोंड

शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
रूम नं. 53, पीजी मैन होस्टेल,
दिल्ली विश्वविद्यालय- 110007
7701905702
tgdu7701@gmail.com

प्रो. स्नेह लता नेगी

सह-लेखक, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली- 110007
8586066430
Negi.Sneh@gmail.com

प्राचीन काल से भारत वर्ष अनेक संस्कृतियों की संगम स्थली रहा है, समय-समय पर इस देश में कई संस्कृतियाँ आईं और भारतीय संस्कृति में मिलकर एक हो गईं। समरसता की भावना हमारे देश की एक विशेष प्रवृत्ति के रूप में दृष्टिगत होती है यहाँ की शिक्षा, संस्कृति, धर्म, समाज, साहित्य सभी में किसी-न-किसी रूप में समरसता की भावना निहित है। कहने का तात्पर्य है कि समाज से लेकर साहित्य के सभी उपादानाओं में अन्य देशों की अपेक्षा भारत में समन्वय व सामाजिक समरसता की भावना ज्यादा प्रखर रूप में परिलक्षित होती है।

गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्याकाश के महान कवि हैं। यद्यपि वे साहित्य सर्जन तो हिंदी में करते हैं, किंतु वे संपूर्ण भारत की जनता के हृदय में वास करने वाले शिरोमणि कवि हैं। उनका संपूर्ण काव्य समरसता की विराट चेष्टा है। उनका काव्य जितना साहित्य अध्ययनों के बीच प्रचलित है, उतना ही या कह सकते हैं कि उससे ज्यादा लोगों में प्रचलित है। तुलसीकृत रामचरितमानस का महत्व लोग जगत में पूर्णतया परिव्याप्त है। रामचरितमानस के रूप में समन्वय का अद्वितीय आदर्श तुलसी ने प्रस्तुत किया। वे लोक द्रष्टा कवि के रूप में जाने जाते हैं।

प्रसिद्ध आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी तुलसी को समन्वयवादी कवि के रूप में देखा और वे तुलसी के काव्य के संबंध में लिखते हैं, *''लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार्य निष्ठा, विचार, पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण व सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय है। रामचरितमानस शुरू से अंत तक समन्वय का काव्य है।''*[1]

तुलसी के काव्य में समन्वय के साथ-साथ सामाजिक समरसता व सामाजिक सौमनस्य की भावना भी सतत दृष्टिगत होती है। तुलसी का संपूर्ण काव्य सामाजिक समरसता से परिव्याप्त है। सामाजिक समरसता को इस प्रकार स्पष्ट किया जाए, जिससे सामाजिक समरसता अलग-अलग विचित हो सके। *''समाज एक से अधिक व्यक्तियों के समूह का नाम है तथा समाज शब्द से हमारा अर्थ दो व्यक्तियों के सामाजिक संपर्क से भी हो सकता है। दो या अधिक समुदायों के बीच परस्पर संपर्क से भी।''*[2] अंत समाज में व्यक्ति और व्यक्ति का समाज से

क्या अंतर संबंध है, इसकी व्याख्या होती है। मानव संबंधों के जाल को समाज की संज्ञा दी जाती है। समाज से व्यक्ति दूसरे लोगों के संपर्क में आने से सामाजिक व्यवहार सीखता है, जिसे व्यक्तित्व की निर्मिती होती है। तुलसी के काव्य में सामाजिक समरसता को जानने के लिए सबसे पहले समरसता शब्द के अर्थ का उद्घाटन आवश्यक है।

समरसता *'समरसता होने का भाव'* [3] वि: (सं समरस) (भाव-समरसता, सामरस्य) (समान विचार के या एक तरह की सदा साथ रहने वाला) जीवन में आनंद प्राप्ति के लिए सभी क्षेत्रों में समरसता का होना आवश्यक है।

सामाजिक समरसता में रहने वाले व्यक्तियों की आदर्श स्थिति है। इस आदर्श स्थिति में समाज के लोग धर्म, संस्कृति, भाषा क्षेत्र तथा आर्थिक व सामाजिक स्थितियों से उपजे विभिन्न नेताओं को बुलाकर समाज में रहने वाले व्यक्तियों के विचारों तथा मान्यताओं को पूरा सम्मान व आदर देते हैं और स्थित की भावना से समाज में रहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी विशेष समाज के सदस्यों के मध्य द्वंद्वहीनता की स्थिति में सामाजिक सद्भाव, सामाजिक सौमनस्य या सामाजिक समरसता है।

साहित्य शब्द के मूल में समभाव या समरसता के भाव निहित हैं, ऐसा कहना गलत ना होगा। *''साहित्य शब्द संस्कृत के 'सहित' शब्द से निर्मित है, जिसका अर्थ है साथ-साथ। साहित्य शब्द का अर्थ इसलिए साथ-साथ रहने का भाव हुआ।''* [4] साहित्य शब्द में सम्मिलित होने या एक में एक होने का भाव निहित है। साहित्य समाज का वह लिखित रूप है, जो समाज में मानव मनोविज्ञान द्वारा संचित किया जाता है और कवि या लेखक अपनी कृतियों में उतारता है। साहित्य मानव जीवन से सीधा उत्पन्न होकर मानव जीवन को सीधे प्रभावित करता है, जो हमारे समक्ष विविध विधाओं के माध्यम से उपस्थित होता है। *''साहित्य में कोई भी विधा सामाजिक समरसता से अछूती नहीं है। साहित्य केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रंथ का ग्रंथ के साथ मिलन ही नहीं, बल्कि यह बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का मिलन कैसे होता है। साहित्य में समर्थकों और असमर्थ के सामंजस्य की भी शक्ति निहित होती है।''* [5]

तुलसी का साहित्य मानव संवेदना के कृत्य की वाणी है। तुलसी लोक द्रष्टा व युग द्रष्टा रचनाकार हैं। सच्चे अर्थों में देखा जाए तो वे सूक्ष्म द्रष्टा थे। उन्होंने सामाजिक विषमता को बारीकी से जाँचा-परखा और प्रथम प्रयास किया कि समाज व साहित्य से यह विषमता मिट सके और मानव सामंजस्य व समरस स्थितियों में रह सके। वे लोक मंगल का भाव लेकर साहित्यिक जगत में कदम बढ़ाते हैं। तुलसी की अंतर्वेदी दृष्टि समाज, धर्म, राजनीति, दर्शन, संप्रदाय आदि में परिव्याप्त विषमता को दूर करने का एक ही मार्ग खोजती है- वह सामंजस्य व समन्वय का। एक सजग सर्जक की संवेदनशीलता तुलसी में निहित है। वे मनुष्य को मनुष्य से तुच्छ व अस्पृश्य बनाने वाली स्थिति के घोर विरोधी हैं। समरसता की भावना से राजनीति को समदर्शी व शासन को जनहितकारी या लोक कल्याणकारी बनाया जा सकता है। राम भक्ति के आधार पर समरसता का पाठ तुलसी ने साहित्य में जोड़कर एक अप्रतिम कार्य किया।

तुलसी का साहित्य समाज के अंदर समरसता, सद्भाव एवं सहिष्णुता स्वच्छ वायु लेकर प्रकट होता है। तुलसीदास ने जाति, वर्ग तथा धर्म के नाम पर बँटे लोगों की चेतना को झकझोर कर सामाजिक समरसता का मार्ग प्रशस्त किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि मानव जीवन का कल्याण तथा सार्थकता समरसता से ही संभव है। तुलसीदास एक बहुत ही संवेदनशील रचनाकार थे कि समाज में धर्म या जाति-संप्रदाय के नाम पर चली आ रही सामाजिक विषमता को नजरअंदाज कर अपना मन ईश्वर भक्ति में नहीं लगा सके, इसलिए सामाजिक समरसता व धार्मिक सद्भाव को बनाए रखने के लिए उन्होंने 'रामचरितमानस' की सृष्टि की। इस महान धार्मिक महाकाव्य में उनके इस प्रयास व परंपरा के मूल्यांकन में रामविलास शर्मा तुलसी की सामंजस्य व समरसतावादी दृष्टि का विवेचन इस प्रकार करते हैं, *''भक्ति आंदोलन अखिल भारतीय सांस्कृतिक आंदोलन था। इस आंदोलन की श्रेष्ठ देन थे तुलसीदास। उन्होंने निर्गुण पंथियों व*

सगुण मतावलंबियों को एक किया। उन्होंने वैष्णव वह शाक्तों को मिलाया। उन्होंने भक्तों के आधार पर जनसाधारण के लिए धर्म को सरल व सुलभ बनाकर पुरोहितों के धार्मिक एकाधिकार की जड़ें हिला दीं। तुलसीदास मानवीय करुणा के अन्यतम कवि हैं। उनके राम दीनबंधु हैं। 'सबरी गीध सुसेवकानी, सुगति किन्ह रघुनाथ।' वनवासी कोलकिरात राम के दर्शन से प्रसन्न होते हैं। आभीर, जवन, किरात, खस, स्वपचादि सभी राम के स्मरण से मोक्ष-लाभ करते हैं।''[6]

यद्यपि तुलसीदास भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा की राम भक्ति शाखा के शिरोमणि कवि हैं, वे राम को सगुण रूप के उपासक हैं, किंतु उन्होंने कहीं भी ईश्वर के निर्गुण रूप को नकारा नहीं, अपितु दोनों की समरसता पर जोर दिया। तुलसी के अनुसार निर्गुण व सगुण में कोई तात्विक भेद नहीं, केवल वेश का अंतर है निर्गुण अरूप है, वहीं हमारी प्रीति-आस्था के अनुसार सगुण रूपवान तथा मानवीय हो जाता है। उनकी मान्यता थी कि प्रीति और प्रेम का कोई अवलंब होना चाहिए था। उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप की भक्ति पर विशेष बल दिया। तुलसीदास के इस तर्क में इतनी प्रभावत्मकता थी कि उस समय पूर्व सगुणोपासक धारा फूट पड़ी तथा निराकार उपासना करने वालों में भी सगुण भक्ति के प्रति आकर्षण जागा।

गोस्वामी तुलसी ने निर्गुण और सगुण के प्रश्न पर व्याप्त विद्वेष एवं वैमनस्य को दूर करते हुए उन दोनों की भक्ति धाराओं और उनके मतालवंबियों में समरसता स्थापित करने का प्रयास किया। वे कहते हैं कि भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर ही वही निर्गुण निराकार ब्रह्म सगुण साकार रूप ले लेता है। यथा-

''सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।। अगुन अरुप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।। जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें ।। जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा।।''[7]

इस प्रकार तुलसीदास जी कहते हैं कि जल, बर्फ और ओले एक ही तत्व (जल) के विविध रूप हैं, जबकि इनका रूप अलग-अलग है। इस प्रकार एक ही बार ही एक ही कमी निर्गुण तो कभी सगुण रूप में विस्तृत होते हैं। इस प्रकार तुलसीदास ने अपने साहित्य में निर्गुण और सगुण ईश्वर में समन्वय स्थापित कर समरसता का प्रसार करने का पूर्ण प्रयास किया।

सामाजिक समरसता के लिए तुलसी ने अपने साहित्य में निषाद तथा सबरी जैसी निम्न वर्ग के लोगों को भी श्रीराम का प्रिय पात्र बनाया है। इसका संदेश यह है कि ईश्वर के समक्ष सभी व्यक्ति समान होते हैं। वहाँ समाज की भाँति जाति वर्ग, ऊँच-नीच का भेद नहीं किया जाता। उदाहरण के रूप में यह पंक्ति द्रष्टव्य है- 'सिय राम मय सब जगजानी। करऊं प्रनाम जोरि जुग पानी।' तुलसी ने रामचरितमानस में गुरु वशिष्ठ को निषादराज को गले लगाते हुए दिखाकर ब्राह्मण व शूद्र में समरसता अर्थात जातिगत विषमता मिटाने का प्रयास किया है। तत्कालीन समय में जातीय विषमता समाज में वैमनस्य का कारण बनी थी। अर्थात उस समय जातिगत भेद बहुत अधिक फैला था। उस भेद को दूर करने के लिए जनता के सामने एक उच्च आदर्श प्रस्तुत करना अत्यंत आवश्यक था। राम के वन जाते समय मार्ग में भोले-भाले ग्रामीणजनों को देखकर उनसे तादात्म्य स्थापित करते हैं। निषादराज से सखा भाव स्थापित करते हैं, सबरी का आतिथ्य ग्रहण करते हैं, कोल कीरात आदि वन जातियों के बीच उनके सहभागी के रूप में उपस्थित होते हैं। सभी के प्रति आत्मीयता स्थापित करते हैं। वानर-भालू आदि को संगठित करते हैं। सीता भोली-भाली ग्राम में वनिताओं, बधुओं के प्रश्नों का आडंबरहीन सहज भाव से उत्तर देती हैं। वे पति का नाम नहीं लेतीं। पूर्वी क्षेत्रों में ऐसी मान्यता है कि स्त्रियों द्वारा अपने पति का नाम लेने से उनके पतियों की आयु कम होती है। लक्ष्मण का परिचय तो उन्हें देवर बता कर कर देती हैं, परंतु अपने पति का नाम नहीं लेती हैं।

तुलसी ने राम वनगमन के अवसर पर ग्राम वासियों तथा ग्रामीणों का प्रसंग राम कथा के बीच अपने सभी ग्रंथों में रखा है। यह सामाजिक समरसता को बढ़ाने का प्रयास है, जो कि तुलसी ने अपनी कृतियों द्वारा किया। यह मनुष्य के प्रति मनुष्य की जैसी स्थिति है, जिस पर तुलसी का ही ध्यान जा सकता है। उदाहरण देखिए-

''सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं। पूछति ग्राम बधू सिय सों कहाँ साँवरे से सखि रावरे को है।''[9]

मानस में जहाँ एक तरफ सगुण निर्गुण का समन्वय, लोक और वेद का समरसता, ज्ञान व भक्ति का समनव्य हुआ है, वहीं शैव व वैष्णवों का समन्वय स्थापित कर तुलसी ने सामाजिक समरसता उत्पन्न की है। भारतीय विचारधारा में त्रिदेव की परिकल्पना ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में की गई है। जहाँ ब्रह्मा को सर्जक, विष्णु को पालक व महेश को संघारकर्ता के रूप में जाना जाता है। विष्णु के भक्त वैष्णव, शिव के उपासक शैव कहलाते हैं। धीरे-धीरे वैष्णव में विभिन्न कारणों से वैमनस्य एक समय अपने चरम पर था। तुलसी ने अपने साहित्य के माध्यम से यह समझाने का पूर्ण प्रयास किया कि शायद वैष्णव में कोई तांत्रिक भेद नहीं है। मानस में शिव और विष्णु के अवतार राम का उपासक दिखलाकर शिव के द्वारा यह कहलवाया-*''सोई मम इष्टदेव रघुवीरा। सेवत जाहि सक्ष मुनि धीरा।।''*[10]

तो वहीं, दूसरी ओर राम के शिव का अनन्य भक्त सिद्ध करते हुए तुलसी ने शैव और वैष्णव मत का समन्वय कर समरसता की शिक्षा दी। वे लिखते हैं-

''हरी हर पद मति न कुतरकी तीनह कहूं मधुर कथा रघुवर की।''[11]

अन्य स्थान पर तुलसीदास जी कहते हैं कि जो राम से प्रेम करते हैं, किंतु शंकर से द्रोह करते हैं- ऐसे अल्पज्ञानी मूर्ख को नरक में वास करना पड़ता है। *''शंकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भीर घोर नरक महूं बास॥'*[12]

इस प्रकार तुलसी शैव और वैष्णव दोनों में समन्वय स्थापित कर समरसता का भाव जगाने का सफल प्रयास करते हैं।

तुलसी की समरसतावादी प्रतिभा से साहित्य भी अछूता नहीं रहा। उन्होंने अपनी रचनाओं में किसी निश्चित बँधी बँधाई परिपाटी की शैली में ही रचना नहीं की, अपितु उस समय प्रचलित सभी काव्य शैलियों को अपनाया। साथ ही भाषा में संस्कृतनिष्ठ हिंदी, अवधि के साथ ब्रज लोक में प्रचलित शब्दावली का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया। शैलियों में एक तरफ से प्रबंध तो दूसरी ओर मुक्तक का प्रयोग कर समन्वय दृष्टि का परिचय दिया। रामचरितमानस में एक साथ संस्कृत व अवधी भाषाओं में सामंजस्य स्थापित किया, जो पूरे मानस को विशेष महत्व प्रदान करता है ऐसा अद्‌भुत संयोग स्थापित करने के पीछे तुलसी का लोक के प्रति भाव दिखाई देता है। रामचरितमानस राजा से लेकर साधारण मनुष्य के बीच प्रचलित हुई है। इस प्रकार तुलसी जी ने भाषा व शैली के माध्यम से भी समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।

तुलसी के साहित्य में राजा व प्रजा की समरसता का आदर्श रूप उनके रामचरितमानस में दिखाई देता है। समाज की व्यवस्था में सुचारू संचालन की जिम्मेदारी वहाँ के सत्यवादी राजा की होती है, किंतु जब कोई राजा अपनी प्रजा के साथ सामंजस्य बनाकर नहीं चलता तो अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। तुलसी ने राम राज्य के रूप में आदर्श शासन की व्यवस्था की स्थापना अपने साहित्य के माध्यम से की है।

''कहब संदेसु भरत के आये। नीति न तजिअ राज पदु पाएं॥

पालेहु प्रजाहि करम मन बानी। सिएहु सकल सम जाली॥''[13]

राजा राम अपनी प्रजा पर बल प्रयोग के प्रबल विरोधी थे। लंका से अयोध्या वापस आते समय सीता जी को देखने के लिए वानरों की भीड़ उमड़ पड़ी। जब सीता जी के साथ चल रहे रक्षक रीछ वानरों को रोकने के लिए डंडे से प्रहार करने लगे, तब यह देखकर श्री राम ने विभीषण से मुस्कुरा कर कहा- विभीषण तुम सीता को पैदल ही ले जाओ ताकि यह वानर सीता जी को देख सके। उदाहरण-

''बेतपानि रच्छक चहु पासा। चले सकल मन परम हुलासा॥
देखन भालु कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए॥
कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु॥
देखहूँ कपि जननी की नाई। बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥''[14]

तुलसी के साहित्य में समरसतावादी भावना से समाज का कोई कोना अछूता नहीं रहा है। वे सदा ही लोक मर्यादा, सामाजिक व्यवस्था, सदाचार और श्रुति होने का ध्यान रखते हैं। अपनी विविध कृतियों के द्वारा आदर्श की स्थापना करना समाज में सौमनस्य की प्रतिष्ठा करना तुलसी का विकास है। खंडन-मंडन की प्रवृत्ति से दूर रहकर तुलसी ने समरसता को आगे बढ़ाने का कार्य किया, जिससे समाज में व्याप्त कटुता, वैमनस्य का नाश हो सके और सामाजिक समरसता व सहानुभूति-सौहार्द्रपूर्ण वातावरण की सृष्टि हो सके।

रामचंद्र शुक्ल तुलसी के संदर्भ में लिखते हैं, *''स्वामी तुलसी के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सर्वांगपूर्णता जीवन के किसी एक पक्ष को सर्वथा छोड़कर नहीं चलती, सब बच्चों के साथ उसका सामंजस्य है।''*[15]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तुलसी का साहित्य अपनी प्रौढ़ता व सर्वांगपूर्णता में अप्रतिम है, जो सबसे अधिक रामचरितमानस के माध्यम से हरित होता है तुलसी का संपूर्ण काव्य समरसता की भावना से ओत-प्रोत दिखाई देता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ. 10
2. डॉ. कविता बाचक नवी, समाज भाषा विज्ञान, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 31
3. हिंदी शब्दकोश, हरदेव बाहरी पृ. 804
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य सहचर, प्रकाशक मुकुंद द्विवेदी नैवेद्रद्य निकेतन, रवींद्र पुरी, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण. 1995, पृ. 02
5. डॉ. आर्या प्रसाद त्रिपाठी, कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, सरोज प्रकाशन इलाहाबाद - 2, प्रथम संस्करण 1974, पृ. 23
6. रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 93
7. तुलसीदास, श्री रामचरितमानस, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीत प्रेस गोरखपुर 258वाँ पुनः मुद्रण सं, 2069, बालकांड 51/8, पृ. 72
8. वही, बालकांड 8/2, पृ. 28
9. तुलसीदास कृत कवितावली, संपादक योगेन्द्र प्रताप सिंह, जय भारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2002, अयोध्याकांड, 21/3, पृ. 4
10. तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर 258 वाँ पुनः मुद्रण, संख्या 2069, बालकांड 51/8, पृ. 72
11. वही, बालकांड 9/6, पृ, 29
12. वही, बालकांड 2, पृ, 774
13. तुलसीदास श्रीरामचरितमानस टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर 258 वाँ पुनः मुद्रण संख्या 02069, अयोध्याकाण्ड 152/34, पृ. 470
14. वही, लंकाकांड 108/9-12, पृ. 886
15. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संरकरण 2019, पृ. 115

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

कवि पाश के काव्य में नारी जीवन की यथार्थपरक अभिव्यक्ति

आकाश दीप

शोधार्थी, हिंदी विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल
केंद्रीय विश्वविद्यालय
श्रीनगर, उत्तराखंड-246174
9557275867
Akas045.deep@gmail.com

तुषार माहन

शोधार्थी, हिंदी विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल
केंद्रीय विश्वविद्यालय
श्रीनगर, उत्तराखंड-246174
9910168692
kalptaru219@gmail.com

शोध-सार :

कवि पाश (अवतार सिंह संधु) पंजाबी साहित्य के क्रांतिकारी कवि हैं, जिनकी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ, अन्याय और शोषण के खिलाफ प्रतिरोध की प्रबल आवाज हैं। मात्र 37 वर्ष की आयु में आतंकवादियों द्वारा शहीद होने के बावजूद उनके काव्य संग्रह-लौहकथा, उड्डदे बाजाँ मगर, साडे समियाँ विच और लड़ांगे साथी आज भी जनसंघर्ष को प्रेरित करते हैं। पाश की कविताएँ नारी जीवन की पीड़ा, गरीबी, हिंसा और असमानता को मार्मिक ढंग से चित्रित करती हैं। उनकी दृष्टि मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है, जो पितृसत्ता और सामंती मानसिकता को नारी शोषण का मूल कारण मानती है। लौह, हम लड़ांगे साथी, बेवफा का दस्तावेज, संदेश, छन्नी और चिड़िया दा चंबा जैसी कविताएँ स्त्रियों के संघर्ष और 80 के दशक के पंजाब की हिंसा से उपजी उनकी व्यथा को संवेदनशीलता से दर्शाती हैं। पाश नारी को करुणा का पात्र नहीं, बल्कि शिक्षा, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान के लिए संघर्षरत शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा बनती है।

बीज शब्द :

नारी जीवन, शोषण, असमानता, पितृसत्ता, भेदभाव।

मूल आलेख :

पंजाबी साहित्य के चर्चित और क्रांतिकारी कवियों में अवतार सिंह संधु, जिन्हें साहित्य जगत में कवि पाश के नाम से जाना जाता है, का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका जन्म 9 सितंबर, 1950 को पंजाब के जालंधर जिले की नकोदर तहसील के गाँव तलवंडी सलेम में एक मध्यम वर्गीय किसान परिवार में हुआ। उनके पिता सोहन सिंह संधु भारतीय सेना की 'सिग्नल कोर' इकाई में कार्यरत रहे और मेजर के पद से सेवानिवृत्त हुए। कवि पाश की शिक्षा अनियमित रही, किंतु उनकी तीक्ष्ण बुद्धि और संवेदनशीलता ने उन्हें बचपन से ही सीमित पारिवारिक दायरे से बाहर ला दिया। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने से पहले ही अपनी पहली कविता लिख ली थी। संभवत: उन्हें कविता लेखन की प्रेरणा अपने पिता से मिली, जो स्वयं 'निर्मल' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। हालाँकि वे अपनी रचनाओं पर चर्चा नहीं करते थे, फिर भी पाश और उनके बड़े भाई ने संयोगवश उनकी कविताएँ देखीं, जिसने पाश की साहित्यिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया।

सन 1969 में पाश का पहला काव्य-संग्रह लौहकथा प्रकाशित हुआ और तभी से वे एक क्रांतिकारी कवि के रूप में पहचाने जाने लगे। इसके बाद क्रमश: उड्डदे

बाजाँ मगर (1974) और साडे समियाँ विच (1978) प्रकाशित हुए। चौथा संग्रह लड़ांगे साथी उनकी शहादत के पश्चात 1988 में स्मृति-समारोह के अवसर पर प्रकाशित हुआ। इन चार संग्रहों में लगभग 130 कविताएँ संकलित हैं, जिनमें जनजीवन की पीड़ा, सामाजिक अन्याय और प्रतिरोध की भावना प्रखर रूप से अभिव्यक्त हुई है। कविता-सृजन के अतिरिक्त पाश ने हाक, सियार, हेम-ज्योति और एंटी-47 जैसी पत्रिकाओं का संपादन भी किया। इनमें उन्होंने न केवल संपादकीय टिप्पणियाँ लिखीं, बल्कि राजनीतिक और सामाजिक लेखों के माध्यम से अपनी क्रांतिकारी वैचारिकी को भी सामने रखा। विशेष रूप से हाक और एंटी-47 पत्रिकाओं में उन्होंने खालिस्तानी विचारधारा का तीव्र विरोध किया और जनपक्षधर दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

अवतार सिंह संधु 'पाश' ने जीवन भर अन्याय और आतंकवाद का डटकर विरोध किया। इसी कारण 23 मार्च 1988 को, मात्र 37 वर्ष की आयु में उन्हें आतंकवादियों द्वारा शहीद कर दिया गया। यह वही तारीख है, जब भारत ने अपने महान क्रांतिकारी शहीद भगत सिंह को खोया था। इस प्रकार 23 मार्च भारतीय इतिहास के लिए दोहरी पीड़ा का दिन बन गया।

कवि पाश का साहित्य उनकी क्रांतिकारी चेतना और जनपक्षधरता का जीवंत दस्तावेज है। उनकी कविताएँ आज भी प्रतिरोध, संघर्ष और स्वतंत्रता की प्रेरणा देती हैं। उनकी कविताएँ अपने समकालीन कवियों एवं कविताओं की भाँति स्त्रियों के संदर्भ में दया एवं सहानुभूति का पात्र दिखाकर निराशा व्यक्त करने वाली कविताएँ कदापि नहीं हैं और न ही वे किसी प्रेमिका के रूप-सौंदर्य तथा नग्नता से मुग्ध होकर लिखी गई हैं, बल्कि वे समाज में नारी की स्थिति के यथार्थ चित्रों को सामने लाने का प्रयास करते हैं। उनकी कविताएँ एक लंबे समय की रूढ़िवादिता को समाप्त करने की लालसा उत्पन्न करती हैं, साथ ही निम्न शोषित वर्ग को अपने अधिकारों के प्रति लड़ने के लिए सचेत भी करती हैं। निस्संदेह उनका दृष्टिकोण स्त्रियों के संदर्भ में मार्क्सवाद से प्रभावित दिखाई पड़ता है। मार्क्सवादी विचारक स्त्रियों के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में उनकी सामाजिक स्थिति को चिह्नित करते हुए उनकी परतंत्रता एवं शोषण का मुख्य कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था तथा सामंती मानसिकता को स्वीकार करते हैं। एंगेल्स का मानना था कि- *''मातृसत्तात्मक समाज का पतन मानव जाति की विश्व-ऐतिहासिक पराजय थी। घर में भी पुरुष ने अब बागडोर संभाल ली, स्त्री का दर्जा और नीचा हो गया था तथा उसे गुलाम बना लिया गया। वह पुरुष की वासना की गुलाम बनकर केवल बच्चे पैदा करने के लिए मात्र साधन बन कर रह गई।''*[1] अर्थात समाज में पुरुष सत्ता का वर्चस्व होने के कारण नारियों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। उन्हें लंबे समय से घर की चारदीवारी में सीमित रखकर उनके अधिकारों का हनन किया जाता रहा है।

कवि पाश की कविताओं के माध्यम से नारी के प्रति उनके समय एवं दृष्टिकोण को समझने का अवसर प्राप्त होता है। वे स्त्रियों की शोषित एवं दयनीय स्थिति को अभिव्यक्त ही नहीं करते, बल्कि उनकी वर्तमान स्थिति में बदलाव लाने के साथ-साथ उन्हें स्वयं पर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध खड़े होने के लिए प्रेरित भी करते हैं। *''अपने गाँव के युवाओं को शिक्षित करने तथा उनमें आदर्श एवं मूल्यों को विकसित करने के उद्देश्य से उन्होंने 'उग्गी' गाँव में बालिकाओं के लिए एक विद्यालय भी खोला था। विद्यालय की दीवारों पर उन्होंने नारे लिखे थे। स्त्रियों को शिक्षा का महत्व बताने हेतु उन्होंने लिखा था — अनपढ़ स्त्रियाँ सदैव गुलाम बनी रहती हैं।''*[2]

स्त्री संदर्भ की बात करते हुए कवि पाश की यही विलक्षणता उन्हें अन्य समकालीन कवियों से भिन्न बनाती है। उनकी 'संदेश', 'उड़ते बाजा मगर', 'लड़ांगे साथी', 'छन्नी' एवं 'लौह' आदि कविताओं में नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं- जैसे बेसहारा स्थिति, गरीबी, लैंगिक भेदभाव, शोषण, अत्याचार एवं अपमान को चित्रित किया गया है। वे अधिकतर उन स्त्रियों की चर्चा करते हैं, जो असहाय, अभावग्रस्त और गरीब हैं, जिनके जीवन में ऐसे साथी का अभाव है, जो उनकी रक्षा कर सकें। गरीब होने के कारण पूँजीपति उनकी विवशताओं का शोषण करते हैं। समाज में महिलाओं के साथ दुष्कर्म, शोषण, यौन उत्पीड़न जैसी घटनाएँ इनके उदाहरण हैं। पाश की कविता 'लोहा' में स्त्रियों के अभावग्रस्त जीवन को चित्रित किया गया है —

''शहर से वीराने तक हर फर्क
बहन से वैश्या तक हर एहसास
मालिक से मुलाजिम तक हर रिश्ता
मशीनों में फंसकर फूंस की तरह उड़ने वाले लावारिसों की बीवियां
लोहे की कुर्सियों पर बैठे वारिसों के पास
कपड़े तक खुद उतारने के लिए मजबूर न हों।''[3]

इसी प्रकार 'हम लड़ांगे साथी' कविता असहाय व शोषित महिलाओं की पीड़ा पर प्रकाश डालती है। विशेष रूप से वे उन महिलाओं का चित्रण करते हैं, जिनका कोई सहारा नहीं है और जिनकी पीड़ा को दूर करने के लिए क्रांति की आवश्यकता है। पाश लिखते हैं —

''हम लड़ेंगे तब तक
सूजी आँखों वाली गाँव की अध्यापिका का पति
जब तक जंग से लौट नहीं आता।''[4]

यह पंक्तियाँ एक असहाय स्त्री के दर्द का मार्मिक चित्रण हैं, जिसका पति युद्ध में गया है। यह कविता केवल व्यक्तिगत दुख की नहीं, बल्कि उन असहाय स्त्रियों की सामूहिक आवाज है जिनके पास शादी और शिक्षा के अलावा कोई सुख नहीं है।

'बेवफा का दस्तावेज' कविता में उन्होंने नारी जीवन की कठिनाइयों, संघर्षों एवं सामाजिक प्रतिबंधों को सजीवता एवं संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया। पाश लिखते हैं कि नारी को अपने जीवन में संघर्षरत रहना पड़ता है और इस संघर्ष में पारिवारिक सहयोग का महत्व बढ़ जाता है। आज समाज में 'पिता', 'भाई', 'मामा' की आवश्यकता का उल्लेख नारी के जीवन में पारिवारिक एवं सामाजिक समर्थन की महत्वपूर्णता को दर्शाते हुए वे लिखते हैं-

''किसी सहेली के 'माइयें' पर जब कभी उखड़ जाएगा
लड़कियों में उसका बोल- मैं खुद ही समझ जाऊँगा
गीत की अगली पंक्ति, यानि कि
बहुत जरूरत है मामा की उस ब्याहता को
इस नाजुक से समय में।''[5]

कविताएँ न केवल नारी जीवन की समस्याओं को उजागर करती हैं, बल्कि समाज को इन समस्याओं के प्रति जागरुक करने का भी प्रयास करती हैं। पाश की संवेदनशीलता और गहरी समझ ने उन्हें नारी जीवन के वास्तविक चित्रण में सफल बनाया है। डॉ. अश्मनी कुमार का मानना है — *''पाश को नारी के दुखों की गहरी समझ है। वे उनके दुखों को भलीभाँति समझते हैं और उनके प्रति अपनी संवेदना प्रकट करने के साथ संघर्ष करने के लिए भी प्रेरित करते हैं।''*[6]

कवि पाश की कविता 'संदेश' में भी महिलाओं की दयनीय स्थिति का सजीव चित्रण मिलता है। इसमें उन्होंने उन महिलाओं का उल्लेख किया है, जो आज भी अशिक्षा, असमानता, न्याय एवं आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्षरत हैं। इन मेहनतकश महिलाओं को पूँजीपतियों द्वारा शोषित किया गया है और उन्हें समान अवसर प्राप्त नहीं हो पा रहे। समाज में व्याप्त शोषण एवं असमानता को पाश बड़े ही मार्मिक और प्रखर रूप में प्रस्तुत करते हैं —

''वाशिंगटन
यह जलावतन अपराधियों का झुंड
आज तुम्हें कलंकित करने चला है
यह उन डकैतों से भी बदनाम है और भगोड़ी कुंडली है
जिन्होंने तीन सदियों तक हमारे खेतों का गर्भपात किया
और यह उनके ही शोषण का प्रमाण है
कि मेरी बहिनें आज लगभग नंगी कॉलेज में पढ़ने जाती हैं।''[7]

यहाँ 'नग्नता' प्रतीकात्मक है, जो उनकी आर्थिक एवं सामाजिक दरिद्रता को व्यक्त करती है। पाश की कविताएँ केवल साहित्यिक रचनाएँ नहीं, बल्कि समाज को चेतावनी और जागरूकता का माध्यम भी हैं।

भारतीय समाज में लंबे समय से विवाह-त्योहारों में व्यर्थ खर्च करने की परंपरा रही है। आधुनिकता की होड़ में गरीब मजदूर वर्ग भी इसमें शामिल हो गया है। कभी अपनी इच्छा से तो कभी दहेज प्रथा के कारण उन्हें विवाह में अत्यधिक खर्च करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप मजदूर-निम्नवर्गीय लोग जमींदारों और पूँजीपतियों से ऋण लेते हैं और जीवन भर कर्ज तले दबे रहते हैं। इस विषय पर डॉ. विमल अग्रवाल लिखते हैं — *''आज मध्यवर्गीय परिवारों के लिए कन्या के विवाह हेतु दहेज जुटाना कठिन होता जा रहा है। इसके चलते उन्हें ऋण लेना पड़ता है। यदि ऋण की*

व्यवस्था नहीं हो पाती है तो कई व्यक्ति सामाजिक निंदा के भय से आत्महत्या तक कर लेते हैं।''[8] पाश ने 'उड़ते बाजा मगर' कविता में इसी समस्या का यथार्थ चित्रण किया है —

''यह तो सारी उम्र न उतरेगा
बहनों के ब्याहों पर उठाया कर्ज
खेतों में छिड़के खून का हर कतरा भी
इकट्ठा कर इतना रंग न बनेगा
कि चित्रित कर लेंगे,
एक शान्त मुस्कराते हुए इंसान का चेहरा।''[9]

यह कविता विवाह से जुड़ी आर्थिक विवशताओं का हृदयस्पर्शी चित्रण करती है। इस कविता में स्त्री की स्थिति और उसके विवाह से जुड़ी आर्थिक समस्याओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया है। कवि ने दिखाया है कि किस प्रकार सामाजिक परंपराएँ और रीतियाँ गरीब तथा मध्यम वर्गीय परिवारों पर आर्थिक बोझ डालती हैं। बेटियों के विवाह हेतु दहेज और खर्च जुटाने के लिए परिवार कर्ज में डूब जाते हैं। यह कविता उन परिवारों की पीड़ा को उजागर करती है जिनका जीवन इन्हीं दबावों और कठिनाइयों से भर जाता है।

कवि पाश की 'छन्नी' और 'चिड़िया दा चंबा' – दोनों ही कविताएँ पंजाब के प्रसिद्ध लोकगीतों पर आधारित हैं। इन कविताओं में उन्होंने गरीब, निर्धन माता-पिता एवं उनकी बेटियों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। 'छन्नी' कविता में पाश ने ऐसी बेटी का चित्रण किया है, जिसके माता-पिता के पास विवाह हेतु पर्याप्त धन नहीं है। परिणामस्वरूप भाई के पढ़-लिखकर योग्य होने के बाद भी उसका विवाह नहीं हो पाता। यह कविता विवाह में दहेज और आर्थिक अभाव की समस्या को सामने लाती है। 'छन्नी' कविता में कवि लिखते हैं —

''छन्नी तो छन्नी हुई
लेकिन गुड़िये, तेरे गीतों से तेरे वीर को दुल्हन न मिलेगी
उसे तो मार जाएगी बाबुल की कम जमीन की परछाई
उसकी पास की हुई मैट्रिक को मरियल-सी भैंसे चर जाएंगी
और उसके चकलेदार सीने पर हमेशा
बिगड़े हुए इंजन की तकावी चपातियाँ बेलती रहेंगी।''[10]

'चिड़िया दा चंबा' कविता में पाश ने स्त्रियों के जीवन की घुटन, पराधीनता और अधूरे सपनों का यथार्थ चित्रण किया है। बेटी विवाह के बाद भी गरीबी, श्रम और अपमान से मुक्त नहीं हो पाती। यह कविता स्त्री के जीवन की लाचारी और सामाजिक बेड़ियों को दिखाया है —

''चिड़िया का चंबा उड़कर कहीं न जाएगा
ऐसे ही कहीं इधर-उधर बाँधों से घास खोदेगा
रूखी मिस्सी रोटियाँ ढोएगा
और मैली चुनरियाँ भिगोकर
लुओं से झुलसे चेहरों पर फिराएगा
.....
चिड़िया का चंबा उड़कर किसी भी देश न जाएगा
सारी उम्र काँटे-चारे के झेलेगा
और सफेद चादर पर लगा उसका माहवारी का रक्त
उसका मुँह चिढ़ाएगा।''[11]

यह कविता स्त्रियों की जीवन-भर की घुटन और सामाजिक बंधनों का सशक्त प्रतीक है।

पंजाब में 80 के दशक में फैली हिंसा और धार्मिक कट्टरता ने स्त्रियों को गहरे आघात दिए। *''रोजमर्रा की तमाम परेशानियों को झेलते हुए नारी को हिंसा का शिकार भी होना पड़ता है। ताकतवर के हिंसात्मक रवैये के सामने नारी का नारीत्व भी कहीं नहीं ठहरता है।''*[12] इस संदर्भ मेन कवि पाश की कविता 'धर्म-दीक्षा के लिए विनयपत्र' में एक विधवा स्त्री की पीड़ा का चित्रण है, जिसने अपने पति और बेटे को खो दिया है। अब वह अपने छोटे बेटे की सुरक्षा के लिए धार्मिक गुरु से प्रार्थना करती है। यह स्थिति दर्शाती है कि स्त्री का स्त्रीत्व भी आतंक और हिंसा के सामने असुरक्षित हो जाता है।

''मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु, आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं
मैं औरत बिचारी तेरे जांबाज शिष्यों के सामने हूँ भी क्या
किसी भी उम्र में तेरी तलवार से कम खूबसूरत रही हूँ
किसी भी रौ में तुम्हारे जलाल से फीकी रही हूँ
मैं तो थी ही नहीं।''[13]

इसी प्रकार 'हर रोज़ ऐसे ही' कविता में उन्होंने

स्त्रियों की दैनंदिन पीड़ा को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है —

''हर रोज़ सहज ही काम खनक उठते हैं
और सारी धरती कान बन जाती है
.....
हर रोज ही दबा देती हैं बेटियाँ
गीले गोबर में कच्ची कुँवारी ज़िन्दिगी को आग।''[14]

यहाँ बेटियों की अधूरी ज़िन्दगी और उनके सपनों के दमन का यथार्थ चित्रण मिलता है।

भारतीय समाज में स्त्रियों को केवल शोषित ही नहीं किया जाता, बल्कि उन्हें अपमानित भी किया जाता है। गालियों में 'माँ' और 'बहन' का प्रयोग इसका प्रमाण है। अक्सर छोटी-बड़ी लड़ाई-झगड़ों में कभी उन्हें तरह-तरह की लोकप्रिय गालियाँ दी जाती हैं तो बहुत बार माँ-बहनों को दी जाने वाली ये गालियाँ आपराधिक गतिविधियों का कारण तक बन जाती हैं। पाश ने 'शब्द, कला और कविता' शीर्षक कविता में इस समस्या को उठाया है —

''गर बहुत मान है आपको अपनी कला, अपनी फिलॉसफी पर
तो खोलें अपनी सुनहरी जिल्दों वाले ग्रंथ
आपके शेक्सपियर ने ज़िन्दिगी की हंसी में मौत के लतीफ़ों का क्या स्थान बताया है?
आपके बीथोवन ने माँ-बहन की गालियों का क्या रिदम बताया है?
महबूब की छाती के गीत वालों का
माँ के दूध और दूध की लाज का क्या गीत लिखा है?''[15]

कवि पाश का काव्य केवल साहित्यिक सृजन नहीं है, बल्कि समाज में स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का दस्तावेज भी है। उन्होंने स्त्री को मात्र सहानुभूति या दया की दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उसे संघर्षशील, जागरूक और परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी कविताएँ नारी जीवन के अभाव, दमन, शोषण, अशिक्षा, दहेज, हिंसा और सामाजिक बेड़ियों की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। कवि पाश की दृष्टि में नारी केवल घर-परिवार तक सीमित प्राणी नहीं है, बल्कि वह समाज और इतिहास के निर्माण में बराबर की सहभागी है। उनकी कविताएँ स्त्री की पीड़ा और विवशता को चित्रित करने के साथ-साथ उसे अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत होने का आह्वान भी करती हैं। इस प्रकार पाश का काव्य नारी जीवन की वेदना का सजीव चित्रण करते हुए भविष्य के लिए आशा, प्रतिरोध और क्रांति का स्वर भी बन जाता है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कार्ल मार्क्स एवं एंगलेस : सेलेक्टेड वर्क्स पार्ट थर्ड, प्रोग्रेस पब्लिशर्स मॉस्को, प्रकाशन वर्ष 1981, पृष्ठ सं. 206
2. जिंदल, सीमा, पाब्लो नेरुदा और पाश की चुनिंदा कविताओं में विचारधारा का प्रतिनिधित्व (शोध-प्रबंध), गुरु काशी विश्वविद्यालय तलवंडी साबो, उपाधि वर्ष 2021
3. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं. 39
4. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं. 90
5. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं0 171
6. कुमार, डॉ. अश्मनी : कुमार विकल एवं कवि पाश का तुलनात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध), पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, प्रकाशन वर्ष 2008, पृष्ठ सं. 160
7. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं. 42
8. अग्रवाल, डॉ. विमल : भारतीय समाज, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशंस आगरा, प्रकाशन वर्ष 2020, पृष्ठ सं. 158,
9. लाल, डॉ. चमन : बीच का रास्ता नहीं होता (अनूदित), राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2006, पृष्ठ सं. 61
10. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं. 144
11. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं. 147
12. कुमार, डॉ. अश्मनी : कुमार विकल एवं कवि पाश का तुलनात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध), पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला, प्रकाशन वर्ष 2008
13. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं. 197
14. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं. 124
15. लाल, डॉ. चमन : संपूर्ण पाश काव्य (अनूदित), आधार प्रकाशन पंचकुला, प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ सं. 94

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

नई कविता : व्यष्टि, समष्टि एवं संवेदना का स्वर

ब्रजेश कुमार चौधरी

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
दार्जीलिंग गवर्नमेंट कॉलेज
दार्जीलिंग, पश्चिम बंगाल-734101
8101755861
brajdgc@gmail.com

शोध-सार :

नई कविता हिंदी साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर भारत की जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक यथार्थ को संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करने वाली काव्यधारा है। यह छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से भिन्न, व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को नवीन भाषा और शिल्प में प्रस्तुत करती है। 'दूसरा सप्तक' (1951) के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद नई कविता में रूपांतरित हुआ, जिसमें तीव्र यथार्थबोध, आत्मविश्लेषण और सामाजिक विसंगतियों का सजीव चित्रण प्रमुख है। शहरीकरण, औद्योगीकरण और यांत्रिकता के प्रभाव से उत्पन्न अकेलापन, मध्यवर्गीय कुंठा और मानवीय संवेदनाओं का ह्रास नई कविता में उद्घाटित होता है। अज्ञेय की कविताएँ व्यक्ति की आत्म-चेतना और समाज के प्रति दायित्वबोध को रेखांकित करती हैं, जबकि मुक्तिबोध सामाजिक अन्याय और पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ मुखर हैं। रघुवीर सहाय और भवानीप्रसाद मिश्र सामान्य जीवन की साधारण घटनाओं को गहरी संवेदना और व्यंग्य के साथ प्रस्तुत करते हैं। नई कविता भाव और शिल्प के संतुलन से निर्मित है, जो सामाजिक रूढ़ियों, नैतिकता के मध्यवर्गीय ढाँचे और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर पाबंदियों को चुनौती देती है।

बीज शब्द : व्यष्टि, समष्टि, संवेदना, औद्योगीकरण, शहरीकरण, नवनिर्माण, आत्म विश्लेषण, सामाजिक विसंगतियाँ।

मूल आलेख :

भारतीय साहित्य में कविता की परंपरा अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण रही है। प्रत्येक युग की काव्यधारा ने अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक यथार्थ को प्रतिबिंबित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत के बदलते परिदृश्य ने हिंदी कविता में एक नवीन मोड़ लाया, जिसे 'नई कविता' के रूप में जाना गया। यह कविता परंपरागत काव्य-रूपों से आगे बढ़कर नए जीवनानुभवों और शिल्प-प्रयोगों को आत्मसात करती है। 'दूसरा सप्तक' (1951) के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद नई कविता में रूपांतरित हुआ, जिसने छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से संघर्ष कर अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित की। नई कविता ने जीवन की जटिलताओं को गहन संवेदना और यथार्थबोध के साथ अभिव्यक्त किया, जो व्यक्ति और समाज के द्वंद्व को समेटे हुए है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में राष्ट्रीय परिस्थितियों, जैसे-पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता और आजादी के स्वप्नों के टूटने से जनमानस में निराशा और अवसाद

को जन्म दिया । नई कविता ने इस यथार्थ को समग्रता में ग्रहण किया, जिसमें मनुष्य के सुख-दुख, जय-पराजय और सृजन-संघर्ष की संपूर्ण मूर्ति उभरती है। यह काव्यधारा व्यष्टि की अंतरंग संवेदनाओं और समष्टि के यथार्थ को नवीन भाषा और शिल्प के माध्यम से व्यक्त करती है। इसकी प्रमुख विशेषता है- तीव्र यथार्थबोध, गहन आत्मविश्लेषण, सामाजिक विसंगतियों का सजीव चित्रण और संवेदनात्मक गहराई। नई कविता के कवियों ने कटु सत्य को निर्भीकता से उजागर किया एवं अपने समय की विडंबनाओं और विसंगतियों को बेबाकी से प्रस्तुत किया।

नई कविता पर शहरीकरण, औद्योगीकरण और यांत्रिकता का गहरा प्रभाव पड़ा। पंचवर्षीय योजनाओं और औद्योगिक विकास ने शहरों को तो विस्तार दिया, किंतु ग्रामीण जीवन उपेक्षित रहा। व्यक्ति मशीनों का दास बनता गया, जिसने व्यक्तिवादिता को बढ़ावा दिया। नई कविता इस यांत्रिक जीवन और मानवीय संवेदनाओं के बीच संतुलन खोजती है। यह रूढ़ियों और परंपराओं के खिलाफ जीवन के उन अनछुए पहलुओं को उजागर करती है, जो यथार्थ और आत्मिक अनुभूति पर आधारित हैं। नई कविता व्यक्ति के अंतर्मन और समाज के व्यापक यथार्थ को संवेदना की सशक्त अभिव्यक्ति में ढालकर हिंदी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करती है।

नई कविता का केंद्रीय स्वर व्यष्टिगत चेतना है, जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं, अकेलेपन और आत्मसंघर्ष को अभिव्यक्त करती है। यह काव्यधारा व्यक्ति को एक संवेदनशील इकाई के रूप में देखती है, जो अपने भीतर की कुंठाओं, आकांक्षाओं और यथार्थ के साथ संघर्षरत है। नई कविता का कवि कटु सत्य को भी निर्भीकता से व्यक्त करता है, चाहे वह सामाजिक रूढ़ियों से टकराव हो या व्यक्तिगत जीवन की विडंबनाएँ। डॉ. रामवचन राय के शब्दों में- *''नई कविता पर औद्योगीकरण का काफी प्रभाव है। बल्कि नई कविता का जो परिवेश है, वह औद्योगिक सभ्यता से ही उत्पन्न हुआ है। मनुष्य का जीवन दिनों दिन यांत्रिक और तनावपूर्ण होता जा रहा है। जिंदगी की भाग-दौड़ में हृदय की कोमल वृत्तियाँ कुंठित हो रही हैं। नई कविता में इस यांत्रिक जीवन की खुलकर अभिव्यक्ति हुई।''* [1] इस यांत्रिकता ने व्यक्ति को मशीन का दास बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप उसकी संवेदनाएँ कुंठित हुईं। नई कविता ने इस यांत्रिक जीवन की खुलकर अभिव्यक्ति की।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' नई कविता के शीर्षस्थ कवि हैं, जिन्होंने व्यक्ति की संवेदना को आधुनिक समाज के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। उनकी कविता में आधुनिकता, प्रेम और प्रकृति के तत्व समन्वित रूप में मिलते हैं। अज्ञेय की कविता 'यह दीप अकेला' व्यक्ति की व्यष्टिगत चेतना का प्रतीक है, जो अकेला होते हुए भी स्नेह और गर्व से परिपूर्ण है :-

''यह दीप अकेला, स्नेह-भरा
है गर्व-भरा मदमाता, पर इस को भी पंक्ति को दे दो।'' [2]

यहाँ 'अकेला दीप' व्यक्ति की आत्म-चेतना का प्रतीक है, जो अपनी विशिष्टता को समाज के लिए समर्पित करने की इच्छा रखता है। अज्ञेय की एक अन्य कविता 'नदी के द्वीप' में भी व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज से उसके संबंध को रेखांकित किया गया है :-

''हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़ कर स्रोतस्विनी बह जाए।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, उभार, सैकत कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।'' [3]

अज्ञेय व्यक्ति और समाज के बीच गहरे संबंध को रेखांकित करते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व बोध उसके व्यक्तित्व के विकास और सामाजिक एकीकरण के लिए अनिवार्य है। व्यक्ति सामाजिक परिवेश से प्रेरणा और मूल्य ग्रहण करता है, साथ ही समाज को अपनी रचनात्मकता और संवेदना से समृद्ध करता है। अज्ञेय के अनुसार, कवि केवल साहित्यकार नहीं, बल्कि एक नागरिक भी है, जिसका समाज के प्रति कर्तव्य है। कवि की संवेदनशीलता उसे सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति और अधिक उत्तरदायी बनाती है। वे समाज और व्यक्ति के बीच की खाई को पाटने का प्रयास करते हैं, जो उनकी कविता में सेतु के प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। उनकी पंक्तियाँ

इस भाव को सशक्त रूप में प्रस्तुत करती हैं :-

''मैं सेतु हूँ,
किंतु शून्य से शून्य तक का सतरंगी सेतु नहीं,
वह सेतु,
जो मानव से मानव का हाथ मिलने से बनता है।''[4]

उपर्युक्त पंक्तियाँ व्यक्ति और समाज के बीच संवेदनात्मक एकता की खोज को दर्शाती हैं। अज्ञेय की कविता नई कविता के यथार्थबोध और संवेदना के स्वर को मूर्त रूप देती है, जहाँ व्यष्टि का आत्मसंघर्ष समष्टि के व्यापक सरोकारों से जुड़ता है। उनकी यह दृष्टि नई कविता के मूल स्वर-व्यक्ति, समाज और संवेदना को और भी गहन बनाती है।

गजानन माधव मुक्तिबोध नई कविता के एक महत्वपूर्ण कवि हैं, जिनकी कविताएँ व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष एवं सामाजिक समस्याओं को गहनता से चित्रित करती हैं। मुक्तिबोध का अनुभव-जगत व्यापक है और वे मध्यवर्गीय व्यक्ति की आंतरिक और बाह्य दुनिया के बीच के तनाव को अपनी कविताओं में प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविता 'अंधेरे में' मध्यवर्गीय व्यक्ति की आत्म-संघर्ष और सामाजिक नियति का प्रतीक है :-

''हाय, हाय! मैंने उन्हें गुहा-वास दे दिया
लोक-हित क्षेत्र से कर दिया वंचित
जनोपयोग से वर्जित किया और
निषिद्ध कर दिया
खोह में डाल दिया!!''[5]

यहाँ मध्यवर्गीय व्यक्ति की कुंठा और समाज से उसकी दूरी को दर्शाया गया है। मुक्तिबोध की कविता में व्यक्ति की आत्म-चेतना समाज की व्यापक चेतना से टकराती है, जिससे एक गहन संवेदनात्मक तनाव उत्पन्न होता है। उनकी कविता में व्यक्ति का आत्म-विश्लेषण और सामाजिक परिवेश के प्रति जागरूकता एक साथ मौजूद है।

मुक्तिबोध की कविताएँ पूँजीवादी समाज में व्याप्त अमानवीय व्यवहार एवं शोषण को उजागर करती हैं। वे अपनी कविताओं में व्यष्टि के संकट को समष्टि के विघटन से जोड़ते हैं। उनकी दृष्टि मानवीय सरोकारों से जुड़ी हुई है और सामाजिक अन्याय के प्रति गहरी आलोचनात्मक चेतना रखती है। इस प्रकार मुक्तिबोध की कविता में संवेदना केवल निजी नहीं रह जाती, बल्कि सामाजिक संघर्षों से अनुप्राणित हो जाती है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'जन-जन का चेहरा एक' की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं:-

''एशिया के, यूरोप के, अमेरिका के
भिन्न-भिन्न वास स्थान;
भौगोलिक, ऐतिहासिक बंधनों के बावजूद,
सभी और हिंदुस्तान, सभी और हिंदुस्तान।'' [6]

आलोच्य उद्धरण वैश्विक संवेदना के स्वर को सशक्त करता है। यहाँ कवि यह प्रतिपादित करते हैं कि भले ही विश्व विभिन्न क्षेत्रों में बँटा हो, फिर भी मानवीय चेतना और पीड़ा सर्वत्र समान है। इस कविता के माध्यम से समष्टि के उस वैश्विक स्वरूप की कल्पना की गई है, जिसमें विभिन्न सभ्यताएँ एक साझी मानवीय पीड़ा और संघर्ष से जुड़ी हैं। यह नई कविता की उस वैश्विक दृष्टि को पुष्ट करता है, जिसमें व्यष्टि का अनुभव समष्टि के व्यापक यथार्थ से अभिन्न रूप में जुड़ जाता है।

नई कविता केवल व्यक्ति की अंतरंग संवेदनाओं तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने समष्टि के व्यापक सामाजिक यथार्थ को भी अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया। यह काव्यधारा सामाजिक विसंगतियों, अन्याय, भ्रष्टाचार और नैतिक पतन के प्रति मुखर रही। स्वतंत्रता के बाद की सामाजिक परिस्थितियों, जैसे- औद्योगीकरण, शहरीकरण और मध्यवर्गीय कुंठा ने नई कविता को एक नया आयाम प्रदान किया। नयी कविता ने सामाजिक रूढ़ियों, विशेषकर स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित नैतिकता को चुनौती दी। अज्ञेय की कविता 'हरी घास पर क्षण भर' में इस सामाजिक कुंठा का स्पष्ट चित्रण है :-

''चलो, उठें अब;
अब तक हम थे बंधु सैर को आये-
और रहे बैठे तो लोग कहेंगे
धुँधले में दुबके प्रेमी बैठे हैं।
वह हम हों भी तो यह हरी घास ही जानें।''[7]

यहाँ प्रेमी युगल की स्वतंत्रता सामाजिक दृष्टि और रूढ़ियों के कारण सीमित हो जाती है। नयी कविता ने

ऐसी रूढ़ियों से मुक्ति की कामना की और सहज प्रेम की वकालत की। यह कविता सामाजिक नैतिकता के मध्यवर्गीय ढाँचे को तोड़ने का प्रयास करती है, जो प्रेम और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बाधित करता है।

शहरीकरण और औद्योगीकरण ने नई कविता को एक नया परिवेश प्रदान किया। शहरों का तेजी से विकास हुआ, लेकिन गाँव उपेक्षित रहे। व्यक्ति मशीनों का दास बन गया और उसका जीवन यांत्रिक और तनावपूर्ण हो गया। नई कविता में इस यांत्रिकता और शहरी जीवन की विसंगतियों का चित्रण प्रमुखता से हुआ। औद्योगिक विकास ने मानव जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन किए। उद्योगों के विकास ने जहाँ भौतिक सुविधाएँ बढ़ाईं, वहीं सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक मूल्यों में गिरावट भी लाई। तकनीकी प्रगति ने मनुष्य को सुविधाएँ तो दीं, लेकिन उसे मशीनों का एक पुर्जा भी बना दिया। नयी कविता ने इसी विडंबना को अपनी रचनात्मकता का विषय बनाया। नई कविता के कवि औद्योगीकरण से उत्पन्न सामाजिक अलगाव, मानवीय संबंधों के विच्छेद को मार्मिकता के साथ व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए कुँवर नारायण की कविता 'यह युग' देखी जा सकती है :-

''अपने ही हथियारों से घबराया मानव
पत्थर का देव और लोहे का दानव
यह युग
अपनी ही ताकत से हारा मनुष्य''[8]

नई कविता में औद्योगिक सभ्यता को केवल आर्थिक या तकनीकी विकास के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे मानवीय मूल्यों के ह्रास, जीवन की कृत्रिमता और अकेलेपन के प्रतीक के रूप में गहराई से अनुभव किया गया। इसलिए नई कविता केवल यथार्थ का चित्रण नहीं करती, बल्कि एक गहरे भावनात्मक संकट को भी उजागर करती है।

नई कविता की संवेदना यथार्थ और भाव के समन्वय से निर्मित होती है। यह कविता न तो एकांगी यथार्थ को स्वीकार करती है और न ही केवल भावुकता को। यह जीवन को उसके समग्र रूप में- उसके सुख-दुख, राग-विराग और सृजन-संघर्ष के साथ चित्रित करती है। नई कविता का कवि अपने अनुभूत सत्य को यथार्थ के आधार पर व्यक्त करता है, जिसमें सामान्य जीवन की साधारण घटनाएं भी काव्यात्मक सौंदर्य प्राप्त करती हैं। रघुवीर सहाय की कविता 'पानी के संस्मरण' इसका सुंदर उदाहरण है :-

''कौंध। दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि
दुपहर : घना ताल : ऊपर झुली आम की डाल
बयार : खिड़की पर खड़े, आ गई फुहार
रात : उजली रेती की पार; सहसा दिखी
शांत नदी गहरी
मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।''[9]

यहाँ पानी के विभिन्न रूप जीवन के वैविध्य को दर्शाते हैं, जो संवेदना की गहराई को उजागर करते हैं। रघुवीर सहाय की कविता में साधारण अनुभवों को असाधारण संवेदना के साथ प्रस्तुत किया गया है। उनकी कविता 'सीढ़ियों पर धूप में' में भी सामान्य जीवन की कोमल संवेदनाएँ व्यक्त हुई हैं।

नई कविता के कवियों में भवानीप्रसाद मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। 'गीत फरोश' उनकी एक कालजयी रचना है। आलोचकों के अनुसार, इस कविता में जो प्रगीतात्मकता थी, वह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज में उत्पन्न उत्साह और नवनिर्माण की आकांक्षा की अभिव्यक्ति थी। इस कविता में वर्तमान समाज पर कड़ा व्यंग्य किया गया है, जिसमें कवि और कलाकार की दुखद स्थिति का चित्रण हुआ है :-

जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान,
जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान-
मैं सोच-समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ।
जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।''[10]

नई कविता का आरंभिक संबंध जीवन की उन साधारण प्रतीत होने वाली घटनाओं और परिस्थितियों से है, जो मानव अस्तित्व की गहरी सच्चाइयों को उद्घाटित करती हैं। जैसा कि देवराज ने लिखा है- *''नई कविता का संबंध शुरू से ही जीवन की साधारण-सी प्रतीत होने वाली घटनाओं और परिस्थितियों से रहा है। जहाँ प्रगतिवाद*

ने किसान-मजदूर के पक्ष को स्पष्ट रूप से अपनाया, वहीं नई कविता चुपचाप सामान्य व्यक्ति की आकांक्षाओं और कठिनाइयों को चित्रित करती है।''[11] इस काव्यधारा ने व्यक्तिगत जीवन के सूक्ष्म अनुभवों को सामाजिक यथार्थ से जोड़ने का प्रयास किया। जहाँ प्रगतिवाद ने स्पष्टत: किसान-मजदूर के पक्ष को अपनाया, वहीं नई कविता ने सामान्य व्यक्ति के भीतर दबी आकांक्षाओं और कठिनाइयों को चुपचाप स्वर दिया। यह काव्यधारा संघर्ष में विश्वास करती है, न कि पलायन में। इस प्रकार नई कविता व्यष्टिगत संवेदनाओं को समष्टिगत आशाओं से जोड़ती हुई जीवन के कठिन यथार्थ के बीच भी जिजीविषा और नव निर्माण का संदेश देती है।

निष्कर्ष :

वस्तुत: नई कविता हिंदी साहित्य में एक ऐसी काव्यधारा है, जिसने स्वातंत्र्योत्तर भारत के जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक, और मनोवैज्ञानिक यथार्थ को संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया। यह काव्यधारा व्यष्टिगत और समष्टिगत संवेदनाओं का अनूठा समन्वय प्रस्तुत करती है, जो इसे छायावाद, प्रगतिवाद, और प्रयोगवाद से अलग करती है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, और भवानीप्रसाद मिश्र जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं में आधुनिक मानव की आंतरिक और बाह्य दुनिया के तनाव को चित्रित किया। अज्ञेय की कविताएँ व्यक्ति की आत्म-चेतना और समाज के प्रति दायित्वबोध को रेखांकित करती हैं, जबकि मुक्तिबोध सामाजिक अन्याय और पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ मुखर हैं। रघुवीर सहाय और भवानीप्रसाद मिश्र सामान्य जीवन की साधारण घटनाओं को गहरी संवेदना और व्यंग्य के साथ प्रस्तुत करते हैं, जो सामाजिक यथार्थ को उजागर करती हैं। नई कविता का सौंदर्यशास्त्र भाव और शिल्प के संतुलन में निहित है। इसने शहरीकरण, औद्योगीकरण और यांत्रिकता के प्रभावों को न केवल आलोचनात्मक दृष्टि से देखा, बल्कि मानवीय संवेदनाओं के ह्रास को भी मार्मिकता से व्यक्त किया। इस काव्यधारा ने सामाजिक रूढ़ियों, नैतिकता के मध्यवर्गीय ढाँचे और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर पाबंदियों को चुनौती दी। यह कविता केवल नकारात्मकता का चित्रण नहीं करती, बल्कि नवनिर्माण, जिजीविषा और सामाजिक एकता की आकांक्षा को भी व्यक्त करती है। नई कविता की भाषा सरल किंतु गहन है, जो पाठक को आत्ममंथन और सामाजिक चिंतन के लिए प्रेरित करती है। नई कविता का प्रभाव हिंदी साहित्य में गहरा और स्थायी है। अंतत: कहा जा सकता है कि नई कविता में व्यष्टि और समष्टि के स्वर एक-दूसरे के पूरक हैं और संवेदना वह सेतु है, जो दोनों को जोड़ती है। ❑

संदर्भ सूची :

1. डॉ. रामवचन राय, नई कविता : उद्भव और विकास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना,1974, पृ.- 206
2. (सं) कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचना सागर, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.- 54
3. वही, पृ.- 70
4. (सं) डॉ. चन्द्रकला पाण्डेय, संचयन आधुनिक हिंदी कविता, आनंद प्रकाशन, कोलकाता, 2004, पृ.- 101
5. वही, पृ.- 146
6. (सं) नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011,पृ.- 143
7. https://www.hindwi.org/kavita/hari-ghas-par-kshan-bhar-agyeya-kavita
8. कुँवर नारायण, परिवेश : हम तुम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ.- 88
9. रघुवीर सहाय, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994 , पृ.- 32
10. https://www.hindwi.org/kavita/geet-faro-bhawaniprasad-mishra-kavita
11. देवराज, नई कविता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009 , पृ.- 70

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

हिंदी दलित कहानियों में स्त्री प्रश्न

अनूप प्रसाद

शोधार्थी, हिंदी विभाग
रवींद्रनाथ ठाकुर विश्वविद्यालय
होजाई, असम-782435
9401590314
anupprasad0905@gmail.com

शोध-सार :

समाज में जो भी घटनाएँ घटित होती हैं, उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य लेखन में प्रभाव पड़ता है। साहित्य की प्रमुख विधाओं में 'कहानी' एक लोकप्रिय विधा है। किसी भी 'कहानी' में कहानीकार की विचारधारा, दृष्टिकोण एवं युगीन परिस्थितियाँ रूपांतरित होती हैं। स्त्री विमर्श आधुनिकता की देन है। हिंदी के दलित और गैर दलित साहित्यकारों ने अपनी कहानियों के द्वारा सदियों से हाशिए पर धकेले गये दलितों, उपेक्षितों की नारकीय जीवन की कटु अनुभूतियों का शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है। कहीं-न-कहीं ये तमाम कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं की जाँच-पड़ताल करती हैं और प्रबुद्ध जनों के समक्ष सवाल प्रस्तुत करती हैं कि आज भी दलितों की स्थिति में कोई खास परिवर्तन क्यों नहीं आया? शिक्षा से दूर वह धर्म तथा समाज की सड़ी-गली मान्यताओं एवं परंपराओं की जंजीरों में क्यों जकड़ा हुआ है? पग-पग पर अपमान एवं लांछन की घूँट पीते हुए दलित किस प्रकार से नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य किए जाते रहे हैं। इन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में दलित स्त्री के ज्वलंत प्रश्नों को सामने लाने की दिशा में कार्य करना ही प्रस्तावित शोध पत्र का मूल उद्देश्य है।

बीज शब्द : अस्मिता, दलित, रूढ़िवादिता, अस्पृश्यता, उत्पीड़न।

लक्ष्य :

हिंदी दलित कहानियों का फलक अत्यंत व्यापक है, परंतु प्रस्तुत शोध पत्र में आठ दलित कहानियों को आधार बनाया गया है, जिनके आलोक में दलित स्त्री-जीवन की त्रासदी का तथ्यान्वेषण का भरसक प्रयास किया गया है। प्रस्तुत पत्र में आज तक स्त्री समाज जिस उत्पीड़न को भोग रही हैं वह चाहे सामाजिक हो या आर्थिक अथवा यौन उत्पीड़न हो उसी की साकार अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत शोध-पत्र में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करना और उन्हें मानसिक प्रताड़ना, शोषण, अन्याय और उत्पीड़न आदि से मुक्ति दिलाने का सफल प्रयास हुआ है।

शोध प्रविधि :

'हिंदी दलित कहानियों में स्त्री प्रश्न' शीर्षक प्रस्तुत शोध पत्र को आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। विषय से संगती रखते हुए चयनित कहानियों की सहायता ली गई है।

भूमिका :

परिवर्तन ही संसार का नियम है और उसी उद्देश्य को लेकर दलित साहित्य अग्रसर होता है। दलित साहित्य धार्मिक रूढ़ियों, ब्राह्मणवाद,सामंतवाद,

अंधविश्वास, सांप्रदायिकता आदि का विरोध करता है। दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना करता है। सदियों से भारतीय समाज और साहित्य ने जिसे शूद्र कहकर शोषित उत्पीड़ित होने के लिए हाशिये पर छोड़ दिया था, वही आज 'दलित' है। दलित साहित्य पीड़ित मानवता की पुकार है। हिंदी दलित साहित्य प्रमुख रूप से गौतम बुद्ध, ज्योतिबा फुले एवं बाबा साहेब अंबेडकर आदि की विचारधराओं से प्रेरित है। दलित साहित्य के सबंध में विद्वानों में मतभेद है। दलित साहित्य वह है जिसे दलितों नें स्वयं लिखा है, जो स्वानुभूति पर आधारित है। दलित साहित्य नकार का साहित्य है, जो संघर्ष से उपजा है तथा जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुता का भाव है। वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध है। डॉ.एन.सिंह कहते हैं–*''दलित साहित्य दलित लेखक द्वारा लिखित वह साहित्य है, जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया हो, जो सच्चे अनुभवों पर आधारित हो और जीवंत भाषा में लिखा गया हो।''* [1] दलित साहित्यकारों द्वारा अपने जीवन और समाज को आधार बनाकर लिखा गया कटु सत्य ही दलित साहित्य की श्रेणी में आता है, जो कल्पना से मुक्त हो। वस्तुत:दलित साहित्य का लक्ष्य है समाज में परिवर्तन।

हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श उस साहित्यिक आंदोलन को कहा जाता है, जिसमें स्त्री अस्मिता को केंद्र में रखकर संगठित रूप से स्त्री साहित्य की रचना की गई। स्त्री विमर्श को अंग्रेजी में 'फेमिनिज्म' कहा जाता है। फ्रांसीसी लेखिका सिमोन–द बोउवार से स्त्री विमर्श की शुरुआत मानी जाती है। उन्होंने अपनी रचना 'The second sex' में नारी के विमर्श पर पहली बार कटुतम शब्दों में लिखा था। उनके अनुसार, *'स्त्री पैदा नहीं होती बनायी जाती है'।* [2] स्त्री विमर्श एक प्रकार से समाज की रूढ़ परंपराओं एवं मान्यताओं के प्रति असंतोष और उससे मुक्ति का ही स्वर है। यह हमें पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। अपने मूल अधिकारों से वंचित शोषित–पीड़ित स्त्रियों की अस्मिता की रक्षा हेतु दलित साहित्यकारों ने उन्हें अपने साहित्य के केंद्र में स्थान दिया है। प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण और शहरी जीवन में संघर्षरत महिलाओं की विडंबनापूर्ण कड़वी स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। इस पत्र के लेखन कार्य हेतु प्रमुख रूप से अजय नावरिया, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, राजत रानी मीनू, दीपा आदि दलित रचनाकारों की कहानियों को आधार बनाया गया है। दलित महिला कथाकारों ने अपने वास्तविक जीवन की आहत भावनाएँ व्यक्त की हैं, वहीं दूसरी ओर पुरुष लेखक भी महिलाओं के रोजमर्रा की जिन्दगी को समाज के सम्मुख लाने की कोशिश की है।

अजय नावरिया की प्रसिद्ध कहानी 'इज्जत' वर्तमान समाज में नारियों की भयाभह स्थिति को उजागर करती है। प्रस्तुत कहानी नायिका उषा के संघर्ष की कहानी है। वह बैरवा चमार जाति की लड़की है। कहानी का एक पात्र जयदेव मनुष्य के रूप में मानो एक हिंसक पशु है, जो हमेशा उषा को छेड़ने के लिए उत्सुक रहता है। एक दिन जयदेव का बदन से यह कहना कि–*''तू मेरा साथ दे तो नंगी पैरेड कराऊँ इसकी।''* [3] जयदेव का उक्त कथन उसकी क्रूर मानसिकता का सूचक है और अंत में सुखबीर सिंह और बदन के साथ मिलकर उषा साथ सामूहिक बलात्कार करता है। आजादी के 76वें अमृत उत्सव के दौरान भारत में भी यही स्थिति बनी हुई है, मणिपुर इसका ज्वलंत उदाहरण है।

दलित–संवेदना और सरोकारों को मुखर रूप देने वाले कथाकार जयप्रकाश कर्दम की 'पगड़ी' एक बहुचर्चित दलित कहानी है। 'पगड़ी' प्रतीक है परिवार–समाज में हिस्सेदारी और सम्मान का। समाज में नारी को सममर्यादा समान अधिकार देने की वकालत करते हुए समाज के रीति–रिवाजों में संस्कार की आवश्यकता की बातें करते हैं। कारण पुरुष–महिला को जब समानता का अधिकार प्राप्त होगा तब ही समाज विकास के स्वर्णिम पथ पर आगे ले जा सकता है। इस दृष्टि से सरबतिया अपने घर की दवा–दारू से लेकर बच्चों कि पढ़ाई–लिखाई सारी पारिवारिक–सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करती है। नारी सशक्तिकरण के हिमायती वे कहानी की प्रमुख स्त्री पात्र सरबतिया को ही इस 'पगड़ी' की अधिकारी मानते हैं।

'अपना गाँव' कहानी में गाँव के ठाकुरों द्वारा दलित महिला कबूतरी पर जिस तरह से जुल्म और अत्याचार किया जाता है, वह पूरी मानवता को शर्मसार करने वाला है। ठाकुर का मँझला बेटा कबूतरी को सारे गाँव में निर्वस्त्र करके घुमाता है, कारण उसका पति संपत ठाकुर से पाँच सौ रूपए कर्जा लेकर समय पर चुकता नहीं कर पाता है। छमिया के साथ किए गए अन्याय से पूरे गाँव में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठती है। सामंती मानसिकता और जातिवादी वर्चस्व की त्रासदी की पीड़ा की शिकायत के लिए जब कबूतरी पति संपत और अन्य दलित भाइयों के साथ कानून के गलियारे में न्याय माँगने जाती है तो उनके हिस्से में केवल अपमान और प्रताड़ना ही आती है। पुलिस इंस्पेक्टर सवर्ण होने के कारण दलितों में विरोध करने का तेवर देखकर भड़क उठा और शिकायत करने के लिए गए दलित युवक संपत और उसके साथियों को न्याय देने की अपेक्षा लात- घूंसे और डंडे से मारता है और उन्हें थाने में बंद कर देता है। उन्हें दंडित करते हुए पुलिस इंस्पेक्टर कहता है – *''साला चमारों, अब तुम्हें जबान लड़ाना भी आ गया। एक-एक की गांड में मैने डंडा न चढ़ाया तो मेरा नाम एस.पी.त्यागी नहीं।''* [4] लेखक ने समाज के पिछड़े वर्गों के लोगों को प्रशासन से मिल रही निराशा, हताशा और प्रातड़ना को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है।

'चोट' सूरजपाल चौहान जी की एक प्रसिद्ध कहानी है। रज्जो कहानी की प्रमुख पात्र है। रज्जो पढ़ी-लिखी एवं सुंदर स्त्री है। कहानी का प्रमुख विषय है नारी उत्पीड़न और दफ्तरों में नियुक्ति को लेकर हो रहे लापरवाही है। रज्जो दफ्तर के बड़े आधिकारियों द्वारा सेवा नियुक्ति में की गई बेईमानी और झूठा प्रेम का शिकार बनती है। दफ्तर का अधिकारी पवन रज्जो से प्रेमपूर्ण स्पर्श और आलिंगन करता है। उसे प्यार के जाल में फँसाता है। वह रज्जो से कहता है-*''रज्जो, तुम दूसरी महिलाओं से हटकर हो.....जब मुस्कुराती हो तो और भी सुंदर लगती हो।''* [5] रज्जो लगभग तीस-बत्तीस वर्ष की हुई ही थी कि वह विधवा हो गई। अब उसके पति के स्थान में रज्जो को काम मिलना निश्चित था। समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के द्वारा रज्जो जातिगत भेदभाव का शिकार हो जाती है। उसका पति अछूत वाल्मीकि जात का था इसलिए उसे चपरासी के स्थान पर सफाई कर्मचारी बना दिया जाता है। रज्जो द्वारा कहानीकार ने दफ्तरों में होने वाली महिलाओं की मानसिक प्रताड़ना और यौन शोषण के भावनात्मक अंतर्द्वंद्वको सजीव ढंग से व्यक्त किया है।

'कर्ज' कहानी में रामदीन ने चार वर्ष पूर्व अति अभाव से ग्रस्त होकर गाँव के महाजन से कर्ज लेता है और उसका ब्याज चुकता करने के लिए वह जानवरों की तरह उसके खेतों में दिन-रात काम करता है। उनके शोषण की वजह से ही रामदीन मर जाता है। महाजन की झूठी हमदर्दी को वह भाप लिया था, तब वह कहता है 'कर्ज पिता जी ने अवश्य लिया था, लेकिन उसके बदले जी तोड़ मेहनत भी तो की थी।' परंतु अशोक जब शहर चल जाता है, तब महाजन उसकी माँ रामप्यारी और जवान बहन कमला का बलात्कार कर देता है। इस हृदय विदारक घटना के परिणामस्वरूप अंत में रामप्यारी का पुत्र अशोक महाजन और उज्जड़ सिंह की हत्या कर देता है। प्रस्तुत कहानी में अशोक एक इज्जत भरी जिंदगी के लिए धार्मिक रूढ़िगत परंपरा के खिलाफ आवाज बुलंद करता है।

प्रहलाद चंद दास की प्रसिद्ध कहानी 'कजली' की मुख्य पात्र कजली ही है। कजली जैसी दलित महिला के सामाजिक, मानसिक एवं शारीरिक शोषण का वर्णन करना ही इस कहानी का उदेश्य है। कजली की मजबूरियों और उसके संकटमय परिस्थितियों का पूर्णता लाभ उठाते हुए पूरन पंडित और उसका पुत्र मिलकर कजली को अपनी वासनात्मक दृष्टि का शिकार बनाते हैं और उससे भरपूर शारीरिक लुत्फ उठाते हैं। पचपन साल का विधुर पंडित सत्रह वर्षीय कजली का शोषण करता है। कजली का यह कथन कि- *''देखकर भी मत देखो,जानकर भी मत बोलो। ताकि इन घरों की कलगियाँ ऊँची-की-ऊँची तनी रहें जिनके नीचे तुम्हें एक पेट भात जुटता रहे।''* [6] यह उसकी विवशता को बखूबी दर्शाती है। मैं किसी की दीदी नहीं, किसी की कुछ नहीं, सिर्फ कजली हू कजली। कजली द्वारा कहा गया कथन उसकी मजबूरियों व हालातों की मार्मिक अभिव्यक्ति करता है। तथाकथित सभ्य और

शिक्षित समाज में मनुष्य रूपी जानवर अब भी मौजूद है, जो अपने स्वार्थ और आनंद के लिए एक महिला के शरीर को नोच-नोच कर खाने में जरा भी नहीं हिचकिचाते।

'जीत' कहानी दलित स्त्री के जज्बे, हौसले और अन्याय के विरुद्ध मुखर होकर संघर्ष करने और उसमें जीत हासिल करने की कहानी है। प्रस्तुत कहानी बाल मनोविज्ञान से भी संबंधित है। रेखा का सपना एक पुलिस अधिकारी बनना है। रेखा वाल्मीकि समाज से आती है। यह कहानी उसकी जिल्लत भरी रोजमर्रा की जिंदगी को बयाँ करती है। हेड पुलिस निरीक्षक परमानंद ठाकुर रेखा की शारीरिक परीक्षा से बेहद प्रसन्न होते हैं। किंतु जब उन्हें यह भान लगा कि रेखा वाल्मीकि है, तब उनका प्रेम और प्रोत्साहन से भरा व्यवहार घृणा में तब्दील हो जाता है। हेड निरीक्षक रेखा को शौचालय की ओर इशारा करते हुए कहता है- *''शौचालय में जो टट्टी पड़ी है, उसे साफ कर दो। न जाने कौन बिना पानी डाले चला गया है।''*[7] आखिरकार रेखा सफलतापूर्वक कांस्टेबल भर्ती परीक्षा में प्रथम स्थान पर आती है, पर अछूत वाल्मीकि होने के कारण फाइनल रिजल्ट में नाम नहीं आता है। यदि देश के पढ़े-लिखे शिक्षक और उच्च पदों पर बैठे अधिकारी ही समाज में जाति, धर्म और लिंग आदि पर आधारित भेदभाव को बढ़ावा देंगे तो एक सफल और विकसित राष्ट्र का निर्माण कैसे होगा? समाज के शोषित, पीड़ित, दलित विशेषकर स्त्रियों का विकास कैसे होगा? उनका जीवन कैसे सुधरेगा। एक स्वस्थ एवं विकसित भारत के निर्माण में समाज के सभी वर्गों के लोगों की भागीदारी आवश्यक है।

मोहनदास नैमिशराय ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'आवाजें' में क्रूर सामंती और अमानवीय परपंराओं के विरुद्ध उपजे दलित आक्रोश और प्रतिरोध को अभिव्यक्त किया है। समाज के उच्च वर्ग के लोग वर्ण व्यवस्था में दलितों के साथ अमानवीय पेशे भी जोड़ देते हैं और इस व्यवस्था के अनुसार जितने भी मरे हुए जानवर है, उनका खाल उतारना और मैला उठाने का काम दलितों का है। परंतु जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार दलित जातियों में हो रहा है मानों वे ऐसा घृणित कामों को त्याग देना चाहते हैं। अपनी अस्मिता और आत्मसम्मान को नए सिरे से स्थापित करने हेतु इतवारी और उसके मेहतर समाज के लोग सामंतों की जूठन और गंदगी उठाने से मना करते हुए कहती है -*''हाँ, हमारे बड़े-बूढ़े जब करते थे वो जमाना चला गया। भई, अब नया जमाना है, नई रोशनी आ गई है।''*[8] मेहतरों के इस निर्णय को सामंत औतार सिंह हजम नहीं कर पाता है। उसकी सामंती मानसिकता को यह स्वीकार ही नहीं है कि भंगी समाज के लोग जूठन और गंदगी के पेशे को त्याग कर कोई अच्छा सम्मानजनक काम करें और अंत में सामंत औतार सिंह उन दलितों को सबक सिखाने के लिए उनकी बस्ती में आग लगवा देता है।

'सरोगेट मदर' एक प्रसिद्ध कहानी है। यह कहानी लाचारी और बेबसी की है। आखिर ऐसा कौन-सा कारण है, जो दलित समाज की कुछ स्त्रियों को सरोगेसी की प्रक्रिया यानी किराए की कोख से बच्चे को जन्म देने के लिए मजबूर है। आज कोई भी महिला विशेषकर दलित समाज की अपनी खुशी के लिए सरोगेट मदर नहीं बनती है। वह आज लाचार है। वे इस प्रकार के व्यावसायीकरण के दुष्प्रभावों से संबंधित हैं। प्रस्तुत कहानी में एक बेबस दलित महिला है, जो दूसरे परिवारों की खुशी के लिए पहले से चार बच्चे होने के बावजूद भी सरोगेट मदर बनती है।

'मजूरी' कहानी में सुमति नामक दलित महिला को उचित मजदूरी न मिलने की कथा है। समाज में फैली आर्थिक विषमता का भलीभाँति चित्रण हुआ है। महेश जहाँ अपने नए घर में गृह प्रवेश के लिए नाना साधन जुटा रहा होता है, वहीं सुमति को उसके परिश्रम के पैसा (मजूरी) आज कल कहकर ताल देता था। सुमति विनयपूर्वक विनती करती है- *''ओ साब म्हारी मजूरी कब मिलेगी, ओ साब बतला न कब मिलेगी।''*[9] इस कथन में सुमति की दीन दशा की अभिव्यक्ति हुई है। कई दिन बीत जाने के बाद उन दोनों में गहमागहमी बातें होती हैं। अंत में महेश के इशारे पर रोमी उसकी कलाई पर नुकीले दाँतों से काट देता है और उसके आक्रमण से अंतत: सुमति की मौत हो जाती है। मानवीय संवेदना इतनी गिर गई है कि अपनी मेहनत कि उचित मजूरी माँगने से एक स्त्री को अपनी जान की कुर्बानी देनी पड़ जाती है।

निष्कर्ष :

पितृसत्तात्मकता समाज में स्त्री प्रतिपल शोषित होती रहती है। जबकि समाज को पूर्णरूप से विकसित करने में उसका भी बराबर का योगदान है। यह कहना कदाचित अतिशयोक्ति नहीं होगी कि स्त्रियाँ सदा ही पुरुषों से अधिक शक्तिशाली और जुझारू रही हैं। पुरुष भी अपने हर एक कार्य के लिए उन पर ही निर्भर है। परंतु आज वही स्त्री शक्तिहीन, उपेक्षित होकर भोग विलास की वस्तु बनकर रह गई है। आज उन पर तरह-तरह से अन्याय-अत्याचार किए जाते हैं। यह केवल उत्तर प्रदेश, मणिपुर, पंजाब आदि कोई एक विशेष राज्य की घटना न होकर पूरे भारत की एक ज्वलंत समस्या के रूप में परिलक्षित हो रही है। दलित कहानिकार अपनी आक्रामकता और आक्रोश से भरे स्वरों में नारी अस्मिता के सरोकारों की बातें करते हैं। उनके शोषण के कटु एवं निर्मम दृश्य को उजागर कर साधारण पाठक वर्ग के मन को झकझोर देते हैं। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. सिंह, डॉ. एन : 'दलित साहित्य के प्रतिमान'- वाणी प्रकाशन -2012, पृ. 23
2. शंकर डॉ. विवेक : 'हिंदी नवजागरण और वैचारिक पृष्ठभूमि' वीणा प्रकाशन, 2021 पृ. 214
3. मीनू, रजत रानी 'दलित स्त्री केंद्रित कहानियाँ, पृ.148
4. नैमिशराय, मोहनदास ''अपना गाँव' (आवाजें' कहानी संग्रह), श्री नटराज प्रकाशन, पृ. 50
5. मीनू ,रजत रानी : 'दलित स्त्री केंद्रित कहानियाँ, पृ-38
6. वही, पृ. 68
7. वही, पृ. 290
8. नैमिशराय, मोहनदास 'आवाजें' कहानी ('आवाजें' कहानी संग्रह), श्री नटराज प्रकाशन, पृ. 19
9. नैमिशराय, मोहनदास ''हमारा जवाब (कहानी संग्रह),श्री नटराज प्रकाशन, पृ. 138

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

गढ़वाल हिमालय के लोक गीतों में प्राचीन चैती पसारा और कुलाचार की परंपरा

नवीन चंद्र भट्ट

शोध छात्र, हिंदी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा विभाग
हे. न. ब. गढ़वाल (केंद्रीय)
विश्वविद्यालय
श्रीनगर, गढ़वाल-246174
9557622310
navinchandrabhatta@gmail.com

प्रो. गुड्डी बिष्ट पंवार

विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा विभाग
हे. न. ब. गढ़वाल (केंद्रीय)
विश्वविद्यालय
श्रीनगर, गढ़वाल-246174
9412356344
guddibp31dec@gmail.com

शोध-सार :

गढ़वाल हिमालय अपनी लोक सांस्कृतिक मान्यताओं, परंपराओं, प्रथाओं, रीति-रिवाजों, आस्था, विश्ड्डवास और उपासाना पद्धति के लिए भारतवर्ष में विशेष महत्व रखता है। मानव और प्रकृति के प्रति समायोजन करने वाली परंपराओं में चैती पसारा और कुलाचार प्रमुख हैं, जो प्रकृति के तत्वों को मानव मन से जोड़कर यथार्थ के धरातल पर लाने का प्रयास करती हैं। औजी (देवदास) चैत्र मास के प्रथम दिवस (हिंदू नववर्ष) के अवसर पर अपने 'ठाकुरों' और 'दिसा धियाणों' के चैक (आँगन) में ढोल-दमाऊ की लयकारी मधुर ताल पर मंगल कामना हेतु नौबत बजाते हैं। जो दिसा-धियाणों को उनके मायके की खुशहाली की सूचना देने आते हैं। गढ़वाल हिमालय में औजी मंगल कामना का संदेश देने ही आते हैं, किसी परिवार में शोक होने पर ये एकवर्ष तक नहीं आते। वार्षिक पितृ कार्य पूर्ण होने वाले दिन औजी घर के चैक में आकर नौबत बजाते हैं, और परिवार के लिए मांगलिक कार्यों के द्वार खुल जाते हैं। व्यावसायिक जाति के इन लोगों के गाँव और परिवार ब्राह्मणों की जजमानी की भाँति बँटे होते हैं, जहाँ जाकर ही ये चैती पसारा और कुलाचार उनकी सुख-समृद्धि और खुशहाली के लिए गाते हैं। गढ़वाल हिमालय की प्राचीन चैती पसारा और कुलाचार परंपरा में लोक कल्याण की मंगल भावना निहित है। औजी अपने ठाकुरों के हित और मंगल की कामना भगवान से करते हैं, जिसके परिपेक्ष्य में उन्हें अन्न, धन्न, वस्त्र और भूमि दान स्वरूप प्राप्त होते हैं। औजी अपनी प्राचीन परंपरागत उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए इस लोक परंपरा को जीवित रखे हुए हैं।

बीज शब्द : गढ़वाल हिमालय, लोक संस्कृति, लोक जीवन, लोक परंपरा, औजी, बद्दी, मिरासी, चैती, कुलाचार, ढोल दमाऊ, प्रभाती, श्याम कल्याणी।

प्रस्तावना :

गढ़वाल हिमालय की प्राचीन व्यावसायिक पेशेवर जातियों में औजी (आवजी), ढक्की-बद्दी और मिरासी लोग हैं। *''चैत का महीना व्यावसायिक जातियों का प्रिय महीना है। 'नाचदो मैना' चैत ही है। औजियों द्वारा चैती पसारा माँगने की प्रथा यहाँ बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। चैती गीतों को गाकर और उसी के अनुरूप नृत्य कर ये लोग अपने ठाकुरों के घर से या गाँवों से अन्न-धन की माँग करते हैं। भाट जाति के लोग अपने ठाकुरों की वंशावली*

कुलाचार गाकर और नाचकर सुनाते हैं। हुड़किये भी इसी महीने हुड़की की थाप पर मोहक गीतों को गाकर और नाचकर सुनाते हैं और चैती पसारा प्राप्त करते हैं। वादी-वादीणों के द्वारा भी इस महीने राधाखंडी, दीपक, शिव-पार्वती संबंधी नृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं।''[1] चैत्र मास के प्रथम दिन के प्रात: ढोल दमाऊ की लयकारी ताल के साथ गया जाने वाला लोक गीत प्रभाती कहलाता है। प्रभाती में मुख्य भाव जाग्रति का होता है, जिसमें प्रात: काल मंदिरों मैं नौबत के साथ देवता को जाग्रत किया जाता है। चैती के प्रभाती में भगवान राम, माता सीता के साथ सभी जीव जन्तु प्रात: काल जाग्रत हो गए हैं।

''रबी भानूं काँठौं चैढी ऐगैना, देवी सीता जी ।
व्यूजी गैना पंचनाम देवा ये देवी सीता जी।
सस्ना बंद चकवे की दुरो मन्द तारा सीता जी।
गौ की गलबन्द खुची, पंथी पंथूँ को चलीं सीता जी।
पूरब उज्यली पंछी बोलदीं देवी सीता जी।
गंगा जल भरी ला दे गागरी देवी सीता जी।
राम जी की नयेण की बेला ये देवी सीता जी।
रामजी कू लावे धोती पीताम्बरि देवी सीता जी।।''[2]

प्रात: काल का समय है- देवी सीता, पंचनाम देवता जाग्रत हो गए हैं। चकवा-चकवी प्रेम बंधन से मुक्त हो गए हैं। प्रकाशमान तारे मंद हो गए हैं। गायों के गले की डोरियाँ खुल गई हैं। अपने कार्यों के लिए राहगीर घरों से निकल गए हैं। पक्षियों के मधुर कलरव के साथ पूर्व दिशा प्रकाशमान हो रही है। हे माता सीता, गंगा जल की गागर लेकर आओ। रामजी के स्नान की बेला आ गई है। आप उनके लिए पीतांबरी धोती ले आओ। इसी प्रकार नंदादेवी (जिन्हें गढ़वाल हिमालय में माँ पार्वती का स्वरूप और भगवान शिव की अर्धांगिंनी के रूप में जाना जाता है।) औजी चैती गीतों में कहते हैं :-

''रवी भानू काँठौं चढ़ी ऐगैना, देवी नन्दा जी,
व्यूजी गैन पंचनाम देवा ये, देवी नन्दा जी,
सस्ना बन्द चकवे की दुरोमन्द तारा नन्दा जी,
गौ की गुलबन्द खुची, पंथी पंथौ को चली गैन नंदा जी,
पूरब उज्यली पंछी बोल दी, देवी नन्दा जी,
गंगाजल भरी ला दे गागरी-देवी नन्दा जी,
शिव जी की नयेण की बेला ये, देवी नन्दा जी,
शिव जी कू लादे, पीताम्बरि धोती, नन्दा जी।''[3]

प्रात: काल की बेला हो गई है। हे देवी नंदा समस्त संसार जाग्रत हो गया है। गंगा जल से गागर भर के ले आओ भगवान शिव के स्नान का समय हो गया है। भगवान शिव को पीतांबरी धोती पहनने के लिए दे दो। औजियों द्वारा देवी-देवताओं के जागृति के बोलो के साथ प्रकृति के सभी जीव-जंतुओं, पशु -पक्षियों, पृथ्वी, जल, आकाश और अंतरिक्ष के जाग्रति के बोल गाए जाते हैं।

प्रभात को परब जाग, गो सरूप पृथ्वी जाग।
धर्म सरूपी अगास जाग, उदयंकारी काँठा जाग।
भानुपंखी गरुड़ जाग, सत लोग जाग।
मेघ-लोक जाग, इन्द्र लोक जाग।
सूर्य-लोक जाग, चन्द्र लोक जाग।
तारा लोक जाग, पवन लोक जाग।
ब्रह्मा का वेद जाग, गौरी का गणेश जाग।
हरो-भरो संसार जाग, जन्तु जीवन जाग।
कीड़ी-मकोड़ी जाग, पशु पक्षी जाग।
नर-नारैण जाग, मरद औरत जाग।
दिन अर रात जाग, जमीन आसमान जाग।
शेष समुद्र जाग, खारी समुद्र जाग।
टटी समुद्र जाग, खैराणी समुद्र जाग।
घोर समुद्र जाग, अघोर समुद्र जाग।
प्रचंड समुद्र जाग, श्वेत-बंध रामेसुर जाग।
ह्यूं हिंवालू जाग, पयालू पाणी जाग।
गोवर्धन पर्वत जाग, राधा कुण्ड जाग।
बाला बैजनाथ जाग, धौली देव प्रयाग जाग।
हरि हरद्वार जाग, काशी विश्वनाथ जाग।
बूढ़ा केदार जाग, भोला शम्भुनाथ जाग।
कालसी कुमौऊं जाग, चोपड़ा चैथान जाग।
फटिंग का लिग जाग, सोवन की गादी जाग।।''[4]

चैत्र मास में बसंत का उत्सव मनाया जाता है। जो सात दिन से लेकर एक महीनें तक चलता है। छोटे- छोटे बालक-बालिकाएँ घरों के मुख्य द्वारों पर बुराँस, फ्योली के फूल, व पैय्या के पत्ते डालते हैं, जिसके परिपेक्ष्य में उन्हें गुड़, मिश्री और चना दिया जाता है। औजी गृहद्वारों पर आकर फुल संक्रांति की शुभकामनाएँ देते हुए कहते है:-

''फूलदेई फूलदेई फूल संगराँद।
सुफल करो नयो वर्ष तुमकू भगवान।
रंगीला-सजीला फूल ऐगी, डाला बोटला हर्या व्हैगीन
भाँति-भाँति का पौन पंछी ऐगी, फूल हँसी रैन
आयो यो नयो वर्ष, ऐगे आज या फूल संगराँद ।
तुमारा भण्डार भर्यान अन्न-धन्न फल-फूल्यान
औंद रैन रितु मास, फूलदा रैन रंगीला फूल
बच्याँ रौला हम तुम, फेर आली फूल संगरौंद॥''[5]

फूल संक्रांत की फूलदेई पर नववर्ष भगवान तुम्हें मंगलमय करें। प्रकृति में रंग-बिरंगे फूल खिले हैं, पेड़-पौधे हरे भरे हो गए हैं, अनेक प्रकार के पशु-पक्षी आ गए हैं। नववर्ष आ गया है, फूल संक्रां आ गई है। तुम्हारे अन्न-धन्न के भंडार भरे रहें। ऋतु मास आती रहे और फूल खिलते रहें। हम तुम जीवित रहे तो फिर मिलेंगे फूल संक्रांति के पर्व के अवसर पर। *''प्राचीन काल में पत्र भेजने की सुविधा नहीं थी। सुसराल में नारियाँ अपने मैत की, अपने माता-पिता, परिवार तथा निकट-पड़ोस की कुशल-मंगल का समाचार पाने के लिये बहुत व्यग्र रहती थीं। बसंत ऋतु मैं, जब सारी प्रकृति उत्सव मनाती है, उनकी यह व्यग्रता, जिसे 'खुद' कहते हैं, अत्यधिक बढ़ जाती थी। ऐसे अवसर पर मैत का औजी उनके पास मैत का संदेश लेकर पहुँचता था और उनकी 'खुद' शांत करता था। 'दीसा-धियाणी' की संतान होने पर औजी बधाई देने के लिए चैत मास में पहुँचता था। प्राय: वह नवजात शिशु के लिए वस्त्र एवं चाँदी की धागुली-हाँसुली भी ले जाता था। मैत के औजी के पहुँचने पर 'दीसा-धियाणी' की प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती थी। औजी 'दीसा-धियाणी' के घर के आँगन में ढोल-रौंटी बजाकर उसकी एवं उसके पारिवारिक जनों की मंगल की कामना करता था।''*[6] औजी अपनी दिसा धियाणों को सदेई के पतिव्रता धर्म, कर्मठ और संघर्ष की गाथा सुनाते हैं और उन्हें भी परिवार में समायोजन, प्रेम, त्याग और उत्तरदायित्व के साथ गृह कार्यों को करने की सलाह देते हैं।

''औजी सुणाला अपणी दिसौं कू।
दिसा सुणी क खुद बीसराली,
सन्मान कर्ली निज मैति औज्यों॥
पुछली तऊं से भि त बात मैते,
प्रसन्न होली सुणि बात मैते
देली तऊं को धन और कपड़ा,
भेंटेलि तों से निज जाणी मैते॥
प्रसन्न होई अर नाचि खेली,
स्ये औजि देला सब कू असोस ।
सदेइ कू मंगल होये जन्ने,
होयान उन्ने तुम कू भि सैबो॥''[7]

औजियों के गीत सुनकर महिलाएँ अपने मायके की खुद मिटाएँगी, अपने मैत के औजियों का सम्मान करेंगी। उनसे अपने मायके की बातें पूछेंगी। उन्हें अन्न-धन्न और वस्त्र देकर हँसी-खुशी विदा करेंगी। औजी उन्हें आशीष देकर सुख समृद्धि और मंगल की कामना करते हैं। इसी प्रकार औजी अपनी दिसा धियाणों को फ्योलीं के लोक गीत सुनाते हैं, जो फूलों के रूप में आज भी गढ़वाल हिमालयी जनमानस के बीच जीवित है।

''पुरड्ययों का मींडों मा चैत मास
फूलदी फ्यूंली, लोक वीं को नौऊं लेंदा।
देवतौं की धियाण होली फ्यूली रौतेली।
औंद फूल त्यौवार, चैत मास फ्यूंली फूलली,
गौंकी नौनी डेल्यों पूजली, फूल धरली।
मैत्या नौनी मैत आली, भेंटुली पाली,
औंदी रया रितु मास, फूलदी रया फ्यूंलीय
अमर रया हम-तुम।''[8]

फ्योलीं के फूल को चैत मास के अवसर पर गाँव की नन्ही बालिकाएँ गृहद्वारों पर रखती हैं। विवाहित महिलाएँ मायके आएँगी और भेंट पाएँगी। ऋतु मास आती रहे, फ्यूंली फूलती रहे। भगवान तुमको और हमें आरोग्यता प्रदान करे। औजी दिसा -धियाणों को पतिव्रता सती नारियों सावित्री, अनसूया, सीता, नंदा, रुक्मिणी की लोक गीतात्मक कथा। हिमालय की नारियों सदेई, रामी, सरु, जसी के साथ जीतू -भरणा, राजुला -मालूशाही की प्रेम गाथा सुनाते हैं।

कुलाचार :

गढ़वाल हिमालय में चैत्र माह (वसंत ऋतु) में

औजी परंपरा के व्यक्ति गाँव के चैक में अपने ठाकुरों, जिनमें ब्राह्मण और क्षत्रिय आते हैं, की संपन्नता के लिए अपने ईष्ट देवता से प्रार्थना करते हुए ढोल-दमाऊ की लयकारी ताल पर गीत गाते हुए कुलाचार इस प्रकार गाया जाता है:-

''यूँ को राज राखी देवता।
यूँ का माथा भाग दे देवता।
यूँ का बेटी-बेटा राजी रखी देवता।
यूँ का कुल की जोत जगै देवता।
यूँ का खजाना जश दे देवता ।
यूँ की डंडयाली भरीं रै देवता।
यूँ की साग सग्वाड़ी रोज रैन जलबली।
नाज का कुठार दे देवता।
धन का भंडार दे देवता।''[9]

भगवान हमारे ठाकुरों (ब्राह्मण, क्षत्रिय) के राज में वृद्धि करे, भाग्य में वृद्धि करे। संतान को दीर्घायु प्रदान करे, परिवार की वृद्धि हो, धन के भंडारों में वृद्धि हो। घर-आँगन प्रसन्नता और संपन्नता से खिलता रहे, खेत-खलिहान नई फसल उत्पन्न करते रहे, देवता अनाज और धन के भंडार भरे। कुलाचार गीत वीरगाथा काल में चारण एवं राज्याश्रित कवियों द्वारा बनाए गए गुणगान के गीतों के समान है। अपने ढोल पर ताल ठोकते समय औजी (आउजी) या भाट बड़े ही प्रभावकारी शब्दों में ठाकुर के ऐश्वर्य वैभव का गुणगान करता है:-

''बनयों आदेस, माता-पिता, गुरू देवता को आदेस,
रण कू दली, ठोकत ताल, फुट-फुट रे बाबा वज्र सी ताल,
ठाकुर की रौत्याली डिंडाली रहे, मान सम्मान बड़े
ठाकुर का घर सिणई बाजे, विणई बाजे,
जुग जुग रहे बंस को बाण, अक्षय रहे भंडार,
ठाकुर की पंन्द्रा पच्चीसी जुग जुग रहे।
ऊँ नमों माता पिता, गुरू को आदेस।''[10]

रण की भूमि में बज्र की हुँकार भरने वाले ठाकुर के घर में चहल पहल रहे, मान सम्मान बढ़े। ठाकुर के घर ढोल, शहनाई बजती रहे। कुल की वृद्धि हो, अन्न-धन्न के भंडार सदैव भरे रहें। ठाकुर दीर्घायु रहें। इसी प्रकार दान का महत्व बताते हुए औजी राजा बली के दान का वर्णन करते हैं, जिन्होंने अपनें बचन को निभाते हुए अपना सर्वस्व दान किया।

''वो दान्यो मा को दानी राजा बली दानी।
वो दान्यो माको दानी को राजा बतैद ।
वो दान्यों मा को दानी छ राजा कर्ण दानी।
कश्यप रिषि का हिरणकस्यप व्हेन राजा बली दानी।
हिरणकस्यप को जब भगत व्हैगे परिलाद राजा बली दानी।
परिलाद को बेटा राजा बिलोचन व्हैन राजा बली दानी।
बिलोचन को बेटा राजा बलि व्है राजा बली दानी।
ऊँन जिमि दान कैन, भूमि दान कैन राजा बली दानी ।
चाँदि दान कैन, सूनो दान कैन राजा बली दानी।
हस्ति दान कैन, घोड़ा दान कैन राजा बली दानी।
पारबरम स्वामिन बौनो रूप लेन राजा बली दानी ।
बौनो भगवान द्वि पग भूमि माँगद राजा बली दानी।
राजा बलि को गुरु छ्यो शुकराचार्य राजा बली दानी।
शुकराचार्य सब बात समझी गैन राजा बली दानी॥''[11]

दानियों में दानी राजा बली हुए। महर्षि कश्यप के पुत्र हिरण्यकश्यप, हिरण्यकश्यप से भक्त प्रह्लाद, भक्त प्रह्लाद से बिलोचन, बिलोचन के पुत्र हुए राजा बली, जिन्होंने भूमिदान, स्वर्णदान, चाँदीदान, हाथीदान, घोड़ादान किया, जिसे देखकर परब्रह्म ने बौना (वामन) रूप धारण किया और दो पाँव जमीन की माँग की। राजा बली के गुरु शुक्राचार्य प्रभु की लीला समझ गए। दान के महत्व को बताया गया है। कहने का तात्पर्य है कि दान के कारण ही बली को परब्रह्म के स्वरूप के दर्शन प्राप्त हुए और वे विश्व में दानी के रूप में जाने जाने लगे। औजी दानियों में दानी सूर्यवंशी राजा हरिश्चंद्र की गाथा सुनाते हैं, जो भाग्य के कारण मरघट में नौकरी करने लगे।

''दान्यूँ मा को दानी
छायो दान्यूँ माँ को दानी
सूरिजा वंशी राजा हरीचन्दा जी॥
जैका छाया सूना का छतर
छाया बैका चाँदी का पतर जी॥
जैका छाया मोत्यूँ का खल्याण,
छाया जैका हीरो का डिसाण जी॥
जैका पास छई नौउ निधि
चरणू माँ जै की अष्ट सिद्धि जी॥

छायो जै को पराणी उभैलो
आज वे को सरैला धुमैलो जी॥
बलूरी आज वे की छन फैली
धुँवा ला आँखी वे की मैली जी॥
विधना की कनी या ठाकुरी
राजा लग्यो ध्यूँरा की चाकरी॥' [12]

सूर्यवंशी राजा हरिश्चंद्र का राजमहल स्वर्ण और चाँदी के पत्रों से मढ़ा हुआ था। आँगन मोतियों से भरा था। बिछोना हीरो का था। उनके पास अष्ट सिद्धि और नव निधियाँ थीं। दान में उन्होंने अपना सर्वस्व दिया तो उन्हें नौकर की भांति मरघट में कार्य करना पड़ा। उनकी आँखें धुएँ के कारण मैली, मुख मलिन और जटा बढ़ गई। दान के साथ साथ ईश्वर कृपा और भाग्यवाद के महत्व को बताया गया है।

''मूसा घाँट पैरावे, दुलाँ बैठे,
कागा घाँड पैरावे, दुन्या फिरे,
दातों का दियान, भंडार नी घटदो माराज,
पंछी का पियान, समोद्र नी सुखदो माराज।
अपणा बाँठा की दाल-भात
अपणी गत्ति को मैल दे देण, माराज
नंगो ढकौण, भूखो पत्योण
जै जै माराज॥' [13]

चूहे के गले में घंटी पहनाई जाए तो वह बिल में जाएगा। यदि कौवे के गले में घंटी पहनाई जाये तो वह संसार भर में फिरेगा। इसी प्रकार मैं भी आप के दान के यशोगान का गुणगान करता रहूँगा। पक्षी के पानी पीने से समुद्र नहीं सूखते, उसी प्रकार आप के दान देने से अन्न-धन्न के भंडार में कोई कमी नहीं आएगी। इसलिए अन्न-धन्न और वस्त्रों का दान कर देना चाहिए। वर्तमान समय में कुलाचार सम्मान, प्रतिष्ठा और वैभव के आधार पर औजी अपनें ठाकुरों के चैक में कुलाचार गाते हैं।

''मर्द को मर्द जाने, मर्द को मर्द पछाने,
मर्द को मर्द छुड़ावे, मर्द को मर्द बचावे।
बाजा में ढोल काम, हस्ती के दंत काम,
देखने में सब आम, देवे जो रहे नाम।
अंधे को जोत नी, बैरी को राग नी,
फूस-फास की ओट नी, चादर की चोंट नी।
नंग के ऊपर मास नी, ढुंगा पर घास नी,
सोम आदमी की, कुई आस नी॥'' [14]

मर्द को मर्द ही जानता-पहचानता है। वाद्यों में ढोल, दाँतों में हाथी दाँत काम आता है। उसी प्रकार जो कुछ दान करने में समर्थ रहता है, उसी से सहायता की अपेक्षा की जाती है। दिन भर विभिन्न विषय के लोक गीत गाए जाते हैं। संध्याकाल के समय औजियों (देवदासों) के द्वारा ढोल-दमाऊ की युगलबंदी ताल पर श्याम कल्याणी गाया जाता है।

''झै माता सकल भवानी
जल थल उदपी भवानी झै माता सकल भवानी।
द्यूल थाल कपास की बाती माता सकल भवानी।
सवाँ गज जोत जगाई माता सकल भवानी।
माता को रिंगद छतर चढ़ायो झै माता सकल भवानी।
द्यबतो को तु ध्याणी भवानी माता सकल भवानी।
दैतू को दल भगसीणे भवानी माता सकल भवानी।
यक दंत अकास एक दंत पाताल माता सकल भवानी
लोई तिसाली मासू की मुकाली माता सकल भवानी।
खड्ग चक्र खप्पर ले की आजा माता सकल भवानी।।'' [15]

चैती एवं कुलाचार के दिन भर के उत्सव के पश्चात औजी सायं काल को देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं- जल, थल को उत्पन्न करने वाली माता है। सवा गज की ज्योति से माता का दीपक जलाया, माता को भक्तों ने छत्र चढ़ाया। देवी के स्वरूप को देखकर दैत्यों में हाहाकार उत्पन्न हो गया। खड़ग खप्पर ले कर माता आ गई और दैत्यों का संहार कर भक्तों को भयमुक्त कर दिया।

निष्कर्ष :

गढ़वाल हिमालय में यह परंपरा आदिकाल से चली आ रही है, जिसमें औजी अपने आश्रित राजाओं की प्रशंसा के गीत गाते थे और वे प्रसन्न होकर इन्हें अन्न और धन्न पुरस्कार स्वरूप प्रदान करते थे, जिससे वे अपने घर परिवार का निर्वाह करते थे। समय के साथ राजा रजवाड़ों का अंत हो जाने के कारण उसी परंपरा के ब्राह्मण और क्षत्रियों के गृहद्वारों पर औजी और बेडा (बादी और बद्दी) जातियों द्वारा इनके कुल और परिवार की प्रशंसा के गीत गाए जाते हैं, और उसके परिप्रेक्ष्य में उनकी आवश्यकता की वस्तु कपड़े, अनाज और धन दिया जाता

है। किंतु धीरे-धीरे यह परंपरा अपनी समाप्ति की ओर है। बद्दी और मिरासी परंपरा तो पूर्णत: समाप्त हो गई है। कुलाचार और चैती पसारा की परंपरा कहीं-कहीं ही दिखाई देती है। मांगलिक कार्यों में मैदानी वाद्य, बड़े-बड़े ध्वनि विस्तारक यंत्रों (लाउडस्पीकरों) का प्रयोग, लोक कला में रुचि का अभाव और सम्मान का भाव न होना मुख्य कारण हैं। आवश्यकता है कि गढ़वाल हिमालय की इस प्राचीन लोक परंपरा के संवर्धन हेतु प्रयास व इसके कलावंतों को विशेष रूप से पुरस्कृत और उचित सम्मान के लिए स्थानीय लोगों को प्रयास करना चाहिए। मांगलिक कार्यों, धार्मिक अनुष्ठान, व्रत और त्योहारों के अवसर पर कलावंत बाजीगरों, बद्दी और मिरासी को आमंत्रित कर उनकी कला का आनंद लेकर उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। जहाँ प्राचीन मठ व मंदिर हैं, वहाँ कलावंतो का ढोल-दमाऊ के वादन का अधिकार होने से यह परंपरा मूल स्वरूप में है। मंदिर में दर्शन के लिए आने वाले श्रद्धालुओं द्वारा दिए जाने वाले दान, मंदिर में वाद्य परंपरा का अधिकार होने से निश्चित वेतन से रोजगार मिलनें के कारण यह कला वहाँ सुरक्षित है। ❑

संदर्भ :

1. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल के लोक नृत्य गीत, हिंदी साहित्य अकादमी प्रयाग, प्रकाशन वर्ष 1981, पृष्ठ 72
2. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल के लोक नृत्य गीत, हिंदी साहित्य अकादमी प्रयाग, प्रकाशन वर्ष 1981, पृष्ठ 342
3. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल का सांस्कृतिक वैभव, सुलभ प्रकाशन लखनऊ, प्रकाशन वर्ष 1994 ई., पृष्ठ 199
4. शिवानंद नौटियाल, गढ़वाल के लोक गीत एवं लोक नृत्य, सुलभ प्रकाशन लखनऊ, प्रकाशन वर्ष 1990 ई., पृष्ठ 11
5. चातक, गोविन्द, गढ़वाली लोक गीत, साहित्य अकादमी नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2019,पृष्ठ 31
6. गैरोला, पंडित तारादत्त, सं. शिवप्रसाद डबराल चारण, सदेई जाग्रत स्वप्न, वीरगाथा प्रकाशन डो गडा गढ़वाल, प्रकाशन वर्ष 1978 ई., पृष्ठ 8-9
7. गैरोला, पंडित तारादत्त, सं. शिवप्रसाद डबराल चारण, सदेई जाग्रत स्वप्न, वीरगाथा प्रकाशन डो गडा गढ़वाल, प्रकाशन वर्ष 1978 ई., पृष्ठ 53-54
8. चातक, गोविंद, गढ़वाली लोकगाथाएँ, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1996, पृष्ठ 247
9. नौटियाल, डॉ. शिवानंद, गढ़वाल के लोक नृत्य गीत, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रकाशन वर्ष 2003, पृष्ठ 72
10. काला, डॉ. जनार्दन प्रसाद, गढ़वाली भाषा और उसका लोक साहित्य, समय साक्ष्य देहरादून, प्रकाशन वर्ष 2012, पृष्ठ 213
11. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल के लोक नृत्य गीत, हिंदी साहित्य अकादमी प्रयाग, प्रकाशन वर्ष 1981, पृष्ठ 343
12. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल के लोक नृत्य गीत, हिंदी साहित्य अकादमी प्रयाग, प्रकाशन वर्ष 1981, पृष्ठ 344
13. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल के लोक नृत्य गीत, हिंदी साहित्य अकादमी प्रयाग, प्रकाशन वर्ष 1981, पृष्ठ 350
14. नौटियाल, शिवानंद, गढ़वाल के लोक नृत्य गीत, हिंदी साहित्य अकादमी प्रयाग, प्रकाशन वर्ष 1981, पृष्ठ 351।
15. अनुरागी, केशव, नाद-नंदिनी, विश्व प्रकाशन नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1996 ई., पृष्ठ 123

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ज्योति प्रसाद अगरवाला के साहित्य का हिंदी अनुवाद : एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण

मंजूरी डेका

शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
(शिक्षिका, नाईट हायर सेकेंडरी स्कूल
पल्टन बाजार, गुवाहाटी-1)
9678263880
monjurideka99@gmail.com

डॉ. आशीष पाण्डेय

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग
1022, रामानुजन निवास,
वनस्थली विद्यापीठ
निवाई, टोंक, राजस्थान-304022
8808427443
ashishpanday@banasthali.in

शोध-सार :

असम, पूर्वोत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण अहिंदीभाषी राज्य है। यहाँ हिंदी भाषा का आगमन कब और कैसे हुआ, इसका सटीक अनुमान लगाना कठिन है, क्योंकि इसकी कोई स्पष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उपलब्ध नहीं है और विद्वानों में इस विषय को लेकर मतभेद हैं। फिर भी कुछ संकेत इस दिशा में अवश्य मिलते हैं। असम के जोरहाट जिले के विष्णु खरघोरिया, एक असमीया विद्वान ने हिंदी व्याकरण की रचना कर हिंदी भाषा के प्रति गंभीर रुचि दर्शाई थी। सन 1934 में स्वातंयोत्तर असम के प्रथम मुख्यमंत्री, स्वतंत्रता सेनानी गोपीनाथ बरदैलौ और अन्य देशभक्तों के अनुरोध पर महात्मा गांधी के आदेश पर जननेता व समाजसेवक बाबा राघवदास असम आए और पूर्वोत्तर भारत में हिंदी प्रचार प्रारंभ किया। उस समय तक असम में किसी भी समिति की स्थापना नहीं हुई थी। यद्यपि 15वीं शताब्दी में संत शंकरदेव द्वारा प्रयुक्त ब्रजबुलि भाषा को हिंदी के समकक्ष माना जाता है, फिर भी मानक हिंदी भाषा के औपचारिक प्रचार-प्रसार की नींव असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा हुई हम यह कह सकते हैं, जो कि एक हिंदी सेवी संस्था है, जिसकी स्थापना 3 नवंबर, 1938 को 'असम हिंदी प्रचार समिति' नाम से की गई थी। बाद में इसका नाम 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' पड़ा। तब से लेकर आज तक हिंदी भाषा के उत्थान के लिए असम में अनेक कार्य हुए हैं। कई संस्थाओं की स्थापना हुई, कई असमीया-हिंदी अनुवाद कार्य हुए हैं। भौगोलिक रूप से सुंदर और सांस्कृतिक रूप से सशस्त्र यह राज्य साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। असम विभिन्न भाषाओं और विधाओं के साहित्य की खान है। इस साहित्य को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाने का प्रमुख माध्यम अनुवाद है, और हिंदी इस कार्य के लिए एक उपयुक्त सेतु सिद्ध हो रही है। इसी संदर्भ में असम के बहुप्रतिभाशाली साहित्यकार ज्योति प्रसाद अगरवाला का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे असमीया साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर रहे हैं। उन्होंने असम की पहली सबाक फिल्म 'जयमती' का निर्माण, निर्देशन और संगीत संयोजन किया। वे न केवल एक उत्कृष्ट रचनाकार थे, बल्कि स्वतंत्रता सेनानी, चित्रकार, संगीतकार और चाय कृषक भी थे। उनकी रचनाओं में गांधी, रवींद्रनाथ ठाकुर और शंकरदेव के आदर्शों की स्पष्ट झलक मिलती है। ज्योति प्रसाद के गीत, जिन्हें 'ज्योति संगीत' कहा जाता है, असम की सांस्कृतिक आत्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे रवींद्रनाथ ठाकुर के गीत बंगाल में। उनकी कुछ रचनाएँ हिंदी में भी उपलब्ध हैं। उनकी साहित्यिक

रचनाओं को देवी प्रसाद बागड़ोदिया ने हिंदी में अनुवाद कर एक अद्वितीय कार्य किया है, जिससे असमीया साहित्य को हिंदी भाषी पाठकों तक पहुँचाने में सहायता मिली है। यह भारतीय साहित्यिक एकता की दिशा में एक सार्थक पहल है। प्रोफेसर नगेन शइकिया और असम प्रकाशन परिषद ने उनकी संपूर्ण रचनाएँ असमीया में संकलित की हैं, जबकि हिंदी अनुवादों ने उनके कार्य को भारतीय साहित्यिक परंपरा का हिस्सा बना दिया है। हिंदी अनुवाद के माध्यम से न केवल उनकी साहित्यिक प्रतिभा को व्यापक पहचान मिली है, बल्कि असमीया संस्कृति और विचारधारा को भी देशभर में सम्मान मिला है। अत: यह आवश्यक है कि ज्योति प्रसाद अगरवाला के बहुआयामी कार्यों पर और अधिक शोध व अनुवाद कार्य किए जाएँ। अन्यथा, भारतीय पाठक समाज इस बहुप्रतिभाशाली साहित्यिक व्यक्तित्व के समृद्ध योगदान के बारे में जानने से वंचित रह जाएँगे। इस लेख में असम में हिंदी के आगमन, स्थिति और ज्योति प्रसाद अगरवाला के साहित्य का हिंदी में अनुवाद—इन सभी पहलुओं पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है।

बीज शब्द :

साहित्य, परंपरा, संस्कृति, भाषिक समन्वय, अनुवाद।

विषय-प्रवेश :

मनुष्य जन्मजात अनुकरण प्रिय है। वह अनुकरण से सीखता है और नई संभावनाओं का उद्‌भव करता है। किसी-न-किसी तरह अनुकरण का संबंध अनुवाद से है। भाषा सिर्फ संप्रेषण का ही साधन नहीं, अपितु यह किसी जाति या राष्ट्र की अंतर्निहित मूल्य भी है। भाषा के द्वारा किसी समुदाय की साहित्य, संस्कृति का पता चलता है और इसका उत्कर्ष और संरक्षण अनुवाद के माध्याम से संभव होता है। अनुवाद एक समुदाय को दूसरे समुदाय से, एक भाषा को दूसरी भाषा से और एक देश को दूसरे देश से जोड़ता है। आज के युग में अनुवाद बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनुवाद एक सरल कार्य नहीं है; अनुवादक के लिए चुनौती स्वरूप होता है- किसी भी साहित्य को एक भाषा से दूसरी भाषा तक ले जाना। परंतु अनुवाद अगर सही तरीके से किया जाए तो इसका परिणाम बहुत मीठा होता है। भारतवर्ष के अहिंदी प्रदेशों में साहित्य का खान छुपा हुआ है। असम भी एक ऐसा प्रदेश है, जो साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से धनी है। यहाँ के साहित्य का हिंदी में अनुवाद करने के लिए कई अनुवादक हुए हैं। कई पुरस्कार प्राप्त पुस्तकों का अनुवाद हिंदी में हो चुका है। यह अध्ययन अनुवाद के महत्व को उजागर करता है, विशेषकर हिंदी और असमीया साहित्य के बीच। ज्योति प्रसाद अगरवाला जैसे बहुआयामी व्यक्तित्व का साहित्यिक विश्लेषण असम की सांस्कृतिक समृद्धि को समझने का माध्यम है। उनका अध्ययन हिंदी-असमीया साहित्य के बीच सेतु निर्माण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह शोध दोनों भाषाओं के साहित्यिक संबंधों को सुदृढ़ करने वाली एक सार्थक उपलब्धि सिद्ध हो सकती है।

हिंदी अनुवाद की आलोचना से पहले ज्योति प्रसाद अगरवाला के जीवन-परिचय को संक्षेप में प्रस्तुत करना समीचीन होगा। ज्योति प्रसाद अगरवाला असमीया साहित्याकाश के एक उज्ज्वल नक्षत्र, संगीत, नाटक और सिनेमा के क्षेत्र में नवयुग के प्रवर्तक थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे एक कवि, नाटककार, चित्रकार, संगीतकार, चलचित्र निर्माता-निर्देशक, चाय बागान के प्रबंधक और एक सच्चे राष्ट्रभक्त स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने असमीया साहित्य और संस्कृति को एक नई दिशा दी तथा अपने बहुपक्षीय योगदान से इसे समृद्ध किया। अगरवाला के पूर्वज 1828 में राजपुताना (वर्तमान राजस्थान) से असम आए थे और यहाँ की संस्कृति में पूर्ण रूप से रच-बस गए। परिवार के कई सदस्यों ने असमीया भाषा और संस्कृति के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। ज्योति प्रसाद अगरवाला का जन्म 17 जून, 1903 को तामुलबारी (जिला डिब्रूगढ़, असम) स्थित चाय बागाना में हुआ था। उनके पिता का नाम परमानंद अगरवाला और माता का नाम किरनमयी देवी था। उन्होंने 1921 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की, लेकिन उसी समय असहयोग आंदोलन के प्रभाव में आकर पढ़ाई छोड़ दी। आंदोलन के थमने के बाद उन्होंने कोलकाता के नेशनल कॉलेज में दाखिला लिया और फिर 1926 में इकॉनोमिक्स की पढ़ाई के लिए एडिनबर्ग विश्वविद्यालय (इंग्लैंड) गए। इकॉनोमिक्स की पढ़ाई रास न आई और वहाँ से वे जर्मनी चले गए, जहाँ उन्होंने सिनेमा निर्माण की शिक्षा ली और 1930 में भारत लौट

आए। सन 1933 में उन्होंने 50,000 रुपए के बजट में असमीया साहित्य के महान साहित्यकार रसराज लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा की रचना पर आधारित 'सती जयमती' नामक ऐतिहासिक नाटक पर फिल्म बनाने का निर्णय लिया। इसी के परिणामस्वरूप बनी पूर्वोत्तर भारत की पहली सवाक (talkie) फिल्म 'जयमती' और जिस पर असमवासियों को अत्यंत गर्व है। ज्योति प्रसाद इस फिल्म के निर्माता, निर्देशक और पटकथा लेखक स्वयं थे। इस महान विभूति का देहावसान 17 जनवरी, 1951 को तेजपुर में हुआ। उनका निवास स्थान 'पकी' आज 'ज्योति भवन' के नाम से जाना जाता है, जो असम की सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है।

अनुवादक, विशिष्ट साहित्यकार देवी प्रसाद बागड़ोदिया का जन्म डिब्रूगढ़ जिले के टेंगाखात अंचल में निवास करने वाले शिव भगवान व बसंती देवी बागड़ोदिया के द्वितीय पुत्र के रूप में 8 नवंबर, 1939 में हुआ था। टेंगाखात में हाई स्कूल में असमीया माध्यम में पढ़े। उसके बाद उन्होंने आई.एससी. (ISC) किया और फिर डिब्रूगढ़ के डी.एच.एस. कनोई कॉलेज से बी.ए. तक की पढ़ाई की। उसके बाद जोरहाट के टोकलाई चाय गवेषणा केंद्र में चाय की खेती का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसके पश्चात बागड़ोदिया परिवार कारोबार से जुड़ा और सफल उद्योगपति के रूप में उभरा। इस दौरान बागड़ोदिया को भारतीय चाय परिषद के अध्यक्ष के रूप में मनोनीत किया गया। इसी बीच उन्होंने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह भी किया, जिसके तहत वे डिब्रूगढ़ के मनोहरी देवी कनोई महिला महाविद्यालय, हनुमानबाक्स सूरजमल कनोई महाविद्यालय, गोपाल गौशाला, डिब्रूगढ़ साहित्य सभा आदि संस्था व प्रतिष्ठानों के विभिन्न पदों पर आसीन हुए। वे असम साहित्य सभा के आजीवन सदस्य के साथ सभा के न्यास पूँजी के कोषाध्यक्ष के पद का कार्यभार भी संभाल चुके हैं। बागड़ोदिया ने असमीया साहित्य के प्रचार-प्रसार में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने असमीया, हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं के बीच सेतु का कार्य करते हुए श्रीमंत शंकरदेव की 'गुणमाला', 'बरगीत', माधवदेव की 'नामघोषा', 'ज्योतिप्रसाद अगरवाला की रचनावली', तथा डॉ. नगेन सइकिया की 'मितभाष' का असमीया से हिंदी और अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसके अलावा, उन्होंने डॉ. नगेन सइकिया की मीराबाई की जीवनी, चाह गसर कलम और अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकों का भी असमीया में रूपांतरण किया है। ["The Assam Tribune Online". www.assamtribune.com. Archived from the original on wv May 2014.] बागड़ोदिया का पैतृक निवास राजस्थान के झुंझनु जिला के मुकंदगड़ में है। 2009 में असम सरकार का 'साहित्य पुरस्कार' प्राप्त करने वाले बागड़ोदिया ने शंकरदेव की 'गुणमाला' का हिंदी में अनुवाद कर शास्त्रीय संगीतकार सुब्रत खाउंड की आवाज में तथा उनके बेटे डॉ. सुधीर बागड़ोदिया द्वारा निर्मित एक घंटे अड़तालीस मिनट की ऑडियो सीडी तैयार की है। सीडी और अनूदित गुणमाला[1], जिसमें छह घोषा और 490 छंद शामिल हैं, का सत्राधिकारी डॉ. पीतांबर देवगोस्वामी द्वारा जोरहाट आऊनिआची सत्र में आयोजित एक समारोह में लोकार्पण किया गया था। इस संबंध में बागड़ोदिया की टिप्पणी थी कि- 'भारत की किसी भी भाषा में ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं है, जिसमें भगवत गीता इतनी संक्षिप्त हो। इसलिए मैंने हिंदी भाषियों को इस पुस्तक और शंकरदेव की प्रतिभा से अवगत कराना अत्यंत आवश्यक समझा।' बागड़ोदिया ने कुछ ज्योति गीतों का हिंदी में अनुवाद डिब्रूगढ़ के दिवंगत प्रमुख संगीतकार निर्मल चक्रवर्ती, जो ज्योति प्रसाद के करीबी थे, से करवाया था। देवी प्रसाद बागड़ोदिया एक प्रशंसनीय लेखक हैं, जिन्होंने अधिकांश असमीया साहित्यकारों की प्रसिद्ध रचनाओं का अनुवाद किया है। उन्होंने ज्योतिप्रसाद अगरवाला के संपूर्ण कृतित्व का हिंदी में अनुवाद किया, जो दो पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुआ- ज्योति सुधा (1991) और ज्योति प्रभा (1995)। ज्योति प्रभा ["The Sentinel". www.sentinelassam.com. Archived from the original on wy September 2015.] का विमोचन भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा द्वारा किया गया था। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा को औपचारिक रूप से पुस्तक सौंपने के लिए नई दिल्ली में एक समारोह भी आयोजित किया गया था। इन दो कार्यों को विशेष रूप से राज्यसभा के तत्कालीन सदस्य और असम साहित्य सभा के पूर्व अध्यक्ष डॉ. नगेन सइकीया ने समर्थन दिया था। असमीया साहित्य और संस्कृति को

दर्शाने वाले ये सभी कार्य राष्ट्रीय स्तर पर विद्वानों द्वारा सराहे गए। उन्होंने विवेकानंद अगरवाला द्वारा लिखित "The Agarwala Family of Tezpur" नामक पुस्तक का भी प्रकाशन किया है। इसके अतिरिक्त, उनकी अन्य प्रमुख प्रकाशित कृतियों में "You and Me on a Journey to Light" शामिल है, जो चंद्रप्रसाद सइकिया और आनंद बोरमुड़ोई द्वारा रचित है। बागड़ोदिया को राष्ट्रीय एकता में योगदान के लिए भारत सरकार के मानव संसाधन विभाग के हिंदी निर्देशालय ने अनुवाद पुरस्कार (1991), फूलचंद खंडेलवाल संहति पुरस्कार (2002), असम सरकार का साहित्य पुरस्कार (2009), राजस्थान के मीरा स्मृति संस्थान ने मीराबाई सन्मान पुरस्कार (2011), सज्जन जैन स्मृति पुरस्कार (2016) तथा असम सरकार ने साहित्यिक पेंशन (2016) प्रदान किया गया।

ज्योतिप्रसाद की रचनाओं का प्रकाशित हिंदी अनुवादों का विवरण :

किसी यशस्वी एवं लब्धप्रतिष्ठित साहित्य मनीषी की कृतियों का अनुवाद अपने आप में एक दु:साहसिक कार्य है। यह कार्य तब और भी कठिन हो जाता है, जब वह रचनाकार बहुमुखी प्रतिभा का धनीं हो। रूपकोंवर ज्योतिप्रसाद अगरवाला ऐसे ही एक रचनाकार शिल्पी हैं। उनका रचना काल यद्यपि छोटा रहा, क्योंकि 47 वर्ष की अल्पायु में ही अपनी लीला संवरण कर महाप्रयाण कर गए, परंतु उनकी कृतियों का दर्शन जीवन को सुंदर बनाने की ओर ले चलता है। वे असमीया साहित्य संगीत कला के नवयुग प्रणेता, कवि, चित्रकार, संगीतकार, नाट्यकार, चलचित्र निर्माता-निदेशक, चाय बागान के प्रबन्धक तथा देशभक्त, स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने असमीया साहित्य-संस्कृति को नया रूप दिया। उनका सभी प्रकार का साहित्य असमीया साहित्य भंडार को समृद्ध करने महत्वपूर्ण भूमिका का प्रतिनिधित्व करता है। उनकी इन विशाल कला-कृष्टि से अभिभूत होतर विभिन्न समय में विभिन्न हिंदी साहित्य प्रेमियों ने उनकी रचनावली का हिंदी अनुवाद करना चाहा। उनमें से हम सर्वप्रथम देवीप्रसाद बागड़ोदिया जी का नाम ले सकते हैं। उन्होंने 'ज्योतिसुधा' नाम से ज्योतिप्रसाद के एक नाटक, तीन कहानियों तथा पाँच गीतों का एक छोटा-सा अनूदित ग्रंथ दिनांक 10 सितंबर, 1991 का तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा के करकमलों से विभोचन संपन्न करवाया। बाद में ज्योति प्रभा शीर्षक ज्योति प्रसाद जी की प्राय: पूरी कृतियों का अनुवाद संग्रह प्रकाशित हुआ। उन्होंने ज्योतिप्रसाद जी की रचनावली का अनुवाद जो अपने आप में एक दु:साध्य कार्य है, को वास्तविकता प्रदान किया। देवी प्रसाद बागड़ोदिया द्वारा ज्योति प्रसाद अगरवाला की हिंदी में अनूदित रचनाओं का अध्ययन और पर्यवेक्षण के पश्चात इस नतीजे में आते हैं कि उनकी रचनावली का अनुवाद सिर्फ भावांतर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि भावों का समांतर संप्रेषण भी उसका एक महत्वपूर्ण अंग है। ज्योतिप्रसाद अगरवाला का भाव ओज युक्त है, जिसके जरिए स्वाधीनता के लिए देश लड़ रहा था। स्वतंत्रता के समय ज्योतिप्रसाद अगरवाला ने मैथिलीशरण गुप्त जी की तरह कई देशभक्ति मूलक गीत, ओजपूर्ण, मानश्चेतनता मूलक गीत, कविता आदि कृतियों की रचना की देश की जनता के मन में राष्ट्रप्रेम जगाने के लिए। इसलिए उनकी रचनाओं के अनुवाद एक प्रकार से किसी रचना का पुन:सर्जन है। किंतु यह कार्य एक निर्धारित परिधि में बँध है और इसी लक्ष्मण रेखा की मर्यादा को स्वीकार करते हुए असम के इस ज्योति संस्कृति प्रेमी अनुवादक को अपना कार्य करना पड़ा है।

(क) कविता

ज्योतिप्रसाद मूलत: कवि थे। उनके कवि होने की सुषमा और सौरभ गद्य में भी व्याप्त है। ज्योतिप्रसाद की रचनावली का अनुवाद जो अपने-आप में एक दु:साध्य कार्य है, जिसे देवीप्रसाद बागड़ोदिया जी ने वास्तविकता प्रदान की।

सुन्दरर जययात्रा
बजा बजा, बजा बाहीं/ बजा बजा बासुरी
असीम सुन्दर/ जो असीम सुन्दर
यात्रा बाटतो मोर/ यात्रापथ को मेरे
सुर कल्लोलर तोर/ सुर कल्लोल से तेरे
करि दे सुखर/ कर के सुखर
जीवनले आहक वसन्त/ जीवन में भर दे बहार
कविता संस्कृति अर्थनीति , व्यापार के बारे में उन्होंने कहा-
पारस्परिक चिरजीवन से
मनुष्य के इस

प्रकाश विकास को
कर रही सफल ।
संस्कृति के फूल में, रहते अर्थनीति के बीज
वास्तव की माटी पर गिर
अंकुराते फूट-फूट
अर्थनीति के फल में रहते मानव संस्कृति के
हजारों विविध के सुंदर-सुंदर
विविध रंगों के फूल।

ज्योति प्रसाद अगरवाला अपने आप को पूरी तरह पीड़ित मानव से जोड़ लिया है, जब उन्होंने लिखा था-

दुनिया के लोगों का दु:ख
मेरा अपना दु:ख है
मैं उनमें अपने आप को देखता हूं
मैं उनमें से एक हो आता हूँ

ज्योति प्रसाद जी ने विश्व शिल्पी नाम से लिखी कविता में से एक में उन्होंने अपने विचार को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है। साहित्यकरण के वास्तविक उद्देश्य को प्रकट करते हुए लिखते हैं-

मैं कवि तीन युगों का
अतीत, वर्तमान और अजन्मे भविष्य का
दुनिया के सवेरे के साथ मैंने यात्रा शुरू की
और अनंत सीमाओं को पार
विनाश से होकर
विकास से होकर
मैंने आकर ग्रहण किया
मैंने सबसे नए सृजन को रोशन किया
ऊपर उठकर
विभिन्न भाषाओं, विभिन्न आकांक्षाओं
विभिन्न नस्लों और धर्मों से
मुझे दूर से ही सुनाई पड़ता है
दुनिया के लोगों का अद्भुत संगीत गाता हूं।

उनकी एक लोकप्रिय कविता का अनुवाद-

'मैं कंचनजंगा
ऊषा शुभाशीष
मैं ही अभ्रभेदी वीर
मेरी जटा झड़ झड़
निर्झ निर्झ बह
निर्गम निर्गम
अविरल कल कल'

अनुवाद में भावों का कोई स्थानांतर या विकृत रूप दिखाई नहीं देता।

(ख) निबंध :

ज्योतिप्रसाद अगरवाला के 12 निबंधों का अनुवाद हुआ है। 'शिल्पीर पृथ्वी' शीर्षक निबंध बहुत ही लंबा होने के कारण इसका एक बार अनुवाद होने के बाद फिर संशोधन करके नए सिरे से लिखा गया था। उन्होंने 23 निबंध लिखे हैं, परंतु इनमें से 3 असंपूर्ण हैं। उनके द्वारा लिखित निबंधों के शीर्षक कुछ इस प्रकार हैं- महात्मा गान्धीर जीवन सोंवरणी, शिल्पीर पृथिवी, नतुन दिनर कृष्टि, नतुनर पूजा, असमीया संस्कृति, प्रागज्योतिका तरुपा-तर्पण इत्यादि। उल्लेखनीय है कि उल्लेखित विषयों में से प्राय: एक निबंध में एकाधिक विषयों का समावेश हुआ करता था।

(ग) कहानी

ज्योतिप्रसाद अगरवाला की पूरी 9 कहानियों का हिंदी में अनुवाद हो चुका है। यह एक पूर्ण रूप से कठिन काम है। परंतु सिर्फ ज्योतिप्रसाद के प्रति अनुराग और साहित्य प्रेम के कारण ही अनुवाद का काम पूरा हो पाया है। उनकी कहानियों का आधार है ग्रामीण समाज। शहर के चरित्र को लेकर कहानियों की रचना नहीं की गई। उन्होंने आदर्श पात्रों पर ज्यादा महत्व दिया था। देवी प्रसाद बागड़ोदिया जी ने बखूबी से कहानियों का हिंदी अनुवाद किया है।

(घ) नाटक

ज्योतिप्रसाद अगरवाला के सभी नाटक अपने आप में महत्वपूर्ण हैं। श्रीमंत शंकरदेव ने असमीया नाट्य साहित्य को जन्म दिया, लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने पथ प्रदर्शन की और असमीया साहित्य के आधुनिक युग में ज्योतिप्रसाद जी के हाथ में इसे पूर्ण विकास प्राप्त हुआ। उन्होंने 14 वर्ष की अल्पायु में ही 'शोणित कुँवरी' नाटक की रचना की। उनके कुल नौ नाटक हैं- शोणित कुँवरी, कारेङर लिगिरी, रूपालीम, निमाती कइना, लभिता और खनिकर। ये छह

नाटक संपूर्ण हैं और शोणितपखिली, कनकलता तथा सुंदर कुँवर ये तीन नाटक संपूर्ण नहीं हो पाए। उनका दूसरा नाटक 'कारेङर लिगिरी' में नाट्यकार के नवयौवन का अनुभव क्रमश: वास्तविकता की ओर मुड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। इस नाटक के हिंदी में अनूदित दो पंक्तियाँ निम्नांकित हैं- (इस नाटक में सुंदर कुँवर द्वारा बोला गया संवाद असमीया से हिंदी में अनुदित कुछ इस प्रकार है) तुम्हारी आज्ञा, समाज की आज्ञा, मेरे दादा परदादाओं की आज्ञा, शास्त्रों का विधान, शास्त्रकारों का बंधन, इन सबके विरुद्ध चलूँगा मैं। राजमहल की दासी के स्थान पर उसे राजरानी का स्थान दिलाऊँगा। ठीक उसी प्रकार शोणित कुँवरी नाटक की शुरुआत ऊषा का अपने पिता के प्रति बातचीत से होती है- 'पिताजी! लगता है पण्डित जी ने मेरे लिए पोथी लिखना छोड़ दिया। मुझे और चित्र चाहिए। ज्योतिप्रसाद अगरवाला ने 'लभिता' नाटक में नायिका (लभिता) के जरिए अन्य पात्र गोलाप' से कहलवाया, जिस युवक के हृदय में विप्लव की आग नहीं धड़क रही हो, वह भला युवक भी तो कैसा युवक है? इसी प्रकार से बाकी सभी नाटकों का भी अनुवाद हर पंक्ति, शब्द का अर्थ तथा पात्र, कथानक को ध्यान में रखते हुए किया गया है। हिंदी अनुवाद नाटकों के मूल के निकट रहा है।

(ङ) गीत

359 गीत प्रकशित हैं। उनकी कविताओं को गीति कविता भी कहा जाता है। सारे गीत उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया।

गीत- *मेरे राग/ करवी से सजा लेना पूजा/ तेरे सुर से मैंने/ रचे है कितने गीत/ जाने अनजाने लेना पूजा/ मेरे राग करवी से सजा लेना पूजा/ मेरे जितने अभिनव गीत/ विकसित कमल के सुरभि समान/ मन ही, मन में/ सुनहरे स्वप्न में विभोर/ स्वप्न की स्वप्न में/ धुंधली सी रूप की बहार/ सुर के शतक फूल से/ नैनो की आंसू जले/ लेना तुम लेना तुम/ प्राणों की पूजा/ नइ सी सुरों की मुरली बजाओ।*

विश्लेषण :

साधारण अनुवाद का मतलब एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में बोलना, कहना या लिखने की प्रक्रिया है। यह एक प्राचीन परंपरा है। यह दुसाध्य, दु:साहसपूर्ण कार्य असम के देवीप्रसाद बागड़ोदिया ने कर दिखाया है। उन्होंने महान साहित्यकार, शिल्पी ज्योतिप्रसाद जी के साहित्य का हिंदी अनुवाद सफलतापूर्वक संपन्न किया। ज्योतिप्रसाद अगरवाला के प्रति उनका जो प्रेम, सम्मान, आस्था है, उसी कारण उनकी रचनाओं को भारतीय हिंदी जगत के पाठकों तक पहुँचाने के लिए अनुवाद जरूरी था। बहुत सारी कठिनाइयों को लाँघते हुए ज्योति रचनावली के अनुवाद कार्य को देवीप्रसाद जी ने बारीकी से संपन्न किया है। देवीप्रसाद जी ने यह व्यक्त किया है कि ज्योति रचनावली का अनुवाद करते समय ज्योतिप्रसाद के अंदर बैठा कवि, दार्शनिक, क्रांतिकारी, युगप्रवर्तक आदि गुण मुख्य होता है तथा जीवन लगन के प्रति उसका जो व्यापक दृष्टिकोण है, उसे ध्यान में रखकर अनुवाद करना पड़ा। इसके लिए उन्हें मानसिक रूप से तैयार होने में कई समय लगा। कई बार ऐसा भी हुआ कि अनुवाद हो जाता है फिर कुछ अटपटा लगता है और फिर संशोधन करके उसे नई सिरे से लिखते हैं ताकि अनुवाद मूल के निकट हो। अनुवाद भावानुकूल, अर्थानुकूल है। अनावश्यक बातों का प्रयोग नहीं हुआ है, ज्यों-का-त्यों हुआ है। अनुवाद एक ऐसी वस्तु है, जो स्रोत और लक्ष्य भाषा दोनों में सिद्धहस्त होना पड़ता है और देवीप्रसाद जी को इसमें महारथ हासिल है, गलती या विकृत होने की कोई गुँजाइश नहीं है। बहुत परिष्कृत है। अनुवाद की दृष्टि से उनका यह सफल प्रयास रहा है।

बागड़ोदिया जी डिब्रूगढ़ के लगभग सभी लोगों और असमीया समाज के लिए एक जाना-पहचाना नाम है। वे एक प्रमुख साहित्यसेवी, अनुवादक और संस्कृति प्रेमी के रूप में विशेष स्थान रखते हैं। मारवाड़ी समुदाय के होते हुए भी उन्होंने असमीया भाषा और संस्कृति के प्रति अपार प्रेम और समर्पण दिखाया, जो उन्हें असमीया समाज का एक अभिन्न अंग बनाता है। ज्योतिप्रसाद अगरवाला जी के साहित्य का हिंदी अनुवाद करते समय जिन मूल विषयों को प्रमुखता दी गई है, वे इस प्रकार हैं-

1. स्रोत भाषा की रचनाओं की स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी भावनाएँ और राष्ट्रीय चेतना।

2. स्रोत भाषा की रचनाओं में उल्लेखित असम की लोक-संस्कृति, परंपराएँ और सामाजिक संरचना का चित्रण।

3. स्रोत भाषा की रचनाओं में उल्लेखित रूढ़ियों के

विरुद्ध स्वर एवं सामाजिक जागरूकता।

4. 'ज्योति संगीत' और नाटकों के माध्यम से सांगीतिक-साहित्यिक संवेदना।

5. स्रोत भाषा की रचनाओं में उल्लेखित प्रेम, करुणा, संघर्ष और आशा जैसे सार्वभौमिक भाव।

इन विषयों को हिंदी में अनुवाद के माध्यम से प्रस्तुत कर बागड़ोदिया जी ने ज्योतिप्रसाद के साहित्य को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाने का कार्य किया है। इससे हिंदी भाषी समाज असम की साहित्यिक चेतना से परिचित हो सका है।

निष्कर्ष :

भाषा मानव सभ्यता की अमूल्य धरोहर है। अनुवाद न केवल भाषाओं के बीच सेतु का कार्य करता है, बल्कि विभिन्न संस्कृतियों, विचारधाराओं और साहित्यिक परंपराओं को एक-दूसरे से जोड़ने का सशक्त माध्यम भी है। ऐसे में जब कोई समर्थ भाषा, जैसे हिंदी अहिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रवेश करती है तो वह न केवल संवाद की नई संभावनाएँ खोलती है, बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी समृद्ध करती है। रूपकोंवर ज्योतिप्रसाद अगरवाला असम की साहित्यिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रवादी चेतना के अमिट प्रतीक हैं। उनका स्वदेश-प्रेम, मातृभाषा असमीया के प्रति गहन अनुराग और उनकी रचनात्मक चेतना, ब्रह्मपुत्र की सतत प्रवाहित धारा के समान सदैव प्रेरणादायक रही है। उनकी लेखनी असम की आत्मा का प्रतिरूप मानी जाती है। इस दृष्टि से श्रदेवीप्रसाद बागड़ोदिया का कार्य अत्यंत सराहनीय है, जिन्होंने ज्योतिप्रसाद अगरवाला की रचनाओं का हिंदी में अनुवाद कर साहित्यिक सेतु निर्माण का कार्य किया। अंततः कहा जा सकता है कि श्री बागड़ोदिया असमीया समाज में साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक रूप से एक अमिट छाप छोड़ चुके हैं। उन्होंने न केवल हिंदी भाषी पाठकों को असम के सांस्कृतिक वैभव से परिचित कराया, बल्कि भारतीय साहित्य को भी समृद्ध किया। मैं उनके इस प्रयास के लिए हृदय से आभार प्रकट करती हूँ और यह आशा करती हूँ कि भविष्य में असम के समृद्ध साहित्य को हिंदी ही नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनूदित कर अधिक व्यापक स्तर पर पहुँचाया जाएगा। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. बागड़ोदिया, देवी प्रसाद; सइकिया, नगेन; महंत बेजबरुवा, नीरजा, ज्योति प्रतिभा, 1995
2. चौधरी, ईश्वर प्रसाद, आधुनिक भारत के निर्माता : ज्योति प्रसाद अगरवाल, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार (हिंदी)
3. बागड़ोदिया, देवी प्रसाद, रूपकोंवर ज्योति प्रसाद अगरवाला (हिंदी संस्करण), 2002
4. उषाज्योति, तेजपुर, 2011, पृष्ठ सं 6, 13, 23
5. रूपांतरर तीर्थयात्री देवीप्रसाद बागड़ोदिया (असमीया), संपादक-रतन हजारिका, 2023
6. गोरियसी, अंक : जनवरी 2000, मई 2001, जनवरी 2001
7. गट्टाणी, ओमप्रकाश, महाशिल्पी ज्योति प्रसाद अगरवाला, असम
8. महंत, राजीव, जयमतिर जोनाकी बाट (असमीया)
9. असम प्रकाशन परिषद, ज्योति रचनावली (असमीया), गुवाहाटी, असम
10. प्रकाश पत्रिका (असमीया), अक्टूबर 2008
    प्रकाश पत्रिका (असमीया), जनवरी 1999
11. रूपांतरर तीर्थयात्री देवीप्रसाद बागड़ोदिया (असमीया), संपादक- रतन हजारिका, 2023, डिब्रूगढ़, डॉ. नगेन सइकिया, ज्योतिर ज्योतिरे पथ बिसोरा मानुहजन, पृ.सं. 1
12. रूपांतरर तीर्थयात्री देवीप्रसाद बागड़ोदिय (असमीया), संपादक- रतन हजारिका, 2023, डिब्रूगढ़, डॉ. कंदर्प कुमार डेका, श्री देवीप्रसाद बागड़ोदियार कृतित्व एक अवलोकन, पृ.सं. 11
13. पूर्वांचल प्रहरी (हिंदी समाचार पत्र), असम, अंक : 17 जनवरी 1991, जून 1987
14. The Assam Tribune Online [www.assamtribune.com] (http://wwwassamtribunecom), मूल से संग्रहित : 21 मई 2014।
15. व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं क्षेत्रीय टिप्पणियाँ
16. स्रोत : ज्योति प्रसाद अगरवाला तथा बागड़ोदिया परिवार के सदस्य एवं सहयोगी संस्थान, लाइब्रेरी, साक्षात्कार

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में सामाजिक यथार्थ

अखिलेश यादव

पीएचडी शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय-110007
8285797175
akhilyadavkmc@gmail.com

शोध-सार :

स्वतंत्रता के 78 वर्षों पश्चात भी ऐसी अनेक घुमंतू और खानाबदोश जनजातियाँ हैं, जो आज भी अपराधियों की तरह जीने को मजबूर हैं। अंग्रेजों के खिलाफ सर्वप्रथम लड़ाई में भाग लेने और इनकी लड़ाकू प्रवृत्ति के कारण इन्हें अपराधी घोषित किया गया था। आजादी के बाद भी भारत सरकार ने इनकी 'हैबिचुअल ऑफेंडर' की संज्ञा में कोई परिवर्तन नहीं किया। यह आज भी शोषित जीवन जीने को विवश हैं। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' स्त्री शोषण तथा संघर्ष का कटु यथार्थ है, जिसे गहरी संवेदना तथा सृजनात्मकता के साथ बुना गया है। कबूतरा समाज के लोग जन्म से चोर-डकैत का जीवन जीने को विवश हैं, किंतु कुछ लोग इन परंपराओं से विद्रोह करते हैं। भूरी, कदमबाई तथा अल्मा एक समुच्य है, वे चुनौतियों से टकराते हुए संघर्ष करती हैं। वे किसी जनजाति विशेष की नहीं रह जातीं। उनकी आकांक्षा और जिजीविषा जाति से आगे जाकर लिंग भेद तक को स्पर्श करती है।

बीज शब्द : विमुक्त या घुमक्कड़ जनजाति, कज्जा और कबूतरा समाज, स्त्रियाँ, अंग्रेजी शासन, स्वतंत्रता, आर्थिक स्वायत्तता, रीति रिवाज, परम्पराएं, सांस्कृतिक धरोहर, अंधविश्वास, सामाजिक यथार्थ।

मूल आलेख :

गुलामी की जंजीरें तोड़ने का पहला प्रयास भारतीयों ने 1857 ई. में किया था। इस प्रयास में भारतीय सफल तो नहीं हो पाए थे, लेकिन उन्होंने अंग्रेजों को इस बात का एहसास सही ढंग से करवा दिया था कि भारतीयों को गुलाम बनाए रखना आसान नहीं है। 1857 की क्रांति में अंग्रेजों को भारी नुकसान उठाना पड़ा था। अंग्रेजों को सबसे अधिक आघात जंगलों में रहने वाले या खानाबदोशों की तरह जीवन जीने वाले लड़ाकू योद्धाओं ने पहुँचाया था, जिन्हें आज आजाद भारत में दुर्भाग्यवश 'घुमक्कड़ जनजाति या विमुक्त जनजाति' कहा जाता है। घुमंतू जनजातियाँ अर्थात वे विशेष जातियाँ, जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता और आजीविका की तलाश में वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करती हैं। घूमना इनका शौक नहीं विवशता है। इसी संदर्भ में हमारे देश में आज घुमंतु, अर्ध-घुमंतू, विमुक्त जनजातियों में लगभग 840 जातियाँ जैसे कालबेलिये, नट, भांड, पारधी, बहुरूपिये, सपेरे, मदारी, कलंदर, बहेलिये, भवैया, बणजारे, गुज्जर, गाड़िया लुहार, सिकलीगर, कुचबंदा, रेबारी, बेड़िया, नायक, कंजर, सांसी जैसी सैकड़ों जातियाँ सम्मिलित हैं, जो भारतीय समाज का सर्वाधिक उपेक्षित और

पिछड़ा वर्ग हैं। 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजों ने उन जनजातियों को चिह्नित किया, जिन्होंने उन्हें सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया था और उन्हें 1871 क्रिमिनल ट्राइब एक्ट (अपराधी जनजाति अधिनियम) बनाकर अपराधी घोषित कर दिया गया। उनसे उनके हुनर छीन लिए गए, उन्हें दर-दर भटकने पर मजबूर कर दिया गया। अंग्रेजी हुकूमत के डर का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि ब्रिटेन की हुकूमत 53 देशों पर थी, लेकिन उन्होंने भारत में ही क्रिमिनल ट्राइब एक्ट लागू किया और इन क्रांतिकारियों को जन्मजात अपराधी बना दिया गया। अपराधी जनजाति अधिनियम बनाए जाने के बाद से कुछ जनजातियों को प्रतिबंधित कर दिया गया, उन्हें उनके ही देश में कहीं भी घूमने-फिरने की आजादी नहीं थी। इनकी अपनी भाषा, संस्कृति, कौशल को कुचलने की हर संभव कोशिश की गई। महाश्वेता देवी का इस संदर्भ में एक कथन उल्लेखनीय है,''वीर भूमि तथा झारखंड के संथाल परगना में रहने वाली धिकारोस जनजाति है। ये लोग पारंपरिक रूप से लोहा गलाने तथा लोहे का सामान व हथियार बनाने तथा तोड़दार बंदूक और कैनन गन बनाने में माहिर थे। 18वीं शताब्दी के अंत तक इस क्षेत्र में अनेकों जनजातीय विद्रोह हुए। धिकारोस जनजाति ने हथियार बनाए तथा संथालों के साथ सहयोग किया। 1856 से 1861 में दूसरा संथाल विद्रोह तथा 1857-58 में ही पालूम का खखार विद्रोह हुआ था। उसके 12 साल के अंदर ही 1871 का अधिनियम पारित हुआ। धिकारोस को अपराधी के रूप में अधिसूचित किया गया। उनके पारंपरिक व्यवसाय को छीन लिया गया तथा जब कभी अपराध होता तो इन्हें जेल में डाल दिया जाता था।'' अंग्रेजों के लिए कबीलों में रहने वाली इन जनजातियों का कौशल एक मुसीबत बन गया था, इसलिए अंग्रेजी सरकार ने 1871 ई में घुमंतू जातियों के 193 कबीलों पर जन्मजात अपराधी कानून लगाया था। अंग्रेजों ने उक्त वक्त इन घुमंतू जातियों के लोगों को एक विशेष अधिनियम के तहत 180 साल तक उनके घरों में ही कैद कर दिया था। इस कानून के चलते देशभर में लगभग 50 ऐसी बस्तियाँ भी बनाई गईं, जिनमें इन जनजातियों को जेल की तरह कैद कर दिया गया और यहाँ 24 घंटे पुलिस का पहरा लगा दिया गया। वहीं इन जनजातियों के लोगों को पुलिस चौकी पर प्रतिदिन अपनी उपस्थिति दर्ज करानी पड़ती थी नहीं तो कोई भी अपराध होने पर इन्हीं को जेल में डाल दिया जाता था। कानपुर में 159 एकड़ में ये बस्तियाँ बसाई गई थीं। अंग्रेजी हुकूमत इन जनजातियों से इतनी ज्यादा बौखलाई हुई थी कि पुलिस में भर्ती होने वाले रंगरूटों को इनके बारे में पढ़ाया जाने लगा। प्रशिक्षण के दौरान उन्हें बताया जाता था कि ये जनजातियाँ पारंपरिक रूप से अपराध करती आई हैं। ये ऐसी जातियाँ थीं, जो लगातार घूमती रहती थीं। समय के साथ विमुक्त जनजातियों की स्थिति बद से बदतर होती चली गई। 15 अगस्त, 1947 को देश स्वतंत्र तो हो गया, लेकिन इन जनजातियों ने आजादी का जो स्वप्न देखे थे, वे साकार न हो सके। आजादी के कुछ सालों बाद सरकार का ध्यान जब इन जनजातियों की ओर गया, तब सरकार ने इन घुमंतू, अर्ध घुमंतू जनजातियों को 31 अगस्त, 1952 को स्वतंत्रता देकर इन्हें 'विमुक्त' घोषित किया और इसके स्थान पर हैबिचुअल ऑफेंडर एक्ट लागू कर दिया। जो ब्रिटिश विद्रोही समुदाय 1952 ई. तक 'जन्मजात अपराधी' माने जाते थे, वे अब 'आदतन अपराधी' माने जाने लगे, मगर उनके नाम के आगे 'विमुक्त' शब्द जुड़ गया, जिससे पता चले कि यह पहले अपराधी जनजाति के थे। आदिवासी, घुमक्कड़ जनजातियाँ विमुक्त जनजातियाँ बन गईं। भारत की स्वतंत्रता के बाद 31 अगस्त, 1951 से इन जातियों को घूमने का अधिकार मिला, इसलिए सभी घुमंतू जातियाँ इस तिथि को 'विमुक्ति दिवस' के रूप में हर वर्ष मनाती हैं।

भारत के विमक्त जनजाति आयोग के अध्यक्ष बालकृष्ण सिद्धराम रेनके जो स्वयं महाराष्ट्र में डमरू बजाकर भीख माँगने वाले समुदाय से संबंधित हैं, कहते थे कि मैं अपने पिता के साथ मुंबई में भीख माँगता था। वे मानते हैं कि इन जनजातियों के प्रति लोगों की मानसिकता को बदलना ही सबसे अहम कदम होगा। लेकिन आज भी लोगों की मानसिकता में जरा भी फर्क नहीं आया है। स्थायी तौर पर रहने वाले लोग आज भी इन्हें चोर-लुटेरा और अपराधी ही मानते हैं। भूमंडलीकरण के बाद जहाँ दूरियाँ सिमट गईं और दुनिया तरक्की के

रास्ते पर आगे बढ़ गई, लेकिन आज तक इन जनजातियों के बारे लोगों की सोच में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आज भारतीय होने के बाद भी ये भारत में अपना घर खोजने को मजबूर हैं, जहाँ इनको बेसिक सुविधाएँ मुहैया हो सकें और प्रगति की राह पर ये भी अपने कदम आगे बढ़ा सकें।

साहित्य समाज का दर्पण है, यही कारण है कि साहित्य में समाज वास्तविक चेहरा दिखाई पड़ता है और आज का साहित्यकार बहुत ही सजग है। वह समाज में व्याप्त बुराइयों के खिलाफ कलम उठाने में बिल्कुल भी नहीं हिचकिचाता है। इन्हीं साहित्यकारों की बहादुरी का परिणाम है कि विमुक्त जनजातियों की दशा से आज दुनिया परिचित हो रही है। हिंदी साहित्य में विमुक्त, घुमंतू जनजातियों के जीवन को आधार बनाकर कई उपन्यास लिखे गए हैं, जो उनकी व्यथा को दुनिया के समक्ष रखते हैं। इस श्रेणी में कब तक पुकारूँ, अल्मा कबूतरी, धरती मेरा घर, सागर लहरें और मनुष्य, कचनार, पिंजरे में पन्ना, रेत, पिछले पन्ने की औरतें जैसे उपन्यास शामिल हैं, जो घुमक्कड़ जीवन जीने को मजबूर लोगों की व्यथा को दुनिया के सामने रखते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' इस दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मैत्रेयी पुष्पा का यह उपन्यास बुंदेलखंड की यायावर 'कबूतरा जनजाति' को केंद्र में रखकर लिखा गया है। मैत्रेयी पुष्पा ने अल्मा कबूतरी में उस समाज का वर्णन किया है, जिसमें कबूतरा जनजाति के लोग भी रहते हैं, जो अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष करना जानते हैं, लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि कबूतरा समाज में सुधार की गुँजाइश कम ही नजर आती है। पुलिस प्रसाशन, 'कज्जा समाज' इन पर हावी है और इनका शोषण करने का कोई भी मौका नहीं छोड़ता है।

कज्जा समाज के लोगों ने कबूतरा समाज के लोगों को बसने की जगह तो दे दी, लेकिन कभी भी अधिकार नहीं दिया। कज्जा समाज के लोग कबूतरा समाज की स्त्रियों के साथ बलात्कार करते हैं, कबूतरा समाज के पुरूषों से अपने खेतों का काम करवाते हैं और कोई भी गलती होने पर उन्हें खूब पीटते हैं। लेकिन कबूतरा समाज के लोगों को अब इसकी आदत पड़ चुकी है। वह बिना कुछ कहे कज्जा समाज के लोगों का जुल्म सहते चले जा रहे हैं। जब भी कहीं कोई अपराध होता है तो पुलिस कबूतरा समाज के लोगों को प्रताड़ित करती है। शिक्षा के अभाव में ये जाति जानवरों से बदतर जीवन व्यतीत करने को विवश है। कबूतरा जनजाति को मूलभूत आवश्यकताओं की घोर कमी के साथ-साथ एक सामाजिक अभिशाप या कलंक सदैव ढोना पड़ रहा है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं, *''इनके पुरुष जंगल में रहते हैं या जेल में, स्त्रियाँ शराब की भट्टियों पर या किसी के बिस्तर पर। कभी-कभी सड़कों, गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध-सुर्खियों में दिखाई देने वाले कंजर, सांझी, नट, मदारी, सपेरे, पादरी, हाबुड़े, बंजारे, बावरिया, कबूतरे न जाने कितनी-कितनी जनजातियाँ, जो सभ्य समाज के हाशिए पर डेरा लगाए सदियाँ गुजार देती हैं, हमारा चौकन्ना संबंध सिर्फ कामचलाऊ ही बना रहता है। उनके लिए हम हैं 'कज्जा' और 'दिक्कू' यानी सभ्य-संभ्रांत, परदेसी। उनका इस्तेमाल करने वाले शोषक। उनके अपराधों से डरते हुए, मगर उन्हें अपराधी बनाए रखने के आग्रही। हमारे लिए वे ऐसे छापामार गुरिल्ले हैं, जो हमारी असावधानियों की दरारों से झपट्टा मारकर वापस अपनी दुनिया में जा छिपते हैं।''*[1]

अल्मा कबूतरी' नायिका प्रधान उपन्यास है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में कबूतरा महिला की समस्याओं को मुख्य रूप से रेखांकित किया है। उपन्यास का ताना-बाना स्त्री शोषण तथा स्त्री संघर्ष से बुना गया है। इस उपन्यास के माध्यम से जात-पात तथा ऊँच-नीच की समस्या, अनैतिक संबंधों की समस्या, अंधविश्वास की समस्या, निर्धनता, बेरोजगारी की समस्या और अशिक्षा की समस्या को सामने रखा गया है। इसके साथ ही मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में 'सभ्य' समाज से जिन्हें वे 'कज्जा' कहकर पुकारती हैं, शोषकवर्ग के रूप में इनका चित्रण बड़ी ही सफलता से किया है। वस्तुत: 'कज्जा' और 'कबूतरा' का द्वंद्व ही 'अल्मा कबूतरी' का केंद्रीय विषय है। भूरी के बेटे रामसिंह और उसकी बेटी अल्मा की कहानी उनके अपमान, संघर्ष और पीड़ा की कहानी है। इन पात्रों ने सभ्य समाज से संघर्ष कर अपना सब कुछ दाँव पर लगा देने के बावजूद 'लहूलुहान' कबूतरा ही

रहते हैं। इसका कारण यह है कि पूरी व्यवस्था ही अपनी पूरी शक्ति के साथ उनके विरोध में खड़ी है। अनेक संघर्षों के बाद भी कबूतरा जनजाति जीना जानती है।

विमुक्त जनजातियाँ अपनी सांस्कृतिक धरोहर के कारण ही पहचानी जाती हैं। उनके रीति-रिवाज उन्हें मुख्य धारा के समाज से अलग करते हैं। एक तरफ जहाँ समाज शिक्षा की बाँह पकड़ कर चाँद की सैर कर आया है, वहीं कबूतरा समाज अपने बच्चों को पत्रा-लिखाने की बजाय उन्हें परंपरा का काम 'चोरी' सिखाते हैं। यह उनके समाज के लिए बहुत ही प्रतिष्ठा का काम है। कबूतरा जनजाति अपने रीति-रिवाजों का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध है। अगर कबूतरा समाज के लोग अपने धर्म का पालन नहीं करते तो उन्हें सजा दी जाती है। जब भी कोई चोरी करके लाता है तो, *''...रिवाज के हिसाब से माल कबीले के मुखिया को देना पड़ता है।''*[2] लेकिन भूरी विद्रोह करती है। वह कबूतरा समाज की परंपराओं को नहीं मानती है।

भूरी कज्जा समाज से टक्कर लेती है। वह शरीर का सौदा करके भी अपने बेटे को पत्रा-लिखाकर इस योग्य बनाना चाहती है कि वह समाज में सम्मान की जिंदगी जी सके। *''पतिविरता लुगाई अपने आदमी के संग सती होती है। मैं अपने मर्द की ब्याहता खुद को तब माँनूगी, जब रामसिंह को पढ़ा-लिखाकर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूँगी। भले इस सफर में मुझे दस मर्दों के नीचे से गुजरना पड़े।''*[3] भूरी विद्या को महत्व देते हुए कहती है कि *''विद्या रतन के आगे देह का खजाना कुछ भी नहीं।''*[4] रामसिंह की माँ भूरी ने उसे अनेक प्रकार के शोषण सहते हुए पढ़ा लिखाकर बड़ा किया। वह *''बस्ती की पहली माँ थी...जिसने बेटे को कुल्हाड़ी-डंडा न थमाकर पोथी-पाटी पकड़ाई।''*[5] भूरी ने रामसिंह को काबिल बनाने के लिए जी तोड़ मेहनत की। *''भूरी ने समझ लिया, मद को और खुद को लुटाना जरूरी है। ...शिक्षा का दामन थामा है तो बेबसी और बदरंगतों से गुजरना होगा। समय जांच रहा था, औरत में कितनी ताकत है। भूरी समझ रही थी बेटे का उजाले भरा रास्ता माँ की देह से गुजर रहा है।''*[6] अंतत: भूरी की मेहनत रंग लाई और रामसिंह की सरकारी नौकरी लग गई, लेकिन उसका कोई विशेष फायदा नहीं मिला। भूरी के बलिदान और रामसिंह की अपार मेहनत के बाद भी भूरी का बेटा रामसिंह कबूतरा बनकर ही जीने को अभिशप्त है। वह धीरे-धीरे अपनी संघर्ष की क्षमता खोकर पुलिस का दलाल बन जाता है और बेटा रामसिंह डाकू के नाम पर पुलिस द्वारा प्रायोजित मुठभेड़ में मारा जाता है।

कबूतरा समाज पुलिस और कज्जा समाज के लिए कठपुतली बन चुके हैं। वह जब चाहे जैसा चाहे उनका उपयोग करते हैं। कज्जा समाज लोग कबूतराओं से दिन-रात अपने खेत में काम करवाते हैं और कोई गलती होने पर उन्हें बुरी तरह से पीटते हैं। *''हम लोग न खेतों के मालिक न मजूर सो गोह खाते-खाते होंठ चिपचिपा गए हैं। देखें तो धरती मैया कैसी-कैसी चीजें देती हैं? जमीन में हमारा हिस्सा नहीं।''*[7] कबूतरा समाज के मर्द कज्जा लोगों की जमीन पर जी-तोड़ मेहनत करते हैं, लेकिन उन्हें उसके बदले कुछ भी हासिल नहीं होता है। जंगलिया ने भी स्वामिभक्ति में अपनी जान गँवा दी थी। जंगलिया के स्वामी मंसाराम ने जंगलिया का खूब फायदा उठाया था, लेकिन जब जंगलिया को मदद की जरूरत थी तब वह कुछ भी नहीं कर पाए।

कदमबाई कज्जाओं के फरेब को समझ जाती है और अपने बेटे राणा को समझाते हुए कहती है, *''राणा, तू इनकी संगत करके अपने धंधे की ईमानदारी से भी जाएगा तो तू यह न समझना कि हम इनसे मिलकर कज्जा हो जाएँगे। हम तो इनकी बोली-बानी बोलते हुए भी इनसे अलग हैं। इनकी रोटी और हमारी टुक्क अलग नहीं, पर भूख-प्यास की कीमत अलग है। जैसे इन्हें भूत-प्रेतों का डर व्यापता है और हमें इनका। डर भी तो सच्चा झूठा होता है, हमारी और इनकी तरह पर लगता है कि झूठ डर वजनी है। जैसे बेहद वजनी होती है झूठी आन-बान-शान। ऐसा न होता तो लल्लू राजा चाँदी की मूर्ति को जंगलिया की जिंदगी से न तोलता। अब तू ऐसा मंतर लिख कि ये पापी एड़ियाँ घिस-घिस कर मरे।''*[8]

कदमबाई राणा को परंपरा का काम सिखाना चाहती थी, लेकिन उसे चोरी करना अच्छा नहीं लगता था। कदमबाई ने उसे पढ़ाने के लिए स्कूल भेजा तो उसका वहाँ खूब शोषण हुआ और फिर उसे स्कूल भी छोड़ना

पड़ा। वहीं पुलिस वाले जब भी कहीं कोई चोरी होती तो वह कबूतराओं की बस्ती में आकर उसे उजाड़ जाते हैं। औरतों के कपड़े फाड़ देते हैं, उनके साथ जबरदस्ती करते हैं। गाँव के लोगों से अपने माँ-बहनों का नंगा जिस्म नहीं देखा जाता है, *''बच्चे गाँव से दूर पड़े घूरों को कुरेद आए। कुछ चिथड़े उखाड़ लाए। उन्होंने ने चिथड़े घर के भीतर माँ-काकियों के पास फेंक दिए। नहीं देखा कि वे चिथड़े गंदगी में लिथड़े है या माहवारी..... । फायदा भी क्या था दूसरा सहारा न था। माँ-काकियों के नंगे बदन रह-रहकर आँखों में छा जाते।''*[9]

उपन्यास की मुख्य पात्र अल्मा अपने पिता रामसिंह के साथ रहती है, अपने साथ रहते राणा को बच्चे से मर्द बनाती है। कुँवारी माँ बनने का साहस दिखाती है, आततायियों को साहस के साथ झेलती है, पशुओं से भी बदतर जिंदगी जीने को बाध्य होती है, पर हार नहीं मानती। अल्मा पढ़-लिखकर सुखी जीवन जीना चाहती है। लेकिन समाज उसे इतना नोंचता-खसोटता है कि वह एक पहेली बनकर रह जाती है। रामसिंह अपनी जान बचाने के लिए अपनी बेटी को गिरवी रख देता है। सूरजभान उसके साथ बलात्कार करता है। उसका चार महीने का गर्भ गिर जाता है। अल्मा सूरजभान द्वारा किसी और को परोसी जाने वाली होती है, लेकिन वह मौका मिलते ही भगा दी जाती है, जिसकी सजा धीरज को मिलती है। अल्मा नत्थू के सहयोग से डाकू से मंत्री बने श्रीराम शास्त्री के पास लाई जाती है। वहाँ की दशा देख कर उसे अपने पापा द्वारा बताई बातें याद आने लगती हैं। वह सोचती है कि, *''बप्पा छटपटाया करते थे -सरकार अपना राज चलाती है या सारा काज डाकुओं, हत्यारों और पुलिसवालों के हाथ सौंप रखा है? ऊपर से तगमा यह कि सब कुछ जनता के लिए हैं, जनता के द्वारा हो रहा है।''*[10] अल्मा समाज के बारे में सोच-सोच कर दुखी होती रहती है, लेकिन हार नहीं मानती। वहीं जब श्रीराम शास्त्री अल्मा की बाँह पर गोदने से अल्मा कबूतरी लिखा हुआ देखते हैं तो उन्हें पुराने दिन याद आ जाते हैं। वे सोचने लगते हैं, *''यहाँ, यह कैसे? (आगे) श्रीराम शास्त्री अब बंगले के शानदार शयन कक्ष में नहीं बीहड़ में कंधे पर रायफल धरे दौड़ रहे हैं। डकैत होने के जमाने से लेकर मुखबिरी तक देखा कि कितने ही कबूतरा, डाकुओं के नाम की चिप्पी लगाकर मौत के नाम लिख गए। कितने ही साँसी, कलंदर मुठभेड़ के हवाले करके इनामी डकैतों के लिए बलि चढ़ा दिए गए।''*[11] अल्मा के पिता को भी इनामी डाकू के बदले मौत के घाट उतार दिया जाता है। अल्मा समाज को समझने लगी है। वह हर तरह के शोषण को सहती हुई आगे बढ़ती रहती है। उसकी कहानी को एक आकस्मिक मोड़ देकर अल्मा कबूतरी से श्रीमती अल्मा शास्त्री तथा बबीना विधानसभा सीट का संभावित प्रत्याशी बना दिया जाता है। वस्तुत: 'अल्मा कबूतरी' की नायिका अल्मा नहीं भूरी-कदमबाई तथा अल्मा का समुच्य है, जिसमें तमाम अन्य स्त्री पात्र भी सिमट जाते हैं। इस तरह कुल एक और एक ही स्त्री मूर्ति प्रतिष्ठित होती है 'अल्मा'। यह नामकरण तक प्रतीकात्मक है-अल्मा यानी 'आत्मा'।

कबूतरा लोग अपनी वंश की परंपरा रानी पद्मिनी और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की अंगरक्षिका झलकारी बाई से जोड़ते हैं। वे कहते हैं, *''हम सब एक लकड़ी नहीं बँधे हुए गट्ठर हैं। तोड़ने से न टूटेंगे! चित्तौड़ से लेकर झाँसी की रानी का साथ निभाने की सजाएँ भोगे। भोगेंगे।''*[12] यह उन्हें लड़ने की हिम्मत देता है और वह तमाम तकलीफों को सहते हुए भी हार नहीं मानते हैं।

निष्कर्ष :

आजादी का स्वप्न सभी ने साथ में देखा था और सभी ने साथ में आजादी की जंग भी लड़ी थी, लेकिन एक तरफ जहाँ पूरा देश तो आजाद हो गया वहीं दूसरी तरफ घुमंतू, खानाबदोश जनजातियाँ हैं, जो आज भी अपराधियों की तरह जीने को मजबूर हैं। इनकी गलती सिर्फ इतनी थी कि इन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ सबसे पहले लड़ाई में भाग लिया और उनकी नाक में दम कर दिया। इनकी योद्धा/लड़ाकू प्रवृत्ति के कारण अंग्रेजी राज में अपराधी घोषित किया था तो आजादी के बाद अपनी ही सरकार द्वारा 'हैबिचुअल ऑफेंडर यानी आदतन अपराधी' घोषित हुए। यह आज भी बदतर जिंदगी जीने को मजबूर हैं। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' स्त्री शोषण तथा स्त्री संघर्ष का कटु यथार्थ है, जिसे गहरी संवेदना तथा जबर्दस्त सृजनात्मकता के साथ बुना गया

है। इस उपन्यास में खेतिहर मजदूर, जमींदार, व्यापारी, चोर, डकैत, पुलिस से लेकर देश के नेता-मंत्री तक शामिल हैं। कबूतरा समाज के लोग जन्म से चोर-डकैत रहे हैं। लूट-पाट करना, जेल जाना, मार-खाना उनकी जिंदगी का हिस्सा है। लेकिन कुछ औरतें समाज के बनाए हुए ढर्रों पर नहीं चलना चाहती हैं। वह विद्रोह करती हैं।

भूरी, कदमबाई तथा अल्मा एक समुच्च्य है, जिसमें अनेक अन्य स्त्री पात्र भी सिमट जाते हैं। इस तरह कुल एक ही स्त्री मूर्ति प्रतिष्ठित होती है 'अल्मा'। ये तीनों ही स्त्रियाँ पग-पग पर उत्पीड़ित होती हैं, उनका एक-एक सपना टूटता जाता है फिर भी वे चुनौतियों से टकराती हुई संघर्ष करती है। अल्मा संघर्ष करते हुए एक मुकाम हासिल कर लेती है। इस प्रकार वह किसी जनजाति विशेष की नहीं रह जाती। उसकी आशा-आकांक्षा और जिजीविषा जाति से भी आगे जाकर लिंग भेद तक को लाँघ जाती है। मैयत्री पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का नग्नतम रूप समाज के सामने लाकर खड़ा किया है। ❑

संदर्भ :

1. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, 2001, पृ. 58
2. वही, पृ. 47
3. वही, पृ. सं.74
4. वही, पृ. 175
5. वही, पृ. 359
6. वही, पृ. 359
7. वही, पृ. 366
8. वही, पृ. 14
9. डॉ. स्नेह लता नेगी, विमुक्त जनजातीय जीवन संघर्ष और अस्मिता के प्रश्न
10. पत्रिका युद्धरत आम आदमी, पूर्णांक-74, पृ. 5
11. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ. 17
12. बूधन, जून 2002, पृ. 5
13. भारतीय जनजातियाँ
14. अल्मा कबूतरी में सामाजिक यथार्थ, अर्पणा दीप्ति, ब्लॉग लिंक- https://arpanadipti.blogspot.com/w®vw/vw/blog-post.html
15. कबूतरा जनजाति का नारी संघर्ष: मैत्रेयी पुष्पा की 'अल्मा कबूतरी' के संदर्भ में, कबरी देवी, International Journal of Hindi Research, Volume I, Issue v, w®wv, Pages 32-35
16. https://sablog.in/denotified-nomadic-semi-nomadic-tribes-and-literature/vyzx{/

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

विनोद कुमार शुक्ल की लेखनी में जीवन मूल्य एवं सामाजिक सरोकार

अरुण सिंह

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर-190001
9086322443
arunsinghvy396@gmail.com

शोध-सार :

मनुष्य का जीवन केवल जन्म और मृत्यु के बीच का एक सफर नहीं है, बल्कि यह एक उद्देश्यपूर्ण यात्रा है, जिसमें व्यक्ति के चरित्र, व्यवहार एवं नैतिकता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इस यात्रा को सफल बनाने के लिए जीवन मूल्यों का पालन अत्यंत आवश्यक है। जीवन मूल्य वे नैतिक एवं सामाजिक सिद्धांत होते हैं, जो व्यक्ति के सोचने, समझने, बोलने एवं आचरण करने के तरीके को प्रभावित करते हैं। जीवन मूल्य प्रत्येक मानव जीवन के महत्व एवं उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं। जीवन मूल्य का आशय जीवन के प्रति एक उच्च एवं संवेदनशील दृष्टिकोण से है, जो मानव के कार्यों, निर्णयों एवं विचारों को सार्थक बनाते हैं। व्यक्ति का समाज, परिवार एवं स्वयं के प्रति उत्कृष्टता, सच्चाई, न्याय एवं समझदारी को महत्व देना ही जीवन मूल्य कहलाता है। जीवन में सच्चाई, ईमानदारी, करुणा, सहानुभूति, दया, कर्तव्यनिष्ठा, संयम, धैर्य एवं आत्म-संयम जैसे गुण जीवन मूल्यों के अंतर्गत आते हैं। ये मूल्य व्यक्ति को बेहतर इंसान बनाते हैं। आज के प्रतिस्पर्धात्मक एवं भौतिकतावादी युग में जहाँ लोग सफलता पाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं, वहाँ जीवन मूल्य व्यक्ति को नैतिक रास्ते पर चलने की प्रेरणा देते हैं। डॉ. रमेश देशमुख लिखते हैं- *''मानवी जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता रखने वाले गुणों को जीवन मूल्य कहा जाता है। मूल्य शाश्वत व्यवहार हैं, इनका निर्माण मानव के साथ-साथ हुआ। यदि इनका अंत होगा तो सभ्यता के साथ-साथ मानवता भी समाप्त हो जाएगी।''*[1] जीवन मूल्य किसी धर्म, जाति या वर्ग से बंधे न होकर सार्वभौमिक होते हैं, जो मानवता की भलाई के लिए आवश्यक होते हैं। अत: हमें न केवल स्वयं इन मूल्यों को अपनाना चाहिए बल्कि अगली पीढ़ी को भी इनके प्रति जागरूक करना चाहिए।

बीज शब्द : जीवन मूल्य, परिवार, समाज, प्रकृति, मूल्य संक्रमण, उत्तराधुनिकता।

मूल आलेख :

मूल्य समाज की वे आधारशिला है, जिन पर सभ्यता एवं संस्कृति का भव्य प्रासाद निर्मित होता है। मूल्य ही वे नियामक तत्व होते हैं, जिनके आधार पर मानवीय व्यवहार एवं आचरण के मापदंड निर्धारित किए जाते हैं। मूल्यबोध द्वारा ही मनुष्य उपयोगी विचारों, रीतियों एवं विधि-विधानों का चयन करके उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करता है। जीवन मूल्य हमारी संस्कृति, रीति-रिवाजों, परंपराओं, आदर्शों, सामाजिक विश्वासों एवं मान्यताओं का सार होते हैं। प्राचीन से

आधुनिक काल तक 'सत्यम शिवम् सुदरम्', 'अतिथि देवो भव:', 'अहिंसा परमो धर्म:', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' आदि सूक्तियाँ सामाजिक जीवन की प्रेरक रही हैं। यही मूल्य जीवन मूल्यों के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। जीवन मूल्य साहित्य, समाज, संस्कृति आदि स्तरों पर परस्पर जुड़े होते हैं, जो मानवता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके आधार पर ही मनुष्य के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास संभव है। जीवन मूल्य ही मानव की आंतरिक भावनाओं का संस्कार करके एक सात्विक व्यक्तित्व का विकास करते हैं।

विनोद कुमार शुक्ल समकालीन हिंदी साहित्य के अत्यंत संवेदनशील एवं मौलिक रचनाकार हैं, जिनकी रचनाएँ जीवन के गहरे एवं सूक्ष्म पहलुओं के साथ जीवन मूल्यों को उजागर करती हैं। इनके साहित्य में करुणा, सरलता, आत्मनिर्भरता, मानवीय गरिमा आदि जीवन मूल्य प्रमुखता से उभरते हैं। इनकी रचनाओं में न केवल समाज के यथार्थ की प्रस्तुति है, बल्कि मानवीय संवेदनाओं एवं रिश्तों की जटिलताओं का भी उल्लेख मिलता है। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण विनोद कुमार शुक्ल हिंदी साहित्य में एक उत्कृष्ट कवि एवं उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके उपन्यासों में जीवन मूल्यों की सार्थक अभिव्यक्ति है। उनके साहित्य में मानवीय संवेदनाएँ, आत्मसम्मान एवं सामाजिक चेतना का अद्‌भुत संगम देखने को मिलता है। जीवन की सच्ची खूबसूरती साधारणता एवं उसके गहरे मूल्यों में छिपी होती है। उपन्यास के क्षेत्र में विनोद ने नवीन प्रयोग किए हैं, जिसमें निम्न मध्यवर्ग को केंद्र में रखा है। उनके द्वारा रचित 'नौकर की कमी ?', 'खिलेगा तो देखेंगे', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' आदि उपन्यासों में जीवन मूल्यों का वर्णन मिलता है। शुक्ल द्वारा 1997 में रचित 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' उपन्यास समकालीन हिंदी साहित्य में एक अनूठी कृति के रूप में प्रतिष्ठित है। इस उपन्यास में रघुवर प्रसाद और उनकी पत्नी सोनसी के माध्यम से निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की सादगी, प्रेम, करुणा, एवं स्वाभिमान जैसे जीवन मूल्यों की गहरी अभिव्यक्ति हुई है। यह उपन्यास न केवल दांपत्य जीवन की सहजता को प्रस्तुत करता है, बल्कि समाज एवं प्रकृति के साथ संतुलन की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है। विनोद कुमार शुक्ल के इस उपन्यास में 'खिड़की' संभावनाओं, खुली-सोच एवं व्यक्ति के भीतर-बाहर के संवाद का प्रतीक है। इस उपन्यास में विनोद पत्रों के माध्यम से अपने आसपास की दुनिया को अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं, जो उनके भीतर की संवेदनशीलता एवं करुणा का परिचायक है। विनोद जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों में सौंदर्य एवं सार्थकता खोजते हुए आशा, संवेदना एवं मानवीय मूल्यों की गहराई को महत्व देते हैं। उपन्यास में रघुवर महाविद्यालय में एक अध्यापक की नौकरी करता है। वह किराए के मकान में रहता है। उसकी आय बहुत कम होने पर भी वह खुशी से अपना जीवन यापन करता है। वह घर-परिवार एवं समाज के प्रति अपने दायित्व को भली-भाँति निभाता है। यह लेखक की प्रतिभा का ही परिणाम है, वरन आज इस आधुनिकता की भाग-दौड़ में व्यक्ति सबको दरकिनार कर खुद को ही महत्व दे रहा है। शुक्ल के इस उपन्यास में व्यक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, प्राकृतिक एवं नैतिक मूल्य का पूर्ण रूप से निर्वाह हुआ है। आज आधुनिकीकरण के इस दौर में जहाँ व्यक्ति आत्म केंद्रित होता जा रहा है। वह घर-परिवार से अलग होकर एवं स्वछंद रहना पसंद करता है। उसने भौतिक प्रगति को ही सुख का पर्याय मान लिया है। परिवार की अवधारणा भी संयुक्त से एकल परिवार में परिवर्तित होती जा रही है। यही नहीं आज समाज में लिव-इन-रिलेशनशिप, नि:संतान परिवार (childless), एकल अभिभावक परिवार (single parent family) जैसी नई अवधारणाएँ प्रस्तुत हो चुकी हैं। वहीं शुक्ल जी आज भी व्यक्ति की पूर्णता परिवार एवं समाज से ही मानते हैं। आलोच्य उपन्यास में लेखक ने एक परिवार के माध्यम से उन मूल्यों को उजागर किया है, जिसमें व्यक्ति गरीबी में भी सुखमय जीवन जी रहा है। इसमें न पति-पत्नी के बिच कोई द्वेष है और न ही परिवार के अन्य सदस्यों के साथ। सब लोग मिल-जुल कर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वह घर परिवार में ही खुशी के पल खोजने का प्रयास करते दिखते हैं। पति जब घर से बाहर काम करने जाता था तो पत्नी उसके लिए भोजन लेकर जाती है। पति घर से बाहर काम करके अपना दायित्व निभाता है तथा पत्नी घर-परिवार का ध्यान रखती है। यह परंपरा अब लुप्त हो चुकी है। भोजन लेकर जाना मात्र भोजन लेकर जाने जितना नहीं है। इसके पीछे एक-दूसरे के

प्रति प्रेम, लगाव एवं अपनत्व का भाव है। यह भाव अब समाप्त होता जा रहा है। इस उपन्यास में रघुवर कभी-कभी बिना खाना खाए विद्यालय चला जाता है। उसकी पत्नी सोनसी को उसकी चिंता होती है। वह उसके लिए खाना लेकर जाती है। *''रघुवर प्रसाद के लिए खाना लेकर जाते हुए सोनसी खुश थी। वह अपने घर से महाविद्यालय तक की आठ किलोमीटर की यात्रा नहीं कर रही थी। एक एकांत की यात्रा कर रही थी, जिसके अंत में रघुवर प्रसाद थे, जिसकी दूरी आठ किलोमीटर थी।''*[2] एक ओर सोनसी अपने पत्नी होने का दायित्व निभा रही है तो दूसरी ओर रघुवर भी अपने जिम्मेदारी को नहीं भूलता है। रघुवर महाविद्यालय में अध्यापक होने के साथ-साथ घर-परिवार का पूरा ध्यान रखता है। वह घर से दूर रहने के बावजूद समय-समय पर अपने माता-पिता को खर्च भेजता है-

''यह रुपये खर्च के लिए रख लीजिये।
कितने हैं?
सौ रुपये हैं।
समझ लो बस से आने जाने में पचास रुपए खर्च हो गए।
बीस रुपए और रख लीजिए''[3]

केवल रघुवर प्रसाद ही नहीं, उनके पिता भी रघुवर को समझते हैं। जब रघुवर उनको पैसे देता है तो वह कहते हैं- *''नहीं तुम्हारा भी खर्च है। पहले भी रुपए दिए थे।''*[4] परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने दायित्व को जानता है। रघुवर के पिता जब भी घर से बाहर जाते हैं तो अपने साथ एक झोला रखते हैं। यह झोला जिम्मेदारी का प्रतीक है। वह जानते हैं कि घर के लिए कभी भी कोई सामान लाना पड़ सकता है। पैसों के आभाव में भी वह अपनी जिम्मेदारी को साथ लेकर अर्थात झोला लेकर ही निकलते हैं। *''पिता खाली झोला लेकर चले गए, पिता जब भी बाहर निकलते थे खाली झोला लेकर निकलते थे। उन्हें लगता था कि बहुत जरूरत की चीज बहुत सस्ते में कभी भी अचानक दिख जाएगी तो खरीदकर रखने के लिए झोला होना चाहिए।''*[5] शुक्ल ने इस उपन्यास में पुत्र का पिता के प्रति उत्तरदायित्व, गहरी संवेदनशीलता, सम्मान एवं कर्तव्यबोध को रेखांकित किया गया है, जो संबंधों में भावनात्मकता, व्यावहारिकता एवं नैतिक जिम्मेदारी को भी उजागर करता है। पिता अपने संपूर्ण जीवन में परिवार के लिए कितने त्याग करता है। दिन-रात परिश्रम करके, अपनी इच्छाओं का बलिदान देकर, हर कठिनाई को स्वयं झेलकर अपने बच्चों को आगे बढ़ाता है। बच्चों को भी पिता की आवश्यकताओं एवं स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए। उनके आत्मसम्मान को बनाए रखते हुए उन्हें आदरपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। शुक्ल के उपन्यास में रघुवर ऐसे ही पुत्र का प्रतिनिधित्व करता है जिसकी बानगी देखी जा सकती है-

''सोनसी, तुम्हारे पास पैसे होंगे? पिता के लिए चप्पल ले आते हैं,
पच्चीस रुपये हैं, हो जाएगा?
हाँ हो जाएगा।
मेरी माँ ने दिए थे। सोनसी ने कहा''[6]

यहाँ पर रघुवर और सोनसी दोनों की संवेदनशीलता देखी जा सकती है। उपन्यास में जब पिता की चप्पल खो जाती है तो रघुवर के पास पैसे न होने पर भी अपनी पत्नी से पैसे लेकर पिता के लिए चप्पल खरीदता है। दूसरी ओर सोनसी भी अपने दायित्व को समझती है। परिवार के प्रति अपने कर्तव्य-निर्वाहन हेतु वह अपनी माँ द्वारा दिए गए पच्चीस रुपए दे देती है। आज की तेज रफ्तार भरी जिंदगी, प्रतियोगिता एवं तकनीक के प्रभाव ने मनुष्य को बाहरी दुनिया से अधिक अपने 'स्व' में उलझा दिया है। पहले जहाँ व्यक्ति सामाजिक प्राणी कहलाता था, आज वह आत्म केंद्रित होता जा रहा है। दूसरों के दु:ख से जुड़ने की संवेदनशीलता कम होती जा रही है। हमें 'मैं' की भावना से 'हम' पर वरीयता देने की आवश्यकता है। दूसरों की मदद, संवेदनशीलता एवं साझा जीवन मूल्यों को अपनाकर ही एक स्वस्थ एवं सहायक समाज की नींव रखी जा सकती है, जिसका प्रयास विनोद कुमार शुक्ल अपनी लेखनी के माध्यम से करते हैं। उपन्यास में साधू के पास हाथी है। वह रघुवर को रोज हाथी पर बिठाकर विद्यालय ले जाता है। वह प्रात: ही रघुवर के घर के बाहर आ जाता है- *''बाबू चलेंगे? युवा साधु ने पूछा। छत्ते के नीचे से उन्होंने 'हाँ' कहा... नीचे हाथ बढ़ाकर साधु ने रघुवर प्रसाद से ऊपर चढ़ने के लिए कहा। छत्ता उन्होंने बंद कर दिया था। रस्सी पकड़ कर किसी तरह ये ऊपर चढ़ गए।''*[7] यह हमारे मूल्य ही हैं, जो हमें दूसरों की मदद एवं सेवा करने के लिए प्रेरित करते हैं। आज के इस मूल्य संक्रमण के दौर

में विनोद कुमार शुक्ल मानवीय लोभ एवं लालच को दरकिनार कर उच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास करते हैं। शुक्ल के पात्र समाज के निचले या मध्यम वर्ग से आते हैं। वे कठिन परिस्थितियों के बावजूद एक-दूसरे के साथ तालमेल बिठाकर, सहानुभूति के साथ रहते हैं। उनके जीवन में कोई बड़ा आंदोलन नहीं होता, लेकिन वे छोटे-छोटे आपसी संबंध, सहायता, बातचीत एवं भावनात्मक जुड़ाव के माध्यम से सामूहिकता को जीवित रखते हैं। सोनसी के विवाह के बाद पड़ोसी स्त्रियों का रसोई पूजन में उसकी मदद करने का दृश्य अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित हुआ है- *''घंटा-दो घंटा हुआ होगा। पड़ोसियों को मालूम पड़ा तो ढोलक लेकर गवनई करने लगीं।.. कोने से किसी औरत ने स्टोव उठाया होगा और कहा होगा-'अब रघुवर प्रसाद के लिए चाय बनाओ।.. किसी ने छन्नी दिया होगा। किसी ने शक्कर, चायपत्ती पत्नी के पास सरका दी होगी।''* [8]

उत्तराधुनिकता का युग विकास एवं विलास का युग माना जाता है, लेकिन यही युग विसंगतियों एवं विषमताओं का युग भी है। जब एक ओर बर्गर, पिज्जा फेंका जा रहा हो तथा दूसरी ओर कोई रोटी के लिए आत्महत्या कर रहा हो, तब यह जरूरी हो जाता है कि हम भूख की राजनीति को गंभीरता से समझें। भुखमरी आज केवल खाद्यान्न की कमी नहीं, बल्कि नीतिगत असमानता, संवेदनशीलता की कमी एवं सिस्टम की विफलता का परिणाम है। उत्तराधुनिकता के इस दौर में जरूरत है कि हम भुखमरी को केवल आँकड़ों में नहीं, बल्कि मनुष्यता के सवाल के रूप में देखें। विनोद कुमार शुक्ल की लेखनी में भुखमरी का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म, मार्मिक एवं यथार्थवादी तरीके से किया गया है। वे भुखमरी का चित्रण किसी रिपोर्ट की तरह नहीं करते, बल्कि उसे साहित्यिक संवेदना एवं मानव मन की गहराई में जाकर प्रस्तुत करते हैं। शुक्ल अपने उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' के एक दृश्य में, मुख्य पात्र (स्कूल शिक्षक, रघुवर) खिड़की से बाहर देख रहा होता है। वह खिड़की, जो पूरे उपन्यास में संभावना एवं दुनिया से जुड़ने का प्रतीक है, उसी खिड़की से उसे एक भूखा लड़का दिखाई देता है। लड़का सड़क पर पड़ा हुआ है, कमडोर, कुपोषित और अपनी आँखों में एक सूनी प्यास लिए हुए। वह लड़का कुछ मांग नहीं रहा है, लेकिन उसका शरीर एवं हावभाव खुद बोलते हैं- जैसे भूख एक भाषा बन गई हो। उपन्यास में भूखे लड़के की उपस्थिति यह दर्शाती है कि उत्तर-आधुनिक समाज में विकास एक तरफ है, और भूख दूसरी तरफ। भूखा लड़का उपन्यास की दीवार का वह पहलू है, जिसके इस पार सपने हैं और उस पार सच। शुक्ल इस लड़के के माध्यम से बिना कोई आरोप लगाए, बस एक दृश्य दिखाकर हमें सामाजिक असमानता, संवेदनशीलता एवं मौन अपराधबोध का अहसास कराते हैं- *''एक बड़ी टठुलिया में सोनसी ने उसे भात, हरी मिर्च, थोड़ा प्यार और चुटकी भर नमक दिया। यह वह अपने लिए लेकर बैठी थी। साग नहीं था। वह हड़बड़-हड़बड़ खा रहा था।''* [9] अपनी थाली से किसी भूखे को खाना खिलाना उच्च मानवीय मूल्यों का उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक भूखा बच्चा जो न जाने कब से घर नहीं गया था और उसे जब खाना मिलता है तो वह हड़बड़-हड़बड़ खाने लगता है।

विनोद कुमार शुक्ल हिंदी साहित्य के उन विशिष्ट रचनाकारों में हैं, जिन्होंने प्रकृति को केवल एक पृष्ठभूमि या वर्णनात्मक वस्तु नहीं, बल्कि एक जीवंत, संवेदनशील पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' में प्रकृति और मानव के बीच का अंतर्संबंध अत्यंत सूक्ष्म, काव्यात्मक एवं दार्शनिक ढंग से उभारा गया है। उपन्यास में खिड़की केवल ईंट-पत्थर में बनी एक संरचना नहीं है, बल्कि वह प्रकृति, खुली दुनिया, आकाश, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, हवा एवं प्रकाश की ओर खुलने का प्रतीक है। यह खिड़की मानव की आत्मा में प्रकृति के लिए बनी उस आकांक्षा का प्रतीक है, जो रोजमर्रा के जीवन की घुटन से मुक्ति चाहती है। उपन्यास का नायक एक ऐसा शिक्षक है, जो साधारण जीवन जीते हुए भी पेड़ों की छाया, पत्तों की सरसराहट, हवा के स्पर्श एवं पक्षियों की उड़ान में एक गहरा सौंदर्य देखता है। उसके लिए ये सब केवल प्राकृतिक दृश्य नहीं, बल्कि जीवंत अनुभव है। यह दर्शाता है कि लेखक के लिए प्रकृति एक बाहरी वस्तु नहीं, बल्कि भीतर की अनुभूति है। उपन्यास में प्रकृति और मानव के अंतर्संबंध की बानगी देखिए- *''खाना खाकर रघुवर प्रसाद ने डबरे के पानी से हाथ*

धोया। सोनसी ने चट्टान के ऊपर गिरे जूठन को उठा लिया। थोड़ी मिट्टी लगाकर जल्दी से डब्बा मांजा। हाथ में पानी लेकर चट्टान की जूठन वाली जगह पर उसने छिड़का और उसे लीप दिया।''[10] प्राकृतिक सौंदर्य के साथ उपन्यास में आधुनिकता, शहरीकरण, यांत्रिकता एवं सामाजिक जड़ता के बीच धीरे-धीरे नष्ट होती प्रकृति का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म, भावनात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप में हुआ है। उपन्यास का शीर्षक ही एक प्रतीक है- 'दीवार में एक खिड़की रहती थी'- यह बीते हुए की ओर संकेत करता है। खिड़की, जो पहले प्रकृति की ओर खुलती थी, अब दीवार बन चुकी है। यह परिवर्तन केवल वास्तुशिल्प नहीं है, बल्कि प्रकृति से कटते हुए मानव मन की स्थिति है। उपन्यास में कई स्थानों पर पेड़ों, बगीचों, घास, खुले आकाश का वर्णन है, जो पहले नायक के जीवन का हिस्सा थे, लेकिन अब या तो कट चुके हैं या उन स्थानों पर इमारतें बन चुकी हैं। उपन्यास में आधुनिक शहर की बढ़ती सीमाएँ, सीमेंट की दीवारें, ऊँची इमारतें एवं गाड़ियों की भीड़, प्रकृति को लगातार पीछे धकेलती जा रही है। यह बताता है कि विकास के नाम पर प्रकृति को तोड़-फोड़कर बाहर निकाला जा रहा है। जहाँ पहले नायक खिड़की से पेड़, पक्षी, बारिश, बच्चों की खेलती आवाजें देखता-सुनता था, अब वहाँ केवल सन्नाटा और बंद दीवारें हैं- *''वे रघुवर प्रसाद के घर के पीछे की तरफ देखते हैं कि शायद उन्हें पेड़ों में बरगद, पीपल दिख जाए। बरगद के नीचे की बूढ़ी अम्मा की चाय की दुकान दिख जाए। बहती हुई पतली सुंदर नदी दिख जाए। ऐसा कुछ नहीं दिखा और एक गंदा नाला उन्हें दिखाई दिया, जो उन्होंने पहली बार देखा था।''*[11]

इस उपन्यास में नष्ट होती प्रकृति का चित्रण सीधे-सीधे नहीं, बल्कि प्रतीकों, स्मृतियों एवं संवेदनशील दृष्टि के माध्यम से किया गया है। यह उपन्यास एक चेतावनी भी है और एक करुण पुकार भी- यदि हम खिड़कियाँ बंद करते रहेंगे तो केवल प्रकृति ही नहीं, हमारा मानव होना भी समाप्त हो जाएगा।

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि विनोद कुमार शुक्ल भारतीय परंपरा के लेखक हैं। उन्होंने अपने साहित्य में भारतीय मानव मूल्यों को बचाने के साथ-साथ मूल्य संक्रमण के प्रति चिंता व्यक्त की है। आज के समय में जहाँ समस्त सामाजिक एवं पारिवारिक मूल्यों को नकारकर अलग कर दिया जाता है, वहीं विनोद कुमार शुक्ल की लेखनी में जीवन की सूक्ष्मतम भावनाओं, सामान्य मनुष्य की चेतना एवं सामाजिक यथार्थ का अद्‌भुत संयोजन मिलता है। वह जीवन की साधारण घटनाओं में भी असाधारण अर्थ खोजते हैं। उनकी लेखनी में जीवन मूल्य एवं सामाजिक सरोकार न तो प्रत्यक्ष रूप से उपदेशात्मक है और न ही क्रांतिकारी भाषण की तरह। वे एक नर्म, लेकिन असरदार दृष्टिकोण से समाज एवं जीवन की गहराइयों को छूते हैं। उनके पात्र शिक्षक, किसान, छोटे-मोटे कर्मचारी जैसे आम लोग होते हैं। वह अपने सीमित संसाधनों में भी गरिमा एवं आत्मबल के साथ जीवन जीते हैं। 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' उपन्यास का नायक एक सामान्य शिक्षक होते हुए भी आत्मगौरव से भरा हुआ है तथा बिना किसी शोर के अपने मूल्यों पर कायम रहता है। इनकी लेखनी में प्रकृति के प्रति एक विशेष संवेदनशीलता है। यह संबंध मात्र सौंदर्य-बोध का नहीं, बल्कि एक जीवन दृष्टि का है। शोरगुल एवं प्रतिक्रियावादी समाज के बीच उनके पात्र अक्सर मौन रहते हैं- लेकिन यह मौन कायरता नहीं, बल्कि आत्म-संवाद एवं आत्म-संयम का प्रतीक है। शुक्ल की शैली आत्मीय, मंथर एवं बेहद मानवीय है। उनका साहित्य पढ़ने के बाद पाठक केवल जीवन को नहीं, बल्कि स्वयं को भी नए सिरे से देखने लगता है। ❑

संदर्भ :

1. देशमुख, डॉ. रमेश : आठवें दशक की हिंदी कहानी में जीवन मूल्य, पृ. 9
2. शुक्ल, विनोद कुमार : दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ. 120
3. शुक्ल, विनोद कुमार : दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ. 41
4. वही, पृ. 41
5. वही, पृ. 102
6. वही, पृ. 103
7. वही, पृ. 31
8. वही, पृ. 34,359
9. वही, पृ. 168
10. वही, पृ. 122
11. वही, पृ. 63

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

कार्बी शोक गीतों में स्त्री स्वर : संस्कृति और स्मृति का अध्ययन

लोंगबिर इंग्ती

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग
आनंदराम ढेकियाल फूकन महाविद्यालय
नगाँव, असम-782002
9026330529
longbirengtiofficial@gmail.com

शोध-सार :

कार्बी जनजाति उत्तर-पूर्व भारत का एक प्रमुख जातीय समूह है, जिसकी अधिकतर आबादी असम के कार्बी-आंग्लोंग जिले में पाई जाती है। विद्वानों के अनुसार, यह जनजाति तिब्बतो-बर्मन भाषा परिवार से संबंधित है और असम के सबसे पुराने निवासियों में से एक मानी जाती है। ऐतिहासिक रूप से अन्य समुदाय उन्हें 'मिकिर' कहा करते थे, किंतु आज कार्बी विद्वान अपने लिए 'अर्लेंग' शब्द को प्राथमिकता देते हैं, जिसका अर्थ है 'पुरुष'। कार्बी मौखिक संस्कृति का अपना एक विशिष्ट स्वरूप है, जो अनेक जीवंत शैलियों में दिखाई देता है। इसके भीतर सृष्टि, प्रवास, लोक कथाएँ, महाकाव्य, किंवदंतियाँ, कहावतें, लोरियाँ और धार्मिक प्रार्थनाएँ जैसी प्राचीन कथाएँ संरक्षित हैं। पुरोहित इन पवित्र प्रार्थनाओं का वाचन करते हैं, वहीं कुशल गायक कठोर छंद और काव्य नियमों का पालन करते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही कथाएँ गाते हैं। इस प्रकार इतिहास और स्मृतियाँ मौखिक रूप में जीवित रहती हैं। हर पाठ, मंत्र, उपचार गीत, प्रार्थना, शोकगीत या कथा-गायन केवल साहित्य न होकर एक जीवंत प्रदर्शन भी है। विशेष रूप से महिला शोक गायिकाएँ कई दिनों तक अंत्येष्टि महाकाव्यों का गायन करती हैं। इन गीतों में मृतक की आत्मा की यात्रा का विवरण मिलता है और साथ ही कार्बी समाज के जीवन और मृत्यु संबंधी विचार भी उजागर होते हैं। दरअसल, कार्बी जीवन-दर्शन की पूरी नींव उनकी मौखिक परंपरा और लोक कथाओं में गहराई से समाई हुई है।

बीज शब्द : मौखिक संस्कृति, प्रदर्शन, लोक कथा, विलाप, कार्बी दर्शन, चरहेपी, मृत्यु-संस्कार, आत्मा की यात्रा, स्त्री-अभिव्यक्ति, शोक गीत परंपरा, लोक स्मृति, आदिवासी जीवन-दर्शन, पारलौकिक विश्वास, सांस्कृतिक मार्गदर्शन, मौखिक इतिहास।

कार्बी मौखिक संस्कृति : एक संक्षिप्त अवलोकन

कार्बी समुदाय की मौखिक परंपरा की जीवंतता और गहराई का मूल आधार उसका प्रकृति से गहरा जुड़ाव है। यह समुदाय सदियों से पर्वतों, नदियों और वनों के मध्य निवास करता आया है। यही कारण है कि प्राकृतिक परिवेश ने उनके जीवन-दर्शन और सांस्कृतिक चेतना को विशेष रूप से प्रभावित किया। प्रकृति की शक्तियों और अदृश्य आत्माओं के प्रति गहन श्रद्धा ने कार्बी लोगों में आत्मिक अनुभूति की संवेदनशीलता विकसित की, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने

अपनी विशिष्ट अनुष्ठानिक परंपराएँ और पूजा-पद्धतियाँ गढ़ीं।

विशेषकर उत्पत्ति और सृष्टि से संबंधित कथाएँ इन अनुष्ठानों का केंद्र बिंदु होती हैं। इन कथाओं का वाचन केवल धार्मिक कर्मकांड के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक और आत्मिक संतुलन बनाए रखने के लिए भी किया जाता है। उदाहरण के लिए, ब्रह्मांड की उत्पत्ति से जुड़ी कथा 'पिर्थे केप्लांग' का गायन 'वुर केमाथा' नामक धार्मिक अनुष्ठान में किया जाता है, जिसे किसी व्यक्ति या परिवार की आत्मिक उन्नति और शांति हेतु संपन्न किया जाता है। इसी प्रकार सृष्टि और प्रव्रजन से जुड़ी एक अन्य महत्वपूर्ण कथा 'मोसेरा' है, जिसका गायन 'कार्ही' अर्थात अंतिम संस्कार महोत्सव में किया जाता है। इन कथाओं के अतिरिक्त कार्बी धार्मिक अनुष्ठानों में अनेक पौराणिक मिथक भी शामिल हैं, जैसे—हांसो (अदरक), फेलो (कपास), वो (मुर्गी), बोंग (लौकी), लो (केले का पत्ता), नोक (बलिदानी तलवार), इंगती (नमक), बेंग (अनुष्ठान हेतु मछली), थाप (चावल से बना किण्वित केक) और सोक (धान)। ये वस्तुएँ केवल दैनंदिन जीवन के साधन नहीं हैं, बल्कि कार्बी समाज में पवित्र प्रतीकात्मक अर्थ रखती हैं और अनुष्ठानों का अभिन्न हिस्सा बनती हैं। इस प्रकार कार्बी मौखिक प्रदर्शन धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक प्रतीकों के साथ मिलकर एक जीवंत परंपरा का निर्माण करते हैं। कार्बी समुदाय की मौखिक परंपरा में अनेक पद्यात्मक आख्यान पाए जाते हैं, जो उनके धार्मिक और सांस्कृतिक अनुष्ठानों का अनिवार्य अंग हैं। इनमें विशेष रूप से समुदाय की उत्पत्ति की कथा 'कार्बी केप्लांग', गायन और गायक परंपरा से जुड़ा आख्यान 'लुन्से केप्लांग', परम देवता से संबंधित 'हेम्फू केप्लांग', तथा प्रथम ग्राम-स्थापना की स्मृति से जुड़ा 'रोंगकिम' उल्लेखनीय हैं। ये सभी आख्यान न केवल सांस्कृतिक स्मृति को जीवित रखते हैं, बल्कि सामूहिक पहचान और आध्यात्मिक चेतना को भी सुदृढ़ करते हैं। इसके अतिरिक्त कार्बी जीवन के विविध संक्रमणकालीन संस्कार—जन्म (क्लोंगक्लो अथेकार), नामकरण (होंकोक), विवाह (आदम असार) और मृत्यु (केथिङ्केजांग) भी विस्तृत मौखिक प्रस्तुतियों से परिपूर्ण होते हैं। इन अनुष्ठानों में कथन, गायन, स्मरण और विलाप आपस में मिलकर एक पूर्ण सांस्कृतिक आयोजन का रूप लेते हैं। विशेष रूप से उल्लेखनीय है 'चारहेपी', जो महिला शोक गायिकाएँ होती हैं। अंतिम संस्कारों में ये शोक गायिकाएँ अत्यंत लंबा महाकाव्यात्मक गायन प्रस्तुत करती हैं, जो कई दिनों तक निरंतर चलता रहता है। इन शोक गीतों में मृतक की आत्मा की यात्रा का चित्रण किया जाता है—एक कठिन, शुष्क और पीड़ादायक मार्ग, जो अंततः आत्मा को पूर्वजों के ग्राम तक पहुँचाता है। यह केवल शोक का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि अतीत की स्मृतियों, जीवन-दर्शन, नैतिक चेतना और सांस्कृतिक अस्मिता की पुनर्स्थापना का एक गहन सांस्कृतिक-दार्शनिक कार्य है। चारहेपी का यह गायन प्रायः असंख्य खंडों में विभाजित होता है, जिनके माध्यम से कार्बी जीवन और उसकी प्राचीन धारणाएँ उद्घाटित होती हैं। वास्तव में यह केवल कथा न होकर एक जीवित मौखिक इतिहास है, जिसमें जीवन के संपूर्ण अनुभव—दुख, स्मृति, दर्शन और सांस्कृतिक आत्मबोध संग्रहीत रहते हैं।

कार्बी समुदाय में कृषि से संबंधित अनेक मौखिक गीतों की परंपरा देखने को मिलती है। इनमें प्रमुख हैं—बोटर किकुर, रितनांग चिंगदी इत्यादि। इन गीतों का प्रदर्शन वर्षभर कृषि गतिविधियों के विशेष अवसरों पर किया जाता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कार्बी मौखिक संस्कृति सीधे उनके जीवन-निर्वाह और प्राकृतिक परिवेश से जुड़ी हुई है। बोटर किकुर गीत वर्षा और उर्वरता के देवता बोटर सरपो को समर्पित होता है। इसे विशेष रूप से कथारपो गाते हैं, जो रोंखांग राज्य के मुख्य पुरोहित माने जाते हैं। इस गीत में है 'इमु' और उनके बलिदानों का उल्लेख किया जाता है, जिन्हें समुदाय वर्षा और कृषि की समृद्धि सुनिश्चित करने का माध्यम मानता है। दूसरा गीत रितनांग चिंगदी है, जो कृषि कार्यों के पूरे चक्र का वर्णन करता है। इसमें भूमि जोतने से लेकर बीज बोने, फसल की देखभाल करने और अंततः कटाई तक की सारी प्रक्रियाएँ गेय रूप में प्रस्तुत होती हैं। इस प्रकार यह गीत केवल कृषि का व्यावहारिक वर्णन नहीं, बल्कि सामूहिक श्रम और जीवन की लय का भी प्रतीक है। तीसरा गीत चिली कफेरंग है, जो चावल की आत्माओं

को समर्पित होता है। इसे विशेष रूप से फसल की प्रचुरता और समृद्धि की कामना के लिए गाया जाता है। इस गीत में चावल को केवल अन्न नहीं, बल्कि पवित्र और जीवंत शक्ति के रूप में देखा जाता है। इन सभी गीतों के माध्यम से कार्बी समाज कृषि कार्यों को देवताओं और प्रकृति से जोड़ता है। इससे न केवल धार्मिक आस्था और पारंपरिक संस्कृति प्रकट होती है, बल्कि यह भी स्पष्ट होता है कि कृषि उनके जीवन का अभिन्न अंग है, जहाँ श्रम, प्रकृति और आस्था एक साथ मिलकर सामुदायिक जीवन की बुनियाद को मजबूत बनाते हैं।

कार्बी मौखिक परंपरा केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है; इसमें अनेक सांसारिक और सामाजिक प्रदर्शन भी समान रूप से समृद्ध रूप में पाए जाते हैं। इनमें सबसे प्रमुख है-ओवे आलुन अर्थात प्रेम गीत। इन गीतों की धुनें अत्यंत मधुर और रहस्यमयी होती हैं, जिन्हें प्राय: अज्ञात प्रेमी-युगलों ने रचा। इनके माध्यम से प्रेम की स्वाभाविक प्रसन्नता और कभी-कभी उसकी पीड़ा दोनों ही अभिव्यक्त होती हैं। ग्रामीण जीवन में ऐसे गीत विविध रूपों में गाए जाते थे। इनमें केचोरो आलुन (प्रशंसा गीत), होर केचोहांग आलुन (चावल की शराब की माँग करने वाले गीत) और महान काव्य-नायकों जैसे थोंग नोकबे, वाइसोंग और रोंगफार्पी रोंगबे पर आधारित गाथाएँ शामिल थीं। यहाँ तक कि रामायण की महाकाव्यात्मक कथा भी कार्बी समाज में गाई जाती थी, जिसे साबिन आलुन कहा जाता था। इसके अतिरिक्त लुन कोरे नामक काव्य गीत भी लोकप्रिय थे, जिन्हें युवा और वृद्ध दोनों ही अपनी फुर्सत और आनंद के क्षणों में गाते थे। यद्यपि यह परंपरा अब विलुप्तप्राय: है, फिर भी यह कार्बी सांस्कृतिक स्मृति का अभिन्न हिस्सा रही है। एक और महत्वपूर्ण, किंतु आज लगभग लुप्त हो चुकी शैली है मिरिंगरंग आलुन। यह गीत शव-संस्कार महोत्सव कार्हो (या चोमंग्कन) के दौरान गाए जाते थे और इनमें खुलकर यौन-प्रकृति के भाव व्यक्त होते थे। उस समय इन गीतों पर किसी प्रकार की सामाजिक रोक-टोक नहीं थी, क्योंकि महोत्सव का वातावरण उन्हें वैधता प्रदान करता था। किंतु आधुनिक समय में इन्हें समाज अश्लील मानकर हाशिए पर डाल चुका है। कार्बी मौखिक संस्कृति की समृद्धि केवल गीतों तक सीमित नहीं है। इसमें सारलामथे (लोकोक्तियाँ), तोमो (लोक कथाएँ) तथा अन्य वाचिक कलाएँ, जैसे- भाषाई पहेलियाँ, शब्द-खेल, तोमो-पातर (कहानी-प्रश्न), और कांगनेक आहनमी (मज़ाक) भी शामिल हैं। लोकोक्तियाँ और लोक कथाएँ कार्बी दृष्टिकोण और जीवन-ज्ञान को व्यक्त करती हैं, वहीं पहेलियाँ और भाषाई खेल मानसिक क्षमता और रचनात्मकता को परखने का माध्यम बनते हैं। मजाक मात्र मनोरंजन नहीं है, बल्कि यह सामुदायिक संबंधों को मजबूत बनाने का भी साधन है। इसके साथ ही अनेक पवित्र प्रार्थनाएँ भी कार्बी मौखिक संस्कृति का हिस्सा हैं। इन्हें प्राय: पुरोहित उपचारक गाते हैं। कर्जोंग केकुर (आत्मा को बुलाने की प्रार्थना) और कर्जोंग केफुर (आत्मा को पुन: प्राप्त करने की प्रार्थना) जैसे शमानी अनुष्ठान मौखिक गायन और पवित्र प्रार्थनाओं के माध्यम से संपन्न किए जाते हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कार्बी समाज के सभी मौखिक प्रदर्शन मूलत: काव्यात्मक होते हैं, जिनमें लय, छंद और भाव-संवेदना का अद्वितीय मेल दिखाई देता है।

काव्य कला और पुरानी परंपराएँ :

कार्बी परंपरागत छंदों में काव्यात्मक भाषा का प्रचुर प्रयोग किया जाता है, जिसे लामलिर या शुद्ध भाषा के रूप में जाना जाता है। इन छंदों में व्याकरणिक संरचना गौण हो जाती है, क्योंकि कवि का प्रमुख उद्देश्य तुकबंदी के पैटर्न को बनाए रखना होता है, जो प्रकट रूप से कई होते हैं। एक कुशल प्रदर्शक बिना किसी कठिनाई के एक तुक से दूसरी तुक या किसी भी तुकबंदी की योजना में सहजता से परिवर्तन कर सकता है, जो स्थिति या घटना के अनुरूप होती है। इस प्रकार की काव्य कला में लय और तुकबंदी की प्रमुखता होती है और यह लोक परंपरा की गहरी सांस्कृतिक और कलात्मक अभिव्यक्ति को दर्शाती है।

कार्बी लोक परंपरा में यह विश्वास पाया जाता है कि तुकबंध की विविध योजनाएँ किसी दिव्य प्रेरणा की देन हैं, जैसा कि रंगसीना बुद्धिमान की लोक कथा में उल्लेखित है। इन पारंपरिक छंद संरचनाओं की संख्या बीस से अधिक मानी जाती है, जिनकी विशेषता यह है कि एक ही तुक या ध्वनि पूरी कविता में आरंभ से अंत

तक बारंबार प्रयुक्त होती है। उदाहरणस्वरूप ताम्पे (अंत ए ध्वनि), हॉइदोई (ओई), सेंगलोंग (ओंग), मांडुंग (उंग), माहिन (इन), मारांग (आंग) और रंगनो (ओ) जैसी छंद-योजनाएँ विशिष्ट रूप से पहचानी जाती हैं। किसी भी मौखिक प्रस्तुति में प्राय: एक ही तुकबंध योजना अपनाई जाती है और कवि की भाषिक क्षमता तथा कल्पना शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह उस तुक का पालन करते हुए पूरी कविता की बुनावट को कितनी सहजता और सौंदर्य के साथ आगे बढ़ाता है। यह परंपरा कार्बी कविताओं में लयात्मक अनुशासन और कलात्मक निरंतरता की अद्वितीय विशेषता को दर्शाती है, जो मौखिक साहित्य की गहरी सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है।

निम्नलिखित दो उदाहरणात्मक छंद प्रस्तुत हैं :-

ताम्पे
निसो के सोपिथोंग ताम्पे
फी-फू पेन नांगलेले नांगले
नकाई के दीम अहोत नांगले
कालिंग ने ता नांगचो नोकबारे
लड़क के देंग-फान अलोंगले
नांग 'ए फखोंग पेन फर्चे

भावार्थ : यह छंद कार्बी समाज की परंपरा, इतिहास और प्राकृतिक चक्र से गहरी जुड़ी भावना को व्यक्त करता है। कवि अपने पूर्वजों के आशीर्वाद और उनकी भूमि से जुड़ी पहचान को महसूस करता है। वह कहता है कि उसकी यात्रा भी उसी भूमि पर रही है, जहाँ उसके पूर्वजों का वास था। इसके बाद वह अपनी भूमि और उसके पारंपरिक महत्व को स्वीकार करता है, जहाँ प्राचीन संस्कृतियों और परंपराओं का पालन किया जाता है। कवि शीत ऋतु के आगमन की बात करता है और इसके साथ ही प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण करता है। वह पेड़-पौधों के खिलने और पक्षियों के फूलों से रस चूसने का उल्लेख करता है, जो जीवन के नवीकरण और खुशहाली का प्रतीक है। बुजुर्गों का आनंद लेना भी सामूहिक जीवन की खुशियों और परंपराओं के सम्मान को दर्शाता है। अंत में वह शीत ऋतु के फिर से लौटने की संभावना व्यक्त करता है, जो जीवन के निरंतर बदलाव और उसके पुनरुत्थान को दर्शाता है। कुल मिलाकर यह छंद जीवन, ऋतु परिवर्तन और परंपराओं के सामूहिक उत्सव को दर्शाता है, जो कार्बी समाज की सांस्कृतिक गहराई और प्रकृति से जुड़ाव को व्यक्त करता है।

सेंगलोंग
निसो के पेंगसोमिर सेंगलोंग
सोपेंग पेन जांगफोंग वांग्रपचोम
सोपेंग पेन जांगफोंग थे चिंगडों
सोपेंग कूर्मे चाक थिर्कलोंग
अंगसोंग के रोमे पाकुमफोंग
अपोर सिंगक्रेंग अबोरों
कासिम अतोई चेजनबोंग
नांगलो सिम अवोजांगफोंग
कर्दोन थोनमे सेकेमक्लोंग
सी 'इम अजुतेंग नांग्रों
रोंजेंग आहि जुमे 'ओंग
सी 'इम अजुतेंग बिनोंग
सारसार लिता सारो नो डिंग्रोंग
सी 'इम आचारनाम बिनों

भावार्थ : यह छंद एक आलोचनात्मक काव्य है, जिसमें कवि किसी नवयुवक की निरर्थक बड़ाई और दिखावे की निंदा करता है। कवि इस व्यक्ति की आत्ममुग्धता और उच्च स्थिति को बढ़ा-चढ़ा कर पेश करने की आलोचना करता है। यहाँ पर कवि यह दर्शाता है कि यह व्यक्ति केवल दिखावे के लिए अपने उच्च स्थान का दावा कर रहा है, जबकि असल में उसकी स्थिति कोई वास्तविक और स्थिर नहीं है। यह छंद उन लोगों के झूठे गर्व और बड़ाई को उजागर करता है, जो अपने वास्तविक योगदान और मेहनत के बिना सिर्फ अपनी स्थिति का बखान करते हैं।

कथा गायन की कला :

सदियों पहले लायल और स्टैक, जिन्होंने कार्बी जनजाति पर पहला एथ्नोग्राफिक अध्ययन किया था, ने कहा था -'बुजुर्ग लोग युवा पीढ़ी को ऐतिहासिक दंतकथाएँ सुनाते हैं और त्योहारों पर काव्य गाए जाते हैं; लेकिन ऐसी परंपराओं के संरक्षण के लिए कोई विशेष वर्ग नहीं है और जाति की स्मृति छोटी है।' यह अवलोकन किए

गए सौ वर्षों में बहुत सारी मौखिक गाथाएँ खो गई होंगी, लेकिन बुजुर्ग आज भी इन ऐतिहासिक कथाओं और दंतकथाओं को गाते हैं, जैसे कि वे उपनिवेशी मिथक 'अल्प स्मृति' को चुनौती दे रहे हों। जब उपनिवेशवाद ने कार्बी भूमि पर अपना प्रभाव डाला, मौखिक संस्कृति का क्षय होने लगा था, जैसा कि यह देखा गया कि 'ऐसी परंपराओं के संरक्षण के लिए कोई विशेष वर्ग नहीं था।' पुराने समय में युवा शयन गृहों ने युवा पीढ़ी को गायन, जाप, प्रार्थना और अनुष्ठानों में भाग लेने के लिए एक आदर्श वातावरण प्रदान किया था। बपतिस्मा मिशनरियों के माध्यम से उपनिवेशी साक्षरता का प्रभाव धीरे-धीरे और असमान रूप से फैला। कार्बी स्थिति को वॉल्टर ओंग ने बहुत अच्छी तरह से व्यक्त किया है, जब उन्होंने कहा था - 'मौखिक संस्कृतियाँ वास्तव में शक्तिशाली और सुंदर मौखिक प्रदर्शन उत्पन्न करती हैं, जो अब लेखन द्वारा मानसिकता के कब्जे में आने के बाद संभव नहीं हैं।' मौखिक संस्कृति का स्वर्णिम युग अब समाप्त हो चुका है। युवा शयन गृह लंबे समय से गायब हो चुके हैं और मौखिक कला के संचरण की सहजता धीमी हो गई है। लेकिन आज भी कुछ अद्वितीय गायक पुराने कथाओं को गाते हैं और व्यक्तिगत रूप से इस परंपरा को जीवित रखने की कठिन लड़ाई जारी रखते हैं। चारहेपी का शोक गीत, जो 30 घंटे से भी अधिक समय तक चलता है, निश्चित रूप से प्रदर्शनात्मक लोक काव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। चारहेपी वह महिला शोक गायिका होती है, जिसका कार्य मृतक की आत्मा को पूर्वजों की दुनिया में मार्गदर्शन देना होता है। यह अत्यधिक लंबा मौखिक प्रदर्शन, जैसे एक सावधानी से तैयार किया गया ऐतिहासिक नाटक, कई कथाओं और उपकथाओं से भरा होता है, जिसे चारहेपी अपनी महाकाव्यात्मक गाथा के माध्यम से जीवित करती है। इस प्रदर्शन की लंबाई और गायक की अविश्वसनीय सहनशक्ति निश्चित रूप से इसे लोक महाकाव्यों के सर्वोत्तम उदाहरणों के बराबर ठहराती है। चारहेपी का शोक गीत होमर की 'इलियड' से भी अधिक लंबा और समृद्ध है, जो कि नौवीं शताब्दी ईसा पूर्व का प्रसिद्ध ग्रीक मौखिक महाकाव्य है।

लेकिन चारहेपी का महाकाव्य केवल मृतकों और परलोक की गहरी भूमि के बारे में नहीं है; यह एक विस्तारित मौखिक इतिहास है, जिसे गायिका अत्यधिक तीव्रता और संवेदनशीलता के साथ गाती है। गीत की प्रत्येक पंक्ति एक दुखद रिफ्रेन के साथ शुरू होती है, जो घटनाओं के क्रमिक विकास को दर्शाती है। जैसे एक एकल ऑपेरा गायक, चारहेपी सभी भावनाओं का अनुभव करती है, जबकि वह लगातार मृतक की आत्मा से संवाद करती है। केवल वही है, जो आत्मा का मार्गदर्शन कर सकती है और उसे पूर्वजों से पुन: मिलाकर एकता प्रदान कर सकती है; अन्यथा पूरा अनुष्ठान और विस्तृत उत्सव जिनका उद्देश्य मृतक की सुरक्षित यात्रा सुनिश्चित करना होता है, उनका कोई अर्थ नहीं है। चारहेपी के गीत में आत्मा की वापसी यात्रा का विस्तृत विवरण है, जैसे कि वह पहाड़ी-पर्वतों और विशाल नदियों से गुजरती है और पुराने ग्राम्य जीवन, कृषि अर्थव्यवस्था, सामाजिक रिश्तों, सांस्कृतिक प्रथाओं, और अंतिम चरण में 'विस्मृति का फल' (थेली-थे-बोंगलोंग) प्राप्त करती है, जिसके बाद सारी यादें और 'स्वयं' पृथ्वी पर जीवन से गायब हो जाती हैं और आत्मा पूर्वजों के साथ पुन: जुड़ने की तैयारी करती है। चारहेपी अपने गीत में अंतिम मुठभेड़ का वर्णन करती है, जहाँ एक विशाल एक-पैर वाला पक्षी आत्मा के साथ खड़ा होता है और पापियों को दंडित करता है, जबकि निर्दोषों को सही रास्ते पर जाने की अनुमति देता है। यह लंबी काव्यात्मक कथा कार्बी जीवन और मृत्यु की जटिल दार्शनिकता की व्याख्या है। कभी-कभी, चारहेपी मिरिंगरंग गाती है, जो शायद यौन और संवेदनशीलता के बारे में अश्लील गीत होते हैं, जो कार्बी की पारंपरिक प्रतीकात्मकता के रूप में 'मिरिंगरंग' के रूप में प्रस्तुत होते हैं, जो जीवन-मृत्यु-पुनर्जन्म और शाश्वतता के चक्र को व्यक्त करता है। चारहेपी के शोक गीतों की लंबी प्रक्रिया जीवित है और शोधकर्ताओं और विद्वानों को कार्बी मौखिक प्रदर्शनों की अत्यधिक रचनात्मक, समृद्ध, साहित्यिक और दार्शनिक प्रकृति में गहरे अध्ययन के अवसर प्रदान करती है।

निष्कर्ष :

प्रदर्शन और भाषा-अध्ययन के बीच गहरा संबंध होता है। प्रदर्शन केवल भाषा को सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने

का तरीका नहीं है, बल्कि यह उस समाज की सोच, उसके संवाद और उसकी सांस्कृतिक चेतना को समझने का साधन भी है। किसी भी मौखिक प्रदर्शन के माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि भाषा का प्रयोग किस प्रकार लोगों के सामाजिक जीवन, धार्मिक मान्यताओं और सांस्कृतिक धारणाओं से जुड़ा हुआ है। आज के समय में मौखिक प्रस्तुतियाँ और लोक काव्य धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। इनके महत्व को समाज में पर्याप्त मान्यता नहीं मिल पा रही है, जबकि इन्हीं में भाषा, संस्कृति और इतिहास को संरक्षित रखने की अपार क्षमता छिपी है। यदि इन्हें नजरअंदाज किया गया तो वे सांस्कृतिक और साहित्यिक धरोहरें जो पीढ़ियों से संरक्षित रही हैं, धीरे-धीरे खो जाएँगी या सही रूप में समझी नहीं जा सकेंगी। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि मौखिक परंपरा को जीवित रखने वाले स्वदेशी कलाकारों को केवल सूचना देने वाला नहीं, बल्कि ज्ञान और बौद्धिकता के वाहक के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। उनकी रचनात्मकता और अनुभव इस परंपरा को आगे बढ़ाने और सुरक्षित रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में चारहेपी का लंबा शोक गीत एक जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह केवल शोक का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि कार्बी समाज के साहित्य, संगीत, इतिहास और दर्शन का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह सिद्ध करता है कि मौखिक परंपरा केवल कला नहीं, बल्कि सामुदायिक स्मृति और सांस्कृतिक पहचान की गहरी अभिव्यक्ति है। ❑

संदर्भ सूची :

1. टेरॉन, धरमसिंह, 2011 – 'पूर्वजों की आवाजों को पुन: प्राप्त करना' (कार्बी अध्ययन, खंड 2); असम बुक हाइव; पृष्ठ 19
2. डंडेस, एलेन, 1961 – 'स्मृति-सहायक उपकरण'; मिडवेस्ट फोल्कलोर, खंड 11, संख्या 3, इंडियाना अंक, ७७८, इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस; पृष्ठ 139-147
3. टिमुंग, मोन, 1995 – 'पेंगसोमिर'; कार्बी लामेट ऐमी, मोंजीर प्रेस, दीपू; पृष्ठ 37 और 85
4. वांसीना, जान, 1985 – 'मौखिक परंपरा को इतिहास के रूप में'; जेम्स करी लिमिटेड, पृष्ठ 46
5. जोबर्ट, अन्नेकी, 1961 – 'भाषाविज्ञान में प्रवृत्तियाँ – प्रदर्शन की शक्ति – हानानवा और लोबेडु मौखिक साहित्य में अतीत और वर्तमान का संबंध'; माउटन; पृष्ठ 126
6. दत्ता, बिरेन्द्रनाथ, 2012 – 'पूर्वोत्तर भारत की सांस्कृतिक रूपरेखा'; ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; पृष्ठ 72
7. पेननेन, ऋस्तो पेका, 2010 – 'पूर्वी संगीत की उदासीपूर्ण ध्वनियाँ – बोस्नियाई सेवडालिंका संगीत को एक उन्मुखवादी और राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में'; म्यूजिक एंड इमोशंस, स्टडीज एक्रोस डिसिप्लिन्स इन द ह्यूमेनिटीज एंड सोशल साइंस 9; हेलसिंकी, हेलसिंकी कॉलेजियम फॉर एडवांस्ड स्टडीज, 76-90 देखें

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

हिंदी उपन्यासों में चित्रित अक्टूबर 1947 का कश्मीरी नरसंहार

सुनंदा गराईं

शोधार्थी, हिंदी विभाग
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्विद्यालय
मोतिहारी, पूर्वी चंपारण
बिहार-845401
9911953456
sunanda.garai@gmail.com

डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव

शोध निर्देशक, सह-आचार्य, हिंदी विभाग
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्विद्यालय
मोतिहारी, पूर्वी चंपारण
बिहार - 845401
9679524503
anjanijnu1@gmail.com

शोध-सार :

22 अक्टूबर, 1947 का दिन कश्मीर के इतिहास में काले पृष्ठ के रूप में अंकित है, जब पाकिस्तान ने कबायली हमलावरों द्वारा कश्मीर पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार करने का असफल प्रयास किया था। उन कबायलियों ने कश्मीर में मानवता को शर्मशार कर देने वाली घटनाओं को अंजाम दिया। यह इतिहास का एक क्रूर और हृदयविदारक अध्याय है, जो मानवता और नैतिकता के पतन का प्रतीक है। यह आलेख पाकिस्तान सुनियोजित 'ऑपरेशन गुलमर्ग' और कबायली आक्रमण की विभीषिका को उजागर करता है। 1947 की मानवता को शर्मसार करने वाली घटना का जीवंत चित्रण क्षमा कौल, चंद्रकांता, मीरा कांत जैसे कश्मीरी रचनाकारों के उपन्यासों में किया गया है। इसके अलावा गैर-कश्मीरी रचनाकारों की रचनाओं में इस आक्रमण के पीड़ितों के दर्द को दिखाया गया है।

बीज शब्द : ऑपरेशन गुलमर्ग, कश्मीरी नरसंहार, मानवीय त्रासदी, निर्दोष नागरिकों की हत्या, आतंक और वहशीपन, स्वतंत्र भारत का पहला युद्ध, भारतीय सेना।

मूल आलेख :

22 अक्टूबर, 1947 का दिन जम्मू-कश्मीर के इतिहास में काले दिन के रूप में याद किया जाता है। इस दिन पाकिस्तान ने सीमांत प्रांत के जनजातीय समाज पश्तून और अफ्रीदी लोगों (पाकिस्तानी कबायली) को आगे करके जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण किया था। जम्मू-कश्मीर रियासत को पाकिस्तान में शामिल होने पर मजबूर करने के लिए पाकिस्तान द्वारा 'ऑपरेशन गुलमर्ग' शुरू किया गया। यह वह आक्रमण था, जिसके कारण पहली बार भारत-पाकिस्तान का युद्ध हुआ। 'ऑपरेशन गुलमर्ग' में अनेक निर्दोष नागरिकों की हत्या की गई। सिर्फ हत्याएँ ही नहीं, बल्कि लूटपाट और बलात्कार जैसी घटनाओं को भी अंजाम दिया गया। लोगों को बंधक बनाया गया, ज्यादातर महिलाओं को बाद में पाकिस्तान में बेच दिया गया। इस आक्रमण में आतंक और वहशीपन का ऐसा तांडव किया गया था कि आज भी वहाँ के लोग याद करके काँप जाते हैं।

कबायली हमलावरों की लूटपाट, हत्या और बलात्कार जैसी बर्बर कार्यवाहियों के किस्से इतिहास और संस्मरणों की किताबों में बिखरे पड़े हैं। हिंदी साहित्य भी इस घटना से अपने आप को अछूता नहीं रख पाया। कश्मीरी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में इन घटनाओं का वर्णन बहुत ही मार्मिकता के साथ किया है। क्षमा

कौल का उपन्यास 'दर्दपुर', चंद्रकांता का उपन्यास 'कथा सतीसर' तथा मीरा कांत का उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं सा' में उस समय के दिल दहला देने वाली घटनाओं तथा पीड़ितों के दर्द को दिखाया गया है। इसके अलावा गैर-कश्मीरी रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं में कबायली हमले की विभीषिका का वर्णन किया है।

आक्रमण की योजना का क्रियान्वयन पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली खाँ, जिनके पास रक्षा विभाग भी था और उनके विश्वासपात्रों के समूह अर्थात सैयद इस्कंदर मिर्जा (रक्षा सचिव, बाद में पाकिस्तान के राष्ट्रपति बने), अब्दुल्ला कय्यूम खान द्वारा किया गया था। आक्रमणकारियों ने सोचा था कि वह 26 अक्टूबर तक श्रीनगर पहुँच जाएँगे। 26 अक्टूबर को बकरीद थी। अशोक कुमार पाण्डेय अपनी पुस्तक 'कश्मीरनामा' में लिखते हैं-*''उन्हें इस्लाम के नाम पर चार दिनों में कश्मीर पर कब्जा करके श्रीनगर में ईद मनाने के लिए भेजा गया था। और इस उद्देश्य के लिए कोई नैतिक आदेश नहीं दिए गए थे।''*[1] उनकी योजना थी कि वे सीधे कश्मीर पहुँचकर एयरपोर्ट, गवर्नमेंट बिल्डिंग, रेडियो स्टेशन पर कब्जा करके कश्मीर का पाकिस्तान में विलय की घोषणा कर देंगे। *''हर लश्कर को नियमित पाकिस्तानी सेना से एक मेजर, एक कैप्टन और दस जूनियर कमीशंड ऑफिसर दिए गए थे।...कबायलियों के लश्कर को यातायात के लिए लॉरियों और पेट्रोल की व्यवस्था भी पाकिस्तान ने की थी।''*[2]

जम्मू-कश्मीर पर कब्जा करने के लिए पाकिस्तान ने उसे तीन तरफ से घेरने की नीति बनाई थी। मुख्य हमला एबटाबाद, मुजफ्फराबाद, उड़ी, बारामूला होते हुए श्रीनगर पहँचना था। आधुनिक हथियारों से लैस होकर कबायलियों ने 22 अक्टूबर को मुजफ्फराबाद पर आक्रमण कर दिया। अगले दिन वे उड़ी पहुँच जाते हैं। यहाँ तक आते-आते राजा की सेना के मुस्लिम सैनिकों के बड़े हिस्से ने कबायलियों से हाथ मिला लिया, जिससे उन कबायलियों का हौसला और बुलंद हो जाता है। उड़ी से आगे बढ़ते ही हमलावरों ने मोहरा बिजली घर को अपने कब्जे में कर लिया, जिससे पूरे श्रीनगर की बिजली चली जाती है। उड़ी में एक पुल था, वह एकमात्र रास्ता था, जो उड़ी को कश्मीर घाटी से जोड़ता था। बिग्रेडियर राजेंद्र सिंह ने उस पुल को ध्वस्त कर दिया। इस कारण कबायलियों को दो दिन उड़ी में रुकना पड़ा। वे दो दिन बाद बारामूला पहुँच जाते हैं। ये लोग इतने हिंसक किस्म के थे कि बारामूला पहुँचते ही ये एकदम अराजकता की स्थिति में आ जाते हैं। इस प्रकरण में अशोक कुमार पाण्डेय लिखते हैं- *''श्रीनगर अब केवल 35 किलोमीटर दूर था और पूरी तरह से अरक्षित। अगर वे तुरंत निकलते तो अगले ही दिन श्रीनगर उनके हाथ में आ गया होता। कश्मीर को पाकिस्तान के लिए मुक्त करना उनका इकलौता उद्देश्य नहीं था। लालच भी बड़ा उद्देश्य था।''*[3] इस दौरान हमलावरों ने लूट, हत्या और बलात्कार की दिल दहला देने वाली घटनाओं को अंजाम दिया। औरतों के साथ बलात्कार तथा गैंगरेप किया। उनके निशाने पर केवल हिंदू औरतें ही नहीं, बल्कि वहाँ रहने वाली सिख, इसाई यहाँ तक की मुसलमान औरतें भी थीं। दुकानें जला दी गईं। जो मिला उसे लूट लिया गया। जिन-जिन लॉरियो में वे आए थे उन्ही लॉरियो में लूट का सामान भर कर वापस भेजने लगे। पूरा बारामूला तबाह कर दिया गया। बारामूला में इतनी हत्याएँ की गईं कि कहा जाता है कि वहाँ की आबादी एक तिहाई बची थी। लेफ्टिनेंट कर्नल आदित्य प्रताप सिंह लिखते हैं- *''बारामूला का नरसंहार पूरी दुनिया में चर्चित हुआ, विशेषकर पश्चिमी देशों मे, क्योंकि इसमें मरने वाले कुछ ब्रिटिश नागरिक, चर्च के पादरी और नन भी थे। सैंट जोसेफ कॉन्वेंट को जलाकर राख कर दिया गया था। बारामूला से सैकड़ों कश्मीरी महिलाओं को बंधक बना कर ले गए, जिन्हें पेशावर में बेचा गया। सैकड़ों का धर्मांतरण किया गया।''*[4] 26 अक्टूबर ,1947 पर फिल्म डिवीजन की तरफ से तैयार की गई एक रिपोर्ट के अनुसार, *''26 अक्टूबर,1947 : जम्मू कश्मीर के ज्यादातर हिस्सों पर कबायली हमलावरों ने कब्जा कर लिया है। उनके पास अधिक मात्रा में हथियार हैं। हमलावरों ने शहरों और गाँव में लूटपाट मचा दी है। हमलावर जम्मू-कश्मीर में रहने वालों पर जानलेवा हमला कर रहे हैं। इस शांत देश में हर तरफ अशांति फैल गई है।''*[5]

हिंदी कथा साहित्य में इन सभी घटनाओं के भुक्तभोगियों के दर्द को दिखाया गया है। मीरा कांत

अपना उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' मे इस विभीषिका के दर्द को बयाँ करते हुए लिखती हैं, *''अभी हिंदुस्तान की आजादी का जश्न और वाबस्ता उम्मीदों से रचाई मेहंदी शायद सूखने भी न पाई थी कि लगभग दो महीनों बाद नवरात्र संपन्न होने का शाही भव्य आयोजन अचानक अंधकार में विलीन हो गया। सीमा पार से आए कबायलियों ने मोहरा बिजलीघर को तहस-नहस कर दिया था, जिससे कश्मीर की बिजली गुल हो गई थी। कई दिनों से विदेशी ताकतों की मिलीभगत के शह पाए कबायलियों ने मुजफ्फराबाद की तरफ से कश्मीर पर धावा बोल दिया था। सियासत के रंगीन मोहरे चलते रहे और कश्मीर बाशिंदे तबाह होते रहे। वे कबायलियों के हाथों लुटे-पिटे, उनकी माँ-बहनों को अपमानित किया गया। जुल्म और तंगहाली ने जैसे उनकी कमर तोड़ कर रख दी थी।''*[6] क्षमा कौल ने अपने उपन्यास 'दर्दपुर' में लसकाक और काकनी नामक पत्रों के माध्यम से कबायली हमले के दर्दनाक मंजर का वर्णन किया है। लसकाक बारामूला का निवासी है। उसने कबायलियों द्वारा बारामूला बर्बाद किए जाने की घटना को अपनी आँखों से देखा था तथा उस भयावह मंजर को महसूस किया था। लसकाक कबायलियों द्वारा अनाथ कर दिया जाता है और किसी तरह जान बचाकर श्रीनगर के शरणार्थी शिविर में पहुँचता है। वहाँ सभी शरणार्थियों के पास दिल दहला देने वाली अनंत कथाएँ थीं। लसकाक हमले की बात याद करते हुए बताता है, *''जब कबायली बारामूला पहुँच गए तो हम जान गए की भूकंप यहाँ तक आ पहुँचा। पृथ्वी चप्पा-चप्पा पाँवों के नीचे खिसकती चली जाती थी। औरतें बेहद असुरक्षित थी। उन्होंने बारामूला में एक रिहायशी कैंप बनाया था। जहाँ वे औरतों को, उनके मर्दों को मौत के घाट उतारने के बाद कयाम करते और उससे आनंदित भी होते। विरोध करने वाली को हश्र के बाद जमीन में गाड़ देते या टुकड़े-टुकड़े कर फेंक देते।''*[7] जब यह घटना घटित हुई थी तो लसकाक किशोरावस्था में था। अब वह एक वरिष्ठ व्यक्ति हो गया है। पर उस घटना को कभी एक पल के लिए भी नहीं भूल पाता है। वह हमेशा सभी के सामने बार-बार उन्हीं स्मृतियों को दोहराता रहता है। क्षमा कौल लिखती हैं, *''मनुष्य सुख से ज्यादा दुख को पुन:पुन: जीता है। शायद उससे नजरें मिलाए रख सकने का अपना दम दिखता रहता है और उसको न आने देने के लिए भी अपनी चौकसी दिखता है।''*[8] जब भारतीय सेना द्वारा उस जगह को कबायलियों से मुक्त करा दिया जाता है और लसकाक तथा अन्य शरणार्थियों को उनके घर वापस भेजा जाता है, तब वहाँ जाकर वह देखता है कि उसके गाँव का भूगोल ही बदल गया है। *''गाँव क्या? घरों की बनी चिताओं का श्मशान बन गया है। छत नाम की चीज नहीं दिखाई दे रही। बस जहाँ-तहाँ मकानों की अधटूटी दीवारें ही खड़ी हैं। अधजली लकड़ियाँ सभी जगह फैली हैं। वहाँ के लोग किसी तरह अपनी जान बचाकर भागे थे तो अपनी कुछ मूल्यवान चीजों को जमीन में गाड़ दिए थे। लसकाक ने भी अपने पिता के कहने पर सिक्कों की गठरी बना कुएँ में डाल दिया था। कबायलियों ने इतनी तबाही मचाई थी कि लोग उस जगह की शिनाख्त ही नहीं कर पा रहे थे, जहाँ उन्होंने अपनी मूल्यवान चीजें छुपाई थी। कुछ लोग तो जिंदगी भर तोतो चान की तरह उस जगह की शिनाख्त ही नहीं कर पाए, जहाँ उन्होंने पोटलियाँ दबा रखी थीं। वर्षों तक शिनाख्त करते रहे। पर निरर्थक''*[9] लसकाक जब भी पोटली खोजने के लिए कुएँ में जाल फेंकता तो जाल हमेशा किसी डंडा, किसी लाश से टकराता रहा।

'दर्दपुर' उपन्यास की 'काकानी' नामक पात्र भी कबायली हमले की अनेक भुक्तभोगियों में से एक है। वह भी बारामूला की निवासी थी। हमले में अपनी सारी संपत्ति लुट जाने के बाद एक छोटी-सी झोपड़ी में अपने दर्द के साथ जीवन यापन कर रही है। हमलावरों ने उसके घर को जला दिया। उसके गहने लूट ले गए। वह बच गई, शायद इसलिए क्योंकि वह एक बूढ़ी स्त्री थी। वह कहती है, *''मैं बूढ़ी भी थी। वर्ना जवान-जवान औरतों को ले जाकर बारामूला में एक कैंप में रखने का इंतजाम उन्होंने किया था। मुझे भी लालड़ तक ले गए थे फिर छोड़ दिया। मेरा बुढ़ापा काम आया।''*[10]

उपन्यास में बताया गया है कि कबायलियों ने बारामूला की संपत्ति को लूटा। अधिकांश घरों को जला दिया। हजारों नागरिकों को बेरहमी से मार डाला और औरतों के साथ वहशीपन की सारी हदें पार कर दीं। उन्हें मवेशियों

की तरह हाँकते हुए बारामूला कैंप में एकत्रित किया जा रहा था। वहाँ उनके साथ बलात्कार, गैंगरेप होता था। कुछ लोगों का धर्म परिवर्तन करवाकर जबरदस्ती उनके साथ निकाह किया गया और उन्हें अपने साथ ले गए। नीरजा माधव ने अपने उपन्यास 'तेभ्य:स्वधा' में एक ऐसी ही लड़की की कहानी के दर्द को दिखाया है, जिसे कबायली निकाह करके जबरदस्ती अपने साथ ले जाता है। वह मीना से अमीना बनकर घुट-घुट कर अपना जीवन जीने को विवश हो जाती है। मीना और उसकेपरिवार

जैसे अनेक लोग भारत विभाजन के समय पाकिस्तान के अत्याचार से पीड़ित होकर कश्मीर आए थे, जिन्हें एक गाँव में बसाया गया। पर जब हमला होता है तो उनके गाँव को पूरी तरह तहस-नहस कर दिया जाता है और कबायली मीना को अपने साथ ले जाते हैं। नीरजा माधव उपन्यास के बारे में लिखती हैं, *''इस उपन्यास की कथा भी विस्थापन की त्रासदी की कथा है। पाकिस्तान से भगाए गए हिंदुओं की यंत्रणा की कथा। विस्थापित होकर राजौरी घाटियों में शरण लिए निरपराध हिंदुओं की त्रासद कथा सन 47 में भारत विभाजन के बाद हुए कबायली आक्रमण और उनकी बर्बरता के घिनौने स्वरूप की कथा। कई हजार हिंदुओं की कत्लगाह बनी राजौरी और आस-पास की घाटियाँ। बलात्कार, अपहरण और छीन-झपट की मूक साक्षी बनी पहाड़ियाँ और बर्फ बना दी गई जिंदगियों के नीचे दबी आग और प्रतिशोध की कथा।''*[11]

चंद्रकांता ने अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' में कबायलियों द्वारा किए गए अमानुषिक अत्याचार की कई घटनाओं का वर्णन किया है। मुजफ्फराबाद, उड़ी, बारामूला आदि जगहों से जान बचाकर आए लोगों के दर्द के साथ श्रीनगर वासियों की मानसिक स्थिति तथा डर को भी दिखाया गया है, क्योंकि वे जानते थे कि बारामूला के बाद कबायलियों का अगला पड़ाव श्रीनगर ही है। वे श्रीनगर छोड़कर नहीं जा सकते थे, क्योंकि उनके पास कोई रास्ता नहीं था। उनके पास सिर्फ एक ही रास्ता था कि वे प्रार्थना करें कि भारतीय सेना उनकी रक्षा के लिए पहुँच जाए। वे लिखती हैं, *''तलवार, चाकू-छुरियों से गोलियों का सामना करने का विचार ही हास्यास्पद है। कहीं भाग निकलना एकमात्र विकल्प है। पर भागना कहाँ है और कैसं? बर्फ ढँकेबनिहाल और पीरपांचाल केशिखर लांघना मर्द-मौतबरों के बस की बात नहीं। स्त्रियों-बच्चों की तो बर्फ में ही कब्र बन जाएगी। आधी रात को अचानक अप्रत्याशित भँवर में फँस गया था शहर। दाएँ-बाएँ इंच भर हिलने की गुँजाइश नहीं। पहाड़ों की गोद में सहमी-दुबकी वादी महाकाल के भय से अंधी खोह में साँस रोके बैठी थी।''*[12] उपन्यास में दिखाया गया है कि किस तरह श्रीनगरवासी अपने ऊपर आने वाले संकट से बेखबर रोजमर्रा का जीवन जी रहे थे। किसी के घर बेटी की शादी थी, किसी के घर कुछ। अचानक से सब कुछ रुक गया। आक्रमणकारियों द्वारा 'मुहरा पावर हाउस' पर कब्जा कर लेने के बाद पूरा श्रीनगर अंधेरे ताबूत में बंद हो गया। मुजफ्फराबाद, उड़ी, बारामूला और तमाम लुटे-पिटे गाँव से जान बचाकर आए नंगे-बुच्चे लोग श्रीनगर वासियों को अपनी दहशत भरी दास्तान सुना रहे थे। उन्हें यह बात समझ में आ गई थी कि वे लोग बारामूला में लूट-पाट मचा रहे हैं। कभी भी श्रीनगर पहुँच सकते हैं। सभी लोग अपनों की खैर-खबर सुनने के लिए उतावले हो गए, क्योंकि किसी का बेटा उड़ी में था, किसी का पूरा परिवार बारामूला में। पूरे श्रीनगर में अफरा-तफरी मच गई। चंद्रकांता इस प्रकरण का वर्णन करते हुए 'कथा सतीसर' उपन्यास में लिखती हैं, *''घबराहट से लीलावती के दाँत*

बैठ गए। तुलसी की माँ छाती पीटकर रोने लगी–कौन जाने तुलसी का क्या हश्र हो गया हो। शादी वाले घर में अचानक रोना–पीटना मच गया। मौत का समां बंध गया। आधी रात को ही मर्द–औरतें हाँफते–काँपते अपने–अपने घरों की ओर भागे। अपनों की खैर–खबर सुनने को उतावले, एक दूसरे को ढाँढ़स बाँधते, फिर भी चिंतित।'' 13

25–26 अक्टूबर की रात वादी के लोगों के लिए कहर की रात थी। आक्रमणकारी कभी भी श्रीनगर पहुँच सकते थे। उन्हें पता था कि वे बहुत खूंखार लोग हैं। गाँव के गाँव जलाकर राख कर दिए हैं। निर्दोषों की बेरहमी से हत्या कर रहे हैं। लूट–पाट में इस कदर लगे हुए हैं कि पीतल को भी सोना समझ कर उठा ले जा रहे हैं। चंद्रकांता इस प्रकरण पर कथा–सतीसर में लिखती हैं, *''परले दर्जे के खूंखार और अहमद कौन है इन कबायलियों की। सोने के लालच में पीतल की देगचियां–समावार भी उठा ले गए।''* 14

उन लोगों ने ननों की हत्या की। सती–साध्वियों तक का बलात्कार किया। औरतों के साथ हो रहे दुष्कर्मों से श्रीनगर वासी और ज्यादा भयभीत हो गए थे। पूरा श्रीनगर खौफ में था कि ये लोग किसी को नहीं छोड़ेंगे। उनके मन में यह ख्याल आ रहा था कि अपनी बहू–बेटियों की बेहुरमती से अच्छा है कि वे पहले ही उन्हें जहर दे दें। चंद्रकांता हमले के दौरान घर की महिलओं की सुरक्षा के लिए चिंतित वहाँ केलोगों की मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए उपन्यास में लिखती हैं, *''कबायली अगर श्रीनगर आ ही पहुँचे तो बहू–बेटियों की आँखों के सामने बेइज्जत होते देखने से मर जाना क्या बेहतर न होगा? कौन सा विकल्प बचेगा हमारे सामने? क्या जहर खिलाकर सुला देना धर्म होगा? हत्या नहीं होगी वह?''* 15

''27 अक्टूबर को जब भारतीय सेना लोगों की मदद के लिए हवाई मार्ग से श्रीनगर पहुँची, तब लोगों ने राहत की साँस ली। डूबते हुए को नदी किनारे के काई–कछार मिल गए। लोग खुशी से रोने लगे। जिन्होंने भाग कर जान बचाने, वितस्ता में छलांग लगाकर, जलसमाधि ले अपना धर्म बचाने या बल्ले–भालों से दुश्मन को मारकर मर–मिटने की सोची थी, उन्हें अचानक जीवन दान मिल गया। जिन्होंने कुछ सोना–चाँदी और नगदी गठरी–मुठरी में बांध बनिहाल पर भागने की तरकीबें सोची थीं, उन्होंने गठरियों की गाँठें खोलकर तसल्ली की साँस ली।'' 16 हमलावर मुजफ्फराबाद, उड़ी आदि पर नियंत्रण कर बारामूला से होते हुए शालकोट तक पहुँच गए थे। दूसरी तरफ हवाई अड्डे पर अधिकार करने ही वाले थे कि ऐन वक्त पर भारतीय सेना वहाँ पहुंच गई।

27 अक्टूबर प्रात: काल भारतीय सेना ने साजो–सामान को लेकर जहाजों से उड़ान भरनी शुरू कर दी। स्वतंत्र भारत में भारतीय सेना ने प्रथम संग्राम की स्वर्णगाथा अपने सर्वोच्च बलिदानों से लिखना शुरू किया। कबायली हमलावरों की मंजिल श्रीनगर थी, जहाँ उन्हें भारतीय सेना ने पहुँचने नहीं दिया। इस लड़ाई में सेना केअलावा शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कांफ्रेंस के समर्थकों ने बड़ी भूमिका निभाई। इन लोगों ने कंधे–से–कंधा मिलाकर भारतीय सेना का साथ दिया।

मीरा कांत अपने उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं–सा' में लिखती हैं, *''हिंदुस्तानी फौजियों को इन कबायलियों और छद्मवेश में आए विदेशी सैनिकों को कश्मीर से खदेड़ने में महीनों लग गए। ये कबायली श्रीनगर तक तो कभी नहीं पहुँच पाए, पर इस हमले की वजह से पूरे कश्मीर के हालात इतनी तेजी से बिगड़े कि श्रीनगर भी सहम कर रह गया।''* 17 लूटपाट, कत्लेआम, बलात्कार की वहशी हरकतों को अंजाम देते कबायली चले तो गए पर भुक्तभोगियों को कभी न भूलने वाला जख्म दे गए। क्षमा कौल लिखती हैं, *''जो स्त्रियाँ अकस्मात विधवा हो गईं, समय के बहाव के साथ वैधव्य प्राप्ति की दारुण घटना के क्षण का अक्षुण्ण बहाव बना रहा उनके साथ बहता रहेगा पता नहीं कितने दूर–दूर तक मृत्यु पर्यंत। जिन स्त्रियों के साथ बलात्कार हुआ, हवा में उनकी व्यथा डोलती रही, रहेगी बहुत–बहुत देर तक, दूर तक बहाने वाले वायु–गट्ठरों में। जो यतीम हुए अपने अंतकाल तक प्रश्नमय में रहेंगे स्वयं से कि क्यों भला यतीम किए गए।''* 18

निष्कर्ष :

हिंदी उपन्यासों में अक्टूबर 1947 के कश्मीरी नरसंहार का चित्रण उस ऐतिहासिक त्रासदी की गहरी पीड़ा और मानवीय संकट को उजागर करता है, जिसने जम्मू–कश्मीर

के भूगोल तथा सामाजिक ताने-बाने को तहस-नहस कर दिया । 22 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तान द्वारा शुरू किए गए 'ऑपरेशन गुलमर्ग' ने न केवल निर्दोष नागरिकों की निर्मम हत्या, लूटपाट, औरतों पर अत्याचार और धार्मिक कट्टरता का विकृत चेहरा सामने रखा, बल्कि एक ऐसी ऐतिहासिक दास्ताँ लिखी, जो समय के साथ भी धुंधली नहीं हो सकी। कश्मीरी और गैर-कश्मीरी उपन्यासकारों ने इस त्रासदी को न केवल तथ्यात्मक रूप से, बल्कि संवेदनशीलता और मानवीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। क्षमा कौल का 'दर्दपुर', चंद्रकांता का 'कथा सतीसर' और मीरा कांत का 'एक कोई था कहीं नहीं सा' जैसे उपन्यासों में केवल घटनाओं की भयावहता का वर्णन ही नहीं किया गया, बल्कि पीड़ितों की पीड़ा और उनके टूटे हुए सपनों को साहित्यिक स्वर भी दिया गया है। ये कृतियाँ न केवल साहित्यिक महत्व रखती हैं, बल्कि इतिहास और समाजशास्त्र के छात्रों के लिए भी अमूल्य स्रोत हैं। कश्मीरी नरसंहार का हिंदी साहित्य में वर्णन न केवल इतिहास की एक महतवपूर्ण कड़ी है, बल्कि यह भी प्रमाणित करता है कि साहित्य केवल शब्दों का समुच्चय नहीं, बल्कि मानवीय वेदना का जीवंत दर्पण है। ❑

संदर्भ :

1. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनाम राजपाल एंड संस, दिल्ली, चौथा संस्करण- 2019 पृष्ठ 296
2. वही, पृष्ठ संख्या 296
3. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, राजपाल एंड संस, दिल्ली, चौथा संस्करण- 2019, पृष्ठ 299
4. लेफ्टिनेंट कर्नल आदित्य प्रताप सिंह, कश्मीरी खिलाफत और हिंदू नरसंहार, मानस पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, आई.एस.बी.एन 978-81-7049-538-3, पृष्ठ 86
5. 26 अक्टूबर, 1947 में फिल्म डिवीजन की तरफ से तैयार रिपोर्ट का अंश
6. मीरा कांत, एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009, पृष्ठ- 129
7. क्षमा कौल, दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2004, पृष्ठ 49
8. वही, पृष्ठ 56
9. वही, पृष्ठ 55
10. वही, पृष्ठ 230
11. नीरजा माधव, तेभ्य:स्वधा, विद्या विहार, नई दिल्ली, संस्करण- 2011 पृष्ठ 9
12. चंद्रकांता,कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 201, 202
13. वही, पृष्ठ 200
14. वही, पृष्ठ 207, 208
15. वही, पृष्ठ 201
16. वही, पृष्ठ 203
17. मीरा कांत, एक कोई था कहीं नहीं सा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ- 129
18. क्षमा कौल, दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2004, पृष्ठ 55

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

मोदीनगर तहसील के पुरातात्विक स्थल

कीर्ति चौधरी

शोधार्थी, इतिहास विभाग
एस. एस. वी. कॉलेज
उत्तर प्रदेश, हापुड़-245101
7454932395
kirtiinfo567@gmail.com

डॉ. दीपक कुमार

शोध निर्देशक, इतिहास विभाग
असिस्टेंट प्रोफेसर, एस. एस. वी. कॉलेज, उत्तर प्रदेश, हापुड़-245101
9927689315
deepakbainsla101@gmail.com

शोध-सार :

मोदीनगर तहसील उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जनपद की एक ऐतिहासिक व महत्वपूर्ण तहसील है। इस शोध कार्य के माध्यम से ज्ञात किया गया है कि मोदीनगर तहसील अपने आप में अनेक पुरातात्विक स्थलों और ऐतिहासिक धरोहरों को समेटे हुए है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन स्थनों पर हड़प्पा काल से लेकर राजपूत काल तक की संस्कृतियों के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं, जिससे ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र लगातार सभ्यताओं के केंद्र में रहा है। इस शोध पत्र में जो सर्वेक्षण किया गया है, उससे ज्ञात हुआ है कि यह क्षेत्र पुरातात्विक दृष्टिकोण के साथ-साथ अपना धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व भी रखता है।

प्रस्तुत शेध पत्र में मोदीनगर तहसील के पुरातात्कि स्थलों का सर्वेक्षण कर जो तथ्य एकत्रित किए गए हैं, उन्हें इस शोध पत्र के माध्यम से संकलित किया गया है, क्योंकि समय के साथ-साथ जो कुछ पुरावषेश इस क्षेत्र में बचे हुए हैं, वो भी समाप्त हो जाएँगे।

बीज शब्द : मोदीनगर, पुरातत्व, पुरातात्विक, सर्वेक्षण, पुरातात्विक स्थल, ऐतिहासिक अवशेष, लाल बलुआ पत्थर के स्तंभ, टीलों के पुरा अवशेष, मृदभांड, चतुष्कोणीय पत्थर, ग्रेनाइट पत्थर, अलंकरण, आमलक चित्रित धूसर, वृक्ष, परिसर, प्रांगण, गर्भगृह।

मूल आलेख :

मोदीनगर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जनपद गाजियाबाद की एक महत्वपूर्ण तहसील है, जो कि लगभग 28.50 उत्तरी अक्षांश और 77.35 पूर्वी देशांतर में स्थित है। यह गाजियाबाद के उत्तर-पूर्व में लगभग 27 किलोमीटर की दूरी पर दिल्ली-मेरठ सड़क मार्ग पर है।[1] वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार मोदीनगर तहसील में कुल 132 गाँव हैं। इसकी कुल आबादी 637,485 है। इसमें सिर्फ पुरुष 339,874 हैं, जबकि 297,611 महिलाएँ हैं। तहसील में कुल साक्षरता दर 77.81 प्रतिशत है। पुरुष साक्षरता 73.26 प्रतिशत, जबकि महिला साक्षरता 58.9 प्रतिशत है। प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से मोदीनगर तहसील को 14 कस्बों और 118 गाँवों में विभाजित किया गया है। इस तहसील में सभी धर्म व जाति के लोग निवास करते हैं, जिसमें हिंदू धर्म की अधिकता देखने को मिलती है।[2]

गाजियाबाद से मेरठ जाने वाले सड़क मार्ग पर मुरादनगर से आगे मोदीनगर तहसील पड़ता है। पहले यह 573 एकड़ क्षेत्र का एक गाँव बेगमाबाद कहलाता

था, जिसे नवाब जफर अली ने बसाया था। मगर उसने दिल्ली की शाही बेगम को सम्मान देने के लिए इसका नाम बेगमाबाद रखा। स्वर्गीय राय बहादुर गुर्जर मल मोदी ने 16 अक्टूबर, 1935 को इसी नगर में चीनी मिल की स्थापना की थी। इसलिए मोदी जी के नाम पर इस क्षेत्र का नाम सन 1942 में मोदीनगर पड़ा । 1942 तक यह क्षेत्र बेगमाबाद के नाम से जाना जाता था, जिसमें ग्राम बेगमाबाद, सीकरी खुर्द, बिसोखर, बखरवा आदि आते थे ।

सन 1976 में मोदीनगर को तहसील का दर्जा प्राप्त हुआ। सन 1976 से पूर्व यह मेरठ जनपद की गाजियाबाद तहसील का ही एक भाग था। मोदीनगर तहसील अपने आप में अनेक ऐतिहासिक धरोहरों व पुरातात्विक स्थलों को समेटे हुए है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

मोदीनगर तहसील का नक्शा :

पुरातत्व : पुरातत्व वह विज्ञान है, जो मानव सभ्यता-संस्कृति के भूतल में दबे अतीत को वैज्ञानिक ढंग से निकालकर उसका इतिहास प्रस्तुत करता है। एक ओर पुरातत्वेता मानव अतीत के उन पहलुओं को उजागर करता है, जिनके विषय में लिखित जानकारी नहीं है, दूसरी ओर पुरातत्व इतिहास को वह सामग्री प्रदान करता है, जिससे लिखित इतिहास की पुष्टि होती है और वास्तविक इतिहास का सृजन।

पुरातत्व को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है -

डॉ. बी.बी. लाल- *''पुरातत्व विज्ञान की वह शाखाएँ, जो अतीत के मानव संस्कृति की व्याख्या करता हैं।''*[3]

गिलन डेनियल- *''पुरातत्व मानव अतीत की भौतिक अवशेषों के साथ ही मानव की प्रागैतिहासिक काल से संबंधित पूरा अवशेषों का अध्ययन भी करता है।''*[4]

पुरातत्व अपनी निष्पक्षता और वाचाल मौन द्वारा पुरातत्ववेताओं और इतिहासकारों को मानव जीवन के समस्त पक्षों के विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने में सक्षम है। मानव निर्मित वस्तुओं यथा-भवनों, मृदभांडों, औजारों आदि के माध्यम से इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्ययन जोड़ते हैं। तहसील में हुए शोध कार्यों व सर्वेक्षण से प्रमाणित हुआ है कि यहाँ लगभग 2500 ईसा पूर्व में सभ्यता विकसित थी। इसी आधार पर मोदीनगर तहसील के पुरातात्विक महत्व को प्रकाश में लाने हेतु मोदीनगर तहसील में सर्वेक्षण किया गया, जिसमें से कुछ महत्वपूर्ण स्थलों को इस शोध पत्र में उल्लेख किया जा रहा है।

बखरवा : जनपद गाजियाबाद की तहसील मोदीनगर का गाँव बखरवा पुरातात्विक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण गाँव है। यह अपने आप में पुरातन ऐतिहासिक अवशेषों को समेटे हुए है। इसके विषय में जानकारी तब प्राप्त हुई, जब इस गाँव के तालाब में चौड़ीकरण करने के लिए तलाब से मिट्टी उठाई जा रही थी, और उसमें खुदाई कार्य चल रहा था। उसी दौरान वहाँ तालाब से लगभग 2000 वर्ष पुरानी पुरातत्विक संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं।[5]

तलाब की खुदाई से प्राप्त अवशेष के चित्र

शुरुआती जाँच में यह अवशेष कुषाण काल व गुप्त काल के बताए जा रहे थे। जाँच के पश्चात के ज्ञात हुआ कि ये पुरातन अवशेष पहली शताब्दी से लेकर 15 शताब्दी तक के हैं, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि बखरवा गाँव में मानव सभ्यता का इतिहास करीब 2000

वर्ष पुराना माना जा सकता है। तालाब की खुदाई के दौरान मिट्टी की टेराकोटा की बॉल, घट आकार का मनका, मृदभांड के टुकड़े गुप्तकालीन खिलौनानुमा रथ के पहिए का टुकड़ा, दीपक के ऊपर ढकने का फानूसनुमा टुकड़ा, लोहे के औजारों के अवशेष और कुछ अन्य बर्तनों के टुकड़े प्राप्त हुए, जो काफी लंबे समय तक तालाब में पानी के संपर्क में होने के कारण अत्यंत जीर्ण व बहुत नरम पड़ गए। वर्तमान समय में यहाँ से प्राप्त की कई समस्त सामाग्री पुरातत्व विभाग के पास संग्रहीत है।

दोसा बंजारपुर : दोसा बंजरापुर उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जनपद की मोदीनगर तहसील में स्थित एक बड़ा गाँव है, जिसमें 2011 की जनगणना के अनुसार कुल 694 परिवार निवास करते हैं। इस गाँव की आबादी 3901 है, जिसमें 2136 पुरुष, जबकि 1765 महिलाएँ हैं। दोसा बंजरापुर जाने का मार्ग मोदीनगर से होते हुए काजमपुर गाँव से इसकी दूरी लगभग 1.5 किलोमीटर है। यहाँ के मूल निवासी हिंदी के साथ-साथ उर्दू भाषा का प्रयोग भी करते हैं। मोदीनगर रेलवे स्टेशन से इसकी दूरी लगभग 5.1 कि.मी. है। यह गाँव संवत 825 में बसा था, तब इसका नाम दोसा था। इस गाँव को बंजारों ने बसाया था, इसलिए इसका नाम दोसा बंजारपुर पड़ा।[6]

यह गाँव पुरातत्व की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस गाँव में स्थित अनेक कुओं के विषय में जानकारी प्राप्त होने के पश्चात ग्रामवासियों से साक्षात्कार करने पर इसकी ऐतिहासिकता के विषय में ज्ञात हुआ। यहाँ के कुओं की जाँच करने पर जानकारी प्राप्त हुई कि ये तोमर वंश के शासनकाल के आस-पास के हैं ।

इन कुओं को बनाने में जिन ईंटों का प्रयोग हुआ है, उनका प्रचलन करीब 1000 वर्ष पूर्व होता था। इन ईंटों की नाप लेने पर ज्ञात हुआ है कि ये ईंट 12 इंच लंबी 6 इंच चौड़ी और 2.5 इंच ऊँची है। ऐसी ईंटों का प्रयोग 10वीं से 11वीं शताब्दी में ग्रह निर्माण व मंदिर आदि के निर्माण कार्यो में होता था। उस दौरान यहाँ राजपूत शासक अनंगपाल तोमर का शासन काल था। यहाँ से अनंगपाल तोमर के शासनकाल के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। चंद्रवरदाई की रचना पृथ्वीराज रासो में भी तोमर वंश के राजा अनंगपाल का जिक्र है। चंद्रवरदाई ने उन्हें दिल्ली का संस्थापक बताया है। दिल्ली-हरियाणा से लेकर यहाँ तक उनका ही साम्राज्य फैला हुआ था।

ग्रामवासियों के अनुसार इस गाँव में लगभग 40-50 कुएँ थे, जिनमें से अब वर्तमान में केवल 5 से 7 के ही अवशेष देखने को मिलते हैं। कुछ कुओं को गाँव के निवासियों ने गृह निर्माण आदि कार्यों के लिए मिट्टी डालकर बंद कर दिया है, जबकि कुछ के अवशेष अभी भी खेतों व गाँव में देखने को मिलते हैं। इनमें से कुछ कुएँ तो पानी पीने के काम आते थे, जबकि कुछ खेतों की सिंचाई के लिए जिन पर रहट चलती थी, जो बैलों द्वारा खींची जाती थी।

प्रत्येक कुएँ का अपना अलग नाम था। गाँव में सभी जाति के लोग निवास करते थे। गाँव का एक मुख्य कुआँ गाँव के बीचों-बीच मंदिर के सामने पीर के पास स्थित है, जिसको वर्तमान समय में चारदीवारी करके सुरक्षित कर दिया गया है। उसमें वर्तमान समय में केवल एक खिड़की है, जहाँ से हम कुएँ को देख सकते हैं। कुएँ में ऊपर की ओर तो नई ईंटों द्वारा उसकी मरम्मत कराई गई होगी, लेकिन अंदर की ओर पुरानी ईंटों के प्रयोग से ज्ञात होता है कि यह कुआँ 11वीं-12वीं शताब्दी के आसपास का है।

दौसा बंजारपुर के कुएँ का चित्र

इसके अलावा गाँव में हरिजन समाज के लिए मंदिर और कुआँ दोनों अलग थे। यदि हम ग्राम निशवापुर की और से दोसा बंजरापुर गाँव में प्रवेश करते हैं तो हमें वहाँ भी एक कुआँ देखने को मिलता है, जो वाल्मीकि समाज के लिए था। बनियों के लिए अलग कुएँ थे। दो कुएँ हमें धम्मड़ व तेजपाल के खेतों में भी देखने को मिलते है, जिन पर रहट चलती थी। वे भी लगभग राजपूत काल के आसपास के ही हैं।

गाँव में लगभग डेढ़ सौ वर्ष पुरानी हवेली भी थी, जो कि बाबू पूर्ण सिंह जी के मकान में थी, जिसको हाल ही के दिनों में तोड़कर नए मकान बना दिए गए हैं। इनको लाला बनियों ने बनवाया था, जिसका स्वरूप बिल्कुल डासना परगना में स्थित 52 डोरी की भाँति ही प्रतीत होता था।

आजादी से पूर्व यह ग्राम अंग्रेजों के अधिकार में था। अंग्रेजों ने 365 गाँव इनाम में दिए, जिसमें पांचाली, सीकरी उसके आसपास के गाँव और दोसा बंजारपुर गाँव भी शामिल था, जिनसे बूचड़ वालों ने इस गाँव को खरीद लिया था। इस गाँव में शोध कार्य करने पर इन सभी तथ्यों को एकत्रित किया गया है। गाँव के स्थायी निवासियों ने इनके विषय में जानकारी दी। वर्तमान समय में अधिकांश कुओं को मकान, दुकान आदि निर्माण कार्य के दौरान मिट्टी डालकर भर दिया गया है, जिस कारण वर्तमान समय में उनके अवशेष भी उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन पाँच से सात कुएँ अभी भी देखने को मिलते हैं, जिनसे यह साफ ज्ञात होता है कि इसका इतिहास काफी प्राचीन रहा है।

प्राचीन महादेव मंदिर : दोसा बंजरपुर गाँव के जंगलों में एक मंदिर स्थित है, जिसे ग्रामवासियों द्वारा प्राचीन बताया जा रहा है। लेकिन वर्तमान समय में न तो मंदिर और न ही शिवलिंग देखने पर अधिक प्राचीन प्रतीत होते हैं। मंदिर के प्रांगण में एक कुआँ भी है[7] जिसकी ईंटों की नाप से ज्ञात होता है कि वह प्राचीन कुआँ है। मंदिर के पास ही खेतों में लाल बलुआ पत्थर के पिलर प्राप्त हुए हैं, जिनमें से एक पिलर तो मंदिर के मुख्य द्वार के ऊपर ही रखा हुआ है, जबकि तीन-चार पीलर मंदिर के आस-पास बिखरे पड़े हैं, जिनमें से एक स्तंभ तो कुछ चौड़ा है तथा कुछ गोलाकार है। जिन पर कमल की फूलों की आकृति व धारीनुमा डिजाइन बने हुए हैं। इन स्तंभों के अतिरिक्त भी लाल बलुआ पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े इधर-उधर खेतों में देखने को मिल जाते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि दोसा बंजरपुर गाँव की ऐतिहासिकता अति प्राचीन रही होगी।

महादेव मंदिर व स्तंभ का चित्र

लाल बलुआ पत्थर का चित्र

इस गाँव के लोगों ने 1857 की क्रांति में भी बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया था। इस गाँव को ब्लैकलिस्टेड भी घोषित कर दिया गया था। बहुत वर्षों तक इसके पास कोई जमीन नहीं थी। अंग्रेजों द्वारा इसका बहुत शोषण किया गया और कठोर यातनाएँ भी दी गईं।

खेड़ा साहबाद (अबूपुर) : गाजियाबाद जनपद की तहसील मोदीनगर के अंतर्गत आने वाला वर्तमान अबूपुर नामक ग्राम के पास लगभग 500 मीटर दूरी पर डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जो गाँव बसा हुआ था वह साहबादपुर जखैवा के नाम से जाना जाता था, जो एनएच 34 से 1.5 किमी दूरी पर स्थित है। अबूपुर गाँव के जंगलों के पास में ही खेड़ा पलटने के कारण यह गाँव टीलों में परिवर्तित हो गया था। यहाँ वर्तमान समय में भी अनेक टीले मौजूद हैं, जिनका सर्वेक्षण करने पर हमें ज्ञात होता है कि यहाँ की सभ्यता प्राचीन रही है। यहाँ के टीलों से मृदभांडों के छोटे-छोटे टुकड़े प्राप्त हुए हैं, जिन्हें देखने पर ये कुषाण व गुप्तकाल के प्रतीत होते हैं। वर्तमान समय में टीलों के

रूप में यहाँ केवल चार से पाँच टीलों के अवशेष ही देखने को मिलते हैं। अन्य को ग्राम वासियों द्वारा गिराकर खेती योग्य भूमि में परिवर्तित कर लिया गया है।[8]

टीलों के समीप ही एक कुआँ भी देखने को मिलता है। जब यहाँ गाँव रहा होगा तो यह कुआँ भी तभी ग्रामवासियों के द्वारा बनवाया गया होगा। वर्तमान समय में भी यह कुआँ सड़क से लगभग 10 -11 फीट की ऊँचाई पर स्थित है।

कुएँ का चित्र

स्थानीय निवासियों का कहना है कि यहाँ के खेतों में जुताई, बुवाई, कटाई के दौरान अनेक पुरातन सामग्री के साथ-साथ तांबे व सोने के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा अन्य विभिन्न प्रकार की सामग्रियाँ भी खेतों में कार्य करते समय वहां के निवासियों को समय-समय पर प्राप्त होती रहती हैं।[9]

टीलों के पुराअवशेष

प्राचीन महादेव मंदिर : प्राचीन महादेव मंदिर दिल्ली-मेरठ सड़क मार्ग पर स्थित है, जो मुरादनगर और मोदीनगर शहर के बीच में पड़ता है। मंदिर तक पहुँचने के लिए एक रास्ता सीधे दिल्ली-मेरठ सड़क मार्ग से भी बनाया गया, जबकि दूसरा रास्ता अबूपुर गाँव के अंदर से होकर भी जाता है। यह मंदिर प्राचीन है। कहा जाता है कि मंदिर का शिवलिंग टीले कटने के कारण स्वयं प्रकाश में आया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में यहाँ जब गाँव बसा था तो यहाँ मंदिर रहा होगा। खेड़ा पलटने के कारण यहाँ की संपूर्ण संपदा नष्ट हो गई और मंदिर का अस्तित्व भी समाप्त हो गया।[10] धीरे-धीरे समय और प्राकृतिक कारणों से शिवलिंग स्वयं अस्तित्व में आया, जो काफी विशाल और ऊँचा है, जबकि अधिकांश मंदिरों में शिवलिंग की ऊँचाई प्राय: इतनी देखने को नहीं मिलती। प्राचीन समय में यहाँ शाहाबाद जखैवा नामक ग्राम हुआ करता था। बाद में यहाँ कुछ दूरी पर अबूपुर नामक गाँव बसा तो समय के साथ-साथ टीलों की मिट्टी कटने के कारण स्थानीय निवासियों की दृष्टि शिवलिंग पर पड़ी तो ग्रामवासियों ने यहाँ मंदिर का निर्माण कराया। मंदिर के प्रांगण में ही पीछे की ओर लगभग 200 वर्ष प्राचीन बरगद का वृक्ष विद्यमान है।[11] वर्तमान समय में मंदिर खेतों के बीच में ही स्थित है।

मंदिर के आसपास के टीले को काटकर कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित कर लिया गया है। मंदिर प्रांगण की भूमि लगभग 1 बीघा क्षेत्र में है।[12] मंदिर के गर्भ गृह में प्राचीन शिवलिंग स्थित है। शिवलिंग के चारों और चतुष्कोणीय पत्थर लगाया गया है। साथ ही ग्रेनाइट पत्थर से गर्भ ग्रह का निर्माण किया गया है। शिवलिंग के पास ही एक डमरू लगा त्रिशूल भी स्थापित है। गर्भ ग्रह में दो प्रवेश द्वार हैं और दोनों ही बहुत छोटे हैं। मंदिर में अंदर प्रवेश करने के लिए व्यक्ति को झुककर ही जाना पड़ता है।

मंदिर में कोई अलंकरण हमें देखने को नहीं मिलते। अर्थात मंदिर का शिखर भी बहुत सादा है, जैसा कि नागर शैली में होता है। शिखर के ऊपर बड़ा आमलक है, जिस पर पीतल के कलश को स्थापित किया गया है।

खेतों के बीच होने के कारण यहा शांति बनी रहती है। लेकिन काँवर यात्रा और सावन के सोमवार को मंदिर में काफी भीड़ रहती है। मंदिर प्रांगण में शिवलिंग के साथ ही शनिदेव तथा श्री बालाजी महाराज का दरबार भी यहाँ पर स्थापित है, जो कि नवनिर्मित है। मंदिर प्रांगण में ही व्रजानंद महाराज जी की समाधि है, जो इसी मंदिर में रहते थे। इन्हें चारों वेदों का ज्ञान था। जब इनकी मृत्यु हुई तो

यहीं पर इनकी समाधि बना दी गई। [13]

प्राचीन शिवलिंग का चित्र
श्री बृजानंद महाराज की समाधि

बिसोखर : यह गाँव दिल्ली-मेरठ नेशनल हाईवे पर मोदीनगर शहर की सीमा पर है। गाजियाबाद से इसकी दूरी लगभग 58 किमी है। यह मोदीनगर तहसील का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण गाँव है। इसके नामकरण के विषय में ग्रामवासियों से साक्षात्कार करने पर ज्ञात हुआ कि यहाँ साँप के काटने से भी किसी व्यक्ति को जहर नहीं चढ़ता था। उस समय इस गाँव का नाम विषखर था। बाद में उच्चारण करते करते इसका नाम बिसोखर पड़ गया। ऐतिहासिकता के विषय में जानकारी तब प्राप्त हुई, जब सन 1998 के जून माह में यहाँ के एक किसान चौधरी गिरीराज और उनके भाई श्योराज सिंह गाँव की उत्तर दिशा में स्थित अपने उबड़-खाबड़ खेत को समतल करा रहे थे। खेत की खुदाई करते समय मजदूर का फावड़ा पत्थर से टकराया तो वहाँ व्यापक स्तर पर खुदाई कराई गई। तब उस स्थान पर जमीन में पत्थर की शिलाएँ मिलीं, जिनपर मूर्तियां बनी हुई थीं। मजदूरों ने उन्हें बाहर निकाल कर रख दिया। 4 जनवरी, 1999 को सुपरिंटेंडेंट की देख-रेख में पुरातत्व विभाग की टीम ने इस खेत की घेराबंदी की और पास के ही खेत में अपना डेरा डालकर खुदाई का कार्य शुरू करा दिया। खुदाई के दौरान पुरातत्व विभाग की टीम को कुछ पुराने मृदभांड व महाभारतकालीन बर्तनों के अवशेष भी प्राप्त हुए। खुदाई के दौरान खेतों मे पानी आ जाने के कारण पुरातत्व विभाग की टीम पुराअवशेष को अपने साथ ले गई, लेकिन खुदाई कार्य बीच में ही छोड़ दिया गया। आठवीं शताब्दी में इसमें एक भव्य मंदिर था। अध्यन के दौरान ज्ञात हुआ कि यह मंदिर प्रतिहार वंश के किसी राजा ने बनवाया था। पुरातत्व विभाग कि टीम को इस मंदिर के दर्जनों अवशेष प्राप्त हुए, जिनमें भगवान विष्णु के मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन, परशुराम, राम, बलराम सहित दशावतार की मूर्तियाँ अंकित थीं। मंदिर के मुख्य दरवाजे पर गंगा व यमुना कि मूर्तियां भी उकेरी हुई थीं। यहाँ से प्राप्त समस्त पुरातन सामग्री पुरातत्व विभाग के पास संग्रहीत है। ये सभी दिल्ली के पुराने किले में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग कि कस्टडी में रखे हुए हैं।

ग्रामवासियों का अनुमान है कि किसी बड़ी प्राकृतिक आपदा के चलते यह मंदिर जमीन में समा गया होगा। गंगा-यमुना के बीच का यह क्षेत्र कृषि कार्य में तो बेहतर है ही, साथ-ही-साथ किसी समय में यह क्षेत्र आध्यात्मिकता के क्षेत्र में भी शिखर पर था। किसी समय यह गाँव अंग्रजों के लिए मनोरंजन का केंद्र भी था। इस गाँव में मेरठ से घोड़ों पर सवार होकर अंग्रेज यहाँ काली हवेली में भारतीय नृत्यांगनाओं का नृत्य देखने आया करते थे। अंग्रेजों ने यहाँ अपने घोड़ों के लिए सुरंग भी बनाई थी। मेरठ से दिल्ली जाने का मुख्य मार्ग बिसोखर ही रहा। उस दौरान अवागमन ने जल भराव से बचने के लिए घोड़ों के अवागमन हेतु सुरंग निर्माण कराया होगा, जो कालीचरण किसान के खेत में थी। [14]

वर्तमान सर्वेक्षण के दौरान वहीं पर लगभग 200 मीटर की दूरी पर दो कुओं के अवशेष हमें प्राप्त हुए, जिनकी ईंटों के माप से ज्ञात होता है कि वे लगभग 11वीं शताब्दी के आस-पास की हैं। इनमें से एक कुआँ तो गाँव में प्रवेश कर अंदर खेतों की ओर जाते समय भूमिया की ओर पड़ता है। वह तो लगभग मिट्टी डालकर बंद ही कर दिया गया है। वर्तमान समय में उसके कुछ अवशेष ही देखने को मिलते हैं, लेकिन कुछ समय पश्चात उसके अवशेष भी समाप्त हो जाएँगे। जबकि दूसरा कुआँ भी उससे लगभग 100 मी. की दूरी पर मंदिर के पास खेत में स्थित है, जो कुछ अच्छी स्थिति में है। [15]

कुएँ का चित्र

निष्कर्ष : इस शोध पत्र को लिखने का हमारा उद्देश्य यह है कि मोदीनगर तहसील के क्षेत्रीय इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त हो सके। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह तहसील अपना विशिष्ट पहचान रखता है। यहाँ अनेक पुरातात्विक स्थल ऐसे हैं, जिनका सीधा संबंध हड़प्पा, कुषाण, गुप्त, राजपूत काल से है, जो तहसील की ऐतिहासिकता को प्रमाणिक बनाते हैं। लेकिन समय के साथ हो रहे तेज विकास के कारण अनेक स्थल अपनी पहचान खोते जा रहे हैं या हम कहें कि विकास की यात्रा में अपना दम तोड़ते दिखाई पड़ते हैं। आवश्यकता है तो इस बात कि हम अपनी धरोहर को संरक्षित रख सकें ताकि बचे हुए स्थल संरक्षित रखे जा सकें और आने वाली पीढ़ी अपने क्षेत्रीय इतिहास पर गौरवान्वित हो सके। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारतीय गजेटियर, उत्तर प्रदेश जिला, गाजियाबाद, 1999 पेज न. 338
2. वही
3. डॉ. निहारिका रंजन श्रीवास्तव, भारतीय पुरातत्व का इतिहास
4. वही
5. दैनिक जागरण, नई दिल्ली, 11 जनवरी 2019, जागरण सिटी
6. साक्षात्कार, श्री राजेराम भूतपूर्व प्रधान, पुत्र श्री सुरजा सिंह. आयु 73 वर्ष, निवासी- ग्राम दौसा बंजारपुर
7. साक्षात्कार, श्री जगवीर सिंह, पुत्र श्री जयविन्दर सिंह, उम्र 65 वर्ष निवासी- ग्राम दौसा बंजारपुर
8. साक्षात्कार, शिवदत्त शर्मा, पुत्र श्री रूपचंद शर्मा, उम्र 65 वर्ष, ग्राम अबूपुर
9. साक्षात्कार, वीर सिंह, पुत्र श्री लाल सिंह, उम्र 75 वर्ष, ग्राम अबूपुर
10, साक्षात्कार, धीरज सिंह महाराज, पुत्र श्री लाल चैधरी, उम्र 55 वर्ष
11. साक्षात्कार, जेविन्दर सिंह, पुत्र श्री जगबीर सिंह, उम्र 55 वर्ष, ग्राम अबूपुर
12, साक्षात्कार, सुधीर, पुत्र श्री राजेंद्र सिंह, उम्र 36, वर्ष ग्राम अबूपुर
13, साक्षात्कार, मुन्नालाल पुत्र, श्री रामचरण, उम्र 55 वर्ष, निवासी-अबूपुर
14, ई-पेपर, जागरण, प्रकाशित 20 जून 2014
15 साक्षात्कार, संतोष देवी, पत्नी श्री जयंती प्रसाद, आयु 65 वर्ष, ग्राम बिसोखर।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

डॉ. अम्बेडकर के चिंतन में महिला सशक्तीकरण एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता

राजेश कुमार शाह

पीएच.डी. शोधार्थी, इतिहास विभाग
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज,
देहरादून, उत्तराखंड, पिन-248001
8755651524
rajeshshahxyz@gmail.com

प्रो. (डॉ.) रंजना रावत

शोध-निर्देशक, विभागाध्यक्षा,
इतिहास विभाग
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज,
देहरादून, उत्तराखंड, पिन-248001
9411531934
dr.ranjanarawat@gmail.com

शोध सार:

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफ्ला: क्रिया: ॥'' [1]

नारी जीवन की सार्थकता, उसके जीवन की महत्ता, उसके प्रति व्यक्तिगत रुप से एवं समाज का दृष्टिकोण क्या होना चाहिए? इसके लिए मनुस्मृति के उपरोक्त श्लोक को पूर्णत: आत्मसात किया जाना आवश्यक है। जब प्रत्येक व्यक्ति महिलाओं के प्रति ऐसा भाव रखेगा तो वास्तविक रुप में हम महिलाओं को शक्ति के साथ सम्पन्न करने में पूर्णत: सफल होंगे। साधारण अर्थ में महिला सशक्तीकरण से आशय है, महिलाओं को शक्ति के साथ में संयुक्त करना। व्यापक अर्थ में विचार करें तो यह शब्द प्रकृति में बहुआयामी है, जिसके भावार्थ भी विभिन्न हैं। इसमें मुख्यत: जो समाहित हैं, उसके अंतर्गत हैं- महिलाओं के लिए एक ऐसे संसार की सृष्टि करना जहाँ पर जीवन से संयुक्त सभी क्षेत्रों में लिंग समानता का उन्नयन करते हुए, महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार, मौके एवं विकल्प प्राप्त हो सकें। इसके अंतर्गत परंपरा से चली आ रही लैंगिक रूढ़ियों का शक्तिपूर्वक सामना करने की क्षमता का विकास करके चुनौती देना और महिलाओं की बहुआयामी प्रगति में बाधा डालने वाली सभी बाधाओं को नष्ट करना भी शामिल है। इसके अंतर्गत यह सुनिश्चित करना है कि महिलाओं को शिक्षा के क्षेत्र में, व्यवसाय के क्षेत्र में और स्वास्थ्य सुविधाओं में समान एवं विभिन्न अवसर मिलें। यह महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता का पक्षपाती है तो उनकी सुरक्षा की आवाज को भी शक्तिपूर्वक उठाता है।

संकेत शब्द :

आत्मसात, बहुआयामी, सशक्तीकरण, उत्तराधिकार, रूढ़िवादिता, राष्ट्रवाद।

डॉ. अम्बेडकर के चिंतन में महिला सशक्तीकरण :

भारतीय महिला के संदर्भ में विचार करें तो प्राचीनकाल से ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिककाल में महिलाएं विदुषी, सबला, पराक्रमी तथा शक्तिशाली थीं। वह पुरुषों की पूरक, अर्द्धांगिनी तथा सर्वशक्ति सम्पन्न थीं। [2] उत्तर वैदिककाल में महिलाओं की स्थिति में ह्रास प्रारंभ हुआ। विवाह, धर्म, संपत्ति एवं शिक्षा के ह्रास होने के फलस्वरूप महिलाओं की परिस्थिति में नित्य पतन होने लगा। 3 वैसे तो महिला

सशक्तीकरण हेतु विभिन्न समाज सुधारकों ने व्यापक प्रयास किये किंतु डॉ. अम्बेडकर द्वारा किये गये नारी अभ्युदय के कार्य ज्यादा सार्थक सिद्ध हुए। भारतीय समाज व्यवस्था में होने वाले महिला शोषण की कटु आलोचना करते हुए डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि ''विश्व के अनेक देशों में सामाजिक क्रांतियां होती रही है, भारत में सामाजिक क्रांति क्यों नहीं हुई, यह एक ऐसा प्रश्न है जो मु-हजये सदा कष्ट देता है।'' [4] भारत में सामाजिक व्यवस्था में समाज सुधार का कार्य देवलोक के राह के समान है और इस कार्य में कई कठिनाईयां है। समाज सुधारक कार्य में हितैषी कम जबकि आलोचक ज्यादा हैं। एक वक्त वह भी था जब यह माना जाता था कि सामाजिक कुशलता के बिना अन्य कार्य क्षेत्रों में उन्नति संभव नहीं है, लेकिन समाज में व्याप्त कई कुप्रथाओं के कारण हिन्दू समाज की कार्यकुशलता ही समाप्त हो चुकी है। वर्तमान समय में इन कुप्रथाओं को ध्वस्त करने के लिए अदम्य प्रयत्न करने होंगे। [5] डॉ. भीमराव अम्बेडकर महिला समानत्व तथा स्वतंत्रता के दृ-सजय समर्थक थे। भारतीय समाज में महिलाओं को कभी भी समानत्व का स्थान नहीं दिया गया। समाज में उनकी स्थिति सदैव गौण ही रही है। समाज में महिला असमानता के पक्ष पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि प्रत्येक महिला तथा पुरुष को समाज में समान अवसर मिलने चाहिए और सभी के विकास से राष्ट्र व समाज का विकास सम्भव है। [6] उनकी प्रबल धारणा थी कि समाज में हर एक नागरिक समान है तथा वे सभी अधिकारों, कर्तव्यों और सुविधाओं के हकदारी हैं। जिससे मानव व्यक्तित्व की उन्नति हो, उनका गौरव ब-सजये और मान सम्मान से अलंकृत हो, ऐसी किसी भी चीज पर कोई प्रतिबन्ध न हो। महिलाओं को सामाजिक असमानता से बचाने के लिए भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं के लिए सांविधानिक प्रावधान किये गये हैं। भारतीय संविधान के माध्यम से डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा महिलाओं के हितों की रक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण उपबन्ध सम्मिलित किये। संविधान में उन्होंने प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये। [7] वही समानता के अधिकार के तहत् राज्य नागरिकों में लिंग भेद के आधार पर किसी भी प्रकार से भेदभाव नहीं करेगा। किंतु इसी अनुच्छेद में यह प्रावधान किया गया है कि राज्य महिलाओं और बच्चों की प्रगति के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए स्वतन्त्र है। डॉ.अम्बेडकर ने महिला स्वतन्त्रा की वकालत करते हुए इस बात पर जोर दिया कि महिलाओं को अपने इच्छानुसार जीवन जीने के लिए उन्हें सभी प्रकार की स्वतंत्रता उपलब्ध हो, क्योंकि मानव अधिकार तथा स्वतंत्रता के बिना मानव जीवन अधूरा है। इसके लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19-22 में स्वतंत्रता के अधिकार के तहत् प्रत्येक महिला को पुरुषों के समान स्वतंत्र आचरण अपनाने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर महिला शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे शिक्षा को समाज की प्रगति का महत्वपूर्ण अंग मानते थे। वे शिक्षा पर संगठन और संघर्ष से बढ़कर बल दिया करते थे। वे कहते थे कि बलों में सबसे बलिष्ठ शिक्षा ही है जो समानता, स्वतंत्रता तथा भाईचारे का पाठ पढ़ाती है एवं आत्म सम्मान और स्वावलम्बन जैसे गुणों का विकास करती है। उनका कहना है कि भारतीय समाज का पतन एवं अवनति का प्रमुख कारण अशिक्षा ही रही है। अत: समाज में महिला को पुरुषों के समान शिक्षा मिलनी चाहिए। उनका मत था कि ज्ञान और विद्या पर पुरुषों के समान ही महिलाओं का भी अधिकार है। अत: स्त्रियों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध अनिवार्य रूप से होना चाहिए।[8] डॉ. भीमराव अम्बेडकर समाज में महिला का विशिष्ट स्थान मानते थे और उनके बिना सामाजिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज चरित्रवान तथा सुशिक्षित महिला को अत्यंत महत्व देता है। डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि यदि समाज में महिला सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत होंगी तभी वह समाज में व्याप्त कुरीतियों से छुटकारा पा सकेंगी। आज महिला शिक्षा प्राप्त कर समाज के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में अपनी श्रेष्ठता प्राप्त कर रही है।

भारतीय महिलाओं के उद्धार हेतु डॉ. अम्बेडकर का हिंदू कोड बिल एक जीवंत विधान था जिसमें प्रस्तुत नियमावली महिला उत्थान हेतु उनकी प्रत्येक

स्थिति में सुधार को दर्शाती है। सुधार से यहां यह आशय है कि भारतीय महिला स्वतंत्र भारत में समान अधिकारों को प्राप्त कर सके न कि उनकी शोषण की स्थिति दयनीय बनी। डॉ. अम्बेडकर विशेष रूप से विवाह और संपत्ति के अधिकार पर जोर देते हुए यह बताने का प्रयास करते हैं कि महिलाओं की स्वतन्त्रता इस बात पर निर्भर करती है कि पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं को भी समान अधिकार प्राप्त हो। डॉ. अम्बेडकर का कथन है कि ''स्वाधीन भारत में महिला को भी पुरूषों के भांति समान अधिकार चाहिए। हिंदू कोड बिल उसी दिशा में किया गया एक प्रयास है।' [9] हिंदू कोड बिल एक ऐसा प्रारूप था जिसमें समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता जैसे कम उम्र में बालिकाओं का विवाह, विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार न होना तथा स्त्रियों का सम्पत्ति से वंचित रखना इत्यादि बातों का खण्डन शामिल था। महिलाओं की सशक्त प्रगति के लिए बालिका विवाह की न्यूनतम आयु, विधवा स्त्री को पुनर्विवाह की मान्यता देना, महिलाओं को भी पुरूष के समान तलाक का हिस्सा, अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता देना इत्यादि हिंदू कोड बिल का महत्त्वपूर्ण मसौदा था तथा डॉ. अम्बेडकर का कथन है कि ''मु-हजये भारत का संविधान बनाने में इतनी प्रसन्नता नहीं हुई जितनी हिंदू कोड बिल को पास कराने पर होगी।''[10] डॉ. भीमराव अम्बेडकर के द्वारा प्रस्तुत हिंदू कोड बिल और सांविधानिक प्रावधानों के कारण महिलाओं के जीवन में उत्कृष्ट परिवर्तन के साथ ही महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रभावी उपस्थिति अंकित की है।

भारत सरकार द्वारा 2047 ई0 तक भारत को विकसित राष्ट्र बनाने का लक्ष्य रखा गया है और इसमें महिला सशक्तीकरण की उत्कृष्ट भूमिका है। राजनीति में महिलाओं के समान भागीदारी के बिना कोई राष्ट्र विकसित राष्ट्र की धारणा को प्राप्त नहीं कर सकता है। पंचायत से लेकर संसद तक महिलाओं की समान भागीदारी राष्ट्र को मजबूती देती है साथ ही विकसित राष्ट्र का विविध दृष्टिकोण सामने लाती है। डॉ. अम्बेडकर भारतीय समाज में महिलाओं की राजनीति में भागीदारी को अहम मानते थे। किसी भी समाज की उन्नति का आंकलन इस बात से लगाया जा सकता है कि उस समाज में महिलाओं की राजनीति में कितनी भागीदारी है। महिला की उन्नति के बिना समाज तथा राष्ट्र का अभ्युदय संभव नहीं है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार ''राष्ट्रवाद को गति देने में राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को पर्याप्त अवसर नहीं दिये जिसके परिणामस्वरूप उनकी राजनीतिक भागीदारी नगण्य रही है।''[11]

यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति में आजादी के बाद महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा भारतीय महिलाओं के उत्थान के लिए किये गये प्रयास आज कुछ सार्थक रूप में देखने को मिलते हैं। इंदिरा गांधी, सुश्री मायावती, ममता बनर्जी, सुषमा स्वराज, निर्मला सीतारमण, जयललिता, नजमा हेमतुल्ला, मीरा कुमार, सुमित्रा महाजन, हेमा मालिनी, मेनका गांधी, सोनिया गांधी, अनुप्रिया पटेल आदि अनेक नाम हैं जिन्होंने देश में राजनीतिक जीवन को एक नया कृर्तिमान प्रस्तुत किया है। किन्तु आज भी महिलाओं के राजनीतिक भागीदारी से जुड़े कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो चिंतनीय हैं। महिलाओं को अपने राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए और अधिक सशक्त होना होगा तथा संपूर्ण महिला समाज को भी जागृत होना होगा, तभी वे स्वतंत्र रूप से अपने राजनीतिक अधिकारों का सदुपयोग कर पायेंगी तथा महिलाओं की एवं राष्ट्र की प्रगति में भी अपना सार्थक योगदान कर पाएंगी।

डॉ. अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। डॉ. अम्बेडकर ने न केवल महिलाओं के अधिकारों की वकालत की, बल्कि उनकी शिक्षा, आर्थिक स्वायत्तता और कानूनी सुधारों के लिए भी कार्य किया। उन्होंने सामाजिक आंदोलन एवं अपने अध्ययन के दौरान यह पाया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में महिला की स्थिति दोयम दर्जे की रही है और उसे कभी भी आर्थिक क्रियाओं के केंद्र में नहीं रखा गया। डॉ. अम्बेडकर ने महिला समाज को आर्थिक अधिकार दिलाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। समाज में महिला को परिवार की धुरी ही स्वीकार नहीं किया बल्कि उसे अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तम्भ भी उन्होंने बतलाया। समाज में

महिलाओं की आधा जनसंख्या होने के कारण राष्ट्र की आर्थिक संरचना को प्रभावित करती है और कोई देश महिलाओं एवं पुरुषों के संयुक्त प्रयास से ही बनता है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार महिलाओं की क्षमताओं को पूर्ण विकसित किये बिना किसी भी राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था का विकास सम्भव नहीं है। महिलाओं को सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत तथा आर्थिक रूप से सुदृ-सजय बनाने के दूरगामी प्रभाव परिवार व संपूर्ण समाज पर दिखाई देंगे। [12]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने श्रम कानून बनवाकर देश के पुरूष एवं महिला कामकाजी श्रमिकों को सुविधाएं प्रदान की। उन्होंने महिला श्रमिकों हेतु बोनस, कारखानों में काम के आठ घंटे का निर्धारण, अवकाश, महंगाई भत्ता, हड़ताल का अधिकार तथा महिला श्रमिकों के लिए प्रसूति काल में सवेतन अवकाश की सुविधा प्रदान करवाया। प्रसूति विधेयक के समर्थन में उन्होंने कहा कि ''मैं मानता हूँ कि प्रत्येक माता को प्रसूति से पूर्व तथा प्रसूति के बाद की अवधि में कुछ विशिष्ट समय तक अवकाश मिलना राष्ट्रहित की दृष्टि से लाभदायक है और इस व्यय को सरकार वहन करें। वहीं निजी संस्थाओं में इस व्यय का वहन मालिक वर्ग ही सहन करें।[13] इसमें डॉ. अम्बेडकर का ही योगदान उल्लेखनीय रहा कि आज भारतीय महिला सरकारी एवं निजी संस्थाओं में कार्य करते हुए प्रसूति लाभ विधेयक की सुविधाओं का लाभ उठा रही है। भारतीय संविधान के तहत् अनुच्छेद 38(1) के अनुसार राज्य लोक कल्याण की अभिवृत्ति करके ऐसी सामाजिक व्यवस्था का प्रयत्न करे जिससे प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय उपलब्ध हो। वहीं अनुच्छेद 39 में जीविका के लिए समान अवसर प्रदान करना एवं समान कार्य के लिए समान वेतन ऐसे प्रावधान हैं जो महिलाओं को आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान करती हैं।[14] संविधान मिर्माण के साथ ही महिला अधिकाओं के लिए उनके संघर्ष का प्रतिबिंब हिंदू कोड बिल में प्रतीत होता है, जिसे पारित करने में उनका साहस एवं दृढ़ता प्रदर्शित होती है।

महिला सशक्तीकरण की वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता :

आज समाज में जो नई प्रकार की आधुनिकता दिखाई देती है उसके आलोक में डॉ. अम्बेडकर का उल्लेखनीय योगदान है। समाज के बदलते स्वरूप के साथ वर्तमान में डॉ. अम्बेडकर अपने समय से भी ज्यादा प्रासंगिक दिखाई देते हैं। महिला सशक्तीकरण के वर्तमान परिदृश्य से यह स्पष्ट है कि महिलाएं शिक्षा, खेल-कूद, राजनीति, कला, और संस्कृति जैसे विभिन्न कार्य क्षेत्रों में बढ़-चढ़ कर सक्रिय रूप में भाग ले रही हैं। समाज में पुरुषों के समान ही महिला का विशिष्ट स्थान है क्योंकि आज की महिला सशक्त होकर पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए प्रयासरत है। जैसे जैसे महिलाएं शिक्षित और आर्थिक रूप से सशक्त हुई हैं वैसे वैसे वे समस्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में सुदृढ़ एवं आत्मनिर्भर हुई हैं। महिलाएं शिक्षा और रोजगार के अवसरों में भाग लेंगी तो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था सुदढ़ एवं सशक्त होगी। आत्मनिर्भर महिलाएं अपने परिवार के साथ-साथ समाज के विकास में भी अपनी अहम् भूमिका निभा रहीं हैं। पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से महिलाओं को पंचायती स्तर पर 33 प्रतिशत आरक्षण तो मिला है लेकिन बड़े स्तर की राजनीति में उनकी भागीदारी अभी भी सीमित रुप में ही है। सशक्तीकरण से महिलाएं नेतृत्व की भूमिका में आ सकेंगी। इस टेक्नोलॉजी एवं डिजिटल के युग में महिलाएं डिजिटल इंडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स में अपनी एक नई पहचान बना रही हैं। डिजिटल युग महिला सशक्तीकरण में और भी महत्वपूर्ण हो गया है। समाज में जब महिलाएं सक्षम एवं सशक्त होंगी, तभी समाज भी सशक्त होगा। आधुनिक समय की चुनौतियां और अवसर दोनों ही इस बात को और ज्यादा प्रासंगिक बनाते हैं कि महिलाओं को समान अधिकार एवं अवसर दिए जाएं।

निष्कर्ष :

महिलाओं को सशक्त करने वाले समाज सुधारकों में डॉ. अम्बेडकर का विशिष्ट योगदान है। स्वतंत्रता के बाद महिला अधिकारों की अवस्थापना के लिए सर्वदा

प्रयत्न भारतीय संविधान के अनुसार किये गये। महिला अधिकारों को संरक्षित करने का श्रेय संविधान की सहायता से डॉ. अम्बेडकर को जाता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र की रक्षा के लिए महिलाओं की भागीदारी अत्यधिक आवश्यक है। सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक गतिविधियों में प्रतिभाग हेतु महिलाओं को जागरूक करने की आवश्यकता है। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सरकार के साथ समाज को भी भगीरथ प्रयास करने होंगे तथा अपनी उचित भूमिका का निर्वहन करना होगा। इन सामूहिक प्रयासों से ही महिलाओं को सम्मानीय दर्जा व उनके अधिकारों की प्राप्ति हो सकेंगी। ❑

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. मनुस्मृतिः (मानवधर्म्मशास्त्रमनुसंहिता), अन्वयाडक् भाषा टीका सहिता, अध्याय 3 का 56वाँ श्लोक, पृ0 50, द्वितीया वृत्ति सन् 1914, प्रकाशक- गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण, अध्यक्ष- लक्ष्मीनारायण यंत्रालय, मुरादाबाद।
2. अंसारी, एम.ए., ''महिला और मानवाधिकार'', ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2003
3. कटारिया, कमलेश, ''नारी जीवनः वैदिक काल से आज तक'' यूनिक ट्रेडर्स जयपुर, 2003
4. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड -1, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, 1993, पृ.सं.-8
5. उपरोक्त, पृ.सं.- 55
6. भटनागर, राजेंद्र मोहन, डॉ अम्बेडकर जीवन मर्म, जगतराम एण्ड संस, नई दिल्ली, 2003, पृ.सं.-20
7. मल, पूरण, बाबा साहेब अम्बेडकर, जीवन और संघर्ष, पोइंटर प्रकाशन, जयपुर, 2009, पृं.सं.- 20
8. कीर, धनंजय, डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र, पाप्यूलर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ.सं.-390
9. सिंह, रामगोपाल, डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन, मध्य प्रदेश हिन्दू ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2002, पृ.सं.- 242।
10. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर, राईटिंग एण्ड स्पीचेज, खण्ड-17, भाग-1, पृ.सं.-768
11. बी.आर. अम्बेडकर, पाकिस्तान आर पार्टीशन ऑफइण्डिया, डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राईटिंग एण्ड स्पीचेज, खण्ड-8, गवर्नमेंट ऑफमहाराष्ट्र, 1990, पृ.सं.- 243
12. कीर, धनंजय, डॉ. अम्बेडकरः लाईफएण्ड मिशन, पाप्यूलर प्रकाशन, बम्बई, 1962, पृ.सं.- 92
13. सामाजिक न्याय संदेश (पत्रिका), डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, 15 जनपथ नई दिल्ली, अप्रैल-2013, पृ.सं.- 61
14. कॉन्स्टिट्यूशनल असेबली डिबेट्स, जिल्द- 7 पृ.सं.- 495

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

समकालीन हिंदी कहानियों में पर्यावरणीय चिंता

मंजरी

शोधार्थी (पीएच.डी.)
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास,
धारवाड़ केंद्र, पिन -580001
9444184050
sundershyamdubey@gmail.com

शोध-सार :

समकालीन हिंदी साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों के साथ-साथ पर्यावरणीय चेतना भी एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में उभर कर सामने आई है। वर्तमान युग में पर्यावरण संकट—जैसे जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, जैव विविधता का क्षरण, जल और वायु प्रदूषण ने मानव जीवन को सीधे प्रभावित किया है। यह संकट केवल वैज्ञानिक या तकनीकी समस्या नहीं है, बल्कि यह मानवीय और सांस्कृतिक विमर्श का भी विषय बन गया है, जिसे साहित्य में विशेष रूप से अभिव्यक्त किया गया है।

यह शोध पत्र समकालीन हिंदी कहानियों में निहित पर्यावरणीय चिंताओं का विश्लेषण करता है। इसमें विशेष रूप से अलका सरावगी,एस. हरिनोट और रमेश पोखरियाल निशंक जैसे कहानीकारों की रचनाओं का अध्ययन किया गया है। इन लेखकों की कहानियों में प्रकृति और मनुष्य के संबंधों की बदलती हुई तस्वीर, पर्यावरणीय असंतुलन के सामाजिक प्रभाव, और विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति के दोहन को गंभीरता से उठाया गया है।

संकेत शब्द :

पर्यावरण, प्रकृति, दोहन, प्रदूषण, मुठभेड़, पेड़-पौधे, पंचतत्व।

मूल आलेख :

पर्यावरणीय चिंता आज की ज्वलंत समस्या है। आज हम सब पर्यावरण से संबन्धित अनेक मुद्दों से जूझ रहे हैं। प्रकृति और मनुष्य का अटूट संबंध है। आज मनुष्य अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु पर्यावरण का दोहन कर रहा है। वह यह सोच रहा है कि उसने प्रकृति पर विजय पा लिया है, लेकिन प्रकृति पर विजय प्राप्त करना आसान नहीं है। हर वक्त सौम्य दिखने वाली प्रकृति न जाने कब, कैसे और क्यों रौद्र रूप धरण कर लेती है, किसी को पता नहीं चलता। संवेदनशील साहित्यकारों ने प्रकृति के दोनों रूपों और अनेक कारणों को साहित्य के माध्यम से उकेरा है।

समकालीन साहित्य में पंचतत्त्वों के बारे में बखूबी देखा जा सकता है। अलका सरावगी (17 नवंबर,1960) हिंदी की प्रमुख समकालीन लेखिकाओं में से एक हैं, जिन्होंने कथा साहित्य को नई दिशा देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वे अपने विशिष्ट लेखन-शैली, आधुनिक संवेदना और सामाजिक-राजनैतिक चेतना से परिपूर्ण रचनाओं के लिए जानी जाती हैं। उनकी कहानियों

में एक ओर जहाँ तीव्र संवेदनशीलता दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ और इतिहास के साथ आलोचनात्मक मुठभेड़ भी प्रमुखता से उपस्थित रहती है।

अलका सरावगी का जन्म 1960 में कोलकाता (पश्चिम बंगाल) के एक मारवाड़ी परिवार में हुआ था। उन्होंने अंग्रेजी साहित्य और फिर हिन्दी में उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा बाद में साहित्य लेखन की ओर प्रवृत्त हुईं। कोलकाता जैसे सांस्कृतिक शहर में रहने से उनके लेखन में महानगरीय अनुभव और व्यापारिक समाज की संस्कृति का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उनकी रचनाओं में जाति, वर्ग, लिंग, भाषा, इतिहास और बाजारवाद जैसे ज्वलंत विषयों को बड़ी सहजता से पिरोया गया है। वे मानवीय रिश्तों, स्मृति, पहचान और विस्थापन जैसे विषयों पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत करती हैं। वे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं।

अलका सरावगी की कहानी 'एक पेड़ की मौत' पर्यावरण की दृष्टि से उल्लेखनीय है। यह केवल एक वृक्ष की कहानी नहीं है, बल्कि इस कहानी के नायक की भी एक कहानी है। इस कहानी के मध्यम से प्रकृति और मानवीय संबंधों को उजागर किया गया है। स्मरणीय है कि प्रकृति से मनुष्य का संबंध सदियों से है, लेकिन सभ्यता के विकास के क्रम में यह संबंध छिन्न-भिन्न भी हुआ है। वस्तुत: एक पेड़ की मौत अत्यंत दर्दनाक घटना है, लेकिन मनुष्य इस ओर कभी ध्यान नहीं देता। कहानीकार ने इस ओर अपनी दृष्टि एकाग्र करते हुए इस कहानी का सृजन किया है।

'एक पेड़ की मौत' शीर्षक पर यदि ध्यान देंगे, तो यह स्पष्ट होता है कि महानगरीय जीवन में चारों ओर कंक्रीट के जंगल होने के कारण पे? मर रहे हैं। कहानीकार कोलकाता की हैं, अत: उनकी कहानियों में कोलकाता का परिवेश दिखाई देता है। एक पेड़ कोलकाता के शहरीय वातावरण में मर रहा है। इस कहानी के माध्यम से अलका सरावगी ने मनुष्य की संवेदनाओं को मरने से बचाने की पुरजोर कोशिश की है। यहाँ पेड़ एक रूपक है। इस रूपक के माध्यम से अलका सरावगी ने संवेदनाओं को जागृत किया है। इस कहानी के संबंध में कहते हुए उन्होंने लिखा है कि लेकिन जिस व्यक्ति से हमने यह कथा सुनी, उसी की शैली में हम आपको कथा सुनाने से पहले ही यह बता देना चाहते हैं कि इस पेड़ की मौत में कुछ ऐसा है कि आप चकरा जाएँगे और कथा के अन्त में जो सवाल आपसे पूछा जाएगा, उसका उत्तर आप जो भी देंगे, वह न सिर्फ आपको खुद अपने बारे में कुछ जानकारी दे जाएगा, बल्कि आपको इस शक में डाल देगा कि क्या आप पूरी तरह सही हैं? (अलका सरावगी, संपूर्ण कहानियाँ, पृ.13)

भारतीय संस्कृति कृषि प्रधान है। अत: यहाँ पेड़-पौधों की पूजा की जाती है। उनका संरक्षण किया जाता है। उन्हें नुकसान नहीं पहुंचाया जाता है। पेड़ों को काटना पाप माना जाता है। ऋषि-मुनियों के आश्रम तो वनों में ही हुआ करते थे। मनुष्य-वन्य जीव-प्रकृति के आपसी संबंध बहुत ही अविस्मरणीय संबंध है। यदि पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाएगा, तो उसका प्रभाव स्वत: ही मानव जीवन पर भी पड़ता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह स्पष्ट रूप से घोषणा की कि यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसीलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ। (कुटज)। धरती को माँ का दर्जा देना हमारी संस्कृति में है। भारत में हमेशा ही प्रकृति के साथ सामंजस्य रही है। यूरोपीय औद्योगिक क्रांति के कारण पूंजीवाद का विकास होने लगा। विश्व युद्ध, शीत युद्ध, ओजोन क्षरण, परमाणु परीक्षण, वैश्वीकरण आदि ने प्रकृति के साथ मानवीय रिश्ते को नष्ट कर दिया है।

मनुष्य अपने विकास के लिए प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करने लगा। वनों को काटने लगा। जानवरों को मारने लगा। परिणाम स्वरूप संतुलन बिगड़ने लगा। जल स्रोत सूखने लगे। प्रदूषण फैलने लगा। साँस लेना भी मुश्किल होने लगा। ओजोन परत में छेद बढ़ता जा रहा है और धरती का तापमान असहनीय होता जा रहा है। ग्लेशियर पिघलते जा रहे हैं। चारों ओर महामारी फण फैलाकर तांडव करने लगी। खाद्यान्न विषैला होता जा रहा है। यह सब देखकर समकालीन साहित्यकार चिंतित हो उठे।

वर्षा आती है, तो कभी-कभी अतिवृष्टि होती है, तो कभी अनावृष्टि। नदी जल को रोकने के लिए नदियों पर बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण करने लगे। इस निर्माण ने नदियों की गति रोक दी है। विकास के लिए जहाँ बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण आवश्यक है, वहीं इसके कई दुष्परिणाम भी देखे जा सकते हैं। जिस देश में नदी को ईश्वर मान कर पूजा जाता है, उसी देश में नदी की ऐसी दुर्गति हो रही है। कारखानों से लेकर घरों तक की सारी वर्जित चीजें नदी में ही फेंकी जाती हैं। बड़े-बड़े शहरों के कचरों से भरे नाले के मुहाने नदी पर ही जाकर खुलते हैं। एस. हरनोट की कहानियाँ 'एक नदी तड़पती है' और 'नदी गायब है' पर्यावरण विमर्श की दृष्टि से उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।

'एक नदी तड़पती है' में विकास के नाम पर बाँधों के निर्माण एवं उससे लोगों के विस्थापन के साथ ही साथ एक नदी के तड़प कर मरने की व्यथा दिखाई गई है। कंपनी के बड़े बाबू और नेता आधुनिक यंत्रों के साथ नदी पर बेरहम आक्रमण शुरू कर देते हैं और नदी तड़प-तड़प कर मरने लगती है। कहानी में लेखक लिखते हैं- नदी धीरे-धीरे कई मीलों तक घाटियों में जैसे स्थिर व जड़ हो गई थी। उसका स्वरूप किसी भयंकर कोबरे जैसा दिखाई देता था, मानो किसी ने उसकी हत्या करके मीलों लम्बी घाटी में फेंक दिया हो। अब न पहले जैसा बहते पानी का नदी- शोर था, न ही कोई हलचल। (हरनोट, नदी गायब है)।

'नदी गायब है' शीर्षक कहानी में कहानीकार की चिंता द्रष्टव्य है। वे कहते हैं कि लोग नदी के किनारे-किनारे से पहाड़ की ओर चढ़ने लगे। वहाँ से नदी नीचे बहती थी। नदी छोटी थी, लेकिन आज तक कभी उसका पानी नहीं सूखा था। कितनी गर्मी क्यों न पड़े, उसका पानी बढ़ता रहता। वह जिन ऊंचे पर्वतों के पास से निकलती थी, वे हमेशा बर्फ के ग्लेशियरों से ढँके रहते थे। उन पहाड़ों पर कई ऐसे हिमखंड थे, जो सदियों पुराने थे। इस छोटी-सी नदी से कई गांवों की रोजी-रोटी चलती थी। इसी के किनारे किसानों के क्यार थे, जिसमें वे धान, गेहूं बीजते और सब्जियाँ उगाते। अभी भी पहाड़ों के इन गांवों में कोई पानी की योजना नहीं थी। इसलिए लोगों के जरूरत के मुताबिक गांवों को छोटी-छोटी कूहलों से पानी ले लिया जाता था। लेकिन आज तो जैसे उन पर पहाड़ ही टूट गया हो। (हरनोट, नदी गायब है)

पर्यावरण संरक्षण के संबंध में रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने अपनी कहानी 'कथा पहाड़ों की' में पुरुषोत्तम प्रसाद के मध्यम से यह उद्गार व्यक्त किया है- अगर पर्यावरण संरक्षण की बात करते हैं, तो सब पर समान रूप से कानून लागू होना चाहिए। क्या उन लोगों के सामने कानून की धाराएँ, उपधाराएँ, बौनी पड़ जाती हैं? अगर नहीं, तो उनको सजा क्यों नहीं होती, वे क्यों बिना रोक-टोक पर्यावरण को जब-तब क्षति पहुँचाते रहते हैं? मैं तो साफ तौर कहना चाहता हूँ, अगर इस देवभूमि के पर्यावरण को बचाना है, तो सबसे पहले यहाँ आने वाले धनकुबेरों पर नकेल कसनी होगी। (रमेश पोखरियाल 'निशंक', कथा पहाड़ों की)

पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से यदि समकालीन साहित्यकारों की कहानियों पर एक नजर डालेंगे, तो यह स्पष्ट होता है कि हर साहित्यकार पर्यावरण की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध है। जयश्री राय की कहानी 'खारा पानी', प्रदीप जिलवाने की कहानी 'भ्रम के बाहर', रश्मि भार्गव की कहानी 'कजरी और एक जंगल', हरिराम मीणा की कहानी 'जंगल में आतंक' आदि उल्लेखनीय हैं।

कहना न होगा कि इन साहित्यकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से पर्यावरण असंतुलन तथा उसके कारण उत्पन्न त्रासदी को बखूबी उजागर किया है तथा पाठकों को चेताया है। अपने चारों फैल रहे कंक्रीट जंगल को तोड़कर हमें पुनः हरियाली स्थापित करना होगा। यदि इस धरती की सुरक्षा चाहते हों, तो पर्यावरण की रक्षा करना ही होगा। अन्यथा मानव सभ्यता खतरे में पड़ जाएगी।

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित, हम सब थे भूले मद में,
भोले थे, हाँ तिरते केवल सब, विलासिता के नद में।
(जयशंकर प्रसाद, कामायनी)

निष्कर्ष :

समकालीन हिन्दी कहानियों में पर्यावरणीय चिंता एक गंभीर और सशक्त विमर्श के रूप में उभरकर सामने आई है। इन कहानियों में प्रकृति के प्रति बदलते मानवीय दृष्टिकोण, आधुनिकता और उपभोक्तावाद के प्रभाव, तथा तथाकथित विकास के नाम पर पर्यावरण के शोषण को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। लेखकों ने अपने कथा-संवेदना के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्रकृति और मानव जीवन एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, और प्रकृति के विनाश का सीधा प्रभाव समाज के कमजोर तबकों पर पड़ता है।

समकालीन कथाकारों की कहानियाँ केवल पर्यावरणीय समस्याओं का चित्रण भर नहीं करतीं, बल्कि वे पाठकों में एक नई चेतना जगाने का प्रयास करती हैं। इन कहानियों में आदिवासी जीवन, ग्रामीण परिवेश और पारंपरिक जीवनशैली के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि प्रकृति के साथ संतुलित और सह-अस्तित्व पूर्ण संबंध ही मानव जाति के लिए टिकाऊ भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं।

अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समकालीन हिंदी कहानियाँ न केवल सामाजिक और राजनैतिक सरोकारों को उठाती हैं, बल्कि पर्यावरणीय संवेदना को भी गहराई से स्पर्श करती हैं। ये कहानियाँ आज के साहित्य को एक जिम्मेदार और जागरूक स्वर देती हैं, जो पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को मानवीय मूल्यों के साथ जोड़ती हैं। ऐसे में हिन्दी कथा-साहित्य पर्यावरणीय चेतना के विस्तार में एक प्रभावशाली भूमिका निभा रहा है। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. अलका सरावगी सम्पूर्ण कहानियाँ
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी कुटज
3. एस. हरनोट नदी गायब है
4. एस. हरनोट एक नदी तड़पती है
5. रमेश पोखरियाल निशंक कथा पहाड़ों की
6. जयशंकर प्रसाद कामायनी
7. राजीव गर्ग पर्यावरण और हम, पृष्ठ 42
8 .शिवानंद नौटियाल पर्यावरण समस्या और समाधान, पृष्ठ 69
9. आर. के. गुप्ता पर्यावरण : भयावह भविष्य, पृष्ठ 43
10. डी. के. ठाकुर वन विनाश एवं प्रबंधन, पृष्ठ 15
11. वंदना वोहरा पर्यावरण अध्ययन, पृष्ठ 163
12. रीमा पाराशर प्रदूषण मुक्ति, पृष्ठ 123

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

युवाओं के परिप्रेक्ष्य में इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य

डॉ. मनोहर भंडारे

एसो. प्रोफेसर, हिंदी विभाग
श्री हावगीस्वामी महाविद्यालय,
उदगीर, जि.लातूर
(महाराष्ट्र)-413517
8888001651
dr.bhandaremanohar@gmail.com

शोध-सार :

वैश्वीकरण, बाजारीकरण, शहरीकरण और समाज माध्यम का सबसे गहरा प्रभाव युवा पीढी पर पढा। सरकारी क्षेत्र सिकुड़ गया और निजीक्षेत्र का बोलबाला हुआ, जिसने मनुष्य को वस्तु में तब्दील किया। इसमें जहाँ एक ओर मूल्यों और रिश्तों की जगह उपभोगवृत्ति ली तो दूसरी ओर नौकरी के अभाव में व्यवस्था ने युवा मानस को दर-दर की ठोकरे खाने के लिए दर किनार किया। हाशिए पर डाला। लेकिन तीसरी दुनिया का युवा साहित्य के केंद्र में आया और दस्तक देने लगा। उस दस्तक के दर्द को इक्कीसवीं सदी के साहित्य ने साहित्यिक दस्तावेज में तब्दील किया। इक्कीसवीं सदी के साहित्य में रोजगारी से त्रस्त युवा है फिर भी उसकी जद्दोजहदवृति शेष। उसके मन में जहाँ एक ओर नौकरी हेतु आकर्षण है तो दूसरी ओर अपने समाज के प्रश्नों को समझने वृत्ति भी। इक्कीसवीं सदी का आदिवासी युवक अपनी संस्कृति व प्रकृति के प्रति सजग और सचेत है। तृतीय लिंगी और लिव-इन-रिलेशनशिप का युवक पुरी आजादी का साहित्य के द्वारा दस्तक दे रहा है।

बीज शब्द :

वैश्वीकरण, बेरोजगारी, युवा मानस, सामाजिक समस्याएँ।

रोजगारी से त्रस्त युवा :

बेरोजगारी हमारे समाज की सच्चाई है। गाँवों की तुलना शहरों में बेरोजगार युवाओं की संख्या अधिक है। बेरोजगारी से युवक हताश, निराश,तनाव में अकेलापन और कुंठा में जी रहे हैं। जिसका प्रतिबिंब हिंदी साहित्य में प्रतिबिंबित है, जैसे- अखिलेश का 'अन्वेषण' उपन्यास तथा स्वयं प्रकाश की 'उज्ज्वल भविष्य', शिवमूर्ति की 'भरतनाट्यम', जयनंदन की 'बॉडी गार्ड' जैसी कहानियाँ तथा पराग पावन की 'बेरोजगार' कविता में सारगर्भित चित्रण अंकित है। अखिलेश जी ने 'अन्वेषण' उपन्यास द्वारा बेरोजगारी युवा के मनोजगत का अन्वेषण किया हैं। प्रस्तुत उपन्यास बेरोजगारी का मार्मिक आख्यान है। इस उपन्यास का नायक उनतीस साल का पड़ा-लिखा प्रतिभावान युवक है लेकिन है बेरोजगार। उसकी प्रतिभा को देखकर महाविद्यालयीन मित्रों का दावा था कि वह बहुत बड़ा लेखक, अफसर तथा अभिनेता बन सकता है। लेकिन नौकरी के अभाव में निरर्थकता महसूस करता है।वह कहता है- मैं रात को सो नहीं पाता था। सोता तो चौंककर जाग जाता। मुझमें असुरक्षा की बरसात में डर और निराशा के मेढक उछल-कूद करते कभी-कभी रात-रात भर जागता और पसीना-पसीना हो जाता।... *जब भी मुझमें बेरोजगारी और उम्र के इस पड़ाव का विचार घूँसा मारता है,मैं इसी तरह जड़ एवं हतबुद्धि हो जाता हूँ ।*[1] वह लोगों से,परिवार से कटा हुआ और भीड़-भाड़ से निपट अकेलापन महसूस करता है।

शिवमूर्ति के 'भरतनाट्यम' का ज्ञान पड़ा-लिखा है लेकिन नौकरी न मिलने से पिता के हरामखोर, शनिचरहा जैसी गालियों का शिकार होता है। ज्ञान को तीन लड़कियाँ है लेकिन लड़का नहीं। घर में उठते-बैठते अपमान सहना पड़ता है। बाप कहता है- *मेहरारू की टाँगों में घुस जाता है। चार साल में तीन पिल्लियाँ निकाल दीं। खबरदार! अगर चौथी बार मूस भी पैदा हो गया तो बिना खेती-बारी में हिस्सा दिए अलग कर दूँगा।*[2] घर मैं न भाभी के सामने इज्जत, न बाप के मन में। उसे केंद्रीय सचिवालय में नौकरी लगती है लेकिन न उसे बॉस की चापलूसी करनी आती है न समझौता। नौकरी से निकाला जाता है। जब घर जाता है तब उसे ज्ञात होता है कि पत्नी लड़का न होने के तानों से तंग आकर वह गाँव के लड़के के साथ भाग जाती है। बाप उसे हिड़डा,जनखा और नामर्द तक कहता है। आखिर में ज्ञान खरबूज की खेती में पागल की भाँति भरतनाट्यम करता है। बेकारी से त्रस्त युवक के जीवन की दर्दनाक कहानी पाठक को दहला देती है। जयनंदन के 'बॉडीगार्ड' कहानी का नायक एस.एस.सी.पास बेरोजगार दोयममदर्जे का अपराधिककर्मी नेता का बॉडीगार्ड बन जाता। इसमें प्रतिभाशाली युवा की मर्मांतक पीड़ा अंकित है। बेरोजगारी में न रिश्तेदार साथ होते हैं न मित्र। न आस्था, न प्यार, न परिचय। पराग पावन अपनी 'बेरोजगार' कविता में कहते हैं-

अगर तुम बेरोजगार हो
तो तुम्हारा पहला और पूरा परिचय यही है
कि तुम बेरोजगार हो
पहले रिश्तेदार विदा होंगे
फिर दोस्त कहेंगे विदा
उनके पीछे-पीछे जाएगी तुम्हारी आस्था
प्यार भी अपने पैर खींच लेगा
पीछे की ओर
मृत्यु और बेरोजगार चीढ़ ही ऐसी है।[3]

जद्दोजहद वृत्ति के युवक :

यू.पी.एस.सी., एम,पी.एस.सी. जैसी अनेक परिक्षाओं में उत्तीर्ण होने हेतु गाँव-कस्बों से हजारों-लाखों युवक क्लासेस तथा अध्ययन कर अपनी जिंदगी बनाने हेतु प्रयागराज, दिल्ली जैसे बडे शहरों में रहते हैं,जी तोड़ मेहनत करते हैं। उनके जीवन का प्रतिबिंब हिंदी कथा साहित्य में अंकित है,जैसे- नीलोत्पल मृणाल का 'डार्क हार्स' (2017) साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार से पुरस्कृत उपन्यास है। उपन्यास का नायक संतोष बिहार के भागलपुर से सिविल सर्विस की तैयारी के लिए दिल्ली जाता है। हिंदी बेल्ट के अधिकत्तर लड़के सिविल सर्विस की पढ़ाई हेतु प्रयागराज या दिल्ली जाते हैं। मुखर्जी नगर के सबसे ऊपरी मंजिल की खिड़की से देखने से पता चलता है कि लड़के कितने जी-तोड़ मेहनत करते हैं। उठते-बैठते,पड़ते-लिखते, खाते-पीते पुरबिया बोली में परीक्षा की चर्चा करते हैं। जिसका रिजल्ट आता है तो वह जश्न मनाता है और जिसका नहीं है वह मातम। वहाँ के संघर्षमय जिंदगी का चित्र मात्र ही अंकित नहीं बल्कि अलग-अलग जगह से आने से सांस्कृतिक संघर्ष, खान-पान, रहन-सहन में अंतर, भाषायी शुचिता और गँवई भाषा बोलने वाले छात्रों में नोक झोंक,परिवार के साथ संवाद-विवाद संघर्ष, खान-पान, सफलता-असफलता का संघर्ष, प्रेमी-प्रेमिका का संघर्ष ऐसे विभिन्न प्रकार के संघर्ष तथा टकराहट की कहानियों से उपन्यास का कैनवास अधिक व्यापक हुआ है। 'डार्क हार्स' एक अनकही दास्ताँ का बयान है। इसी विषय पर 12th fail नामक हिंदी फिल्म बडी प्रसिद्ध और चर्चित रही है।यह फिल्म आय.पी.एस.अधिकारी अनुराग पाठक के जीवन पर आधारित थी। सत्यप्रकाश का 2015 में प्रकाशित 'बनारस टॉकीज' उपन्यास से आइ.आइ.टी. के छात्रों का जीवन,वहाँ की मौज-मस्ती तथा उनके दायित्व के बोध का एहसास होता है।

हासिए का युवा विद्रोह के केंद्र में :

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशक और इक्कीसवीं सदी के ढाई दशक के साहित्य में प्रधानता से हाशिए के युवक का विद्रोह प्रधानता से परिलक्षित होता है,जैसे- दलित साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'घुसपैठिये', दयानन्द बटोही की 'सुरंग',सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया' जैसी कहानियों तथा जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' उपन्यास में दलित युवक व्यवस्था के खिला ? विद्रोह कर अधिकार की माँग करते हैं। यही बात स्त्री विमर्श की युवा नायिकाओं के साथ हुई है। उन्होंने पुरुषियत मानसिकता को लता दिया है। मैत्रेयी पुष्पा के कई रचनाओं द्वारा विवाह संस्था पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर उसे भटियारखाना तक कहा है जिसमें कच्ची भी लकड़ी जलती है और पक्की भी। आज की कई युवतियाँ अपने देह और मन पर अपना ही अधिकार

चाहती है। इसका परिचय मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' तथा सुरेंद्र वर्मा के 'मुझे चाँद चाहिए' जैसे उपन्यासों से होता है। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा वशिष्ठ बिना शादी माँ बनना चाहती है। कात्यायनी के 'सात भाइयों के बीच चंपा' काव्य संग्रह की कई लड़कियाँ स्वच्छंद, नीडर और स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है । वह व्रत-उपवास में विश्वास नहीं रखती है।उनकी 'हॉकी खेलती लडकियाँ' कविता में हॉकी खेलने में लड़कियाँ इतनी मस्त-व्यस्त, निस्संकोच और निर्भिक है कि वर पक्ष के लोग राह देखते हुए लौट जाते हैं तो जैसे घर पर वज्रपात होता है। लेकिन लड़कियाँ अपना खेलना नहीं छोडती-

इस छोटे से शहर की ये लड़कियाँ
खेल रही है हॉकी।
खुश हैं, लड़कियाँ
फिलहाल
खेल रही है, हॉकी।
कोई डर नहीं।
लड़कियाँ
पेनाल्टी कॉर्नर मार रही है
लड़कियाँ
पास दे रही हैं
लड़कियाँ
गो.....ल- गो.....ल चिल्लाती हुई
बीच मैदान की ओर भाग रही हैं।
लड़कियाँ
एक-दूसरे पर ढह रही हैं
एक-दूसरे को चूम रही हैं
और हँस रही हैं।[4]

तृतीय लिंगी युवाओं का दर्द :

सन् 2014 को भारत के सुप्रीम कोर्ट ने तृतीय लिंग के रूप में मान्यता दी,जिससे किन्नर के प्रति समाज में जागृति निर्माण हुई, जिसके परिणामस्वरूप हिंदी कथा साहित्य में बड़ी मात्रा में लेखन हुआ। दलित, सवर्ण से बहिष्कृत था, लेकिन था तो गाँव में। किंतु तृतीय पंथियों का दर्द तो और भी भयावह और भयानक। उन्हें तो अपने ही घर से लताडा गया। निकाला गया। ऐसे कई युवक, उपन्यासों के विषय बने हैं,जैसे- चित्रा मुद्गल के 'नालासोपारा' का विनोद उर्फ बिन्नी, भुवनेश्वर उपाध्याय के 'हॉफ मॅन' का अर्जुन,नीना शर्मा के 'मेरे हिस्से की धूप' की मोनी,भगवंत अनमोल के 'जिंदगी 50-50' का हर्षा, मोनिका देवी के 'अस्तित्व की तलाश' में सिमरन जैसे युवा पात्र समाज की संकीर्ण मानसिकता से सभी युवा पात्र अपने परिवार तथा समाज से प्रताड़ित हैं। वे मार-पीट, गाली-गलोज तथा लैंगिक शोषण के शिकार हुए हैं। इन सभी तृतीय लिंगी पात्रों के मन में अपमानित-प्रताड़ित जीवन के बाद भी अपने घर के प्रति लगाव है। परिवारजन के प्रति गहरी संवेदना है फिर भी उनके लिए घर के दरवाजे बंद हैं। अधिकत्तर किन्नर युवा पात्र पिता तथा भाई के पुरुषियत मानसिकता के शिकार हुए हैं, लेकिन किन्नरों की माँ के मन में अपने बच्चे के प्रति गहरी आस्था है, लगाव है और सबसे अधिक दर्द। 'हॉफ मॅन' का अर्जुन आई.ए.एस.अधिकारी बनता है तो 'जिंदगी 50-50' की हर्षिता अपना बाप ऋण से मुक्त हो इसलिए वेश्या व्यवसाय करती है जिससे एड्स होता है तथा आत्महत्या करती है।उसके जीवन की सबसे बड़ी खुशी कर्जमुक्त बाप के चेहरे खुशी। प्रस्तुत विषय का समाजशास्त्रीय दृष्टि से गहरा और स्वतंत्र अध्ययन हो, यह समय और समाज की माँग है।

लिव-इन-रिलेशनशिप और युवा :

भूमंडलीकरण,बाजारीकरण तथा महानगरीकरण से कुछ युवक-युवतियाँ बिना विवाह के लिव-इन-रिलेशनशिप में स्वच्छंद जीवन जी रहे हैं। वे बिना विवाह के एक छत के नीचे सहजीवन जीना चाहते हैं। इस पर कई कहानियाँ लिखी हैं, जैसे-उर्मिला गिरीश की 'उसका अपना रास्ता', स्वाति तिवारी की 'अब कोई वर्जना नहीं', रजतरानी मीनू की 'धोखा', चित्रा मुद्गल के 'आँगन की चिडियाँ' आदि में सहजीवन अंकित है । उसका 'अपना रास्ता' कहानी की वृंदा और पवन में सहजीवन के संबंध में हैं। वृन्दा मिसवर्ल्ड बनने का सपना देखती है। बहन अनुराधा उसे चक्काचौंध दुनिया से सचेत करना चाहती है। लेकिन वृंदा कहती है- *अनु दी, यह दुनिया बहुत बड़ी है, सब कुछ यहाँ भरा पड़ा है। पैसा,ग्लैमर,नाम, शोहरत। मैं सब कुछ बदल डालूँगी।*[5] वृन्दा दिल्ली के मिसवर्ल्ड स्पर्धा में हार जाती है तो उसके जीवन की त्रासदी शुरू होती है। पवन कहता है कि रेस में हारी हुई घोड़ी को कौन पूछता है? पवन, वृंदा का इस्तेमाल कर उसे ठुकरा देता है। रजतरानी मीनू की 'धोखा' कहानी में श्रुति

और अमीत सहजीवन में जीते हैं। श्रुति असिस्टेंट मैनेजर और अमित उनके कार्यालय में है। श्रुति की माँ उसे खूब समझाती है तब श्रुति कहती है- *मम्मी मैं अपने जीवन को नए ढंग से, नए तरह से अपनी इच्छा अनुसार उन्मुक्त होकर जीवन जीना चाहती हूँ।* [6] चित्रा मुद्गल के 'आँगन की चिड़ियाँ' कहानी में दिव्या और विवेक दिल्ली के कंपनी में कार्यरत हैं। माँ दिल्ली आकर बेटी को समझाती है तब बेटी कहती है *माँ हमने बिना फेरों के साथ रहने का निश्चय किया है। हम इस इंतजार में थे अब तुम आ गयी हो तो हमारे संबंधों पर स्वीकृति की मुहर लग जायेगी।*[7]

नशाखोरीवृत्ति और युवा :

जहाँ एक ओर नौकरी के अभाव में दर-दर भटकने वाला बेरोजगार युवक है तो दूसरी ओर ऐसे भी युवक हैं जिनके घर में सभी प्रकार की आर्थिक संपन्नता है। माँ-बाप नौकरी पर है लेकिन संवाद के अभाव, अकेलापन तथा बुरीसंगत से कई युवक नशाखोर बन रहे हैं,जिसका प्रतिबिंब मधु कांकरिया के 'पत्ताखोर' उपन्यास में अंकित है। बेटा आदित्य,हेमंत बाबू और वनश्री का लड़का है। पिताजी शांतवृत्ति के तो माँ गुस्सेली। व्यस्त जिंदगी में बेटे के साथ कोई संवाद नहीं है। लेखिका लिखती हैं- *एक ही घर में रहते हुए भी तीन जिंदगियाँ अपने-अपने द्वीप में बहती-विचरती रही, बिना किसी को छूते हुए।*[8] बेटे को पड़ने से अधिक संगीत में रुचि है। वह संगीत में अपना कैरियर बनाना चाहता है। लेकिन सहपाठी के बड़े भाई अभिज्ञान के संगती में नशे की लत लगती है। वह ताड़ी,गांजा धकल्ले से पीता है। शराब के नशे में घर की कई वस्तुएँ बेचता है। इतना ही नहीं गणेशमूर्ति भी।घर में अपमानित होने से आदित्य भागकर पुरी शहर के सम्राट होटल में नौकरी करता है। वहाँ भी उसे हेरोइन पीने की लत लगती है। पिता उसे ढूंढ कर घर लाते हैं। बेटा ठीक हो इसीलिए माँ नौकरी छोड़ती हैं। वह कुछ दिन कॉलेज भी जाता है लेकिन माँ के गुस्से और बोरियत जिंदगी से देवांशु की संगती से पुन: शराब पीने लगता है। वह कई बीमारी का शिकार हुआ है। कमाया हुआ सारा पैसा बेटे को ठीक करने में खर्च होता है। ठीक होने पर उसके जिंदगी में राशि नामक लड़की आती है। उसके साथ विवाह न होने से वह और शराब पीता है। वह दूसरी बार घर से भागकर फुटपाथ पर रहता है। मोहनबाग नगर के फुटपाथ के लोगों की अभावग्रस्त जिंदगी देख कर आदित्य की जिंदगी ही बदल जाती है। वहाँ के लोगों के लिए श्रमिक और रिक्शा चालक संघ की स्थापना करता है और उनके जिंदगी में सुधार लाता है। अभावग्रस्त जिंदगी ने उसे नया दर्शन दिया। सब को अपनाले वही शिव है, बाकी सब शव है। [8] ज्ञात होने पर हेमंतबाबू और अविवाहित राशि उसे मिलती हैं। मोहनबाग की बस्ती के लोगों के प्यार के सामने पिता और राशि का प्यार छोटा लगता है और आगे की सारी जिंदगी फुटपाथ के लोगों के लिए जीता है।

विदेश का आकर्षण और विदेश से वापसी :

आज बाजारवाद और उपभोक्तावाद के चक्काचौंध में युवकों में कैरियर बनाने की हो लगी है। वे भौतिक सफलता को ही सब कुछ मान रहे हैं। उच्च शिक्षित युवाओं को विदेश में जाकर कैरियर बनाने की होड़ और दौड़ लगीं। उनके दृष्टि से पैसा और कैरियर ही सबकुछ है,जिसका प्रतिनिधित्व ममता कालिया के 'दौ ?'(2000) उपन्यास का पवन करता है। वह मेहनती है, परिश्रमी है, वह नई जिंदगी नयेपन से जीने का सपना देखता है। वह महत्वाकांक्षी है, लेकिन बहुराष्ट्रीय कंपनी ने उसे जैसे मनुष्य से वस्तु में तब्दील किया है। पवन अपने माता-पिता से संवाद नहीं रखता। उनके अकेलेपन को नहीं समझता है। इतना ही नहीं तो अपने और अपनी पत्नी के कैरियर में रुकावट न हो इसलिए पत्नी से दूर दूसरे शहर में रहता है। पारिवारिक संबंधों को बनाये रखना उसे पुरातन-सी बात लगती है, लेकिन लेखिका को लगता है कि शिक्षित युवा पीढ़ी की होड़ और दौड़ इतनी भी न हो कि परिवार तथा अपने से कट न जाए,यह उचित नहीं है।

इसी प्रकार मधुर कांकरिया के 'ढलती साँझ का सूरज'(2022) उपन्यास का नायक अविनाश स्विट्जरलैंड में नौकरी करता है। वहाँ उन्मुख रहता है। सहजीवन रखता है, लेकिन माँ के प्रति गहरी आस्था और लगाव है। वह नौकरी की व्यस्तता में माँ को मिलने भारत जल्दी ही नहीं आता है। जब आता है तब माँ घर में दिखाई नहीं देती तो उसे ढूँढने के लिए मराठवाड़ा के गाँवों में जाता है। जिन गाँवों में माँ गई है। वह वहाँ जाकर आत्महत्या ग्रस्त किसान जीवन की पीड़ा को समझती है, उसी प्रकार अविनाश भी माँ को

खोजते-खोजते मराठवाडा संभाग के किसानों के आत्महत्या के कारणों को समझता है। माँ की खोज में निकला अविनाश सामाजिक दायित्व से किसान आत्महत्या की समस्या को समझता है अर्थात उसे लगता है कि विदेश में जाकर नौकरी के द्वारा पैसा, कैरियर कमाने के बजाए अपने राष्ट्रों के प्रश्नों को समझने में ही शिक्षा की सही सार्थकता है।

आदिवासी युवक :

कोयला खदान,बिजली तथा बाँध परियोजना से आदिवासी समाज जल,जंगल और जमीन से ध्वस्त तथा विस्थापित हुआ। उनमें भी विस्थापन का सबसे अधिक परिणाम युवाओं पर हुआ। उसने अपनी संस्कृति और प्रकृति को बचाने का जी तोड प्रयत्न किया,जैसे- वीरेंद्र जैन के 'डूब' उपन्यास का माते,एस.आर.हरनोट के 'नदी गायब है' कहानी का टीकम,नेचुरियाजो चुचा के 'जडें' कहानी का मैं,एन.टी.लेपचा के 'मेरे मन मंदिर की स्वर्ण-दीपशिखा' का मैं ,खोर सिंह इंग्ती के 'भोर' कहानी के लोंग्कीरी और मोनजिर ,सर बिदोर सिंह के 'शिक्षक' कहानी नायक अपने समाज तथा संस्कृति को बचाने के लिए जद्दोजहद प्रयत्न करते रहें। बहुराष्ट्रीय कंपनी ने तो नदी पर बिजली परियोजना बनाकर नदी ही गायब की, जिससे लोग आचंभित होते हैं। इसलिए 'नदी गायब है' कहानी का नायक टीकम लोगों को संगठित कर आंदोलन करता है। उसे लगता है नदी मात्र नदी नहीं है। उसकी अपनी हजारों सालों की संस्कृति है। उसे चिंता है नदी के साथ वह भी गायब होगी। 'मेरे मन मंदिर की स्वर्ण-दीपशिखा' का 'मैं' और 'जडें' कहानी का 'मैं' दोनों क्रमश: शहर तथा विदेश पढे लिखे हैं लेकिन उनूहें जब उन्हें मृतावस्था की भाषा तथा संस्कृति का एहसास होता है तब वे अपना सारा जीवन संस्कृति बचाने के लिए समर्पित करते हैँ। ऐसे कई युवक आदिवासी कहानियों अंकित है। युवा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत कवयित्री पार्वती तिर्की ने 'फिर उगना' काव्यसंग्रह से अपनी संस्कृति और अपनी प्रकृति को बचाने हेतु वह विद्रोही तेवर में कहती है-

घुमकुडिया में
तीर-कमान बनाने के तरीके सिखाए जा रहे थे
हथियारों में धार डाली जा रहे थी
कुछ लोग विद्रोह के गीत बुन रहे थे
वे नृत्य की भाषा में युद्ध करना चाहते थे। [9]

लेकिन विकास के नाम पर विनाश की त्रासदी से आक्रांत कवि अरुण कमल 'इक्कीसवीं शताब्दी की ओर' कविता में कहते हैं-

हर नदी का घाट श्मशान
हर बगीचा कब्रिस्तान
बन रहा है
और हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर जा रहे हैं। [10]

निष्कर्ष : इक्कीसवीं सदी के साहित्य में युवा मानस विभिन्न रुपों में अंकित है। हाशिए का युवक साहित्य के केंद्र में आया है,जैसे-आदिवासी और किन्नर। वे अपने हक्क की लडाई लढ रहे हैं। आदिवासी युवक अपनी संस्कृति और प्रकृति को बचाने के लिए जी तोड परिश्रम करते हैं। साथ ही बेकारी से त्रस्त गाँव तथा शहरी युवकों के जीवन का संघर्ष अत्यंत हृदयद्रावक और भयावह है,जिससे पाठक वास्तविकता से रुबरु होता है। युवाओं के संदर्भ में बेकारी की समस्या का चित्रण प्रधानता साहित्य में अंकित है। युवा मानस का अंकन अन्य विधाओं की तुलना में कथा साहित्य में अधिक हुआ है। ❑

संदर्भ :

(1) अखिलेश-'अन्वेषण',राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.दिल्ली,पृष्ठ-8-9
(2) शिवमूर्ति-'प्रतिनिधि कहानियाँ', राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,पृष्ठ-37
(3) संपा.आशुतोष कुमार-'आलोचना' त्रैमासिक पत्रिका-अंक-77-अप्रैल-जून-2024 (इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता-विशेषांक),पृष्ठ-58-59
(4) संपा.स्वाति तिवारी-'सम्बोधन'-अक्तू-दिस.-2013(लिव-इन-रिलेशनशिप केंद्रित कहानी विशेषांक),पृष्ठ-50
(5) वही,पृष्ठ-97
(6) वही,पृष्ठ-26
(7) मधु कांकरिया-'पत्ताखोर',राजकमल प्रकाशन,दिल्ली,पृष्ठ-23
(8) वही,पृष्ठ-204
(9) पार्वती तिर्की -'फिर उगना',राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.दिल्ली,पृष्ठ-66
(10) संपा.सुजितसिंह परिहार-'हिंदी साहित्य और पर्यावरणीस चेतना',वाणी प्रकाशन,दिल्ली,पृष्ठ-127

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

অসমীয়া বিভাগ

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ৰাভা ভাষাৰ প্ৰবাদ-প্ৰবচনত ৰাভা সমাজ-সংস্কৃতিৰ প্ৰতিফলন

ড° প্ৰনীতা বৰ্মন

সহযোগী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ,
আৰ্য্যবিদ্যাপীঠ মহাবিদ্যালয়
(স্বায়ত্তশাসিত), আৰ্য্যনগৰ,
(গোপীনাথ নগৰ), গুৱাহাটী- ১৬
৯৪৩৫১৯০২৮২
pranitabara@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

প্ৰবাদ-প্ৰবচন লোকসংস্কৃতিৰ অন্তৰ্গত লোক সাহিত্যৰ এটা প্ৰধান উপবিভাগ। গৱেষক সকলৰ মন্তব্যৰ আধাৰত ক'ব পাৰি যে প্ৰবাদ-প্ৰবচনবোৰ জীৱন আৰু জগত সম্বন্ধে পৰম্পৰাগতভাৱে লাভ কৰা লোক সমাজৰ অভিজ্ঞতালব্ধ সত্যৱসৱস, সংক্ষিপ্ত ব্যঞ্জনাধৰ্মী উক্তি। প্ৰবচনৰ বক্তব্য ৰূপক ব্যঞ্জনাৰ মাধ্যমেৰে প্ৰকাশ কৰা হয়। এই ৰূপক ব্যঞ্জনা সমূহৰ উপাদান প্ৰত্যক্ষ দৃষ্ট সমাজ জীৱনৰ পৰাই আহৰণ কৰা হয় বাবে প্ৰবচনৰ দ্বাৰা এটা জাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ ৰূপ অনুধাৱন কৰাত সহায় হয়। পৃথিৱীৰ প্ৰত্যেক জাতি-জনজাতিৰ মাজত প্ৰবচনৰ প্ৰচলন আছে। অসমত বসবাস কৰা জনজাতীয় ভাষিক গোষ্ঠীৰ ভিতৰত ৰাভা সকল অন্যতম। অন্যান্য তিব্বতবৰ্মীয় ভাষা-ভাষীৰ দৰে ৰাভা সকলৰো লিখিত সাহিত্যৰ প্ৰাচীন পৰম্পৰা নাই যদিও মৌখিক সাহিত্যত তেওঁলোক যথেষ্ট চহকী। এইক্ষেত্ৰত ৰাভা সকলৰ মাজত প্ৰচলিত প্ৰবাদ প্ৰবচনবোৰ উল্লেখযোগ্য। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰত ৰাভা প্ৰবচনত প্ৰতিফলিত হোৱা ৰাভা সকলৰ স্বকীয় প্ৰাচীন পৰম্পৰাগত সামাজিক-সাংস্কৃতিক উপাদানৰ লগতে অসমৰ একে ভৌগোলিক পৰিৱেশত সহাৱস্থানৰ সম্পৰ্কেৰে বসবাস কৰি থকা বিভিন্ন জাতি জনগোষ্ঠীৰ বিশেষকৈ আৰ্য হিন্দু সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱত গঢ়ি উঠা উমৈহতীয়া সামাজিক-সাংস্কৃতিক উপাদানৰ বিষয়ে আলোকপাত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

প্ৰবাদ-প্ৰবচন, লোকসাহিত্য, সমাজ, সংস্কৃতি, পৰম্পৰা।

অৱতৰণিকা ঃ

বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলত অৱস্থিত অসম এখন বহুভাষিক আৰু বহুজাতিক ৰাজ্য। বিচিত্ৰ জাতি আৰু জনজাতি মূলৰ অধিবাসীসকলৰ সমন্বয়ত বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ জীৱন গঠিত হৈছে। ভিন ভিন জাতি জনজাতিৰ সুকীয়া সুকীয়া ভাষা, সমাজ আৰু সংস্কৃতিয়ে অসমৰ ভাষা-সংস্কৃতিক বৈচিত্ৰপূৰ্ণ আৰু সমৃদ্ধশালী কৰি তুলিছে। অৱশ্যে এই বিচিত্ৰতাৰ মাজতো একে ভৌগোলিক পৰিৱেশত সহাৱস্থানৰ সম্পৰ্কৰ বাবে এই ভিন ভিন জনগোষ্ঠীসমূহৰ মাজত সংমিশ্ৰণ আৰু সমাহৰণ ঘটিছিল। সমাহৰণ বা সংমিশ্ৰণৰ ৰূপ অকল আবয়বিক বা ভাষাৰ ক্ষেত্ৰতে নহয় সংস্কৃতিৰ বিভিন্ন উপাদানৰ মাজতো পৰিলক্ষিত হয়।

উল্লিখিত সামাজিক-সাংস্কৃতিক পটভূমিত অসমৰ জনজাতীয় আৰু অজনজাতীয় লোকসকলৰ সাংস্কৃতিক বিশেষকৈ লোক সাংস্কৃতিক উপাদান সমূহৰ বিশেষ গুৰুত্ব আছে। প্ৰবাদ-প্ৰবচন লোকসংস্কৃতিৰ অন্যতম বিভাগ লোকসাহিত্যৰ এটা প্ৰধান উপশ্ৰেণী। ই এখন সমাজৰ ব্যৱহাৰিক অভিজ্ঞতাৰ পটভূমিত লাভ কৰা জ্ঞানৰ সংক্ষিপ্ততম বাচিক অভিব্যক্তি। কোনো এটা জাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ বিষয়ে জানিবলৈ সংশ্লিষ্ট জাতিটোৰ প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ অধ্যয়ন গুৰুত্বপূৰ্ণ। পৃথিৱীৰ প্ৰত্যেক জাতিৰ ভাষাতে প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ প্ৰচলন আছে। অসমৰ একে ভৌগোলিক ক্ষেত্ৰত অতীজৰে পৰা সহাৱস্থানৰ সম্পৰ্কৰে বসবাস কৰি অহা বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ভিতৰত অন্যতম এটি জনজাতি হ'ল ৰাভা সকল। ৰাভা সকল ভাষাতাত্ত্বিক ভাৱে চীন তিব্বতীয় পৰিয়ালৰ আৰু নৃতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা মংগোলীয় ফৈদৰ লোক বুলি পণ্ডিত সকলৰ দ্বাৰা স্বীকৃত। এওঁলোক অসমৰ লগতে মেঘালয়ৰ সীমামূৰীয়া অঞ্চল আৰু পশ্চিমবংগত বসবাস কৰি আছে। গৱেষক সকলৰ মন্তব্য অনুসৰি ৰাভাসকল আঠোটা ফৈদ বা উপগোষ্ঠীত বিভক্ত। সেই কেইটা হ'ল ৰংদানি, মায়তৰি, কোচা, পাতি, দাহৰি, বিটলীয়া, টোটলা আৰু হানা। ৰাভা সকলৰ প্ৰাচীন লিখিত সাহিত্যৰ নিদৰ্শন পোৱা নাযায় যদিও লোক সাহিত্যৰ দিশত এওঁলোক যথেষ্ট চহকী। ৰাভা লোক সাহিত্যৰ অন্যতম শ্ৰেণী ৰাভা প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ মাজেৰে এই জনগোষ্ঠীটোৰ আবেগ-অনুভূতি, সামাজিক ৰীতি-নীতি, চিন্তাচৰ্চা, জীৱনবোধ, পৰ্যবেক্ষণশীলতাকে ধৰি বাস্তৱ জীৱনত লাভ কৰা অভিজ্ঞতাৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলিত হৈছে। জনবসতি আৰু বাসস্থান অনুসৰি বৰ্ণ হিন্দু অসমীয়াৰ লগত অতি ওচৰৰ পৰাই সংস্পৰ্শ ঘটাৰ বাবে ৰাভাসকলৰ পাতি, দাহৰি, টোটলা, বিটলীয়া, হানা এই উপগোষ্ঠী কেইটা আৰ্য সংস্কৃতিৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছে। ভাষান্তৰিত আৰু ধৰ্মান্তৰিত হৈ সম্পূৰ্ণ আৰ্য্যীভূত হৈ পৰা এই ফৈদ কেইটাই অৱশ্যে পূৰ্বৰ পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, খাদ্যাভাস সম্পূৰ্ণৰূপে পৰিত্যাগ কৰিব পৰা নাই। ইয়াৰ বিপৰীতে ৰংদানি, মায়তৰি আৰু কোচা ফৈদৰ ৰাভাসকলে নিজস্ব পৰম্পৰাগত সংস্কৃতি সংৰক্ষণ কৰি আহিছে যদিও আৰ্য্য সংস্কৃতিৰ দ্বাৰাও প্ৰভাৱিত নোহোৱাকৈ থকা নাই। এনে দ্বিভাষিক আৰু দ্বিসাংস্কৃতিক স্থিতিৰ প্ৰেক্ষাপটত গঢ় লৈ উঠা ৰাভা প্ৰবচন সমূহৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হোৱা ৰাভা স্বকীয় পৰম্পৰাগত চিন্তাধাৰা, জীৱন দৰ্শন আৰু সমাজ সংস্কৃতিৰ লগতে প্ৰতিবেশী জনগোষ্ঠী বিশেষকৈ আৰ্য হিন্দু অসমীয়া সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱত গঢ়ি উঠা উমৈহতীয়া চিন্তা প্ৰসূত সাংস্কৃতিক উপাদান ৰাজিৰ বিষয়ে এই অধ্যয়নত আলোচনা কৰা হ'ব। সম্পূৰ্ণ আৰ্য্যীভূত হৈ নিজস্ব ভাষা পাহৰা ফৈদ কেইটাৰ মাজত প্ৰচলিত অসমীয়া নৃগোষ্ঠীয় উপভাষা ৰূপে স্বীকৃত ৰাভা-অসমীয়া (পণ্ডিত সকলে ৰাভামিজ বুলি উল্লেখ কৰা) ভাষাত প্ৰচলিত প্ৰবাদ-প্ৰবচন সমূহতো ৰাভা সকলৰ স্বকীয় পৰম্পৰাগত সাংস্কৃতিক উপাদান সোমাই আছে। গতিকে এই আলোচনা পত্ৰত ৰাভা আৰু ৰাভামিজ উভয় ভাষাৰ প্ৰবাদ-প্ৰবচনত প্ৰতিফলিত হোৱা সাংস্কৃতিক উপাদানৰ বিভিন্ন দিশ বিশ্লেষণাত্মক দৃষ্টিভংগীৰে আলোচনা কৰা হ'ব।

বিষয়বস্তুৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা ঃ

প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ মাজত এটা জাতিৰ ভাষিক গঠনৰ লগতে সমাজ-সংস্কৃতিৰ স্বৰূপ তথা ইতিহাসৰো সন্ধান কৰিব পাৰি। সেয়েহে ভাষিক আৰু সাংস্কৃতিক সমল হিচাপে প্ৰবাদ প্ৰবচনবোৰ সংৰক্ষণ আৰু অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে। যিকোনো ভাষাৰ প্ৰবাদ প্ৰবচনবোৰ সংশ্লিষ্ট ভাষা-ভাষী লোকৰ সংস্কৃতিৰ সৈতে জড়িত। ৰাভা ভাষাৰ প্ৰবাদ সমূহ বিশ্লেষণৰ দ্বাৰা ৰাভাসকলৰ দূৰ অতীতৰ পৰা চলি অহা ৰীতি-নীতি, ধৰ্ম, বিশ্বাস-অন্ধবিশ্বাসৰ লগতে জাতিটোৰ সমাজ সংস্কৃতিলৈ অহা পৰিবৰ্ত্তনৰ আভাস পোৱাৰ লগতে সাংস্কৃতিক পৰিপুষ্টতাৰ জ্ঞান লাভ কৰিব পৰা যাব। বিশ্বায়ন তথা আধুনিকতাৰ প্ৰভাব নাইবা আগ্ৰাসী পশ্চিমা সভ্যতাৰ হেঁচাত বিশ্বৰ অন্যান্য জাতি-জনগোষ্ঠীৰ দৰে ৰাভা সকলৰো সমাজ সংস্কৃতিলৈ পৰিৱৰ্তন আহিছে। মানুহৰ মানসিকতা আৰু ৰুচিবোধৰ ব্যাপক সলনি ঘটিছে। ফলস্বৰূপে ভাষাৰ স্বকীয়তা নিৰূপণকাৰী প্ৰবাদ-প্ৰবচন আদিৰ প্ৰয়োগ কমি আহিছে। ৰাভাসকলৰ ভাষিক বৈশিষ্ট্যৰ লগতে সামাজিক-সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্য অটুট ৰখাৰ বাবে প্ৰবাদ প্ৰবচনৰ দৰে মূল্যবান সাংস্কৃতিক সম্পদৰাজি সংৰক্ষণ আৰু বিশ্লেষণৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

নিজস্ব ঐতিহ্য, কলা-সংস্কৃতিৰে পৰিপুষ্ট এটি

জনগোষ্ঠী হৈছে ৰাভা সকল। ৰাভা লোকসাহিত্যৰ অন্যতম শ্ৰেণী ৰাভা প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ সংক্ষিপ্ত অৱয়বৰ মাজত ৰাভা সকলৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক সমল সোমাই আছে। এই গুৰুত্বপূৰ্ণ সাংস্কৃতিক সমলৰাজিৰ বেচিভাগবে সংৰক্ষণ আৰু বিশ্লেষণ হোৱা নাই বুলি ক'ব পাৰি। ৰাভা ভাষাৰ প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ বিস্তৃত আলোচনা হোৱাও চকুত পৰা নাই। আমাৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য হৈছে ৰাভা ভাষাৰ প্ৰকাশিত আৰু অপ্ৰকাশিত উভয় দিশৰ পৰা প্ৰবচন সমূহ উলিয়াই আনি সাংস্কৃতিক দিশৰ পৰা অধ্যয়ন কৰা। ৰাভা প্ৰবচনত নিহিত হৈ থকা তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত সাংস্কৃতিক সমলৰাজি এই অধ্যয়নৰ জড়িয়তে উদ্ধাৰ কৰি বিদ্বত সমাজ তথা বিশ্ব দৰবাৰত প্ৰতিষ্ঠা কৰাটোও এই গৱেষণা পত্ৰৰ এটা উদ্দেশ্য। প্ৰবচনত প্ৰতিফলিত হোৱা ৰাভাসকলৰ স্বকীয় সমাজ-সংস্কৃতিৰ বিভিন্ন দিশ অনুসন্ধান কৰাৰ লগতে প্ৰতিবেশী আৰ্য হিন্দু অসমীয়া সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱত তেওঁলোকৰ সংস্কৃতিলৈ অহা পৰিৱৰ্তন সমূহ আলোচনা কৰাত এই গৱেষণাৰ এটা মূল উদ্দেশ্য।

তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

নিৰ্বাচিত বিষয়টো আলোচনাৰ বাবে মুখ্য উৎসৰূপে বিশিষ্ট ৰাভা লেখক মনি ৰাভাৰ 'ৰাভা ভাষাৰ ফকৰা যোজনা আৰু জতুৱা ঠাঁচ (ছুলুক আৰো কাথা ঠেৰক)গ্ৰন্থৰ লগতে এই বিষয়ৰ সৈতে সম্পৰ্ক থকা বিভিন্ন গ্ৰন্থ, স্মৃতিগ্ৰন্থ, পত্ৰিকা আদিত সন্নিবিষ্ট লেখাৰ সহায় লোৱা হৈছে। তদুপৰি ৰাভা লোকসকল থুপীকৃত হৈ থকা ৰাভা হাছং স্বায়ত্ত শাসিত পৰিষদৰ অঞ্চল হিচাপে কামৰূপৰ নামনি অংশৰ লগতে মেঘালয়ৰ পূব আৰু পশ্চিম গাৰোপাহাৰ সীমামূৰীয়া অঞ্চলত ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ দ্বাৰাও প্ৰত্যক্ষভাৱে প্ৰয়োজনীয় সমল সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। আনহাতে কেতিয়াবা পৰোক্ষ ভাবে আনৰ দ্বাৰা বা দূ�ৰভাষিক বাৰ্তালাপৰ যোগেৰেও সমল সংগ্ৰহ কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টি অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

মূল আলোচনা ঃ

সমাজ আৰু সংস্কৃতিৰ এক অংগাংগী সম্বন্ধ আছে। সংস্কৃতিয়ে সমাজ এখনৰ পৰিচয় দাঙি ধৰে। আনহাতে সমাজ অবিহনে সংস্কৃতিৰ জন্ম হ'ব নোৱাৰে। মানুহ সমাজ গঠনৰ মূল উপাদান। বিভিন্ন শ্ৰেণীৰ, বিভিন্ন আচৰণ আৰু বিভিন্ন কৰ্মত লিপ্ত মানুহৰ সমন্বয়ত এখন সমাজ গঢ়ি উঠে। এই সমাজৰ লোকসকলৰ পাৰস্পৰিক সম্পৰ্ক, আচাৰ-আচৰণ, ভাব-চিন্তা, দৈনন্দিন ব্যৱহাৰিক জীৱনৰ প্ৰয়োজনীয় সামগ্ৰী, খাদ্যাভ্যাস, নৃত্য-গীত আদি সামগ্ৰিক জীৱন নিৰ্বাহৰ পদ্ধতিয়েই হ'ল সংস্কৃতি। লোকসংস্কৃতি সংস্কৃতিৰেই এটা বিশেষ অংগ। এটা জাতিৰ পৰম্পৰাগত ভাৱে চলি অহা সামাজিক ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, লোক বিশ্বাস, ধৰ্ম, পূজা-পাতল, সাধুকথা, প্ৰবাদ-প্ৰবচন, লোকগীত, লোকনৃত্য, লোককলা আদিয়েই হ'ল লোক সংস্কৃতি। লোকসংস্কৃতিৰ আলোচক, গৱেষক সকলে লোকগীত, সাধুকথা, প্ৰবাদ-প্ৰবচন আদিক লোকসংস্কৃতিৰ অন্যতম শ্ৰেণী লোকসাহিত্য বা মৌখিক সাহিত্যৰ অন্তৰ্ভুক্ত উপাদান বুলি শ্ৰেণীবিভাজন কৰিছে। লিখিত সাহিত্যৰ দৰে লোক বা মৌখিক সাহিত্যৰ মাজেৰেও এখন সমাজ আৰু সেই সমাজৰ সংস্কৃতি সমূহো প্ৰতিফলিত হয়। কাৰণ 'লোকসাহিত্য' একেটা গোষ্ঠীৰ পৰম্পৰাগত সাংস্কৃতিক উপাদান বিশেষেই নহয় গোষ্ঠীটোৰ সাংস্কৃতিক দাপোন স্বৰূপো।'[১] প্ৰবাদ-প্ৰবচন লোক সাহিত্যৰ প্ৰধান অংগ। ই লোকসমাজৰ ব্যৱহাৰিক জীৱনৰ অভিজ্ঞতাৰ পটভূমিত লাভ কৰা জ্ঞানৰ সংক্ষিপ্ততম বাচিক উক্তি। ই এটা জাতিৰ ভাষাৰ স্বকীয়তা নিৰূপণ কৰে। প্ৰবচনৰ মাজেৰে এটা জাতিৰ সামাজিক সাংস্কৃতিক ইতিহাস আৰু সমাজ-সংস্কৃতিৰ স্বৰূপো সন্ধান কৰিব পাৰি। সেয়েহে ভাষিক আৰু সাংস্কৃতিক সমল হিচাপে প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ বিশ্লেষণ যথেষ্ট গুৰুত্বপূৰ্ণ। বৰ্তমান বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱত আৰু আগ্ৰাসী পশ্চিমীয়া সভ্যতাৰ হেঁচাত সৰু সৰু ভাষা, সংস্কৃতি সমূহ ক্ৰমে বিলুপ্ত হ'বলৈ ধৰিছে। গতিকে বিশ্বৰ সাংস্কৃতিক বৈচিত্ৰ অটুট ৰখাৰ বাবে প্ৰবাদ প্ৰবচন আদিৰ দৰে জাতীয় অমূল্য সম্পদ সংগ্ৰহ আৰু বিশ্লেষণৰ দ্বাৰা সংৰক্ষণ কৰি ইয়াৰ উপযোগিতা বৃদ্ধি কৰাটো অত্যন্ত জৰুৰী হৈ পৰিছে। তদুপৰি একোটা জাতিৰ সাংস্কৃতিক পৰিপুষ্টতাৰ জ্ঞান লাভৰ বাবেও প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ বিশ্লেষণ কৰাটো প্ৰয়োজনীয়।

পৃথিৱীৰ প্ৰত্যেক জাতি-জনজাতিৰ মাজত প্ৰবচনৰ প্ৰচলন আছে। ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চল অসমত বিভিন্ন জাতি (বৰ্ণ হিন্দু, অনুসূচীত জাতি আৰু অন্যান্য পিছপৰা শ্ৰেণী) আৰু জনজাতি (পাহাৰ-ভৈয়াম)ৰ সমাৱেশত গঢ়

লৈ উঠা অধিবাসী সকলে তাহানিৰ পৰাই সমিল-মিলেৰে বসবাস কৰি আছে। অসমৰ ভৈয়াম আৰু পাহাৰীয়া উভয় অঞ্চলৰ জনজাতীয় সমাজৰ লোকসাহিত্যৰ এটি প্ৰাচীন চহকী পৰম্পৰা আছে। অসমত বসবাস কৰা ভৈয়ামৰ অন্যান্য জনজাতীয় ভাষিক গোষ্ঠীৰ ভিতৰত ৰাভা সকল অন্যতম। ৰাভা সকল নৃতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা মংগোলীয় আৰু ভাষাতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা তিব্বতবর্মীয় পৰিয়ালৰ অন্তর্গত বড়োমূলীয়া বুলি পণ্ডিত সকলৰ দ্বাৰা স্বীকৃত। ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ দক্ষিণপাৰে মেঘালয়ৰ উত্তৰাঞ্চলৰ ঘাইকৈ ৰাভা হাছং স্বায়ত্ত শাসিত পৰিষদ অঞ্চল হিচাপে কামৰূপৰ নামনি অংশত ৰাভাভাষী লোকসকল থুপীকৃত হৈ বসবাস কৰি আছে। মেঘালয়ৰ পূব আৰু পশ্চিম গাৰোপাহাৰ জিলা, পশ্চিমবংগৰ জলপাইগুৰি, কোচ বিহাৰ, অসমৰ কোকৰাঝাৰ, চিৰাং, ধুবুৰী জিলাতো ৰাভাভাষী লোকৰ বসতি আছে।

অন্যান্য তিব্বতবর্মীয় ভাষা-ভাষীৰ দৰে ৰাভাসকলৰো লিখিত সাহিত্যৰ প্ৰাচীন পৰম্পৰা নাই যদিও মৌখিক সাহিত্যত যথেষ্ট চহকী। এইক্ষেত্ৰত ৰাভা ভাষাৰ প্ৰবচনবোৰ উল্লেখযোগ্য। ৰাভা লোক সমাজৰ চিন্তা-চর্চা, ধ্যান-ধাৰণা, ব্যৱহাৰিক অভিজ্ঞতা তথা জ্ঞানৰ আধাৰতে ৰাভা প্ৰবচন সমূহ গঢ় লৈ উঠিছে। উপস্থাপনৰ প্ৰকৃতি অনুসৰি ৰাভা প্ৰবচনসমূহক ভিন্ ভিন্ অভিধাৰে বুজোৱা হয়। ৰাভা ভাষাত অসমীয়া প্ৰবাদ-প্ৰবচনৰ অনুৰূপে 'কাথা থেৰং', পটন্তৰৰ অনুৰূপে 'ই'নছানি/নুকছানি' আৰু ফকৰা-যোজনাৰ অনুৰূপে 'কাথা জোজোমায়কায়' বা 'ছুলুক' শব্দ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। ৰাভা প্ৰবচন সমূহৰ মাজেৰে ৰাভাসকলৰ স্বকীয় জীৱন দর্শন আৰু সমাজ সংস্কৃতিৰ পৰিচয় পোৱা যায়। অৱশ্যে প্ৰতিবেশী অন্যান্য জনগোষ্ঠী বিশেষকৈ আর্য্যভাষী অসমীয়াসকলৰ লগত বহু কালযুৰি সহাৱস্থান কৰি অহা বাবে ৰাভাসকলৰ সমাজ-সংস্কৃতি বহু পৰিমানে আর্যীকৃত হৈ পৰিছে। সেয়েহে আর্য হিন্দু সমাজৰ ধ্যান-ধাৰণা, ৰীতি-নীতিৰে গঢ় লৈ উঠা অসমৰ উমৈহতীয়া সামাজিক-সাংস্কৃতিক উপাদান কিছুমানো ৰাভা প্ৰবচনৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে। জাতীয় সংহতি আৰু ঐক্য সাধন তথা বৃহত্তৰ অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিৰ পূর্ণাংগ ৰূপৰ পৰিচয় লাভ কৰিবৰ বাবে ৰাভা প্ৰবচনত প্ৰতিফলিত হোৱা সমাজ-সংস্কৃতিৰ সামগ্ৰিক পর্যালোচনাৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

বিভিন্ন ফৈদ বা উপ গোষ্ঠীত বিভক্ত ৰাভাসকলৰ ভিতৰত ৰংদানি, মায়তৰি আৰু কোচা ফৈদৰ মাজতহে ৰাভা ভাষা-সংস্কৃতি সংৰক্ষিত হৈ আছে। বাকী পাতি, দাহৰি, টোট্‌লা, বিটলীয়া, হানা আদি ফৈদৰ মাজত আংশিক ৰূপতহে দেখিবলৈ পোৱা যায়।[২] জনবসতি আৰু বাসস্থান অনুসৰি বর্ণ হিন্দু অসমীয়াৰ লগত অতি ওচৰৰ পৰাই সংস্পর্শ ঘটা বাবে পাতি, দাহৰি, টোট্‌লা, বিটলীয়া, হানা আদি উপগোষ্ঠী কেইটা আর্য সংস্কৃতিৰ দ্বাৰা অধিকভাৱে প্ৰভাৱিত হৈছে। আর্যীভূত এই গোষ্ঠী কেইটা ভাষান্তৰিত আৰু ধর্মান্তৰিত হৈ সম্পূর্ণ ৰূপে আর্য সংস্কৃতিৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছে যদিও পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, খাদ্যাভ্যাস আদি সম্পূর্ণৰূপে পৰিত্যাগ কৰিব পৰা নাই। ইয়াৰ বিপৰীতে ৰংদানি, মায়তৰি আৰু কোচা ফৈদৰ ৰাভা সকলে পৰম্পৰাগত সংস্কৃতি সংৰক্ষণ কৰি আহিছে যদিও আর্য সংস্কৃতিৰ দ্বাৰাও প্ৰভাৱিত নোহোৱাকৈ থকা নাই। এই প্ৰসংগত ৰাজেন ৰাভাৰ উক্তি প্ৰণিধানযোগ্য 'It is evident that the non-sanskritised, Rabha people of all groups also have already been influenced by the neighbouring Hindus and as such they are trying to modify their age-old customary law in the Hinduization process and the Hindu-social elements have also penetrated their customs'.[৩]

উল্লিখিত সামাজিক-সাংস্কৃতিক স্থিতিৰ প্ৰেক্ষাপটত ৰাভা প্ৰবচনত প্ৰতিফলিত হোৱা স্বকীয় জনজাতীয় প্ৰাচীন পৰম্পৰাগত সামাজিক-সাংস্কৃতিক উপাদানৰ লগতে আর্য হিন্দু সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱত গঢ়ি উঠা উমৈহতীয়া সাংস্কৃতিক উপাদানৰ বিষয়ে আলোকপাত কৰিবৰ বাবে প্ৰযত্ন কৰা হৈছে।

মংগোলীয় গোষ্ঠীৰ সমাজ ব্যৱস্থাৰ অন্যতম গোত্ৰ প্ৰথাৰ প্ৰচলন ৰাভা সমাজতো আছে। ৰাভাসকলৰ মাজত থকা 'বাৰায়' অর্থাৎ গোত্ৰ সমূহ মাতৃসূত্ৰীয় (Matrilineal)। ৰাভা সমাজত ল'ৰা-ছোৱালীয়ে মাকৰ গোত্ৰহে ধাৰণ কৰে পিতৃগোত্ৰ গ্ৰহণযোগ্য নহয়।[৪] 'বাৰায়'ৰ উল্লেখ থকা প্ৰবচনে ৰাভা সকলৰ মাজত থকা বংশ প্ৰীতিৰ পৰিচয়ো দাঙি ধৰে। সাধাৰণতে একে গোত্ৰৰ হ'লে অচিনাকীজনকো তেজ-মঙহৰ আত্মীয় জ্ঞান কৰি সামাজিক ঐক্যৰ বান্ধোন কটকটীয়া কৰি তোলা ৰাভালোকমানসিকতাৰ স্পষ্ট ছবি প্ৰতিফলিত হোৱা এটি

ৰাভা প্ৰবচন হ'ল—

তো পাকা দালায়, কায় চিজামা বাৰায়।

আক্ষৰিক অনুবাদ ঃ চৰায়ে ডালত পৰে, মানুহে বাৰায় অৰ্থাৎ গোত্ৰ বিচাৰি ফুৰে

সমাৰ্থক অসমীয়া ঃ কুল ল কুল ল নদীৰ কুল ল সঙ্গ ল সঙ্গ জ্ঞাতিৰ সঙ্গ ল।

ৰাভা সমাজত যে গোত্ৰ পৰিচয় প্ৰধান উক্ত প্ৰবচনটিৰ জৰিয়তে জানিব পাৰি।

ৰাভাসকলৰ কোনো কোনো ফৈদ বা অঞ্চল অনুসৰি জাতকৰ ক্ষেত্ৰত অশৌচ বিধি প্ৰসূতীৰ লগতে পৰিয়াল তথা গোটেই গাঁৱতে বিয়পি পৰে আৰু সেই সময়ত গাঁওখনত পূজা-পাতল কৰা নিষেধ। আৰ্য বহিৰ্ভূত এই লোকাচাৰটি প্ৰতিফলিত হোৱা এটি ৰাভা প্ৰবচন হ'ল— 'বায়না ৰেথে তুমুন কায়-চুৰা বুজো' (আক্ষৰিক অৰ্থ ঃ দেওঁ পূজিবলৈ পকোৱা কলত অশৌচ লগা। সমাৰ্থক অসমীয়া ঃ মহাভাৰত অশুদ্ধ হোৱা)। কোনো কামত ডাঙৰ ভুল হোৱা পৰিস্থিতি প্ৰকাশ কৰিবলৈ এই প্ৰবচনটি প্ৰয়োগ কৰা হয়। ৰাভা সমাজত সাধাৰণতে কালী পূজাৰ সময়ত বজাৰৰ কলৰ পৰিৱৰ্তে এসপ্তাহমান আগৰে পৰা কেঁচা কল কাটি দেউৰীৰ ঘৰত পকিবলৈ দিয়া হয়। কিন্তু কোনো ঘৰত সন্তান জন্মিলে পৰিয়ালৰ লগতে গাঁৱতো অশৌচ লগা ৰীতিৰ বাবে সেই কলত চুৰা (অশুচি) লগা বুলি ব্যৱহাৰ কৰা নহয়। এনেদৰে গাঁৱ এখনক চুৰা যুক্ত কৰি ৰখা ব্যৱস্থাক ৰাভা সমাজত 'ছোং খি' থাৰ কায় (গেনা লগা) বোলা হয়।[৫]

বিবাহ, মৃতকৰ সৎকাৰ আদিত মদ আৰু কুকুৰাৰ আৱশ্যকীয়তা জনজাতীয় সমাজৰ বৈশিষ্ট্য। পৰম্পৰাগত ৰাভা বিবাহ প্ৰথামতে দৰা-কইনাৰ মঙ্গলৰ বাবে ৰিষি (ৰাভা সকলৰ প্ৰধান দেৱতা) দেৱতাৰ নামত এযোৰ কুকুৰা বলি দিয়া হয়।[৬] এনে লোকাচাৰ প্ৰতিফলিত হোৱা এটি ৰাভা প্ৰবচন হ'ল—

কেলক ইনা ই'নচানি হাল ময় থা থা

আক্ষৰিক অনুবাদ ঃ কুকুৰা কাটি বিয়া পাতিবলৈ নৌপাওঁতেই স্বামী-স্ত্ৰীৰ দৰে পূৰ্ণ সহবাহত অভ্যস্থ। এই লোকাচাৰৰ লগত জড়িত ৰাভাসকলৰ এটি লোক বিশ্বাস হ'ল— কুকুৰাহাল লগ লাগি মৰিলে দম্পতী হালৰো সমকালীনভাৱে মৃত্যু হয় আৰু আঁতৰা আঁতৰি হৈ আগে পিছে মৰিলে তেওঁলোকৰ মনোমালিন্য হয় বা কোনোবা এজনৰ অকাল বিয়োগ হয়।

'Cross cousin marriage' অৰ্থাৎ মোমায়েকৰ জীয়েকক বিয়াৰ কইনা ৰূপে প্ৰাধান্য দিয়া উমৈহতীয়া জনজাতীয় ৰীতিটো ৰাভা সমাজতো দেখা যায়। বিশেষকৈ অসংস্কৃতভূত উপগোষ্ঠী (Non-Sanskritized) ৰ ৰাভা সমাজত বিয়াৰ ক্ষেত্ৰত মোমায়েকৰ জীয়েককহে প্ৰাধান্য দিয়া পৰিলক্ষিত হয়। মাটিমাহ, পিঠাগুৰি আৰু খাৰেৰে ৰন্ধা পৰম্পৰাগত অতি উপাদেয় খাদ্য 'কালাই শাক'ৰ দৰে ৰাভা সমাজত মোমায়েকৰ জীয়েক জনীকহে উপযুক্ত কইনা বুলি বিবেচনা কৰা হৈছিল। ৰাভা সমাজৰ এই ৰীতিটো 'মামাৰ বেটী কালাই শাক' নামৰ জনপ্ৰিয় প্ৰবচনটিত প্ৰতিফলিত হৈছে। তদ্ৰূপ হাজাৰ চেষ্টা কৰিও উত্তম বস্তু লাভ কৰিব নোৱাৰা অৱস্থাৰ কথা বুজাবৰ বাবে প্ৰয়োগ হোৱা 'প্ৰু'ণ হালছা ছাকছা, মামা-মানিনি ছাৱা মানচা' (আক্ষৰিক অনুবাদ ঃ ছাগলী বলি দি পূজা কৰিও মোমায়েকৰ পুতেক বা জীয়েকৰ লগত বিয়া পতাৰ সুযোগ নোপোৱা) প্ৰবচনটিৰ দ্বাৰা ৰাভা সামাজিক বিধি মতে মোমায়েকৰ ছোৱালীক বিয়া কৰাব পৰাটো যে সৌভাগ্যৰ কথা সেই বিষয়ে জানিব পাৰি। এই ধৰণৰ প্ৰবচনবোৰ মাতৃতান্ত্ৰিক সমাজ ব্যৱস্থাৰ নিদৰ্শন স্বৰূপ। জনজাতীয় মাতৃ প্ৰধান সমাজত নাৰীৰ স্থান উচ্চ যদিও ৰাভা প্ৰবচনত প্ৰতিফলিত হোৱা ৰাভা নাৰীৰ স্থান সমাজত সিমান উচ্চ নহয়। বোৱা-কটা, মাছমৰা, ভূঁই বোৱা আদি কৃষি কাৰ্যত অংশগ্ৰহণেৰে নাৰীৰ সীমিত স্বাধীনতা পৰিলক্ষিত হয় যদিও পৰৱৰ্তীসময়ত ৰচিত বহুতো প্ৰবচনৰ দ্বাৰা ৰাভা নাৰীৰ অৱদমিত সামাজিক স্থিতিৰ বিষয়ে জানিব পাৰি। সময়ৰ লগে লগে পিতৃ প্ৰধান সমাজ ব্যৱস্থাই ছানি ধৰাত সাতামপুৰুষীয়া ৰাভা নাৰীৰ স্বাধীনতা কিছু পৰিমাণে খৰ্ব হ'বলৈ ধৰে। তেনে সময়ত জোৰ পূৰ্বক বিবাহ প্ৰথাও সমাজত বলবৎ হয় আৰু নাৰীৰ প্ৰতি সমাজৰ মানসিকতাৰ সলনি হ'বলৈ ধৰে। প্ৰবচনৰ মাজেৰে ৰাভা নাৰীৰ সামাজিক স্থান পৰিৱৰ্তনৰ আভাস পাব পাৰি। যেনে—

নামে (চাংবাবে) মেবাও।

ওৰংছে (চাংবাবে) কাংকা।।

আক্ষৰিক অনুবাদ ঃ তুমি কোমোৰা, সিহঁত দা।

সমাৰ্থক অসমীয়া ঃ লাউ যিমানেই ডাঙৰ নহওঁক পাতৰ তল। উক্ত প্ৰবচনটি তেল সেন্দুৰ পিন্ধাই 'বুৰি

বিক্যায়' বিয়াৰ প্ৰসংগত কইনাৰ মতামত নোলোৱাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত কোৱা হয়।[৭] এই প্ৰকাৰ বিবাহত ছোৱালীৰ সন্মতি নাথাকিলেও ধৰি বান্ধি নি বিয়া কৰোৱা হয়। বিবাহৰ ক্ষেত্ৰত জনজাতীয় গাভৰুৰে জীৱনসংগী বাচি লোৱাৰ আপেক্ষিক স্বাধীনতাৰ বিপৰীতে বলপূৰ্বক বিবাহৰ দ্বাৰা ৰাভা নাৰীৰ স্বাধীনতা খৰ্ব হোৱাটোকে জানিব পাৰি।

ৰাভাসকলৰ খাদ্যাভ্যাসৰ বিষয়েও প্ৰবচন বিলাকৰ জৰিয়তে জানিব পৰা যায়। ৰাভা সকলে বিভিন্ন সঁজুলি আৰু পদ্ধতিৰে উভৈনদী হৈ পৰা মাছ এক বিশেষ পদ্ধতিৰে শুকুৰাই নাটনিৰ সময়ত খাবলৈ সাঁচি থোৱা এক স্বকীয় পৰম্পৰাগত উপাদেয় খাদ্য হ'ল 'নাখেম' বা 'সিন্দল'। একেধৰণৰ বা একে গঢ়ৰ বুজাবৰ বাবে 'বাৰে গছাইনি নাখেম' (একেটা ভেটাৰ শুকতি মাছ) আৰু থুলন্তৰ অথচ বুদ্ধিহীন মানুহৰ ৰিজনি স্বৰূপে প্ৰয়োগ কৰা 'বাকক চুঙা নাখেম তংচা/কায় চুঙা তি'কাম তংচা' (আক্ষৰিক অনুবাদ ঃ চুঙা ডাঙৰ নাখেম নাই, মানুহ ডাঙৰ মূৰ (বুদ্ধি) নাই।) —এই প্ৰবচন দুটিয়ে ৰাভা সমাজৰ উপাদেয় খাদ্য হিচাপে শুকান মাছৰ পৰিচয় দিয়ে। বৰ্ণহিন্দু সমাজত অভক্ষ্য মদ, শামুক, গুই, কেটলা পহু আদি পৰম্পৰাগত খাদ্যৰ চিত্ৰও ৰাভা প্ৰবচনত সুন্দৰভাৱে প্ৰতিফলিত হৈছে। মদে তাৎক্ষনিকভাৱে মানুহক চালাক চতুৰ কৰে বুলি ভৰা ৰাভা সমাজৰ বিশ্বাসৰ আধাৰত সৃষ্ট 'মায় ছায় ভোত্তা, চকো ৰু'ঙে চোত্তা' (ভাত খায় ভোদা, মদ খাই চালাক) প্ৰবচনটিয়ে ৰাভা সমাজত পৰম্পৰাগত খাদ্য হিচাপে মদৰ প্ৰচলনৰেই ইংগিত দিয়ে।

ধৰ্ম সমাজ-সংস্কৃতিৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ। ৰাভাসকলৰ ৰংদানি, মায়তৰি, কোচা উপগোষ্ঠীসমূহে প্ৰাচীন স্বকীয় পৰম্পৰাগত ধৰ্ম বিশ্বাসৰ দ্বাৰা পৰিচালিত। ইয়াৰ বিপৰীতে পাতি, দাহৰি, টোটলা, হানা আদি উপগোষ্ঠী সম্পূৰ্ণ হিন্দু ৰীতি-নীতিৰে পৰিচালিত হৈছে। ৰাভাসকল দেৱ-দেৱী আৰু পূজা-পাতলত বিশ্বাসী। তেওঁলোকৰ পূজিতা দেৱ-দেৱীক ৰাভাবায় আৰু লেমাবায় দুই ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি। কুকুৰা, গাহৰি, ফোক চাক (চুঙা পিঠা), পিঠাগুৰি, মদ আদি দেশীয় খাদ্যৰে স্বকীয় ৰীতিৰে পূজিত দেৱ-দেৱীয়েই হ'ল ৰাভাবায়। আনহাতে মদ, গাহৰি, কুকুৰা আদি দেশীয় খাদ্যৰ বিপৰীতে হিন্দু ৰীতি-নীতিৰে পূজা-উপাসনা কৰা দেৱ-দেৱীয়েই হ'ল লেমাবায় (আৰ্য দেৱতা) পৰম্পৰাগত খাদ্য 'মদ' উছৰ্গা কৰি দেৱ-দেৱীৰ প্ৰতীক হিচাপে শিল (ৰোংজুমুক/ৰুঞ্জুমুক)ৰ টুকুৰাক থানত প্ৰতিষ্ঠা কৰা ৰাভা সকলৰ পৰম্পৰাগত পূজা পদ্ধতিৰ পৰিচয় পোৱা ৰাভা প্ৰবচন এটি হ'ল—

ৰুঞ্জুমুকনি আল্ আল্ খংখাজি খোংবা চকো ত্ৰিকায় মাছাতা। আক্ষৰিক অনুবাদ ঃ ৰুঞ্জুমুক শিলত মদ ঢালিলে ওচৰত থকা কেঁচুমতায়ো তাৰ ভাগ পায়। (অৰ্থ ঃ সৎ সংগৰ লগত অসৎৰ মুক্তি) সমাৰ্থক অসমীয়া ঃ তুলসীৰ লগত কলপটুৰাৰ মুক্তি। ৰাভা প্ৰবচনত ৰাভা সমাজত প্ৰচলিত ডাইনী প্ৰথাৰ দৰে অন্ধবিশ্বাসো প্ৰতিফলিত হৈছে। ৰাভাসকলে সৃষ্টিকৰ্তাৰ অংশ বিশেষ বুলি ভাবি ডাইনীকো দেৱ-দেৱীৰ সমপৰ্যায়ত স্থান দি ইহঁতৰ কোপ দৃষ্টিৰ পৰা হাত সাৰিবলৈ পূজা-পাতল আৰু বলি আগবঢ়ায়।[৮] বিনা দোষত শাস্তি পাবলগীয়া অৱস্থা বুজাবলৈ প্ৰয়োগ হোৱা ৰাভা প্ৰবচন এটিয়ে গাহৰি বলি দি ডাইনীক পূজা কৰা পৰম্পৰাগত ৰীতিৰ পৰিচয় বহন কৰে। উদাহৰণ—

তিকৰাণি বাক্ খাছি।

আক্ষৰিক অনুবাদ ঃ ডাইনীৰ খাহি গাহৰি

সমাৰ্থক অসমীয়া ঃ অষ্টমীৰ ছাগ।

ৰাভা প্ৰবচনত জড়োপাসনা, জাতীয় ৰীতি-নীতিৰে পৰম্পৰাগত দেৱ-দেৱীক পূজা কৰা আদি স্বকীয় বৈশিষ্ট্যৰ উপৰিও হিন্দুসকলৰ প্ৰভাৱত গঢ় লৈ উঠা ধৰ্মীয় বিধানৰ ৰূপো প্ৰতিফলিত হৈছে। উদাহৰণ স্বৰূপে পাত্ৰ এৰি অপাত্ৰত ভৰসা কৰি কৰা কাম যে তেনেই নিৰৰ্থক তাকেই বুজাবৰ বাবে প্ৰয়োগ হোৱা 'উৰ্গিনা লাগিয়া তুলসী ফাঙি/উৰ্গিয়া যাদা চিৰি ফাঙি' [(অৰ্থাৎ পূজিব লাগে তুলসীৰ ডালত পূজিছে যাদা চিৰি (সিজু জাতীয় গছ) ডালত)] প্ৰবচনটিৰ জৰিয়তে হিন্দু ধৰ্মীয় ধ্যান-ধাৰণা প্ৰতিফলিত হৈছে। তদুপৰি নিজৰ দোষ আনৰ ওপৰত জাপি দিব বিচৰা মানসিকতা প্ৰকাশক 'কাকায়না দোষা চিয়া যম ৰাজানো দোষ তিকিয়া' আৰু নিজে নিজৰ বিপদ চপাই লোৱাৰ প্ৰসংগত প্ৰয়োগ হোৱা 'যম নুকচায় দাংগায় নামকায়' (সমাৰ্থক অসমীয়া ঃ খুজি কিল খোৱা) আদি প্ৰবচনত আৰ্য হিন্দু দেৱতা 'যম'ৰ উল্লেখে আৰ্য সংস্কৃতিৰ সৈতে ৰাভা সকলৰ সমন্বয়ৰ দিশটো স্পষ্ট হৈ পৰিছে।

সামৰণি ঃ

প্ৰবচনত প্ৰতিফলিত হোৱা ৰাভা সকলৰ সামাজিক সাংস্কৃতিক উপাদানৰ বিশ্লেষণৰ দ্বাৰা ক'ব পাৰি যে ৰাভা স্বকীয় সমাজ-সংস্কৃতিৰে ঐতিহ্যময় এটি জনগোষ্ঠী। অতি প্ৰাচীন কালৰে পৰা প্ৰতিবেশী জনগোষ্ঠী বিশেষকৈ আৰ্যমূলীয় অসমীয়া ভাষা গোষ্ঠীৰ সৈতে সহাৱস্থান কৰি অহা বাবে তেওঁলোকৰ সংস্কৃতিত আৰ্য সংস্কৃতিৰ প্ৰভাৱো সুস্পষ্ট। এইদৰে ৰাভা সমাজ সংস্কৃতিত জাতীয় সংস্কৃতি আৰু আৰ্য সংস্কৃতিৰ এটি সংমিশ্ৰিত ৰূপ দৃষ্টিগোচৰ হয়। ❑

পাদটীকা ঃ

১. দত্ত বীৰেন্দ্ৰ নাথ, 'লোক সংস্কৃতিৰ অধ্যয়নত লোকসাহিত্যৰ গুৰুত্ব ঃ অসমৰ ভৈয়ামৰ জনজাতীয় গীত পদৰ আধাৰত', অসমীয়া লোকসাহিত্য (সম্পা.) প্ৰহ্লাদ কুমাৰ বৰুৱা, ২০০১, পৃ. ১০
২. ৰাভা হাকাচাম, উপেন ঃ ৰাভা লোকসাহিত্য ঃ ঐতিহ্য পৰম্পৰা আৰু প্ৰণালীবদ্ধ কৰণ, ২০১১, পৃ. ১
৩. Rabha, Rajen : The Rabhas, 2002, P. 20
৪. ৰাভা, ৰাজেন ঃ ৰাভা জনজাতি, ২০০৮, পৃ. ৭৯
৫. ৰাভা হাকাচাম, উপেন ঃ ৰাভা লোকসংস্কৃতি, ২০০৬, পৃ. ১৫
৬. ৰাভা, মনি, ঃ 'অসমীয়া সংস্কৃতিলৈ ৰাভা সমাজৰ অৱদান', অসম সাহিত্য সভা পত্ৰিকা (সমন্বয় বিশেষ সংখ্যা), (সম্পা.), উপেন ৰাভা হাকাচাম, ২০১০, পৃ. ১২০
৭. সংবাদ দাতা ঃ ভবেন ৰাভা, বয়স ৮০, নদিয়াপাৰা, গোৱালপাৰা, অসম।
৮. ৰাভা, ৰাজেন ঃ প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ. ৯

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১. ভট্টাচাৰ্য, প্ৰমোদ চন্দ্ৰ (সম্পা.) ঃ অসমৰ জনজাতি, লয়াৰ্ছ বুকষ্টল, তৃতীয় সংস্কৰণ, ১৯৯৭
২. ৰাভা, মণি ঃ ৰাভা ভাষাৰ ফকৰা যোজনা আৰু জতুৰাঠাচ (ছুলুক আৰো কাথা ঠেৰক), বাঠো লাইব্ৰেৰী, মেঘালয়, প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯৪
৩. ৰাভা ৰাজেন ঃ ৰাভা জনজাতি, বীণা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, তৃতীয় সংস্কৰণ, ২০০৮
৪. ৰাভা হাকাচাম, উপেন ঃ ৰাভা লোকসংস্কৃতি, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৬
ৰাভা লোকসাহিত্য ঃ ঐতিহ্য পৰম্পৰা আৰু প্ৰণালীবদ্ধকৰণ, জ্যোতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১২
ৰাভা সমাজ আৰু সংস্কৃতি, এন.এল পাব্লিকেশ্চনছ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১০
৫. ৰাজগুৰু, সৰ্বেশ্বৰ ঃ অসমীয়া প্ৰবাদ, বালগোপাল প্ৰকাশন, নগাঁও, দ্বিতীয় তাঙৰণ, ২০০৩
৬. Rabha, Rajen : The Rabhas, ABILAC, North Guwahati 1st Published 2002

পত্ৰিকা ঃ

১. অসম সাহিত্য সভা পত্ৰিকা (সমন্বয় বিশেষ সংখ্যা), (সম্পা.) উপেন ৰাভা হাকাচাম, চতুঃষষ্ঠিতম বৰ্ষঃ চতুৰ্থ সংখ্যা, মাৰ্চ ২০১০

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

বৈদিক সমাজত নাৰীৰ স্থান

ড° মদন হালৈ

সহকাৰী অধ্যাপক, সংস্কৃত বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-১
৯৮৬৪৮৭৮২৩৮
madanhaloi1@gamil.com

বেদ হ'ল হিন্দু ধর্মৰ মূল ধর্মগ্রন্থ। হিন্দু ধর্ম হ'ল বেদায়ত্ত ধর্ম। এই বেদ হ'ল বিশ্ব সাহিত্যৰ প্রথম গ্রন্থ। আপস্তম্বৰ মতে, মন্ত্র আৰু ব্রাহ্মণ উভয় ভাগকে বেদ বুলি কোৱা হয়- 'মন্ত্রব্রাহ্মণয়োর্বেদনামধেয়ম্'।[১] ব্রোহ্মণ ভাগত আকৌ আৰণ্যক আৰু উপনিষদ নামৰ দুই শ্রেণীৰ সাহিত্য অন্তর্ভূক্ত হৈ আছে। গতিকে বেদ শব্দই প্রধানতঃ মন্ত্র, ব্রাহ্মণ, আৰণ্যক আৰু উপনিষদ এই আটাইবোৰকে বুজায়। মন্ত্র বা সংহিতা হ'ল চাৰিখন আৰু এই সংহিতা চাৰিখন হ'ল ঋক্ সংহিতা, যজুঃ সংহিতা, সাম সংহিতা আৰু অথর্ব সংহিতা। প্রতিখন সংহিতাৰে নিজা নিজা ব্রাহ্মণ, আৰণ্যক আৰু উপনিষদ আছে। এইবোৰৰ উপৰিও বেদাংগ সাহিত্য, প্রাতিশাখ্য সাহিত্য, সূত্রসাহিত্য আদি আন আন বৈদিক গ্রন্থ পোৱা যায়। বৈদিক সাহিত্যই এই গোটেইবোৰ গ্রন্থকে সামৰি লয়।

বৈদিক গ্রন্থবোৰ অধ্যয়ন কৰিলে বৈদিক যুগৰ সমাজ ব্যৱস্থাৰ এক সুন্দৰ আভাষ পোৱা যায়। বৈদিক যুগৰ সমাজ মূলতঃ বর্ণ ধর্ম আৰু আশ্রম ধর্মৰ ওপৰত প্রতিষ্ঠিত আছিল। ব্রাহ্মণ, ক্ষত্রিয়, বৈশ্য আৰু শূদ্র - এই চাৰি বর্ণৰ উল্লেখ সর্বপ্রথম ঋগ্বেদতে পোৱা যায়।চবৈদিক সমাজত স্ত্রী-পুৰুষ নির্বেশেষে সকলোৱে বর্ণাশ্রম ধর্মৰ নীতি-নিয়মৰ মাজেৰে নিজৰ লক্ষ্যৰ প্রতি অগ্রসৰ হ'ব লাগিছিল। যৌথ পৰিয়াল ব্যৱস্থা বৈদিক সমাজৰ এক বিশেষত্ব আছিল। এই পৰিয়াল ব্যৱস্থাত স্ত্রী বা গৃহিণীয়ে এক বিশেষ ভূমিকা পালন কৰিছিল। বৈদিক সমাজ পুৰুষপ্রধান হ'লেও সমাজত নাৰীৰ স্থানো অতি উচ্চ আছিল। নাৰীক অতি সন্মানৰ দৃষ্টিৰে চোৱা হৈছিল। বৈদিক সমাজত নাৰীৰ কি স্থান আছিল তাক নিম্নোক্ত বিন্দুসমূহৰ মাধ্যমেৰে উপস্থাপন কৰা হ'ল-

ক) শিক্ষা ঃ পিতৃপ্রধান বৈদিক সমাজত মানুহে পুত্র সন্তান প্রাপ্তিৰ বাবেহে আগ্রহ প্রকাশ কৰিছিল। ইয়াৰ স্পষ্ট উল্লেখ অথর্ববেদত পোৱা যায়-

পুমাংসং পুত্রং জনয় ত্বং পুমাননুজায়তম্।
ভবাসি পুত্রাণাং মাতা জাতানাংজনয়াশ্চযান্।।

অর্থাৎ "তুমি এটি পুত্র সন্তান দিয়া আৰু তাৰ পিছত এজনৰ পিছত আন এজন পুত্র সন্তান তোমাৰ পৰা জন্ম হওক। যিবোৰে জন্ম লৈছে আৰু যিবোৰে তোমাৰ পৰা জন্ম ল'ব সেই সকলোবোৰ পুত্র সন্তানৰ তুমি মাতৃ হোৱা।"

তথাপি জন্ম হোৱা কন্যা সন্তানক তেওঁলোকে অৱহেলাও কৰা নাছিল। পিতৃৰ অধীনত থাকি পুত্র আৰু কন্যা সন্তান ডাঙৰ দীঘল হৈছিল আৰু পিতৃ-মাতৃয়ে সন্তানৰ পুষ্টি বা মংগলৰ বাবে কৰণীয় সকলো কাম কৰি গৈছিল। পুত্র সন্তানৰ লগতে কন্যা সন্তানেও ব্রহ্মাচর্য্যাশ্রমৰ জৰিয়তে শিক্ষা লাভ কৰিছিল। উপনয়ন সংস্কাৰ বৈদিক

কালৰ শিক্ষাৰম্ভৰ প্ৰথম সংস্কাৰ আছিল। এই কাৰ্য্যত যজ্ঞোপৱীত অৰ্থাৎ মেখলা ধাৰণ কৰাটো অনিবাৰ্য্য আছিল। তৈত্তিৰীয় ব্ৰাহ্মণত পোৱা মতে, শিষ্যৰ লগতে শিষ্যাবোৰেও এই মেখলা পৰিধান কৰিছিল- "পত্ন্যৈ ব্ৰতোপনয়নম্" [৪] এইদৰে ব্ৰহ্মাচৰ্য্যাশ্ৰমত শিষ্যসকলে ব্ৰহ্মচৰ্য্য ব্ৰত পালন কৰি ব্ৰহ্মচাৰী হোৱাৰ দৰে শিষ্যাসকলেও ব্ৰহ্মচাৰিণী নামেৰে অভিহিত হৈছিল। এইদৰে গুৰুগৃহত শিক্ষিত হৈ স্নাতক হোৱাৰ পিছত কিছুমান শিষ্যাই বিবাহপাশত আৱদ্ধ হৈ গাৰ্হস্থাশ্ৰমত প্ৰবেশ কৰিছিল। তেনে শিষ্যাসকলক 'সদ্যোদ্বাহা' নামেৰে নামকৰণ কৰা হৈছিল আৰু কিছুমান শিষ্যাই আজীৱন ব্ৰহ্মচাৰিণী হৈ দিন অতিবাহিত কৰিছিল। তেনে জ্ঞানপিপাসু ব্ৰহ্মচাৰিণী সকলক 'ব্ৰহ্মবাদিনী' বুলি অভিহিত কৰা হৈছিল।[৫] এনে বিদুষী নাৰীসমূহৰ বহুতকে বৈদিক সূক্তসমূহৰ দ্ৰষ্ট্ৰী বা ঋষিকাৰূপেও জনা যায়। এই ক্ষেত্ৰত ঋগ্বেদৰ বিশ্ববাৰা (৫.২৮), লোপামুদ্ৰা (১.৭৯), বাগাম্ভৃনী (১০.১২৫) ইত্যাদিৰ নাম উল্লেখ কৰিব পাৰি। গাৰ্গী, মৈত্ৰেয়ী আদিও বৈদিক নাৰীও ব্ৰহ্মবাদিনী নামেৰেই অভিহিত হৈছে। বৃহদ্দেৱতাত এনে ব্ৰহ্মবাদিনী বহুত নাৰীৰ নাম পোৱা যায়।[৬] অথৰ্ববেদত কোৱা হৈছে যে কন্যা সন্তানে ব্ৰহ্মচৰ্য্যাশ্ৰমৰ জৰিয়তে উপযুক্ত শিক্ষা লাভ কৰিলেহে বিবাহৰ সময়ত উপযুক্ত বৰ লাভ কৰিব পাৰে।[৭] সেইকাৰণে অভিভাৱকসকলে কন্যা সন্তানৰ শিক্ষা লাভত অধিক গুৰুত্ব দিছিল।

বিবাহ ঃ ব্ৰহ্মচৰ্য্যাশ্ৰমৰ পিছত ল'ৰাবোৰৰ দৰে ছোৱালীবোৰেও বিবাহৰ জৰিয়তে গাৰ্হস্থ্যাশ্ৰমত প্ৰবেশ কৰাৰ সাধাৰণ নিয়ম আছিল। বৈদিক আৰ্য্যসকলে বিবাহক পবিত্ৰ আৰু প্ৰয়োজনীয় সংস্কাৰ বুলি গণ্য কৰিছিল। পিতৃ-মাতৃৰ সমৰ্থনত বিবাহ অনুষ্ঠিত হ'লেও কন্যাই নিজেও বৰ পছন্দ কৰাৰ অধিকাৰ আছিল। অথৰ্ববেদত স্বয়ম্বৰ বিবাহৰ উল্লেখ পোৱা যায়।[৮] স্বেগ্বেদতো স্বয়ম্বৰ বিবাহৰ কথা উল্লেখ আছে য'ত ৰজা পুৰুমিত্ৰৰ কন্যা কমদ্যুই বিমদ ঋষিক পতি হিচাপে বৰণ কৰিছিল।[৯] ঋগ্বেদৰ ১০.৮৫ নম্বৰ সূক্তত বিবাহ সম্পৰ্কীয় মন্ত্ৰৰ সংকলন পোৱা যায় আৰু এই মন্ত্ৰবোৰ অধ্যয়ন কৰিলে বিবাহ বন্ধনৰ পবিত্ৰতা, গভীৰতা আৰু সমাজত নাৰীৰ উচ্চস্থানৰ কথা বুজিব পাৰি। বিবাহিতা নাৰী পৰিয়ালৰ সকলোৰে ওপৰত সম্ৰাজ্ঞী হোৱাৰ কামনা কৰা হৈছিল। সেয়েহে নববধুক উদ্দেশ্য কৰি এইদৰে মন্ত্ৰপাঠ কৰা হৈছিল -

সম্ৰাজ্ঞী শ্বশুৰে ভব, সম্ৰাজ্ঞী শ্বশ্ৰ্বাংভব।

ননন্দৰি সম্ৰাজ্ঞী ভব, সম্ৰাজ্ঞী অধিদেবৃষু।"[১০]

"অৰ্থাৎ তুমি শহুৰৰ ওপৰত সম্ৰাজ্ঞী অৰ্থাৎ গৃহস্বামিনী হোৱা, শাহুৰ ওপৰত সম্ৰাজ্ঞী হোৱা, ননন্দৰ ওপৰত সম্ৰাজ্ঞী হোৱা আৰু দেৱৰৰ ওপৰত সম্ৰাজ্ঞী হোৱা।" উল্লেখনীয় যে বৈদিক যুগত পুৰুষৰ বাবে বহুবিবাহ প্ৰথা প্ৰচলিত আছিল যদিও নাৰীৰ বাবে একাধিক পতি গ্ৰহণৰ ব্যৱস্থা নাছিল। শতপথ ব্ৰাহ্মণত ৰজাৰ চাৰিগৰাকী ভাৰ্য্যাৰ উল্লেখ পোৱা যায়।[১১] বৃহদাৰণ্যক উপনিষদতো ঋষি যাজ্ঞবল্ক্যৰ দুগৰাকী ভাৰ্য্যা ক্ৰমে কত্যায়নী আৰু মৈত্ৰেয়ীৰ নাম উল্লেখ পোৱা যায়।[১২]

গৃহিনী হিচাপে নাৰী ঃ বৈদিক যুগত নাৰীয়ে গৃহিণী হিচাপে এক বিশেষ মৰ্য্যাদা লাভ কৰিছিল। পুৰুষে পুত্ৰ উৎপাদন কৰি বংশৰক্ষা কৰিবলৈ পত্নী গ্ৰহণ কৰি গাৰ্হস্থ্য জীৱন আৰম্ভ কৰিছিল। পুৰুষৰ সহযোগিনী সহায়কাৰিনী আৰু গৃহৰ মূল বাবে পত্নীকে গৃহ বুলি কোৱা হৈছিল।[১৩] স্বামী গৃহত তেওঁ সকলোৰে ওপৰত সম্ৰাজ্ঞীৰূপে বিৰাজ কৰাটো বিচৰা হৈছিল। শতপথ ব্ৰাহ্মণত পত্নীক অৰ্ধাংগিনী বুলি কোৱা হৈছে।[১৪] শতপথ ব্ৰাহ্মণত গৃহিণীতে গৃহ প্ৰতিষ্ঠা বুলি কৈ পত্নী বা গৃহিণীৰ স্থান অতি উচ্চত দেখুওৱা হৈছে। ১৫ পুনৰ ঐতৰেয় ব্ৰাহ্মণত পত্নীক গাৰ্হপত্য অগ্নিৰ লগত তুলনা কৰা হৈছে।ৰছইয়াৰ অৰ্থ এইটোৱে যে গাৰ্হপত্য অগ্নিত আহুতি দিয়াৰ ফলত গৃহস্থৰ যি কল্যাণ হয়, তেনেকৈ পত্নীয়েও পতিৰ কল্যাণ সাধন কৰে।

ধৰ্মৰ অধিকাৰ ঃ বৈদিক যুগত নাৰীয়ে ধৰ্মীয় অধিকাৰো ভোগ কৰিছিল। কিন্তু উল্লেখযোগ্য কথা এইটো যে নাৰীয়ে স্বাধীনভাৱে বা অকলে এই অধিকাৰ লাভ কৰা নাছিল। বিবাহৰ পিছত স্বামীৰ লগতহে ধাৰ্মিক কাম-কাজত অংশগ্ৰহণ কৰিব পাৰিছিল। বৈদিক গ্ৰন্থসমূহত উল্লেখ থকা অনুযায়ী, অবিবাহিত পুৰুষে বৈদিক যাগ-যজ্ঞ সম্পন্ন কৰিব নোৱাৰিছিল। [১৭] অৰ্থাৎ পতি-পত্নীয়ে একেলগে যজ্ঞত অধিকাৰ লাভ কৰিছিল। যজ্ঞীয় প্ৰক্ৰিয়াত যজমানৰ লগতে যজমানৰ পত্নীকো মেখলা বন্ধনৰ নিয়ম আছিল। অৱশ্যে যজমানৰ পত্নীক বৈদিক মন্ত্ৰ উচ্চাৰণ নকৰাকৈ পুৰোহিতে এই কাম সম্পন্ন কৰিছিল। বৈদিক যুগত যাগ-যজ্ঞাদি কাৰ্য্যত পত্নীৰ ইমানে প্ৰয়োজন আছিল যে যদি পত্নী নথকা যজমানে পত্নীৰ মৃত্যুৰ পিছত পুনৰ পত্নী গ্ৰহণ কৰিব নিবিচাৰে তেন্তে

শ্রদ্ধাক পত্নী ৰূপে গ্রহণ কৰি যজ্ঞ সম্পন্ন কৰিব পাৰিছিল। এই কথা ঐতৰেয় ব্রাহ্মণত স্পষ্ট উল্লেখ আছে।[১৮]

(৪)

বিধৱা বিবাহ আৰু সতীদাহ প্রথা ঃ বৈদিক সমাজত পতিৰ মৃত্যুৰ পিছত পত্নীয়ে বৈধব্য ব্রত পালন কৰাটো বাধ্যতামূলক নাছিল। স্বামীৰ মৃত্যুৰ পিছত নাৰীয়ে সন্তানপ্রাপ্তি বা জীৱন নির্বাহৰ বাবে পুনৰ বিবাহপাশত আৱদ্ধ হোৱা বা পতি বৰণ কৰা কার্য্যক বৈদিক সমাজে পূর্ণ সমর্থন কৰিছিল। এই কথা অথর্ববেদ [১৯] আৰু ঋগ্বেদৰ [২০] পৰা জনা যায়। এইদৰে পুনৰ বিবাহ কৰা নাৰীক পুনর্ভূ বুলি কোৱা হৈছিল- 'সমানলোকো ভৱতি পুনর্ভূবাপৰঃ পতিঃ।'[২১] এই তথ্যবোৰৰ পৰা এইটোও স্পষ্ট হয় যে বৈদিক যুগত সতীদাহ প্রথাৰো প্রচলন নাছিল।

অন্যান্য দিশত নাৰী ঃ বৈদিক যুগৰ নাৰীসকল আন আন দিশতো আগবঢ়া আছিল। যেনে তেওঁলোকে ঊণ গুঠা, চিলাই আদিৰ কাম কৰিছিল। সূচী শিল্পত তেওঁলোক অভ্যস্ত আছিল।[২২] যুদ্ধ বিগ্রহ আদিতো তেওঁলোকে অংশ গ্রহণ কৰিছিল। এই ক্ষেত্রত ঋগ্বেদৰ ১০.১০২.২ সূক্তটি উল্লেখনীয়।

এইদৰে বৈদিৰ গ্রন্থবোৰ অধ্যয়ন কৰিলে দেখা যায় যে বৈদিক সমাজত নাৰীৰ স্থান অতি উচ্চত আছিল। ঘৰৰ চাৰিবেৰৰ মাজত আবদ্ধ নাথাকি শৈক্ষিক, ধার্মিক, সামাজিক, সামৰিক, শিল্পকলা আদি প্রয়োজনীয় সকলো দিশতে তেওঁলোকে আগভাগ লৈছিল। শাৰীৰিক, মানসিক, বৌদ্ধিক, আধ্যাত্মিক, নৈতিক আদি সকলো দিশত তেওঁলোক পৰিপক্ক আছিল। গার্গী, মৈত্রেয়ী আদি মহিলাই দার্শনিক জ্ঞানৰ পৰিচয় দিছিল। গৃহিণী বা ভার্য্যা হিচাপে নাৰীৰ স্থান প্রশংসনীয় আছিল, যিহেতু ভার্য্যা বা পত্নী অবিহনে যজমানৰ ধর্মকার্য্যও বিফল হৈছিল। ধর্মকার্য্যত পত্নীৰ গুৰুত্ব ইমানে বেছি আছিল যে অবিবাহিত বা অপত্নীক যজমানৰ আহুতি দেৱতাসকলে গ্রহণ কৰা নাছিল। কিন্তু বেদোত্তৰ কালত নাৰীৰ সামাজিক স্থিতি আৰু মর্য্যাদা নিম্নগামী হৈ পৰা দেখা যায়। মনুসংহিতাত মনুৱে নাৰীৰ কোনো স্বতন্ত্রতা নাই বুলিয়ে উল্লেখ কৰিছে।❑

প্রসংগ

১। শর্মা, ড০ থানেশ্বৰ, বেদৰ সৌৰভ, বৈদিক ৰিচার্জ এণ্ড গ্ল'বেল ষ্টাডি চেণ্টাৰ, পৃ-৩
২। ঋগ্বে., ১০.৯৫
৩। অথর্ব., ৩.২৩.৩
৪। পত্ন্যৈ ব্রতোপনয়নম্, তৈ. ব্রা., ৩.৩.৩.২
৫। দ্বিবেদী, ড০ কপিল দেব, বৈদিক সাহিত্য এবং সংস্কৃতি, বিশ্ববিদ্যালয় প্রকাশন, বাৰাণসী, পৃ.২০৮
৬। বৃহদ্দেৱতা, ২.৮৪
৭। ব্রহ্মচর্য্যেণ কন্যা যুবানং বিন্দতে পতিম্ অথর্ব., ১১.৫.১৮
৮। অথর্ব., ৬.৮২.১
৯। ঋগ্বে., ১০.৩৯.৭
১০। ঋগ্বে., ১০.৮৫.৪৬
১১। চতস্রো জায়া উপক্লৃপ্তা ভৱন্তি। মহিষী, বাবাতা, পৰিবৃক্তা, পালাগলী, শত. ব্রা., ১৩.৪.১.৮
১২. বৃহদা. উপ., ৪.৫.১
১৩. জায়েদস্তম্, ঋগ্বে., ৩.৫.৩.৪
১৪। অর্ধো হ বা এষ আত্মনো যজ্জায়া, শত. ব্রা., ৫.২.১.১০
১৫। শত. ব্রা., ৪.৫.২.২
১৬। শত. ব্রা., ১.৩.১.১২
১৭। অযজ্ঞো বা এষ যোহপত্নীকঃ তৈ. ব্রা., ২.২.২.৬
১৮। অপত্নীকঃ অগ্নিহোত্রং কথং জুহোতি, শ্রদ্ধাং পত্নীং সত্যং যজমানঃ শ্রদ্ধয়া সত্যেন মিথুনেন স্বর্গান্ লোকান জয়তীতি। বসু, যোগীৰাজ, বেদৰ পৰিচয়, পৃ.৩০
১৯। ইয়ং নাৰী পতিলোকং; বৃণানা... তস্যৈ প্রজাং দ্রবিণং চেহ ধেহি। অথর্ব, ১৮.৩.১
২০। ঋগ্বে., ১০.১৮.৮
২১। অথর্ব., ১.৫.২৮
২২। মনু. স., ৯.৩

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত কিছু প্ৰাসংগিক চেতনা ঃ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

ড° মীৰা বৈশ্য

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
জাগীৰোড মহাবিদ্যালয়,
জাগীৰোড, মৰিগাওঁ- ৭৮২৪১০
৮৬৩৮৭৮৩৯৯০
mira.baishya.haz@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

আধুনিক সংগীত জগতত এক বিৰল প্ৰতিভাৰ শিল্পী ভূপেন হাজৰিকা । তেওঁ একেধাৰে গায়ক, সুৰকাৰ, গীতিকাৰৰূপে সকলো ভৌগলিক সীমা অতিক্ৰম কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা সৰ্বকালৰ এজন উল্লেখযোগ্য সংগীত শিল্পী। তেওঁ ভাৰতীয় সংগীতৰ প্ৰতি আগবঢ়োৱা অৱদানৰ বাবেও চিৰ পৰিচিত। তেওঁৰ গীতসমূহে প্ৰায়ে দেশপ্ৰেম, সাংস্কৃতিক পৰিচয় আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ বিষয়বস্তু স্পৰ্শ কৰে, সমগ্ৰ দেশৰ দৰ্শকৰ মাজত অনুৰণন ঘটায়। ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমূহৰ মাজত গভীৰভাৱে সোমাই থকা মানৱিক চেতনা, সামাজিক চেতনা আৰু জাতীয় চেতনাই তেওঁৰ গীতৰ কথাৰ সৌধ নিৰ্মাণ কৰিছে। তেওঁৰ গীতৰ মাজত প্ৰচ্ছন্নভাবে বৈ থকা এনে কিছু প্ৰাসংগিক চেতনাক এই অধ্যয়নত অন্বেষণ কৰিব বিচৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

ভূপেন হাজৰিকা, দেশপ্ৰেম, সমাজ, মানুহ, সামাজিক চেতনা, দায়ৱদ্ধতা, জাতীয়তাবাদ, বিশ্বপ্ৰেম।

০.০ অৱতৰণিকা

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

অসমীয়া জাতিৰ সুসন্তান সংগীত সূৰ্য ভূপেন হাজৰিকা আছিল একেধাৰে গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, গায়ক, সংগীত পৰিচালক, ৰাজনীতিবিদ, সাহিত্যিক, সাংবাদিক, অধ্যাপক, মানৱতাৰ পূজাৰী আদি অনেক গুণেৰে বিভূষিত এজন ব্যক্তিত্বশীল ব্যক্তি। সূৰ্য্য হাজৰিকাৰ ভাষাত ক'বলৈ হ'লে - অসমৰ সঙ্গীত জগতত সূৰ্য্যসম শক্তিৰে পৰিব্যাপ্ত, যাৰ কিৰণ সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষসহ পৃথিৱীৰ চৌপ্ৰান্তৰলৈকে বিকশিত হৈছে, সেইজন বিশ্ববিশ্ৰুত শিল্পী, গীতিকাৰ, সুৰকাৰ, গায়ক, সঙ্গীত-পৰিচালক, চলচ্চিত্ৰ পৰিচালক, অসম সাহিত্য সভাৰ প্ৰাক্তন সভাপতি তথা সভাৰ দ্বাৰা 'সাহিত্যাচাৰ্য' সন্মানেৰে সন্মানিত সাহিত্যৰ সাধক, 'সঙ্গীত সূৰ্য্য' বিভূষণেৰে স্বীকৃত সংস্কৃতিৰ সাধক, ভাৰতীয় চলচ্চিত্ৰ জগতৰ সৰ্ব্বোচ্চ সন্মান 'দাদা চাহেব ফাল্কে' বঁটাৰে সন্মানিত ভাৰতীয় বোলছবি জগতৰ প্ৰবাদপুৰুষ ৰূপে মান্য, ভাৰত চৰকাৰৰ সৰ্ব্বোচ্চ অসামৰিক সন্মান 'ভাৰত ৰত্ন', 'পদ্মশ্ৰী' আৰু 'পদ্মভূষণ' সন্মানেৰে বিভূষিত, ভাৰতীয় সঙ্গীত নাটক একাডেমী বঁটাৰে সন্মানিত তথা একাডেমীৰ প্ৰাক্তন অধ্যক্ষ, দেশ-বিদেশৰ বিভিন্ন মঞ্চত বিশ্ববিশ্ৰুত শিল্পীৰূপে সৰ্ব্বজনমান্য, অসম গৌৰৱ, অসম চৰকাৰৰ সৰ্ব্বোচ্চ সন্মান 'শ্ৰীমন্ত শঙ্কদেৱ বঁটা' আৰু 'অসম ৰত্ন' বঁটাৰে বিভূষিত ড° ভূপেন হাজৰিকা। (*ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ*, পাতনি) তেওঁ অসমীয়া তথা ভাৰতীয় সঙ্গীতৰ প্ৰতি বিশেষকৈ জাতীয়তাবাদৰ ক্ষেত্ৰখনত আগবঢ়োৱা অৱদানৰ বাবে চিৰ পৰিচিত।

১৯২৬ চনৰ ৮ চেপ্তেম্বৰত শদিয়াত জন্ম গ্ৰহণ কৰা এইজনা শিল্পীয়ে কৈশোৰ

কালতে 'কুসুম্বৰ পুত্ৰ শ্ৰীশঙ্কৰ গুৰুৰে ধৰিছিল নামৰে তান' শীৰ্ষক গীতেৰে তেওঁৰ প্ৰথম গীতি-সাহিত্য জীৱনৰ পাতনি মেলিছিল। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা, বিষ্ণু ৰাভাৰ দৰে মহান জীৱনদৰ্শন আৰু ব্যক্তিত্বৰ সান্নিধ্যই হাজৰিকাক এক বিশেষ বাট দেখুৱালে, এই বাট হ'ল জনতাৰ হৃদয়ত প্ৰৱেশ কৰাৰ বাট । বেনাৰসত আয়ত্ব কৰা সংগীতৰ জ্ঞানে তেওঁক জীৱনৰ প্ৰতিটো মুহূৰ্তৰ যাত্ৰা, সংগ্ৰাম আৰু সংঘাতে মানুহৰ বাবে লিখাৰ প্ৰেৰণা যোগালে। অসম আন্দোলনৰ সময়ত অসমীয়া লোকৰ মাজত জাতীয় চেতনাক উদ্বুদ্ধ কৰি নিজ দেশ নিজ মাতৃভূমিৰ স্বাৰ্থ ৰক্ষাৰ্থে ৰচনা কৰা চিৰন্তন গীতসমূহ সংগ্ৰামী জনতাৰ মুখে মুখে পৰিৱেশিত হৈছিল। একো একোটা গীতে যেন একো একোটা জাতিক এটা পৰ্যায়ৰ পৰা আন এটা পৰ্যায়লৈ লৈ যাব পাৰে তাৰ প্ৰমাণ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমূহ।

তেওঁৰ গীতৰ এক সুকীয়া বৈশিষ্ট্য আছে। তেওঁৰ গীতৰ মাজেৰে সমাজৰ আৰ্তজনৰ দুখ-দুৰ্দশাৰ ছবি ফুটি উঠিছে। নিজৰ লগতে আনৰ ব্যক্তিগত অনুভূতিক বিশ্লেষণ কৰি তেওঁ সমাজ সচেতকৰূপে গীতসমূহ ৰচনা কৰিছিল । দেশ-জাতিৰ সমূহীয়া বিপ্লৱী মনৰ বিশ্লেষণ কৰি দেশ আৰু সমাজৰ সমস্যাৰাজিৰ সমাধানেৰে ৰাইজক গীতৰ মাজেৰে জাগ্ৰত কৰি তোলাই তেওঁৰ গীতৰ প্ৰধান লক্ষ্য আছিল।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু পদ্ধতি ঃ

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল -

১. ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমূহৰ মাজত গভীৰভাৱে সোমাই তেওঁৰ গীতৰ কথাৰ সৌকুমাৰ্যতা আৰু সমাজ জীৱনত তেওঁৰ সংগীতৰ প্ৰভাৱ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।

২. তেওঁৰ গীতত মানৱিক চেতনাৰ সন্ধান কৰা।

৩. তেওঁৰ গীতত সামাজিক চেতনা আৰু দায়ৱদ্ধতাৰ অন্বেষণ কৰা।

৪. ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত জাতীয় চেতনা আৰু বিশ্বপ্ৰেম তথা ভাতৃত্ববোধৰ অন্বেষণ কৰা।

প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক আৰু ব্যাখ্যামূলক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

সূর্য্য হাজৰিকা সম্পাদিত ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমগ্ৰ (২০০৮)ত ৩৪২টা গীত পোৱা যায় যদিও, এই গোটেইখিনি গীতকে এই গৱেষণা পত্ৰত সামৰি লোৱা হোৱা নাই। ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত মানৱিক চেতনা, সামাজিক চেতনা আৰু দায়ৱদ্ধতা, জাতীয় চেতনা আৰু বিশ্বপ্ৰেমৰ দিশটোৰ অধ্যয়নক সামৰি লোৱা হৈছে।

১.০ বিষয়বস্তুৰ বিশ্লেষণ ঃ

বহুমুখী প্ৰতিভাসম্পন্ন আৰু বৰ্ণিল ব্যক্তিত্বৰ অধিকাৰী ভূপেন হাজৰিকা প্ৰকৃতাৰ্থত অসমী আইৰ সুযোগ্য সন্তান। অসমীয়া গানৰ জগতত সু�ৰৰ মালঞ্চ সৃষ্টি কৰা ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমূহৰ প্ৰধান বিষয়বস্তু হৈছে মানুহ আৰু সমাজ। তেওঁ ৰচনা কৰা বহু গীতত তেওঁৰ ব্যক্তিগত জীৱনৰ উপলব্ধি তথা তেওঁৰ সমসাময়িক সমাজৰ প্ৰতি থকা ধাৰণাৰ অভিব্যক্তি প্ৰকাশ পাইছে। তেওঁৰ গীতত অভিজ্ঞতাপুষ্ট জীৱনৰ জ্ঞানৰ গভীৰতা বিৰাজমান। অতি জটিল তথা তত্ত্বগধুৰ আদৰ্শবোৰ হাজৰিকাই কম কথাৰে গীতৰ মাধ্যমত অতি সাৱলীলভাৱে প্ৰকাশ কৰিছে। হালুৱা, হজুৱা, বনুৱা, ৰণুৱা আদিকে ধৰি সমাজৰ সকলো শ্ৰেণীৰ লোকৰ আৱেগ-অনুভূতি, হাঁহি-কান্দোন আদিৰ প্ৰতিফলন তেওঁৰ গীতত প্ৰকাশিত। একো একোটা গীতে একো একোখন সমাজৰ সম্পূৰ্ণ প্ৰতিচ্ছবিক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে। তেওঁৰ গীতত প্ৰতিফলিত হয় বিশ্বৰ সকলো প্ৰান্তৰ লোকৰ মাজত থকা সাৰ্বজনীন ঐক্যৰ অনুভূতি। তেওঁৰ গীতত মূৰ্ত্তমান হয় অতীত, বৰ্তমান আৰু অনাগত ভৱিষ্যতৰ বাস্তৱ প্ৰতিচ্ছবি।

১.১ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত মানৱিক চেতনা ঃ

সৰুকালৰেপৰাই আৰ্থিক অভাৱ-অনাটন, ব্যক্তিগত জীৱনৰ বহুতো ঘাত-প্ৰতিঘাত, বহু নিদাৰুণ ঘটনা প্ৰৱাহৰ অবৰ্ণনীয় অভিজ্ঞতাই ভূপেন হাজৰিকাৰ সংবেদনশীল মনৰ মাজত নিভাঁজ মানৱ প্ৰেমৰ ধাৰণা জাগ্ৰত কৰে। তেওঁৰ গীতত মানৱতাবাদে সৰ্বোচ্চ স্থান লাভ কৰিছে। দানৱীয় প্ৰমূল্যবোধ ত্যাগ কৰি মানৱীয় প্ৰমূল্যৰ সহায়ত দুৰ্বল মানুহকো আগুৱাই যোৱাৰ প্ৰেৰণা দিছে । তেওঁ মানুহক মানুহৰ বাবে চিন্তা কৰিবলৈ কৈছে; কাৰণ বিশ্বৰ সকলোতকৈ উৰ্দ্ধত হৈছে - মানৱতা -

মানুহে মানুহৰ বাবে
যদিহে অকনো নাভাবে
অকণি সহানুভূতিৰে
ভাবিব কোনেনো কোৱা, সমনীয়া ....।

(ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ, ৩৯৩)

তেওঁ নিজে এঠাইত কৈছে - 'মোৰ সকলো গীতৰ ৰচনাৰ মূল উদ্দেশ্য হ'ল - গানবোৰ মানুহৰ গান হ'ব লাগিব ।' তেওঁৰ দ্বাৰা ৰচিত মানৱতাবাদী গীতখিনিত এনে এটি আদৰ্শ লক্ষ্য কৰা যায় - য'ত সমগ্ৰ মানৱ জাতিটোৱে এজনৰ

প্রাপ্যৰ প্রতি লক্ষ্য ৰাখি আনজনৰ প্রতিও সমানে সংবেদনশীল হোৱা, মানৱীয় ভাবাদর্শেৰে জীৱন অতিবাহিত কৰা, কোনোৱে কাকো কোনো ধৰণেৰে অসন্মান নকৰা, বলী-নির্বলী, ধনী-দুখীয়া সকলোৱে সমানে নিজৰ প্রকৃতিগত সত্ত্বা তথা মর্যাদাৰ প্রতি সন্মান প্রদর্শন কৰা আদি মানৱ অধিকাৰ সুৰক্ষাৰ দিশবোৰ।

১.২ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত সামাজিক চেতনা আৰু দায়ৱদ্ধতা ঃ

ভূপেন হাজৰিকাৰ সমাজ চেতনা আছিল বিশ্বচেতনাৰ এক ক্ষুদ্র সংস্কৰণ । তেওঁৰ যাযাবৰী জীৱনে দিহিঙে-দিপাঙে ঘূৰি সমাজৰ অতীত, বর্তমানৰ স্বৰূপ অনুভৱ কৰিছিল। শোষিত নিষ্পেষিত মুক্তিকামী জনতাক বন্দীশালৰ শিকলি ছিঙি তথা কথিত বজ্রকঠোৰ ৰাজনীতিক উচ্ছেদ কৰিবলৈ আহ্বান কৰিছে গীতৰ মাজেৰে। মৰম আৰু সম্প্রীতিৰ বৰনামঘৰটোৰ খুঁটা স্থাপনেৰে আওপুৰণি সামাজিক নীতি-নিয়মক সাৰি মুচি সমতাৰ ভেঁটিত সমাজখন স্থাপন কৰাৰ মানসিকতাৰে তেওঁ সকলোকে আহ্বান কৰিছে -

শতিকাৰে এলাহুকে সাৰোঁ পোচোঁ আমি
সমতাৰে ৰহন সানি নিকা কৰোঁ আমি।

তেওঁ জীৱনৰপৰা পোৱা-নোপোৱাৰ হিচাপ-নিকাচ কৰাতকৈ ত্যাগৰ আদর্শেৰে মাৰ বান্ধি নতুন দিগন্তলৈ জ্যোতিৰ সন্ধানত ধাৱমান হ'বলৈ কৈছে । কাৰণ, আত্মত্যাগ আৰু আত্মশুদ্ধিৰেহে সমাজত নতুনত্ব আনিব পাৰি । ভূপেন হাজৰিকাই সমাজ গঢ়াৰ এই আহ্বানত জীৱন মৰণক তুচ্চ কৰি হাঁহি হাঁহি ওলাই আহিবলৈ তেওঁৰ গীতৰ মাজেৰে প্রতিজনকে অনুৰোধ জনাইছে। তেওঁৰ প্রায়খিনি গীতত অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ প্রতিটো দিশ প্রতিফলিত হৈছে । 'আমি অসমীয়া নহওঁ দুখীয়া'- গীতটিত নানা জাতি-উপজাতিৰ বাৰেৰহণীয়া কৃষ্টিৰে গঢ়ি উঠা বৰ অসমক নিঃশেষ হোৱাৰপৰা ৰক্ষা কৰাৰ আহবান জনাই আত্মসমালোচনাৰ ইংগিত দি গৈছে এনেদৰে - 'তুমি বিশ্বৰ শৰীৰত পংগু অংগ হ'লে বিশ্বই জানো ভাল পাব।'

অসমীয়া সমাজত প্রচ্ছন্নভাবে থকা জাত-পাতৰ বিচাৰে ভূপেন হাজৰিকাৰ ব্যক্তিগত জীৱনতো প্রভাৱ পেলাইছিল। সমাজক পৰিবর্তনৰ বাণীৰে উদ্বুদ্ধ কৰা, সমাজৰ শ্রেণী-বৈষম্য নোহোৱা কৰা, সমাজৰ দুর্বলতাবোৰ গীতেৰে আঙুলিয়াই এখন শোষণমুক্ত সমাজ গঢ়াৰ আকাংক্ষা প্রকাশক বহু গীত হাজৰিকাই ৰচনা কৰিছিল । এইক্ষেত্রত, 'যুৱতী অনামিকা গোস্বামী আৰু যুৱক প্রশান্ত দাসে', 'অ' নতুন মনৰ তৰুণ তৰুণী', 'মদাৰৰে ফুল হেনো' আদি গীতত হেজাৰ বছৰ চলি থকা জাতি-ভেদ, শ্রেণী-ভেদ নোহোৱা কৰি উদাৰতা আৰু মানৱ প্রেমেৰে সমতাৰ পৃথিৱী গঢ়াৰ আহ্বান মনকৰিবলগীয়া। বিশ্বৰ সকলো লোকৰ মাজত ৰঙৰ খনি বিলাই দিব বিচৰা এই শিল্পীগৰাকীয়ে মানুহৰ মাজত থকা শ্রেণী-বৈষম্য দেখি চিন্তিত হৈ পৰিছিল। তেওঁ দেখিছিল বহু গগনচুম্বী অট্টালিকা আৰু তাৰ ছাঁতে থকা বহু গৃহহীন নৰ-নাৰী। তেওঁ গীতৰ মাজেৰে উপনিবেশবাদ, বর্ণবৈষম্য, যুদ্ধ, দাস প্রথা আদিৰো বিৰোধিতা কৰিছিল । বহু ঘৰত গৃহ দাস দেখি তেওঁ চিন্তিত হৈ পৰিছিল । তেওঁ মানুহ কিনা-বেচা কৰা নীতিৰ বিৰোধিতা কৰি গাইছিল -

মানুহে মানুহক কিনিব খুজিও
মানুহে মানুহক বেচিব খুজিও
পুৰণি ইতিহাস দোহাৰিলে
ভুল জানো নহ'ব - কোৱা সমনীয়া।

(ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্র, ৩৯৩)

ভূপেন হাজৰিকাৰ সমাজ সচেতন মনে সমাজৰ বর্ণ-বৈষম্য, শ্রেণী-বৈষম্য, আর্থিক-বৈষম্য আৰু চিন্তাৰ বৈষম্যক আঁতৰ কৰি সমাজত এক শ্রেণীহীন বর্ণহীন সমাজ গঢ়িবৰ আশাৰে নৱপ্রজন্মৰ তৰুণ-তৰুণীসকলৰ প্রতি আহ্বান জনাইছে । সমাজৰ প্রগতিৰ যোগেদি পৃথিৱীৰ প্রগতিৰ বাট মুকলি কৰিবলৈ শোষিত মুমূর্ষু জনতাৰ মনত নৱ চেতনাৰ সঞ্চাৰ কৰিছিল । এই চেতনাৰ বীজ হাজৰিকাই ভাৰতৰ প্রাচীন ঐতিহ্য আৰু পৰম্পৰাৰ পৰা গ্রহণ কৰিবলৈ আহ্বান জনাইছে। মহৎ জীৱনৰ মহান মানৱতাৰ মহা বাণীয়েই হৈছে এই নৱ চেতনাৰ সাৰ।

১.৩ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত জাতীয় চেতনা আৰু বিশ্বপ্রেম ঃ

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত যুগ চেতনাৰ বাহক । অসমৰপৰা ভাৰত আৰু ভাৰতৰপৰা বিশ্বৰ বিভিন্ন প্রান্তত কণ্ঠ নিগৰোৱা শিল্পী-গীতিকাৰ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত সমাজৰ বিভিন্ন শ্রেণীৰ, বিভিন্ন কর্মক্ষেত্রৰ, বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ জীৱন সংগ্রামৰ ছবি ফুটি উঠিছে আৰু মানুহৰ হৃদয়ে হৃদয়ে প্রতিধ্বনিত হৈ সংক্রমিত হৈছে বিশ্বমানৱৰ বুকুলৈ। সেয়ে তেওঁ গীতত কৈছে -

মোৰ গান হওঁক
বহু আস্থাহীনতাৰ বিপৰীতে

এক গভীৰ আস্থাৰ গান ।
মোৰ গান হওঁক
কল্পনা বিলাসৰ বিপৰীতে
এক সত্য প্ৰশস্তিৰ ধ্যান ।

(ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ, ৪০৭)

এইজন চিৰ যাযাবৰ শিল্পীৰ জীৱনজোৰা সাধনাৰ ফলশ্ৰুতিত প্ৰায় তিনিশৰো অধিক গীতৰ মাজত প্ৰতিভাত হৈ উঠিছে জাতীয় চিন্তা-চেতনাৰ এখনি উজ্জ্বল ছবি । বিভিন্ন উপলক্ষ্যত আৰু বিভিন্ন পৰিবেশ-পৰিস্থিতিত তেওঁৰ কলমৰপৰা নিগৰিছিল জাতীয় ভাৱাপন্ন অসংখ্য গীত। অসমী আইৰ প্ৰতি সদা সচেতন এইজনা মণিষীৰ মন-প্ৰাণ নিমজ্জিত কেৱল দেশানুৰাগত।

প্ৰতিপল, প্ৰতিক্ষণ অসমী আইক সেৱা কৰিবলৈ প্ৰস্তুত ভূপেন হাজৰিকাৰ কলমৰপৰা যেন স্বতঃস্ফূৰ্তভাৱেই নিগৰিছিল-

মোৰ দেশখন যদি আজি আই হৈ যায়
আৰু আয়ে যদি কান্দি কান্দি বাৰে বাৰে কয়
তই বাৰু মোৰ বাবে কৰিলিনো কি ?
মই ক'ম কি ?
মই ক'ম কি ? (ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ, ৪১১)

ভূপেন হাজৰিকাৰ প্ৰতিটো গীতেই যেন জাতীয় চেতনাৰ প্ৰতিভূ। তেওঁৰ গীতত প্ৰকাশ পাইছে জাতীয় সমন্বয়ৰ গভীৰ চেতনা -

আগ্নিযুগৰ ফিৰিঙতি মই
নতুন অসম গঢ়িম
সৰ্বহাৰাৰ সৰ্বস্ব পুনৰ ফিৰাই আনিম
নতুন ভাৰত গঢ়িম।

(ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ, ৪১)

জাতীয়তাবোধ যেন ভূপেন হাজৰিকাৰ আত্মাৰ উপলব্ধি । সেয়ে তেওঁ মুক্তকণ্ঠে কৈছে -

অসম আমাৰ ৰূপহী গুণৰো নাই শেষ
ভাৰতৰে পূৰ্ব দিশৰ সূৰ্য্য উঠা দেশ ।
পাহাৰ ভৈয়াম একে কৰা ৰামধেনুৰে দৰে;
তোমাৰ ভাষাৰ মৰমবোৰে মিলন সেতু গঢ়ে ।
গোটেই জীৱন বিচাৰিলেও অলেখ দিৱস ৰাতি
অসম দেশৰ দৰে নেপাওঁ, ইমান ৰসাল মাটি ।।

(ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ, ৫৩)

ভূপেন হাজৰিকাই জাতীয়তাবাদ, আন্তর্জাতিকতা, স্বদেশপ্ৰেম আৰু বিশ্বপ্ৰেমৰ মাজত গীতৰ মাধ্যমত সমন্বয় স্থাপন কৰিছে। তেওঁৰ মতে বিশ্বখনৰ সকলো ৰাষ্ট্ৰই সমানে শক্তিশালী হ'ব। পৃথিৱীৰ বুকুত কোনো এটি জাতি পংগু হৈ থাকিলে বিশ্বই ভাল নাপায় । নিজ দেশৰ প্ৰতি কৰ্তব্য পালন কৰিলেহে বিশ্বৰ প্ৰতিও কৰ্তব্য পালন কৰা হ'ব । নিজৰ মাতৃক ভাল পোৱাৰ লগতে আনৰ মাতৃকো ভাল পাব লাগিব। ইতিবাচক আৰু প্ৰগতিশীলতাৰ উদাহৰণেৰে সমৃদ্ধ জাতীয়তাবাদক বিশ্বমুখী কৰাৰ প্ৰয়াস তেওঁৰ গীতৰ আঁহে আঁহে বিদ্যমান -

বিশ্বপ্ৰেম বিনন্দীয়া বুলি
অনুভৱ কৰা প্ৰতিজন অসমীয়া
তুমিওতো জানা এটি কথা
আপোন মাতৃৰ অশ্ৰু নমচিলে
বিশ্বপ্ৰেম হ'ব বৃথা
তুমি বিশ্বৰ শৰীৰত পংগু অংগ হ'লে
বিশ্বই জানো ভাল পাব ?

(ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ, ৮২)

মানৱতাৰ পূজাৰী হাজৰিকাই জাতি, ভাষা, লিংগ নিৰ্বিশেষে সকলো লোকৰ মাজতে সম্প্ৰীতি আৰু বিশ্ব ভাতৃত্ববোধ জগাই তোলাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল । সেয়েহে তেওঁ সততে পল্ ৰৱনৰ বিখ্যাত গীতটো গাইছিল - 'We are the same boat brother' । তেওঁৰ 'মহাবাহু ব্ৰহ্মপুত্ৰ মহামিলনৰ তীৰ্থ' গীতটো এইক্ষেত্ৰত উনুকিয়াব পাৰি।

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমূহক সামাজিক আৰু ৰাজনৈতিক ধাৰাভাষ্যৰ এক শক্তিশালী আহিলা হিচাপে চাব পাৰি । ই ভাৰতীয় জনসাধাৰণৰ সংগ্ৰাম আৰু আকাংক্ষাক প্ৰতিফলিত কৰি তুলিছে। তেওঁৰ কালজয়ী গীত যেনে - 'বিস্তীৰ্ণ পাৰৰে', 'মানুহে মানুহৰ বাবে', 'দিল হুম্ হুম্ কৰে' আদি আত্মাক আলোড়িত কৰা গীতৰ সুৰৰ বাবে শ্ৰোতাৰ মাজত অনুৰণন ঘটে। তেওঁৰ সংগীতৰ জৰিয়তে হাজৰিকাই ভাৰতৰ চহকী সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যক উদ্‌যাপন কৰাৰ লগতে জাতিটোৰে সন্মুখীন হোৱা আৰ্থ-ৰাজনৈতিক প্ৰত্যাহ্বানসমূহৰ ওপৰতো আলোকপাত কৰে।

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতসমূহে প্ৰায়ে স্বাধীনতা, ঐক্য, ন্যায়, সমতা আদি বিষয়ক সম্বোধন কৰি অসম তথা ভাৰতৰ বাকী অংশৰ বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ সাংস্কৃতিক দৃশ্যপটৰপৰা প্ৰেৰণা লাভ কৰে। তেওঁৰ গৃহভূমি আৰু ইয়াৰ জনসাধাৰণৰ সৈতে গভীৰভাৱে শিপাই থকা সংযোগ তেওঁৰ ৰচনাসমূহত স্পষ্ট হৈ পৰে; যিবোৰে প্ৰান্তীয় সম্প্ৰদায়ৰ সংগ্ৰামৰ কথা কয় আৰু সামাজিক পৰিৱৰ্তনৰ পোষকতা কৰে। তদুপৰি,

হাজৰিকাৰ গীতত আঞ্চলিক ভাষা আৰু পৰম্পৰাগত বাদ্যযন্ত্ৰৰ ব্যৱহাৰে তেওঁৰ গীতত এক অনন্য সোৱাদ প্ৰদান কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। অভিজ্ঞতাভিত্তিক গৱেষণাৰ তথ্যই ইংগিত দিয়ে যে, ভূপেন হাজৰিকাৰ সংগীতে ব্যক্তিৰ ওপৰত গভীৰ প্ৰভাৱ পেলায়, তেওঁলোকৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যত গৌৰৱ আৰু নিজৰ বুলি ভবাৰ ভাৰ জগাই তোলে। ভাষিক আৰু সাংস্কৃতিক বাধাসমূহ অতিক্ৰম কৰি সমগ্ৰ দেশৰ শ্ৰোতাৰ হৃদয় স্পৰ্শ কৰা হাজৰিকাৰ সংগীতৰ আৱেগিক অনুৰণন মনকৰিবলগীয়া। সমালোচকৰ ভাষাত -

'তেওঁ আছিল শংকৰদেৱ, মাধৱদেৱ, আজানপীৰ, বেজবৰুৱা, জ্যোতিপ্ৰসাদ, বিষ্ণু ৰাভা এইসকলে প্ৰতিষ্ঠা কৰি থৈ যোৱা অসমৰ জাতীয় ঐতিহ্যৰ উত্তৰাধিকাৰী। আনহাতে অসমৰ লোক-জীৱনৰ আৰু লোক-সংস্কৃতিৰো প্ৰাণৰ উত্তাপ তেওঁ নিজৰ হৃদয়ত ধাৰণ কৰিছিল। তেওঁৰ গীতৰ সুৰত, তেওঁৰ কথাত সেই উত্তাপ ফুটি উঠিছিল। তেওঁ কণ্ঠও আছিল অমৃতময়। সেইবাবেই তেওঁ 'সুধাকণ্ঠ'। তেওঁৰ এই কণ্ঠক প্ৰাণৰ উত্তাপ দিছিল তেওঁৰ গভীৰ হৃদয়ানুভূতিয়ে। হৃদয়ৰ উত্তাপ ঢালি নোগোৱাকৈ থকা তেওঁৰ এটিও গীত নাই। সেইবাবেই তেওঁৰ প্ৰতিটো গীতেই ৰসোত্তীৰ্ণ হৈ উঠিছিল। সংবেদনশীল, স্পৰ্শকাতৰ অন্তৰৰ শিল্পী নহ'লে গীতৰ সুৰক এনেভাৱে উত্তাপ দি প্ৰাণৱন্ত কৰি তুলিব পৰা কাৰো বাবে সম্ভৱ নহয়। ভূপেন হাজৰিকা সেই প্ৰতিভাৰ অধিকাৰী আছিল।'

(*ড° ভূপেন হাজৰিকা সৃষ্টি আৰু দৃষ্টি*, ৪)

২.০ **ফলাফল ঃ** ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতে সময়ৰ পৰীক্ষাত থিয় দিছে, নিজৰ শক্তিশালী বার্তা আৰু উদাত্ত সুৰেৰে সংগীতপ্ৰেমী প্ৰজন্মক অনুপ্ৰাণিত কৰি আহিছে। পৰম্পৰাগত লোকসংগীতক আধুনিক সংবেদনশীলতাৰ সৈতে মিহলাই দিয়াৰ ক্ষমতাই তেওঁক ভাৰতীয় সংগীতৰ বুৰঞ্জীত এক অনন্য স্থান লাভ কৰি সাংস্কৃতিক আইকন হিচাপে পৰিচিত কৰিছে। গীতৰ জৰিয়তে হাজৰিকাই ভাৰতৰ বৈচিত্ৰ্যক উদ্‌যাপন কৰাই নহয়, ইয়াৰ জনসাধাৰণৰ মাজত ঐক্য আৰু সংহতিৰ আহ্বান জনাই জাতীয় সংহতি আৰু সাম্প্ৰদায়িক সম্প্ৰীতিৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে।

তেওঁৰ সংগীতত উপস্থিত থকা মানৱিক চেতনা, সামাজিক চেতনা আৰু দায়বদ্ধতা, জাতীয়তাবাদ, বিশ্বপ্ৰেম আৰু সাংস্কৃতিক পৰিচয়ৰ বিষয়বস্তুৰে ভাষা-ধৰ্ম, পৰম্পৰাৰ চহকী ঐতিহ্যৰ বাবে গৌৰৱ কৰা ভাৰতীয় সমাজৰ নীতি-নিয়মৰ সৈতে প্ৰবলভাৱে সংপৃক্ত কৰায়। গীতত অসমীয়া, হিন্দী, আৰু অন্যান্য আঞ্চলিক ভাষাৰ উপাদানসমূহ একেলগে বোঁৰাই হাজৰিকাই জাতিটোৰ ঐতিহ্যৰ কথা কোৱা সাংস্কৃতিক প্ৰকাশভংগীৰ এক সুষম মিশ্ৰণৰ সৃষ্টি কৰিছে। জনসাধাৰণৰ নীতি-নিয়ম প্ৰতিফলিত কৰা গীতৰ কথা ৰচনা কৰাৰ নিখুঁত মনোযোগে তেওঁক সংগীতৰ সীমা অতিক্ৰম কৰা এজন দূৰদৰ্শী শিল্পী হিচাপে পৃথক কৰি তুলিছে।

৩.০ **উপসংহাৰ ঃ**

ভূপেন হাজৰিকাৰ উদ্‌গনিদায়ক গীতৰ কথা, আত্মাক আলোড়িত কৰা সুৰ, সামাজিক ন্যায়ৰ প্ৰতি অদম্য দায়বদ্ধতাৰ জৰিয়তে হাজৰিকাই ভাৰতীয় সংগীত জগতত এক চিৰস্থায়ী চিন ৰাখিছে, অগণন ব্যক্তিক নিজৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্যক আঁকোৱালি লৈ উন্নত ভৱিষ্যতৰ বাবে চেষ্টা কৰিবলৈ অনুপ্ৰাণিত কৰিছে। তেওঁৰ গীতসমূহ কালজয়ী আবেদন আৰু প্ৰেম, শান্তি আৰু ঐক্যৰ সাৰ্বজনীন বার্তাৰ বাবে দৰ্শকৰ মাজত প্ৰতিধ্বনিত হৈয়েই আছে, যাৰ ফলত তেওঁক ভাৰতীয় জাতীয়তাবাদৰ এজন প্ৰকৃত প্ৰতিনিধিত্বকাৰী বুলি ক'ব পাৰি। ভূপেন হাজৰিকাৰ সংগীতে ভাষিক, সাংস্কৃতিক, ভৌগোলিক সীমা অতিক্ৰম কৰি সমগ্ৰ ভাৰত আৰু ইয়াৰ বাহিৰৰ শ্ৰোতাৰ হৃদয় স্পৰ্শ কৰে। তেওঁৰ গীতসমূহে দেশৰ বৈচিত্ৰ্যক উদ্‌যাপন কৰাৰ লগতে ইয়াৰ জনসাধাৰণৰ মাজত পাৰস্পৰিক সন্মান, বুজাবুজি, আৰু সমন্বয়ৰ আহ্বান জনাইছে। হাজৰিকাৰ সংগীতৰ বিষয়বস্তু আৰু লক্ষ্যসমূহ অন্বেষণ কৰি আমি ভাৰতীয় জাতীয়তাবাদৰ প্ৰতি তেওঁৰ অৱদান আৰু সামাজিক পৰিৱর্তন আৰু সাংস্কৃতিক ঐক্যৰ প্ৰেৰণা যোগোৱা তেওঁৰ সংগীতৰ চিৰস্থায়ী শক্তিৰ বাবে অসমীয়া তথা ভাৰতীয় জাতিয়ে সৰ্বদাই তেওঁক স্মৰণ কৰিব লাগিব। এই অধ্যয়নে পৰৱর্তী সময়ত ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ বিভিন্ন দিশৰ চিন্তা-চর্চাৰ ক্ষেত্ৰত নতুন তথ্য আৰু চিন্তাৰ সংযোগ ঘটাব বুলি আশা কৰিব পাৰি। ❑

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১. কুমাৰ, থানেশ্বৰ। ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু কিছু প্ৰাসংগিক কথা। অশোক বুকষ্টল, গুৱাহাটী। দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১১
২. দাস, হিৰণ্য কুমাৰ। মহাকাশ, মহাসাগৰ আৰু ভূপেন হাজৰিকা। মনো পাব্লিকেছনচ, গাজিয়াবাদ। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৪
৩. পূজাৰী, অৰ্চনা। ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ মূল্যায়ন। বাণী মন্দিৰ, গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০২
৪. ভূঞা, ৰবীন (সম্পা.)। ড° ভূপেন হাজৰিকা সৃষ্টি আৰু দৃষ্টি। বনলতা, গুৱাহাটী। প্ৰথম সংকলন, ২০১১
৫. শইকীয়া, মনোজ কুমাৰ। সৃষ্টিৰ দৃষ্টিৰে ভূপেন হাজৰিকা। ভৱানী প্ৰিণ্ট এণ্ড পাব্লিকেশ্যনচ্, গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ ২০১১
৬. হাজৰিকা, সূর্য্য (সম্পা.)। ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ। এছ, এইছ শৈক্ষিক ন্যাস, গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ ২০১৫

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গদ্যৰীতি ঃ এক আলোচনা

ড° বিনীতা চহৰীয়া

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
এল.টি.কে. মহাবিদ্যালয়, আজাদ,
উত্তৰ লক্ষীমপুৰ, অসম- ৭৮৭০৩১
৯১০১৬৯৭৫৬৮
nitamoni.saharia@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া সাহিত্য জগতত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ স্থান নিঃসন্দেহে অন্যতম। বিংশ শতিকাৰ ষাঠিৰ দশকলৈ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীক বিশেষকৈ এগৰাকী গল্প লেখিকা হিচাপে পোৱা যায়। 'চিনাকি মৰম' (১৯৬২), 'কইনা' (১৯৬৬), 'হৃদয় এক নদীৰ নাম' (১৯৮৯), 'মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ প্ৰিয় গল্প' (১৯৯৮), 'মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ স্ব-নিৰ্বাচিত গল্প' (১৯৯৯), 'আভা গার্ডেনাৰৰ আবেলি' (২০১০) গল্প সংকলনৰ স্ৰষ্টা মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্পসমূহৰ মাজেদি গভীৰ মানৱতাবাদ ফুটি উঠিছে। কু-সংস্কাৰ আৰু অন্ধবিশ্বাসে মানুহক কিদৰে দয়া মমতাহীন কৰি তোলে, দৰিদ্ৰতাই পীড়া কৰা নাৰীৰ বিশেষকৈ বিধৱা নাৰীৰ জীৱন কিদৰে দুৰ্বিসহ হৈ উঠে, তাৰ সুন্দৰ চিত্ৰ 'কাঠফুলা', 'সংস্কাৰ' আদি গল্পৰ মাজেদি মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে প্ৰতিফলিত কৰিছে। ইয়াৰোপৰি, তেওঁৰ গল্পত প্ৰকাশিত বাস্তৱবোধ, অনুভূতিৰ তীব্ৰতা আৰু শিল্প চেতনা মন কৰিবলগীয়া। আনহাতে, সত্তৰৰ দশকৰ পৰা মামণি ৰয়ছম গোস্বামীক এগৰাকী ঔপন্যাসিকা হিচাপে পোৱা যায়। তেখেতৰ উপন্যাসসমূহ অসমীয়া সাহিত্যৰ এক অনবদ্য সংযোজন। তেখেতৰ উপন্যাসসমূহ হ'ল 'চেনাবৰ সোঁত' (১৯৭২), 'নীলকণ্ঠী ব্ৰজ' (১৯৭৬), 'অহিৰণ' (১৯৮০), 'মামৰে ধৰা তৰোৱাল' (১৯৮০), 'উদয় ভানুৰ চৰিত্ৰ' (১৯৮৬), 'সাপৰ ছালৰ জোতা' (১৯৮৬), 'আধা লেখা দস্তাবেজ' (১৯৮৮), 'দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা' (১৯৮৮), 'জখ্মী যাত্ৰী' (১৯৯১), 'তেজ আৰু ধূলিৰে ধূসৰিত পৃষ্ঠা' (১৯৯৪), 'ভিক্ষাৰ পাত্ৰ ভাঙি' (১৯৯৪), 'দাশৰথিৰ খোজ' (১৯৯১), 'ছিন্নমস্তাৰ মানুহটো' (২০০১), 'থেং ফাগ্ৰী তহ্চিল্দাৰৰ তামৰ তৰোৱাল (২০০৯)। এই উপন্যাসসমূহত বঞ্চিতজনৰ ক্ষোভ, প্ৰতিবাদ আৰু কাৰুণ্যৰে সিক্ত গভীৰ মানৱীয় আৱেদন, নাৰীৰ মনৰ গোপন গভীৰ অংশত সাহসী আলোকপাত, অনুভৱ আৰু ভাষাৰ কাব্যিকতা, উপমা, চিত্ৰকল্প, ব্যঞ্জনাৰ নতুনত্ব আদি বৈশিষ্ট্যসমূহ পৰিলক্ষিত হয়। আনহাতে, অসমীয়া সমাজখনৰ ছবিও সাহিত্যসমূহত সুন্দৰ ৰূপত প্ৰতিফলিত হৈ উঠিছে। চৰিত্ৰৰ মুখত ব্যৱহৃত আঞ্চলিক ভাষাৰ প্ৰয়োগে সাহিত্যিক মৰ্যাদা লাভ কৰাত সফল হৈছে। ভাষাৰ গাঁথনিক দিশ, শব্দগত দিশ, ফকৰা-যোজনা আৰু প্ৰবাদ-প্ৰৰচনৰ ব্যৱহাৰে ভাষাৰ কালিকাশক্তি প্ৰকাশ কৰিছে। বিচিত্ৰ বিষয়বস্তু আৰু ভিন্নধৰ্মী জীৱন চেতনাৰে সমৃদ্ধ গল্প-উপন্যাসৰ মাজত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে এক নিজস্ব ৰচনাশৈলী গঢ়ি তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। অৰ্থৰ লগত সংগতি ৰাখি যথাৰ্থ শব্দ, উপযুক্ত বাক্য গাঁথনি, বলিষ্ঠ প্ৰকাশভংগীৰে নিজৰ অন্তৰৰ ভাৱৰাশিক আঁৰ নলগাকৈ অন্তৰ খুলি উপস্থাপন কৰাৰ ফলত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গদ্য সমৃদ্ধিশালী হৈ উঠিছে। আমাৰ নিৰ্বাচিত পাঠত 'মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গদ্যৰীতি' সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজশব্দ ঃ সাহিত্য, গল্প, উপন্যাস, ভাষাশৈলী, প্রকাশভংগী।

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

গদ্য হৈছে মানুহৰ ভাৱ-অনুভূতি প্রকাশ হোৱা এক ভাষিক ৰূপ। গদ্যৰ মাজেদিয়েই একো একোজন লেখকৰ ব্যক্তিগত প্রকাশৰীতি সম্পর্কে অৱগত হ'ব পাৰি। সাহিত্যৰ ষ্টাইল (style) অথবা শৈলীৰ মূলতেই হ'ল এই গদ্য। ষ্টাইল বা শৈলী হৈছে একপ্রকাৰৰ বিশেষ ৰীতি। ই লেখকৰ সম্পূর্ণ নিজা সৃষ্টি। প্রত্যেক লেখকে নিজা ৰুচি-অভিৰুচি অনুযায়ী নিজা ৰচনা কৌশলেৰে বিষয়বস্তু পাঠকৰ সন্মুখত দাঙি ধৰি ভাৱৰ আদান-প্রদান কৰাৰ চেষ্টা কৰে। এই ৰচনা কৌশলকে বিভিন্ন সমালোচকে ৰচনাৰীতি, ৰচনাশৈলী, কথনভংগী, কথাশৈলী, গদ্যৰীতি, গদ্যশৈলী আদি আখ্যা দি আহিছে।[১] এই ৰচনাৰীতি বা গদ্যৰীতিৰ সহায়ত এজন লেখকৰ ব্যক্তিত্ব আৰু সৌন্দর্যবোধৰ উমান পাব পাৰি। তদুপৰি যি সাহিত্যৰ ভাৱ মৌলিক আৰু ৰচনাৰীতি গভীৰ, সিয়েই পাঠকৰ চিত্ত বিশেষ ধৰণে আকর্ষিত কৰে আৰু তেনে সাহিত্যকেই সাধাৰণতে উৎকৃষ্ট সাহিত্যৰ মর্যাদা দিয়া হয়।

গদ্যৰীতিৰ বিশ্লেষণত ভাষাশৈলী আৰু প্রকাশভংগী এই দুয়োটা বিষয়েই সামৰি লোৱা হয়।[২] শব্দ, বাক্য, লয়, অলংকাৰ, অনুচ্ছেদ, খণ্ডবাক্য, প্রবাদ-প্রবচন আদিৰ সমন্বয়ত ভাষাশৈলীয়ে গঢ় লয়। আনহাতে, এই উপাদানবোৰৰ সহযোগত লেখকে নিজৰ ভাৱ, চিন্তা, আৱেগ, কল্পনা, বক্তব্য বিষয় আদি প্রকাশ কৰাৰ ধৰণেই তেওঁৰ প্রকাশভংগী। উপযুক্ত স্থানত উপযুক্ত শব্দ আৰু বাক্যৰে ৰচনা সমৃদ্ধ হৈ বিষয়বস্তু স্পষ্টকৈ পৰিস্ফুট হ'লেই সার্থক গদ্যৰীতি গঢ় লৈ উঠে।

অসমীয়া গদ্য-সাহিত্যত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গদ্যৰ এক স্বকীয় পৰিচয় আছে। বিচিত্র বিষয়বস্তু আৰু ভিন্নধর্মী জীৱনচেতনাৰে সমৃদ্ধ গল্প-উপন্যাসৰ মাজত তেওঁ এক নিজস্ব গদ্যভংগী গঢ়ি তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। শব্দ, বাক্য, প্রকাশভংগী আদি সকলো দিশতে তেওঁ প্রাধান্য আৰোপ কৰিছিল। অর্থৰ লগত সংগতি ৰাখি যথার্থ শব্দ, উপযুক্ত বাক্যগাঁথনি, বলিষ্ঠ প্রকাশভংগীৰে নিজৰ অন্তৰৰ ভাৱৰাশিক আঁৰ নলগাকৈ অন্তৰ খুলি উপস্থাপন কৰাৰ ফলত তেওঁৰ গদ্য সমৃদ্ধিশালী হৈ উঠিছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

লিখক বা সাহিত্যিকৰ অভিজ্ঞতা, শৈলী আৰু সময়ৰ প্রভাৱে সাহিত্যৰ গদ্যক নতুন নতুনকৈ ৰূপ দি থাকে। তেতিয়া অনুসন্ধিৎসু আৰু হৃদয়গ্রাহী পাঠকে গদ্যৰ বৈচিত্র্যসহ নতুন নতুন দিশ আৰু শৈলীৰ লগত পৰিচয় হোৱাৰ সুবিধা লাভ কৰাৰ লগতে পাঠকসকলৰ ৰুচি-অভিৰুচিয়েও নতুন আস্বাদন লাভ কৰে। বিশিষ্ট লিখকৰ সাহিত্যিক শৈলী আৰু দিশবোৰৰ সৈতে চিনাকি হোৱাতো একান্ত বাঞ্ছনীয়, সেই দৃষ্টিৰে আমি সাহিত্যিক একোগৰাকীৰ জীৱনক বিশ্লেষণাত্মক দৃষ্টিকোণৰ পৰা আলোকপাত কৰিব পাৰোঁহঁক। সেয়েহে অসমীয়া সাহিত্যজগতৰ বিশিষ্ট লেখক মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যকৃতিৰ ওপৰত বিশ্লেষণাত্মকভাৱে আলোচনা কৰি তেওঁৰ ৰচনাৰ ভাষা আৰু নিজস্ব শৈলী সম্পর্কে পৰিচয় দিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

প্রস্তুত অধ্যয়নৰ ক্ষেত্রত বর্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সমান্তৰালভাৱে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গদ্যৰীতি ঃ

১.১ শব্দচয়ন ঃ

সাহিত্যৰ সকলো ৰূপতে শব্দই সকলো। শব্দৰ মায়াজালেৰে সাহিত্যিকে ন ন চিত্রৰ সৃষ্টি কৰে। সুদক্ষ লেখকে বক্তব্য বিষয় ৰমণীয় কৰি তুলিবলৈ যথোপযুক্ত শব্দ নির্বাচন কৰি ৰচনাত যথাযথভাৱে ব্যৱহাৰ কৰে। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যৰ শব্দ সম্ভাৰলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায়, তেওঁৰ গদ্যত তৎসম শব্দৰ প্রয়োগ সর্বাধিক। অৱশ্যে তৎসম শব্দৰ সমান্তৰালভাৱে ইংৰাজী, হিন্দী শব্দৰ লগতে বিষয়বস্তুৰ লগত সংগতি ৰক্ষা কৰি ঔপভাষিক শব্দও তেওঁৰ সাহিত্যত গুৰুত্ব সহকাৰে ব্যৱহৃত হৈছে। এইবোৰৰ দৰে অর্ধতৎসম, তদ্ভৱ আৰু বাংলা শব্দ সাহিত্যত ব্যৱহাৰ কৰিছে যদিও ই ব্যাপক নহয়। এনে কেতবোৰ শব্দৰ উদাহৰণ—

তৎসম শব্দ ঃ অগ্নি, উচ্চ, চন্দ্র, জন্ম, নগ্ন, পদ্ম, পুত্র, পুষ্প, বস্ত্র, ভ্রমৰ, মুদ্রা, যন্ত্রণা, লগ্নী, শত্রু, শিষ্য, শৃংগাৰ, সমুদ্র, সংগীত, হস্তী ইত্যাদি।

অর্ধতৎসম শব্দ ঃ বাইক, ভকত, মগন, যতন, শকতি ইত্যাদি।

তদ্ভৱ শব্দ ঃ কাম, গাঁও, চকু, জোনাক, সপোন ইত্যাদি।

ইংৰাজী শব্দ ঃ অর্ডাৰ, Captain, British, Friend, Policy, Keep, Suicide ইত্যাদি।

হিন্দী শব্দ ঃ খানা, গাইব, চফেদ, চক্কৰ, জৰুৰ, দিদি, নিকাল, প্যাৰী, মালুম, লড়কা ইত্যাদি।

বাংলা শব্দ ঃ কেও, চিৰদিন, জল, নক্ষত্রে, ফাল্গুন, ভালবাসা, ৰক্ত ইত্যাদি।

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যৰ শব্দ ব্যৱহাৰৰ এটা প্রধান আকর্ষণীয় বৈশিষ্ট্য হৈছে ঔপভাষিক শব্দ প্রয়োগ। তেওঁৰ 'দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা' আৰু 'ভিক্ষাৰ পাত্র ভাঙি' উপন্যাস দুখনৰ চৰিত্রসমূহৰ সংলাপত অত্যধিক পৰিমাণে দক্ষিণ কামৰূপৰ কথিত ভাষাৰ অনেক শব্দ দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। উল্লেখযোগ্য যে, উপন্যাস দুখনৰ কাহিনীৰ লগতে প্রায় চৰিত্রই দক্ষিণ কামৰূপৰ পৰা বুটলি অনা। সেয়ে বিষয়বস্তু, পৰিস্থিতি আৰু চৰিত্র অনুযায়ী বক্তব্য বিষয়ক স্পষ্টভাৱে উপস্থাপন কৰি পাঠকৰ মনোগ্রাহী কৰি তুলিবলৈ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে ঔপভাষিক শব্দৰ ব্যৱহাৰ কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে— আপা, আপী, আবু, কাঁথি, কুৰ্মা, গহে, ডিমা, ঢেঁখাল, তিৰি, পন্তা ভাত, পাগালা ইত্যাদি।

ইয়াৰ উপৰি, মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যত দ্বিৰুক্তিবাচক শব্দ, অনুকাৰ শব্দ, সন্ধিযুক্ত শব্দ, যৌগিক শব্দ, অনুপ্রাস শব্দ, সমাসযুক্ত শব্দ, সমার্থক শব্দ, জতুৰা শব্দ আদিৰ ব্যৱহাৰ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। এনে শব্দৰ ব্যৱহাৰে বক্তব্য বিষয়ক স্পষ্ট কৰি তুলিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

দ্বিৰুক্তিবাচক শব্দ ঃ কঁপি কঁপি, কাণে কাণে, খুচি খুচি, তিতি তিতি, পাছে পাছে, মনে মনে ইত্যাদি।

অনুকাৰ শব্দ ঃ কক্‌কক্, কিচিৰ মিচিৰ, খিল্‌খিল্, চপ্‌চপ্, ঢেক্‌ঢেক্, দপ্‌দপ্, ভোৰ্‌ভোৰ্ ইত্যাদি।

সমাসযুক্ত শব্দ ঃ চক্রধৰ, জঁটাধাৰী, ত্রয়োদশী, পিতল চকুৱা, পীতাম্বৰ, পূর্বপুৰুষ ইত্যাদি।

সন্ধিযুক্ত শব্দ ঃ আত্মোপলব্ধি, দেবেন্দ্র, পুনৰুত্থান, ৰাক্ষসৰাজ, কেশবানন্দ ইত্যাদি।

যৌগিক শব্দ ঃ কালসর্প, যোৱাৰাতি, ৰাজতিলক, ৰামলীলা, শোকসাগৰ, সুৱর্ণকলহ, হৰিনাৰায়ণ ইত্যাদি।

অনুপ্রাস শব্দ ঃ কুচি মুচি, জা-জলপান, পা-পৰিয়াল, বিয়া-বাৰু, মানুহ-দুনুহ, সা-সম্পত্তি ইত্যাদি।

সমার্থক শব্দ ঃ অর্থ-কড়ি, টকা-সিকি, দণ্ড-শাস্তি, নথি-পত্র, মদ-সুৰা, ৰীতি-নীতি ইত্যাদি।

জতুৱা শব্দ ঃ এঙামুৰি, জোঁটপোট, তেজখোৱা, থেৰোঁগেৰোঁ, পাহোৱাল ইত্যাদি।

১.২ ঃ বাক্যৰীতি ঃ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যত বাক্যৰ গঠন-ৰীতিত স্বকীয় বৈশিষ্ট্য প্রতিফলিত হৈছে। তেওঁ সাহিত্যত বাক্যৰ ব্যাকৰণগত নিয়মেৰে সৰল, জটিল আৰু যৌগিক তিনিও ধৰণৰ বাক্য প্রয়োগ কৰাৰ উপৰি ভাৱবোধক, প্রশ্নবোধক আদি বাক্য সফলতাৰে ব্যৱহাৰ কৰিছে। তদুপৰি বিষয়বস্তু সাৱলীলভাৱে উপস্থাপন কৰাৰ বাবে তেওঁ কিছুমান বাক্য মান্য আৰু কথিত ভাষাৰ সংমিশ্রণেৰে গঠন কৰিছে, কিছুমান বাক্য অসমীয়া বাক্য একোটাৰ মাজত হিন্দী বা ইংৰাজী শব্দ সুমোৱাই ৰচনা কৰাৰ লগতে প্রয়োজন

বিশেষে হিন্দী, ইংৰাজী আদি বাক্যও সাহিত্যত সন্নিবিষ্ট কৰিছে। ৰচনাবিশেষত কেৱল চুটি বা কেৱল দীঘল বাক্য ব্যৱহাৰ কৰিলে পাঠক বিৰক্ত হ'ব পাৰে, সেয়ে মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে দক্ষতাৰে ৰচনাত দীঘল বা চুটি বাক্যৰ সমন্বয় সাধন কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

চুটি, সৰল বাক্য ঃ

'মই মূৰ দুপিয়ালোঁ। আকৌ মই পঢ়াত মনোযোগ দিলোঁ। অলপ সময়হে। এদিনৰ কথা মোৰ হঠাতে মনত পৰিল, যোৱা মাহত মোৰ জন্মদিন হৈ গ'ল।'[৩]

দীঘল বাক্য ঃ

'কুঁহিয়াৰৰ খেতিত হাড় ভগা পৰিশ্রম কৰাৰ পাছত ৰামচৰিত মানসৰ দোহা শুনি তেওঁলোকে যি আনন্দ লাভ কৰিছিল, সেই আনন্দৰ কথা আপোনালোকে আজি কল্পনা কৰিব পাৰিবনে?'[৪]

প্রশ্নবোধক বাক্য ঃ

'সজীৱ হৈ আছে সেই শিক্ষয়িত্রীবোৰৰ ছবিবোৰ? মিছ ড্যুৰপ? মিছ হলটিন? মিছ নীল? মিছেছ ক'লমেন?'[৫]

ভাৱবোধক বাক্য ঃ

'মই সোণালী বহীখনৰ কথা ক'লোঁ। বহীখন তাই ফালি পেলালে। তই মোক চাদৰৰ আঁচলেৰে বান্ধি থ'বি দেই মা। মা। তই মোক এৰি নিদিবি। তই মোক এৰি নিদিবি। পেটৰ বিষটো উঠিছে। বৰ বিষ। বৰ বিষ।'[৬]

সম্পূর্ণ কথিত ভাষাৰ বাক্য ঃ

'তপত ভাতৰ ধহাই ধচ্ছিল ধেকুৰাক।'[৭]

মান্য কথিত ভাষাৰ সংমিশ্রণত সৃষ্ট বাক্য ঃ

'মোৰ ভয় হৈছি, তুমি গুচি যাবি।'[৮]

ইংৰাজী শব্দ মিহলি সজা বাক্য ঃ

'শ্রমিকৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ফিটাৰ, ক্রেইন, অপাৰেটাৰ, ট্রাক ড্রাইভাৰ, ইউনিয়নৰ ছেক্রেটৰি, এক্সিকিউটিভ মেম্বাৰ, একাউণ্টেণ্ট, টাইম কীপাৰ প্রত্যেকেই ইঞ্জিনীয়াৰবোৰক ঘেৰাও কৰিলে।'[৯]

হিন্দী শব্দ মিহলি সজা বাক্য ঃ

'তুমি এই জুগ্‌গী জুপুৰীৰ মানুহৰ কথা ভাবিব এৰা—ওন্‌লোগ...ওন্‌লোগ নালীকে কীড়ে হ্যায়—নালী মেহি ৰহেংগে।'[১০]

বিশেষ মন কৰিবলগীয়া যে, মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে নাৰীৰ কোনো কোনো অৱস্থাক ইংগিতপূর্ণভাৱে বুজাবলৈ সাহিত্যত কিছুমান ইংগিতপূর্ণ বাক্যৰ প্রয়োগ কৰিছে। এই বাক্যবোৰ চুটি চুটি, কিন্তু অর্থপূর্ণ। উদাহৰণস্বৰূপে—'দঁতাল হাতীৰ উঁয়ে খোৱা হাওদা' উপন্যাসত নাৰীৰ সতীত্ব নাশ হোৱা অর্থত ব্যৱহৃত ইংগিতপূর্ণ বাক্য—

'আই ছিকৌ। আই ছিকৌ। একেবাৰে ধর্মই নষ্ট কল্লা নেকি?'[১১]

ইয়াৰ উপৰি, মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যত প্রতিফলিত হোৱা কিছুমান চৰিত্রই চুটি চুটি বাক্যৰে পাঠকক যেন প্রশ্ন কৰি উত্তৰ বিচাৰি ফুৰিছে। এনে ৰীতি প্রয়োগেৰে তেওঁ সাহিত্যত এক নতুন ৰূপ দিছে বুলিব পাৰি। উদাহৰণস্বৰূপে—

'এনে মানসিক অৱস্থা কাৰোবাৰ হৈছেনে?'[১২]

'ব্রজৰ এই পবিত্র ভূমিলৈ এনে তিৰোতা কেতিয়াবা আহিছেনে?'[১৩]

১.৩ অনুচ্ছেদ ঃ

অনুচ্ছেদ ৰচনাৰ এটা বিশেষ বৈশিষ্ট্য হ'ল অনচ্ছেদটোৰ মূল বক্তব্যটো এটা নির্দিষ্ট বাক্যক আশ্রয় কৰি অনুচ্ছেদটোৰ অন্তর্ভুক্ত বাক্যৰাজিয়ে বিকাশ লাভ কৰে। সাধাৰণতে অপ্রয়োজনীয় ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র অনুচ্ছেদ বিভাজন বা অতিমাত্রা দীঘলীয়া অনুচ্ছেদে ৰচনাৰীতিৰ সৌন্দর্য হ্রাস কৰে। সেয়েহে সাহিত্য নির্মাণ কৰোঁতে সুদক্ষ লেখকসকলে এই সকলোবোৰ দিশৰ প্রতি চকু দিয়া দেখা যায়। এইক্ষেত্রত মামণি ৰয়ছম গোস্বামী বিশেষভাৱে সচেতন। তেওঁ মধ্যম গঢ়ৰ আৰু চুটি চুটি অনুচ্ছেদ নির্মাণ কৰি বিষয়বস্তুৰ একোটা দিশ একোটা অনুচ্ছেদত সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

'...২৮ ছেপ্টেম্বৰ। চীনা প্রাতঃসঙ্গীতৰ ধ্বনিত সাৰ পাই উঠিলোঁ। কুঁৱলিয়ে আৱৰি আছে কুৱেলালামপুৰ চহৰ। ওপৰ মহলাৰ পৰা তললৈ চাই দেখিলো হোটেলৰ সন্মুখত আলিৰ দাঁতিত ঠাহ খাই আছে টয়টা পিগৰাট, মাজদা, মার্ছিডিছ গাড়ীৰ শাৰী।

...পুৱা টুৰিষ্ট ডিপার্টমেণ্টৰ পৰা খবৰ আহিল তেওঁলোকে এজন ভাৰতীয় গাইডৰ সৈতে হিলটন হোটেললৈ টুৰিষ্ট বাছ পঠিয়াই দিব। আমি কুৱেলালামপুৰ চহৰ পুংখানুপুংখভাৱে চাব পাৰিম।

...কুৱেলালামপুৰৰ আটাইতকৈ প্ৰখ্যাত হোটেল 'হিলটন। বম্বেৰ তাজ নাইবা দিল্লীৰ অশোকাৰ লগত বিশেষ তুলনা নহয়। ভাৰ হয় এইখন এখন সম্পূৰ্ণ ভিন্ন পৃথিৱী। কাৰ পাৰ্কত থিয় হৈ দেখিলো চীনা ল'ৰা-ছোৱালী কিছুমানে অটোগ্ৰাফ হাতত লৈ মহিলা এগৰাকীক বেৰি ধৰিছে। বুজিবলৈ বাকী নেথাকিল সেইগৰাকী হলিউডৰ এগৰাকী প্ৰখ্যাত চিত্ৰাভিনেত্ৰী। প্ৰথম ফ্ৰ'ৰলৈ উঠি যোৱা চিৰিকেইটাৰ ওচৰত ফুল-লতাৰে আবৃত এটি জলপ্ৰপাত দেখিলো। এই প্ৰথম ফ্লু'ৰত ভৰি আছে কিছুমান বিচিত্ৰ দোকান। সুদূৰ গুৱেনাৰ পৰা আৰম্ভ কৰি চীনলৈ বিয়পি থকা দেশসমূহৰ পৰা অনা কাঠৰ বিভিন্ন হস্তশিল্প আৰু আঁতৰৰ সমাৰোহ এইবোৰত। ইন্দোনেছিয়াৰ 'ৰজ উড'ৰ মাছুৰৈ, চীনৰ ম'হৰ ওপৰত উঠি থকা বালক আৰু বালি দ্বীপৰ লেগঙ্গ নৃত্যৰ তালে তালে নাচি থকা ৰমণীহঁতৰ কাঠৰ মূৰ্তিসমূহৰ পৰা চকু আঁতৰাই অনাই মস্কিল হৈ পৰিল।'[১৪]

১.৪ **লয়** ঃ

লেখকৰ বক্তব্য ভাৱৰাশি স্পষ্ট, মনোগ্ৰাহী আৰু শ্ৰুতিমধুৰ কৰি তুলিবলৈ ৰচনাত লয়ৰ প্ৰয়োজন অপৰিহাৰ্য। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যত অতি স্বাভাৱিক ৰূপত লয় অনুৰণিত হৈছে। তেওঁ সহজ-সৰল, সাৱলীল আৰু ইংগিতময় প্ৰতীকাত্মক ভাষাৰ উপৰি সাহিত্যত উপমা, চিত্ৰকল্প আদি বিবিধ অলংকাৰ প্ৰয়োগ কৰাৰ বাবে অনেক স্থানতে পাঠকৰ হৃদয়ত এক সুন্দৰ লয় অনুভূত হয়। উদাহৰণস্বৰূপে—

'...আৰু সেই অতীব ৰমণীয় নিকুঞ্জ বন। য'ত বগা ফুলৰ জোপোহাবোৰে তলমূৰ কৰি ব্ৰজৰ অমূল্য ৰজ সাৱটি আত্মহাৰা হৈ আছে। এটা সময়ত এই জোপোহাবোৰে ৰাধাৰ ভৰিৰ নুপূৰৰ দৰে ফুল প্ৰসৰ কৰে আৰু গভীৰভাৱে কাণ পাতি থাকিলে ভাৰ হয়—সেই 'ঝন ঝন' অলৌকিক শব্দেৰে যেন ব্ৰজৰ চৌদিশ মুখৰ হৈ আছে।' [১৫]

১.৫ **অলংকাৰ** ঃ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যত অলংকাৰৰ প্ৰয়োগ মন কৰিবলগীয়া। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে সাহিত্যত কৌশলগতভাৱে অলংকাৰৰ প্ৰয়োগ কৰি বক্তব্যক সহজবোধ্য আৰু মনোৰম ৰূপত পাঠকৰ আগত তুলি ধৰিছে। তেওঁ সাহিত্যত বিভিন্ন অলংকাৰৰ প্ৰয়োগ কৰিছে যদিও উপমা অলংকাৰৰ বেছি প্ৰাধান্য লক্ষ্য কৰা যায়। বিভিন্ন বিষয় স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশৰ বাবে সহজতে তেওঁ উপমা অলংকাৰৰ আশ্ৰয় লৈছে। উল্লেখ্য যে, গতানুগতিক সাহিত্যত প্ৰয়োগ হোৱা উপমাক মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে সাহিত্যত প্ৰয়োগ নকৰি এনে কিছুমান উপমা প্ৰয়োগ কৰিছে, যিবোৰ অসমীয়া সাহিত্যত বিৰল। উদাহৰণস্বৰূপে, আধা পকা অমিতাৰ দৰে পূৰঠ শৰীৰ, বকফুলৰ দৰে গাৰ বৰণ, বাহি চুঙা পিঠাৰ দৰে গাৰ গোন্ধ, পকা চিৰালৰ দৰে কোমল শিশু, গাভৰুৰ চুলিৰ বেণীৰ দৰে জুৰি ইত্যাদি।

উপমা অলংকাৰৰ উপৰি মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে সাহিত্যত ব্যৱহৃত অন্যান্য অলংকাৰৰ উদাহৰণ—

অতিশয়োক্তি ঃ

'মানুহজনীৰ চকুত যেন জুইহে জ্বলি আছিল।'[১৬]

উৎপ্ৰেক্ষা ঃ

'বাঁহৰ জোপোহাবোৰত পুৱাৰ কুঁৱলিয়ে তেতিয়াও কাপোৰ এখনহে যেন পিন্ধাই আছিল।'[১৭]

অৰ্থান্তৰন্যাস ঃ

'তুলসী দাস ভাংগছৰ দৰে আছিল, কিন্তু শ্ৰীৰামৰ নামেই তেওঁক তুলসী গছলৈ ৰূপান্তৰিত কৰিলে।'[১৮]

অপহ্নুতি ঃ

'এয়া হাত নহয়, সাপৰ মোট, খহটা, শুকান।'[১৯]

উল্লেখ ঃ

'যাৰ শৰীৰ শংখ আৰু চক্ৰৰ দৰে সুন্দৰ, যাৰ ভূষণ বাঘৰ চাল, সেই কাশীৰ ঈশ্বৰ শংকৰক মই নমস্কাৰ কৰোঁ।'[২০]

১.৬ **জতুৱা ঠাঁচ, খণ্ডবাক্য, ফকৰা-যোজনা** ঃ

জতুৱা ঠাঁচ, খণ্ডবাক্য, ফকৰা-যোজনা আদি প্ৰত্যেক ভাষাৰে এক নিজস্ব সম্পদ। এইসমূহৰ ব্যৱহাৰে সাহিত্যিক আৰু বেছি ৰসাল, মনোৰম কৰি তোলাৰ লগতে লেখকৰ ব্যক্তিত্ব আৰু নিভাঁজ অসমীয়া মনটোৰো পৰিচয় দিয়ে। ভাষাৰ এই স্বকীয় সম্পদৰাজিক পূৰ্বৱৰ্তী লেখকসকলৰ দৰে মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়েও সাহিত্যৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। ইয়াৰ জৰিয়তে তেওঁৰ অসমীয়া জতুৱা ভাষাৰ সৈতে থকা ঘনিষ্ঠ সম্পৰ্ক, ইয়াৰ প্ৰতি থকা আন্তৰিকতা, দায়বদ্ধতা সুন্দৰ ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে। তেওঁৰ সাহিত্যত সন্নিবিষ্ট এনে জতুৱা ঠাঁচ, খণ্ডবাক্য, ফকৰা-যোজনা আদিৰ নিদৰ্শন তুলি ধৰা হ'ল—

জতুৱা ঠাঁচ, খণ্ডবাক্য ঃ

কথাৰ উঘা ঘুৰোৱা, থেৰোঁ-গেৰোঁ কৰা, পাবত গজা,

ডলাৰ বগৰী, ওভোটা নাচোন দিয়া, হাড়ত বন গজা, শিয়াল বুদ্ধি, তপত ভাতৰ ধোঁৱাই ধৰা, সান্দহ খোৱা বালি তল যোৱা, ওভোতা বাহত জুই লগা, ৰাউচি জুৰি কান্দ, পাত-পাতকৈ বিচাৰ, টনা-আজোঁৱা কৰা ইত্যাদি।

ফকৰা-যোজনা ঃ

(ক) 'আঁহ লুকাবা বাঁহ লুকাবা
গাল সোপোৱা ক'ত লুকাবা?' [২১]

(খ) 'আছো বগলী আছো চাই
ক'ৰ পানী ক'ত যায়।' [২২]

আনহাতে, লেখক এজনে মনৰ ভাৱ-অনুভূতি, বক্তব্য বিষয় আদি প্ৰকাশ কৰিবলৈ যাওঁকে কি ধৰণে আগবাঢ়ে, তাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি তেওঁৰ হাতত বিভিন্ন ৰীতি বা শৈলী গঢ় লৈ উঠে। সাধাৰণতে লেখকে বিষয়বস্তু পাঠকৰ আগত স্পষ্ট, আকৰ্ষণীয় আৰু প্ৰত্যয়জনক ৰূপত উপস্থাপন কৰিবলৈ যেনে ৰীতি বা শৈলীকেই সুচল বুলি ভাবে, সেই অনুসৰিয়েই তেওঁ বক্তব্য প্ৰকাশ কৰা দেখা যায়। মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যৰাজিৰ বিষয়বস্তু ইমান বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ যে স্বাভাৱিকতে ইয়াৰ মাজেদি বিভিন্ন ৰীতি বা শৈলীয়ে বিকাশ লাভ কৰিছে। বিষয়সংগতি ৰক্ষা কৰি কেতিয়াবা নাটকীয়, কোনো ক্ষেত্ৰত যুক্তিনিষ্ঠ নতুবা ক'ৰবাত মননশীল ৰীতিৰ প্ৰয়োগেৰে তেওঁ সাহিত্যিক আকৰ্ষণীয় কৰি তুলিছে। কিন্তু তেওঁৰ সাহিত্যত বৰ্ণনাত্মক ৰীতিৰ প্ৰয়োগে সৰ্বাধিক। বহুক্ষেত্ৰত তেওঁ সৰল আৰু পোনপটীয়াভাৱেই বিষয়বস্তুৰ বিশ্লেষণ আগবঢ়াইছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

'অধ্যাপক মীৰাঝকাৰ আৰু মই কাজিৰঙা অভয়াৰণ্য চাই উভতি আহিছিলোঁ। আমি দুয়ো দিল্লী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ 'ভাৰতীয় ভাষা বিভাগ'ত কাম কৰোঁ। ছাত্ৰসকলে বৰ আগ্ৰহেৰে পতা এক সভালৈ আমি দুয়ো নিমন্ত্ৰিত আলহী হৈ আহিছিলোঁ। আমি দুয়ো এখন এম্বেছেডৰত গুৱাহাটী অভিমুখে উভতিছিলোঁ। গাড়ীখন বৰ পুৰণা আছিল। সেয়ে আমি দিনে-পোহৰে উভতিছিলোঁ যাতে গুৱাহাটীত সোনকালে উপস্থিত হ'ব পাৰোঁ।' [২৩]

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ ৰচনাশৈলীৰ আন এটি লক্ষণীয় বিশেষত্ব হৈছে প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পৰ সঘন ব্যৱহাৰ, যিয়ে পৰিস্থিতিক আকৰ্ষণীয় কৰি তুলিছে। প্ৰতীকৰ প্ৰয়োগে তেওঁৰ সাহিত্যৰ ইংগিতময় ভাৱনাক অধিক শক্তিশালী কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—

'এদিন পুৱা শুকান কাগজৰ খৰমৰণিৰ দৰে শব্দ এটি শুনি সৌদামিনী সাৰ পাই উঠিল।...এইবোৰ বাঁকে বিহাৰীৰ সেই কেলেংকাৰীৰ কাগজবোৰ নেকি বাৰু? ...কিন্তু ওপৰলৈ মূৰ তুলি চাই তাইৰ বিস্ময়ৰ সীমা নাথাকিল। ওপৰত কাঠ আৰু ভগ্ন ইটাৰ অন্ধকাৰ সুৰঙ্গেৰে বাহিৰলৈ ওলাই আহিছে এডাল গোক্ষুৰ সাপ। তাৰ হালধীয়া গাটো খুপৰিৰ অন্ধকাৰৰ মাজত এচটা পোহৰৰ দৰে জিলিকি উঠিছে।' [২৪]

তদুপৰি মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে নাৰীৰ দেহক বুজাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা চিত্ৰকল্পৰ প্ৰয়োগ মন কৰিবলগীয়া—

'জগলীয়াৰ পানীত লুকা-ভাকু খেলা সোণালী মাছৰ দৰে আছিল ইলিমনৰ দেহৰ সেই অংশবোৰৰ ছবি।' [২৫]

'এইমাত্ৰ গা ধুই অহা বাবেই হয়তো তাইৰ গাটো নতুনকৈ কটা তৰমুজ ফলৰ দৰে জিলিকি আছে।' [২৬]

২.০ সিদ্ধান্ত ঃ

১) অসমীয়া সাহিত্য জগতত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ সাহিত্যৰ এক স্বকীয় পৰিচয় আছে। সাহিত্যৰ প্ৰায়বোৰ দিশতে বিশেষকৈ গল্প, উপন্যাস, অনুবাদ সাহিত্য, জীৱনী, আত্মজীৱনীমূলক ৰচনাৰ দিশত তেওঁৰ অৱদান উল্লেখযোগ্য।

২) মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ প্ৰকাশভংগীৰ কৌশল অতি উচ্চস্তৰৰ। তেওঁৰ ৰচনাৱলীত তৎসম, অৰ্ধতৎসম, ইংৰাজী, হিন্দী, বাংলা আদি বিশাল শব্দ ভাণ্ডাৰৰ পয়োভৰ পোৱা যায়। ইয়াৰ উপৰি, দক্ষিণ কামৰূপ অঞ্চলৰ কথিত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰি ভাষাটোৰ মৰ্যাদা বৃদ্ধি কৰিছে। প্ৰচুৰ পৰিমাণে ব্যৱহাৰ কৰা উপমা, প্ৰতীক, চিত্ৰকল্প, ফকৰা-যোজনা আদিয়ে মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ ৰচনা অধিক মনোগ্ৰাহী কৰি তুলিছে।

৩) বিচিত্ৰ বিষয়বস্তু আৰু ভিন্নধৰ্মী জীৱনচেতনাৰে সমৃদ্ধ গল্প-উপন্যাসৰ মাজত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীয়ে এক নিজস্ব ৰচনাশৈলী বা গদ্যৰীতি গঢ়ি তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ ৰচনাশৈলী বা গদ্যৰীতিৰ এক নিজস্ব স্থান আছে।

৩.০ সামৰণি ঃ

মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ শক্তিশালী ব্যক্তিত্ব, গভীৰ অধ্যয়ন, অসমীয়া ভাষাত থকা বিস্তৃত দখলৰ দ্বাৰা সাহিত্যত এটা সুকীয়া শৈলী গঢ়ি তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। তেওঁৰ বিশাল শব্দ সম্ভাৰ দেশী-বিদেশী বহুতো গ্ৰন্থ অধ্যয়নৰ

ফলতেই গঢ়ি উঠিছে। তেওঁৰ সাহিত্যত কথিত ভাষাক মান-মর্যাদাৰে তুলি ধৰি বিষয়বস্তু পাঠকৰ আগত জীৱন্ত ৰূপত উপস্থাপন কৰাৰ চেষ্টা কৰিছে। প্রতিটো বিষয়ৰ প্রতি থকা সূত্রে দৃষ্টি, আন্তৰিকতা আৰু ধাৰণাৰ লগতে বিচিত্র প্রকাশভংগীৰ বাবে মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ ৰচনাশৈলী হৈ উঠিছে সংবেদনশীল অথচ বলিষ্ঠ আৰু সংযমী অথচ সহজ আৰু সাৱলীল। তেওঁৰ এনে শক্তিশালী ৰচনাশৈলীয়ে অসমীয়া সাহিত্যক বহুখিনি আগবঢ়াই দি সমৃদ্ধ কৰিছে। ❑

প্রসংগটীকা ঃ

১। অর্পণা কোঁৱৰ ঃ প্রাচীন অসমীয়া গদ্য শৈলী, পৃষ্ঠা-৮
২। স্মৃতিৰেখা ভূঞা ঃ অসমীয়া গদ্যৰীতি 'জোনাকী'ৰ পৰা 'ৰামধেনু'লৈ, পৃষ্ঠা-৪৭
৩। হেমন্ত কুমাৰ ভৰালী (সম্পা.) ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্প সমগ্র, পৃষ্ঠা-১৫২
৪। হেমন্ত কুমাৰ ভৰালী (সম্পা.) ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাস সমগ্র, পৃষ্ঠা-২২১
৫। মামণি ৰয়ছম গোস্বামী ঃ উপন্যাস সমগ্র, পৃষ্ঠা-৪৮০-৪৮১
৬। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-৬৫৪
৭। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-১১
৮। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-৯৭
৯। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২৫৬
১০। হেমন্ত কুমাৰ ভৰালী (সম্পা.) ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্প সমগ্র, পৃষ্ঠা-৪৩০
১১। মামণি ৰয়ছম গোস্বামী ঃ পূর্বোক্ত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-১১০
১২। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২০৫
১৩। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২০৫
১৪। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-৪০৬
১৫। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-১৯৫
১৬। হেমন্ত কুমাৰ ভৰালী (সম্পা.) ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্প সমগ্র, পৃষ্ঠা-৩৩৯
১৭। মামণি ৰয়ছম গোস্বামী ঃ পূর্বোক্ত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২৪৬
১৮। হেমন্ত কুমাৰ ভৰালী (সম্পা.) ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাস সমগ্র, পৃষ্ঠা-১৯৭
১৯। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২৮৪
২০। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২৭৫
২১। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-১৯৭
২২। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২০৩
২৩। হেমন্ত কুমাৰ ভৰালী (সম্পা.) ঃ মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্প সমগ্র, পৃষ্ঠা-৩৪৯
২৪। মামণি ৰয়ছম গোস্বামী ঃ পূর্বোক্ত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২০৫
২৫। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-২০
২৬। উল্লিখিত গ্রন্থ, পৃষ্ঠা-৩৭

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ

১। গগৈ, মৌচম (সংক আৰু সম্পা.) ঃ *মামণি ৰয়ছম গোস্বামী ঃ জীৱন আৰু সাহিত্য,* কিৰণ প্রকাশন, ধেমাজি, প্রথম প্রকাশ, ২০১২
২। দত্ত নেওগ, বিভা (সম্পা.) ঃ *মামণি ৰয়ছম গোস্বামী স্মৰণ সৃজন মনন,* কিৰণ প্রকাশন, ধেমাজি, প্রথম প্রকাশ, ২০১২
৩। দুৱৰা, সপোন ঃ *ভাষা আৰু শৈলী,* ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্টৰ, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ২০০৮
৪। ভৰালী, হেমন্তকুমাৰ (সংক. আৰু সম্পা.) ঃ *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ গল্প সমগ্র, বনলতা,* গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ২০১১
৫। ভৰালী, হেমন্তকুমাৰ (সংক. আৰু সম্পা.) ঃ *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ উপন্যাস সমগ্র, বনলতা,* গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ২০১১
৬। ভূঞা, স্মৃতিৰেখা ঃ *অসমীয়া গদ্যৰীতি 'জোনাকী'ৰ পৰা 'ৰামধেনু'লৈ,* বৃষ্টি, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ২০১০
৭। হুছেইন, নিকুমণি (সম্পা.) ঃ *মামণি ৰয়ছম গোস্বামীৰ আভা আৰু প্রতিভা,* চন্দ্র প্রকাশ, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ২০০৮

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

উজনি অসমত প্রচলিত মাতৃভাষাৰ ভাওনা ঃ এক সামগ্রিক বিশ্লেষণ

ড° মানৱ জ্যোতি বৰা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
ছয়গাওঁ মহাবিদ্যালয়
অসম -৭৮১১২৪
৯১০১৪১১৪৯৮
manabjyoti101@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

অসমীয়া জনজীৱনত একশৰণ নামধর্মৰ প্রচাৰৰ এক অন্যতম বাহক হিচাপে শংকৰদেৱে অংকীয়া নাট সৃষ্টি কৰি অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিলৈ এক গুৰুত্বপূর্ণ অৱদান আগবঢ়াইছে। কালক্রমত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ মৃত্যুৰ পিছত অংকীয়া নাটসমূহৰ পৰাই ৰূপান্তৰ ঘটি মাতৃভাষাত অর্থাৎ অংকীয়া নাটত ব্যৱহৃত ব্রজাৱলীৰ পৰিৱর্তে অসমীয়া ভাষাত লিখা নাটৰ সৃষ্টি হ'বলৈ ধৰে। উজনি অসমৰ জিলাসমূহ ঘাইকৈ তিনিচুকীয়া, ডিব্রুগড়, শিৱসাগৰ, যোৰহাট, গোলাঘাট, লখিমপুৰ, ধেমাজি আদিত এই মাতৃভাষাৰ ভাওনাসমূহ বহুলভাৱে জনপ্রিয়। যোৱা প্রায় ডেৰশ-দুশ বছৰ ধৰি উজনি অসমৰ গাঁৱৰ ৰাইজৰ মাজত এক সুকীয়া আসন গ্রহণ কৰি থকা এই মাতৃভাষাৰ ভাওনা সম্পর্কে বর্তমানেও কিন্তু বিদ্যৎ মহলত চর্চা অতি সীমিত পৰিসৰত হৈ আহিছে। প্রস্তাৱিত আলোচনা পত্রখনত উজনি অসমত প্রচলিত মাতৃভাষাৰ ভাওনা সম্পর্কে যথাসম্ভৱ এক সামগ্রিক বিশ্লেষণ দাঙি ধৰাৰ চেষ্টা কৰা হ'ব।

এই আলোচনা পত্রখন প্রস্তুত কৰোঁতে প্রধানত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব। ইয়াৰ লগতে ঠায়ে ঠায়ে বর্ণনাত্মক আৰু তুলনামূলক পদ্ধতি ব্যৱহাৰৰ অৱকাশ থাকিলে এই দুয়োটা পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

মাতৃভাষাৰ ভাওনা, অংকীয়া নাট, উপস্থাপন শৈলী, নাটৰ ভাষা।

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

অসমীয়া সমাজত নৱবৈষ্ণৱ ধর্মৰ প্রচাৰ আৰু প্রসাৰ তথা লোকৰঞ্জনৰ মাধ্যম হিচাপে শংকৰদেৱে অংকীয়া নাটৰ সৃষ্টি কৰে। শংকৰদেৱৰ পৰৱর্তী কিছু সময়লৈকে অংকীয়া নাটৰ আর্হিতে নাটসমূহ ৰচনা হৈ আহিছিল যদিও কোনো কোনোৱে অংকীয়া নাটৰ ব্রজাৱলী/ব্রজবুলি ভাষাক পৰিহাৰ কৰি অসমীয়া ভাষাত নাট ৰচনা কৰিবলৈ ধৰে। নাটসমূহ ৰচনা কৰাই একমাত্র কথা নহয়, ইয়াৰ লগত অভিনয়ৰ দিশটোৱো জড়িত হৈ আছে। বিভিন্ন উপলক্ষত যেনে সন্ত-মহন্তসকলৰ তিথি-মহোৎসৱ, জন্মষ্টমী, দৌলযাত্রা আদি বিভিন্ন ধর্মীয় উৎসৱ উপলক্ষে এই নাটসমূহ মঞ্চস্থ কৰা হৈছিল। কেৱল সাহিত্য ৰচনাৰ বুলি এটা দিশতেই এই নাটসমূহ ৰচনাৰ ক্ষেত্রত সীমাৱদ্ধ হৈ নাথাকি কালক্রমত সত্রৰ সত্রাধিকাৰ উঠিবলৈ হ'লেও এখন নাট ৰচনাৰ পৰম্পৰা গঢ় লৈ উঠিছিল। পিছলৈ যেতিয়া সাধাৰণ লোকেও এই নাটসমূহৰ অভিনয় অর্থাৎ ভাওনাত বিভিন্ন চৰিত্রত অভিনয় কৰিবলৈ সুবিধা লাভ কৰে তেতিয়া সত্রৰ পৰা গাঁৱৰ নামঘৰলৈ এই ভাওনাৰ ব্যাপকতা বিয়পি পৰে আৰু নামঘৰসমূহো অভিনয়ৰ কেন্দ্রে হৈ পৰে। সত্র-নামঘৰ আদিৰ বাহিৰেও আহোম ৰাজসভালৈও ভাওনাই বিস্তৃতি লাভ কৰে। শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ হাতত যি

ব্রজাৱলী ভাষাত অংকীয়া নাট ৰচনাৰ কৌশল গঢ় লয় সেই পৰম্পৰা বৰ বেছি দিনলৈ অক্ষুণ্ণ নাথাকিল।

০.১ বিষয়ৰ গুৰুত্ব ঃ

উজনি অসমত সাংস্কৃতিক-সামাজিক ক্ষেত্ৰত ভাওনাৰ স্থান সাম্প্ৰতিক সময়তো বহুলভাৱে জনপ্ৰিয় আৰু কেৱল জনপ্ৰিয়ই নহয় ভাওনাৰ এক সুকীয়া আধ্যাত্মিক মৰ্যাদাও বিৰাজমান। সাতটা বৰসবাহৰ ফল এখন ভাওনাতে পোৱা যায় বুলি এক বিশ্বাস এই অঞ্চলত প্ৰচলিত। সাংস্কৃতিক বা সামাজিক ক্ষেত্ৰৰ লগতে এই ভাওনাসমূহৰ নাটসমূহৰ সাহিত্যিক মূল্যায়নৰো অৱকাশ আছে। অংকীয়া নাট সম্পৰ্কে ইতিমধ্যে যথেষ্ট গৱেষণা বা আলোচনা আদি হৈছে যদিও মাতৃভাষাৰ ভাওনা সম্পৰ্কে এতিয়াও বৰ এটা বিশাল পৰিসৰত আলোচনা হোৱা দেখা নাযায়। গতিকে এই বিষয়টোৰ সম্পৰ্কে আলোচনাৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব দেখা যায়।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

অসমত শংকৰোত্তৰ যুগত অংকীয়া নাটে কিদৰে পৰিৱৰ্তিত হৈ মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ ৰূপ ল'লে আৰু আৰু এই ভাওনাৰ স্বৰূপ অংকীয়া নাটতকৈ কিদৰে সুকীয়া তথা মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ নাটৰ গদ্য, উপস্থাপন শৈলী আদি কেনেধৰণৰ এই সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ কৰাই আলোচনা পত্ৰখনৰ মূল উদ্দেশ্য। ইয়াৰ লগতে সাম্প্ৰতিক সময়ত মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ স্থান কেনেধৰণৰ তাৰো স্বৰূপ নিৰ্ণয় কৰাৰ যত্ন কৰা হ'ব।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

মাতৃভাষাৰ ভাওনা অংকীয়া নাটৰ পৰাই পিছলৈ উদ্ভৱ হোৱা এক বিৱৰ্তিত ৰূপ। এখন আলোচনা পত্ৰৰ মাজত এনে এটা বিশাল পৰিসৰৰ বিষয়ক সামৰি ৰখা সম্ভৱ নহয়। গতিকে আলোচনা পত্ৰখনৰ বিষয়টোৰ ওপৰত যথাসম্ভৱ আলোকপাত কৰি এক চমু বিশ্লেষণহে দাঙি ধৰাৰ যত্ন কৰা হ'ব।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে প্ৰধানত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ'ব। ইয়াৰ লগতে ঠাই বিশেষে অৱকাশ থাকিলে বৰ্ণনাত্মক আৰু তুলনামূলক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হ'ব।

০.৫ তথ্য সংগ্ৰহৰ পদ্ধতি আৰু উৎস ঃ

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্য আৰু গৌণ এই দুয়োটা উৎসৰে সহায় লোৱা হ'ব। মুখ্য উৎস হিচাপে নামঘৰ অথবা অন্যান্য স্থানত পৰিৱেশন কৰা ভাওনাৰ প্ৰত্যক্ষ অভিজ্ঞতাক সামৰি লৈ গৌণ উৎস হিচাপে এই সম্পৰ্কে আলোচিত অন্যান্য গ্ৰন্থ, আলোচনী আদিৰ লগতে ইণ্টাৰনেটৰ সহায় লৈ বিভিন্ন সামাজিক মাধ্যম যেনে ইউটিউব, ফেচবুক আদিত উপলব্ধ ভিডিঅ' আদিৰ সহায় লোৱা হ'ব।

১.০ মূল আলোচনা ঃ

বৰ্তমান সময়ত ভাওনা বুলি ক'লে আমি যিধৰণে বুজি পাওঁ সেই নামকৰণ শংকৰদেৱ বা মাধৱদেৱে কৰা নহয়, এয়া পৰৱৰ্তী সময়ৰহে সংযোজন। শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱে তেওঁলোকৰ দ্বাৰা ৰচিত নাটসমূহত 'নাট', 'নাটক', আৰু 'যাত্ৰা' এই তিনিটা শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰিছিল যদিও 'অংকীয়া' এই বিশেষণটো ক'তো যোগ দিয়া নাছিল। সংস্কৃত দশৰূপক (নাটকম্, প্ৰকৰণম, ভাণঃ, ব্যায়োগ, সমৱকাৰ, ডিমঃ, ইহামৃগ, অংকঃ বীথী আৰু প্ৰহসনম্)ৰ এটা অন্যতম প্ৰকাৰ বা ৰূপক হৈছে 'অংক'। এই 'অংক' শব্দৰ লগতেই 'ঈয়া' প্ৰত্যয় যোগ হৈ অংকীয়া শব্দটো নিষ্পন্ন হৈছে।

অংকীয়া নাট বা অংকীয়া ভাওনাৰ পৰা মাতৃভাষাৰ ভাওনালৈ হোৱা পৰিৱৰ্তন এদিনতে হোৱা নহয়। সংস্কৃতিৰ যি অন্তঃসলিল সোঁত সেই সোঁতত পৰিৱৰ্তন লাহে লাহে চলি তাকে আৰু এদিন সিয়েই মানুহৰ চকুত পাৰ্থক্য হৈ ধৰা দিয়ে। শংকৰদেৱে সৃষ্টি কৰা অংকীয়া নাটৰ আৰ্হিক সম্পূৰ্ণৰূপে মাধৱদেৱেও অনুকৰণ নকৰি কিছু এৰা-ধৰাকৈ নিজস্ব কৌশলেৰে নাট ৰচনা কৰিছিল। ইয়াৰ লগতে মাধৱদেৱৰ নাটৰ ভাষাও আছিল শংকৰদেৱৰ নাটৰ ভাষাতকৈ কিছু পৃথক। এই সম্পৰ্কে এটা মন্তব্য প্ৰণিধানযোগ্য—

"অসমীয়া শব্দাৱলীৰ লগত বহুতো অনা-অসমীয়া শব্দ মিলি শংকৰদেৱৰ হাতত যি ব্ৰজাৱলী ভাষা সুস্থ আৰু পূৰ্ণ ৰূপত দেখা দিছিল, আনকি মাধৱদেৱৰ হাততেই তাৰ সুস্থতা সামান্যভাৱে কমি যোৱাৰ উপক্ৰম হয়। তেওঁৰ নাটসমূহৰ কিছুমান গীতত পুৰণি অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰয়োগ দেখিবলৈ পোৱা যায়। তাৰ উপৰিও গদ্যৰো কোনো কোনো অংশই বিশেষভাৱে অসমীয়া শব্দসমূহকে সামৰি লৈ প্ৰায় অসমীয়া ঠাঁচত ৰূপ লোৱা দেখা যায়।" (শৰ্ম্মাদলৈ ৩২)

মাধৱদেৱৰ এই আৰ্হিয়ে পৰৱৰ্তী সময়ত নাট্যাকৰসকলক অংকীয়া নাটৰ বৈশিষ্ট্যসমূহৰ পৰা আঁতৰি আহিও নাট ৰচনা কৰাৰ প্ৰক্ৰিয়াক পৰোক্ষভাৱে হ'লেও সাহস যোগায়। অৱশ্যে অংকীয়া নাটৰ পৰা মাতৃভাষাৰ ভাওনালৈ এই যাত্ৰাটোত বহু কাৰকে ক্ৰিয়া কৰি আহিছিল। ইয়াৰে এটা প্ৰধান কাৰক আছিল

শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ পৰৱৰ্তী সময়ৰ নাট্যকাৰসকলৰ মৌলিকতাৰ অভাৱ তথা ব্ৰজাৱলী ভাষাত দুৰ্বলতা। শংকৰোত্তৰ যুগৰ নাট্যকাৰসকলে অংকীয়া নাটৰ বৈশিষ্ট্যৰ পৰা আঁতৰি আহি কথাৰ কটাকটি, লম্ফ-জম্ফ আৰু যুদ্ধৰ প্ৰাধান্য বেছি থকা নাট ৰচনা কৰিবলৈ লয়। এই নাটসমূহৰ কাহিনী মূলতঃ ৰামায়ণ, মহাভাৰত, ভাগৱত, পু�ৰাণ আদিৰ পৰা আহৰণ কৰা। ইয়াৰ বাহিৰেও সময়ৰ লগতে লগে আৰ্থ-সামাজিক আৰু ৰাজনৈতিক পৰিৱৰ্তনৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত অংকীয়া নাট ভাওনা কেইবাটাও ৰূপত বিকশিত হৈ উঠিছিল। সেই ৰূপসমূহৰ ভিতৰত (ক) ধূৱা ভাওনা, (খ) অংকীয়া নাট প্ৰভাৱিত সংস্কৃত নাট, (গ) ফৌজীয়া ভাওনা, (ঘ) পালাগান বা যাত্ৰা, (ঙ) বঙালী ভাওনা আৰু (চ) মাতৃভাষাৰ ভাওনা। (শইকীয়া, মাণিক ৪৩)

মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ ৰচনাৰ আৰম্ভণিৰ ক্ষেত্ৰত এখন ৰূপকধৰ্মী নাটকৰ নাম উল্লেখযোগ্য সয়ো হৈছে নাট্যকাৰ কৃষ্ণ মিশ্ৰৰ 'প্ৰবোধচন্দ্ৰোদয়'ৰ অসমীয়া ৰূপান্তৰ দ্বিজ মহীন্দ্ৰৰ 'বোধোদয়'। আউনীআটী সত্ৰৰ প্ৰতিষ্ঠাতা নিৰঞ্জনদেৱে 'মহামোহ' নাট ৰচনা কৰি ভাওনা কৰাইছিল আৰু এইনাটখনো প্ৰবোধ-চন্দ্ৰোদয়ৰে অসমীয়া (?) ৰূপান্তৰ হোৱাৰ সম্ভাৱনা আছে। এই সম্পৰ্কত মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ এজন বিশেষজ্ঞ সমালোচক পৰেশ চন্দ্ৰ বৰাই নিৰঞ্জনদেৱেই প্ৰথম 'প্ৰবোধচন্দ্ৰোদয়'ৰ অনুবাদৰ মাধ্যমেৰে প্ৰথম মাতৃভাষাত নাট ৰচনা কৰা বুলি মন্তব্য কৰিছে— "তথ্য মতে মাতৃভাষাৰ নাটৰ সৃষ্টি হৈছিল ১৫৫৩ চনত। আউনীআটী সত্ৰৰ প্ৰথম সত্ৰাধিকাৰ নিৰঞ্জনদেৱে 'প্ৰবোধ চন্দ্ৰোদয়' নাটৰ অসমীয়া ৰূপান্তৰ কৰি ভাওনা কৰাইছিল।" (বৰা, পৰেশ চন্দ্ৰ ১২৬)

ভাওনাৰ বাবে মাতৃভাষাত এটি নাট ৰচনাৰ ক্ষেত্ৰত আউনীআটি সত্ৰৰ ভূমিকা আছিল অনস্বীকাৰ্য। নামনি অসমত সেই অঞ্চলৰ লোক নাট্যধৰ্মী অনুষ্ঠানসমূহৰ যেনে খুলীয়া ভাউৰীয়া, ওজাপালি, কুশান গান আদিৰ জনপ্ৰিয়তাৰ বাবে আৰু পিছলৈ যাত্ৰা আদিৰ প্ৰচলনৰ কাৰণে অংকীয়া নাটে প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম নহ'ল। কিন্তু উজনি অসমত অংকীয়া ভাওনাৰ আৰ্হিত এইখিনি সময়ৰে পৰা মাতৃভাষাত ভাওনা ৰচিত আৰু অভিনয় কৰিবলৈ লয়। কোনো কোনো সত্ৰত নতুনকৈ সত্ৰাধিকাৰ অধিষ্ঠিত হ'লে তেওঁলোকে এখন নাট লিখাৰ এটা প্ৰথাও গঢ় লৈ উঠিছিল। ইয়াৰ বাহিৰেও আন দুই-এজন শিক্ষিত অভিনয়প্ৰেমী লোকে ৰচনা কৰা নাট অভিনয় হোৱাৰ কথাও সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই *অসমীয়া নাট্য সাহিত্য* গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে। আউনীআটী সত্ৰৰ পৰাই এনে বহুখিনি নাটৰ সৃষ্টি হয়। অসমৰ নগাঁও, তেজপুৰ আদি অঞ্চলত ব্ৰজাৱলী ভাষাৰ ভাওনাৰে প্ৰচলন হৈ থকাৰ বিপৰীতে উজনি অসমত ভাওনাৰ ভাষা কথিত ৰূপৰ ওচৰ চাপি আহিবলৈ লয়। এই সম্পৰ্কত ড° পীতাম্বৰ দেৱগোস্বামীয়ে তেখেতৰ *সত্ৰীয়া উৎসৱৰ পৰিচয় আৰু তাৎপৰ্য* নামৰ গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে যে—

"অসমৰ ভাওনা পৰম্পৰাত অংকীয়া ভাওনাৰে সৰ্বাধিক প্ৰচলন থাকিলেও মহাপুৰুষসকলৰ পিছত সত্ৰানুষ্ঠানত কথিত ভাষা বা পদ্যধৰ্মী অমিতাক্ষৰ ছন্দৰ প্ৰয়োগ হ'বলৈ দৰিলে। কিন্তু অসমৰ নগাঁও অঞ্চলত ব্ৰজাৱলী ভাষাৰ প্ৰচলনেই হৈ থাকিল। এই পৃথকতাৰ বাবেই উজনি অসমৰ অভিনয় অংকীয়া বাওনাৰ পৰিৱৰ্তে ভাওনা স্বৰূপেই পিছলৈ চিহ্নিত হ'ল।" (দেৱগোস্বামী, পীতাম্বৰ ২৫১)

'ভাওনা' শব্দটো বহু পণ্ডিত-সমালোচকে অৰ্বাচীন বুলি মত আগবঢ়াইছে যদিও শংকৰদেৱে তেওঁৰ পত্নীপ্ৰসাদ নাটৰ মাজত 'ভাৱনা কৰয়' শব্দ যুগল ব্যৱহাৰ কৰিছে। মাতৃভাষাৰ ভাওনা বুলি যদিও উল্লেখ কৰা হৈছে অথবা আন আলোচনা আদিৰ ক্ষেত্ৰতো এই শব্দ দুটাৰ প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায় যদিও উজনি অসমত ভাওনা বুলি ক'লেই অধিকাংশ লোকেই মাতৃভাষাত ৰচনা কৰা নাটৰ অভিনয়কে ভাওনা বুলি বুজি পায়। অৱশ্যে অংকীয়া ভাওনাই হওঁক বা মাতৃভাষাৰ ভাওনাই হওঁক উপস্থাপন পদ্ধতিৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ সময়ত দ্বাৰিকা দ্বিজ মিশ্ৰৰ 'সন্তাৱলী' পুথিৰ পদকেইফাকি অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ—

সপ্তৰসে নাটকক ৰচনা কৰয়।
শুনিয়োক সপ্তবিধ ৰসৰ অন্বয়।।
গায়ন বায়ন সবে সভা জয় কৰে।
সূত্ৰ নাট্য বিধিৰে লোকৰ মন হৰে।।
পণ্ডিতে বুজিব শ্লোক কৰিলা ৰচন।
গীত অৰ্থ বুজিবেক দ্বিজ সভ্যজন।।
ব্ৰজাৱলী ভাষাক বুজিবে গ্ৰামী লোক।
ছোঁ-মূখা দেখিবেক অজ্ঞ মূঢ় লোক।।
শুদ্ধ বা অশুদ্ধ তথা যিটো হৰি নাম।
এহি সপ্তৰসে নাটকৰ অনুপাম।।
অন্তৰেসে সৰ্বমনে ভাৱনা মিলন।
এহি সেতু সৰ্বজনে ভাৱনা বোলয়।।

অৰ্থাৎ ক'ব পাৰি যে ভাৱৰ অনুকৰণেই (Imitation)

ভাৱনা আৰু ভাৱনাৰ পৰা ভাওনাৰ নিষ্পত্তি হৈছে। সেইফালৰ পৰা ভাৱনা/ভাওনা আৰু অভিনয়ক সমার্থক শব্দ বুলি ক'ব পাৰি।

প্ৰকৃতার্থত মাতৃভাষাৰ ভাওনাসমূহে কেতিয়াৰ পৰা আজিৰ দৰে এটা পূৰ্ণাংগ ৰূপ গ্ৰহণ কৰিলে সেই বিষয়ে পোনছাটেই কৈ দিয়া কিছু কঠিন। তথাপি শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ প্ৰয়াণৰ পিছত অসমৰ চুকে-কোণে প্ৰতিষ্ঠা হোৱা সত্ৰ আৰু নামঘৰসমূহ প্ৰতিষ্ঠাই উজনি অসমত মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ সৃষ্টিত এক কাৰকৰ কাম কৰিছিল। ইয়াৰ লগতে ৰজাঘৰীয়া পৃষ্ঠপোষকতাৰ কথাটোৱো জড়িত হৈ আছিল। অষ্টাদশ শতিকাৰ শেষৰ ফালৰ পৰা আহোম ৰাজপৃষ্ঠপোষকতাত বংগীয় যাত্ৰা দলৰ নৃত্য-গীত, অভিনয় আদিৰ জনপ্ৰিয়তাৰ প্ৰভাৱত উজনি অসমৰ প্ৰধানকৈ মাজুলীৰ কেইখনমান ৰাজ-পৃষ্ঠপোষকতা লাভ কৰা সত্ৰই 'বঙলুৱা' আৰ্হিৰ নাট ৰচনা কৰি অভিনয় কৰাৰ পৰম্পৰা এটা গঢ় লৈ উঠে। ফৌজীয়া ভাওনা, ধুৱা ভাওনা আদি নামেৰে পৰিচিত এনে ভাওনাসমূহ অংকীয়া ভাওনাৰ আদৰ্শৰ পৰা ফাটি যাবলৈ ধৰে। এফালে সত্ৰ-নামঘৰৰ বিস্তৃতি আৰু আনফালে সত্ৰত সত্ৰাধিকাৰসকলৰ মাজত নাট লিখাৰ পৰম্পৰাৰ কাৰণে নাটৰ সংখ্যা বাঢ়িবলৈ ধৰে আৰু সেই অনুপাতে মাতৃভাষাত লিখা নাটৰ সংখ্যাও বৃদ্ধি পায়। সেইদৰেই অভিনেতা আৰু দৰ্শকসকলৰ মাজতো মাতৃভাষাৰ নাটৰ প্ৰতি আকৰ্ষণ বৃদ্ধি হোৱাৰ লগতে জনপ্ৰিয়তাও বৃদ্ধি পাবলৈ ধৰে। কুৰি শতিকাৰ দ্বিতীয় দশকমানৰ পৰা উজনি অসমৰ যোৰহাট, শিৱসাগৰ আদিত আধুনিক অসমীয়া ভাষাত লিখা নাটৰ ভাওনা অনুষ্ঠিত হ'বলৈ লয়। সাহিত্যাচার্য মিত্ৰদেৱ মহন্তদেৱে বলিচলন, প্ৰচ্ছন্ন পাণ্ডৱ, অজামিলৰ মুক্তি, বৈদেহী বিয়োগ, গদাপর্ব, ৰাম বনবাস, যুধিষ্ঠিৰৰ ৰাজসূয় যজ্ঞ, কিষ্কিন্ধ্যা বিজয়, অম্বা হৰণ, কুৰুসন্ধ্যা, বৈকুণ্ঠ প্ৰয়াণ, অভিমন্যু বধ আদি নাটকৰ ৰচনাৰে মাতৃভাষাৰ ভাওনা নামে পৰিচিত হোৱা ভাওনাৰ এই নতুন ধাৰাটোক উৎসাহ যোগায়। (গোস্বামী, পবিত্ৰপ্ৰাণ ১০৪)

মিত্ৰদেৱ মহন্তৰ এই নাটসমূহে ভাওনাৰ ৰূপত উজনি অসমৰ গাঁও-ভূঁই আনকি সত্ৰৰ মাজতো বহুল জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। মাতৃভাষাত লিখা নাটৰ এনে জনপ্ৰিয়তাৰ পিছত আৰু বহুজনে এনে নাট ৰচনাত গুৰুত্ব দিয়ে। এনে বহুজন নাটৰ ৰচক থকাৰ পিছতো গণেশ গগৈ, অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকা আদি দুই এজন জ্ঞাত নাট্যকাৰ আৰু আউনীআটি সত্ৰৰ কেইজনমান সত্ৰাধিকাৰৰ বাহিৰে প্ৰায় অধিকাংশ মাতৃভাষাৰ নাটতেই কিন্তু নাট্যকাৰৰ নাম অজ্ঞাত। ইয়াৰ কাৰণ হৈছে নাটসমূহক পৰম-পৱিত্ৰ জ্ঞান কৰি নাট ৰচোতা (কাটোতা)সকলৰ নাম তাত সন্নিৱিষ্ট কৰাতো এক অপৰাধৰ দৰেই গণ্য কৰিছিল; যাৰ ফলত নাট্যকাৰসকলৰ নাম বাদ পৰি ৰৈছিল। প্ৰথম অৱস্থাত ৰামায়ণ, মহাভাৰত, ভাগৱত আদিৰ পৰা এইনাটসমূহৰ বিষয়বস্তু গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। পিছলৈ পুৰাণ, উপপুৰাণ, বধকাব্য আদিৰ বিষয়বস্তুৰ লগতে কাল্পনিক নাটো ৰচনা হৈছিল।

১.১ উপস্থাপন ৰীতি ঃ

মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ উপস্থাপন ৰীতি অংকীয়া ভাওনাৰ উপস্থাপন ৰীতিৰ আৰ্হিতে গঢ় লৈ উঠিছে যদিও মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ উপস্থাপন ৰীতিৰ লগত অংকীয়া ভাওনাৰ উপস্থাপন ৰীতিৰ বহুক্ষেত্ৰত পার্থক্য দেখা যায়। এইক্ষেত্ৰত সর্বপ্রথমে নির্দেশ কৰিব পাৰি সুত্ৰধাৰৰ প্ৰাধান্য কমি অহা। অংকীয়া নাটত সংস্কৃত নাটৰ পূৰ্বৰংগৰ অনুৰূপ গায়ন-বায়নে ধেমালি পৰিৱেশন কৰে আৰু তাৰ পিছতেই সূত্ৰধাৰে প্ৰৱেশ কৰি নান্দী শ্লোক পাঠ কৰাৰ পৰা অপিচ আৰু অথ ভটিমাৰ দ্বাৰা নাট্য কাহিনীৰ আভাস দিয়ে। ভাৱৰীয়া প্ৰৱেশ-প্ৰস্থান কৰোৱা, চৰিত্ৰৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়া তথা মানসিক অৱস্থাৰ উমান দিয়াৰ পৰা নাটৰ শেষত দর্শকৰ শান্তি-মুক্তি কামনা কৰি 'মুক্তি মংগল ভটিমা' পাঠ কৰে। কিন্তু মাতৃভাষাৰ ভাওনাত মূল ভগৱান চৰিত্ৰ যেনে ৰাম, বিষ্ণু বা কৃষ্ণৰ প্ৰৱেশৰ পিছত সূত্ৰধাৰে প্ৰস্থান কৰে আৰু ইয়াৰ পিছত সূত্ৰধাৰৰ ভুমিকা শূন্য।

মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ বাকী উপস্থাপন ৰীতি বা কলা-কৌশলসমূহ অংকীয়া নাটৰ সৈতে একেই। প্ৰথমতে পূৰ্বৰংগ অর্থাৎ গায়ন-বায়নসকলে সর্বপ্রথমে প্রশস্তি বন্দনা আৰম্ভ কৰে—

যেষাং শ্ৰীমৎ যশোৱাসূত পদকমলে
নাস্তি ভক্তি নৰাণাং।
যেষাং আভীৰ কন্যা প্ৰিয়গুণ কথনে
নানুৰক্তাং ৰসজ্ঞাং
যেষাং শ্ৰীকৃষ্ণ ললিত কথা
সাদৰৈ নৈব কর্ণোৎ
ধিক্ তান ধিক্ তান ধিগেতান
কথয়তি নিয়তং/সততং কীর্তনস্থ মৃদংগ।

অৱশ্যে এই বন্দনা আউনীআটী থূলৰ গায়ন-বায়নসকলেহে পৰিৱেশন কৰা দেখা যায়। কমলাবাৰী বা আন থূলৰ গায়ন-বায়নসকলে গুৰু বন্দনাসূচক শ্লোক বা

গীতৰেই আৰম্ভ কৰে। ইয়াৰ পিছতে গন্ধৰ্বৰূপী গায়ন-বায়নসকলে ঘাত, চোক, চাহিনী, ধুমুহি, চলন, সঁচাৰ, পানীপৰুৱা আদি পৰিৱেশন কৰি সূত্রধাৰৰ প্ৰৱেশ ঘটাই।

সূত্রধাৰে নৃত্য, শ্লোক আদিৰ মাধ্যমেৰে প্ৰৰোচনা, প্ৰস্তাৱনা আদিৰ মাধ্যমেৰে মূল চৰিত্রক মঞ্চত প্ৰৱেশ কৰায়। মাতৃভাষাৰ ভাওনাত ইয়াৰ পিছত সূত্রধাৰৰ কাম নাথাকে। নাটৰ চৰিত্রৰ প্ৰৱেশ, প্ৰস্থান, যুদ্ধ, মৃত্যু, বা অন্যান্য ক্রিয়া-প্ৰতিক্রিয়াসমূহ গায়ন-বায়ন বা দোহাৰেই গীতৰ মাধ্যমেৰে কৰোৱাই অথবা চৰিত্রসমূহে অভিনয়ৰ মাজেৰে সেয়া সম্পাদন কৰে। মাতৃভাষাৰ ভাওনাতো অভিনয়ৰ ভাগ চাৰিটা—

১। আংগিক— যি অভিনয় অংগ সঞ্চালনৰ যোগেদি সম্পন্ন কৰা হয় তাক আংশিক অভিনয় বোলা হয়। হস্তচালনা, পদচালনা, চকু, মুখমণ্ডল, বক্ষ আৰু মূল শৰীৰৰ সঞ্চালনৰ যোগেদি এই অভিনয় ফুটাই তোলা হয়।

২। বাচিক— বাক্য বা সংলাপৰ জৰিয়তে কৰা অভিনয়েই বাচিক অভিনয়। সংলাপ শুদ্ধ ৰূপত কণ্ঠস্থ কৰা, শুদ্ধ উচ্চাৰণ কৰা, সংলাপৰ ভাৱ বুজি লৈ সঠিক সময়ত বিৰামৰ ব্যৱহাৰ কৰা আদি এই অভিনয়ৰ অন্তৰ্গত।

৩। আহার্য— অভিনেতাসকলে চৰিত্র অনুযায়ী যিধৰণৰ বেশভূষা, সাজ-সজ্জা আদি গ্রহণ কৰে আৰু নেপথ্যৰ পৰা অর্থাৎ বাহিৰৰ পৰা আহৰণ কৰে যেনে— মুখা, অস্ত্র-শস্ত্র, অলংকাৰ আদি।

নাট্যশাস্ত্রত আহার্য চাৰিবিধ নেপথ্যৰ ওপৰত নির্ভৰশীল বুলি উল্লেখ আছে। সেয়া হৈছে—

ক) পুস্তঃ কাপোৰ, জন্তুৰ ছাল, কুঁহিলা, কাঠ-বাঁহ আদিৰে নির্মিত চোঁ বা মুখা।

খ) অলংকাৰ ঃ বস্ত্র, মালা, ভূষণ আদি।

গ) অংগৰচনা ঃ চৰিত্র অনুসাৰে গাত ঘঁহা ৰং, দাঁড়ি-গোফ আদি।

ঘ) সঞ্জীৱ ঃ জীৱ-জন্তুৰ আকৃতি পোৱা চৰিত্র।

৪। সাত্ত্বিক ঃ অভিনয়ৰ যোগেদি কঁপনি, স্বৰভংগ, অশ্রুভাৱ, বিৱর্ণভাৱ, অৱশভাৱ, ৰোমাঞ্চ, মূর্চা আদিৰ প্রকাশ কৰাকে সাত্ত্বিক অভিনয় বোলা হয়।

ভাওনাৰ অভিনয়ত অতিমাত্রিকতা এটা প্রধান লক্ষণ।

১.২ মঞ্চশৈলী ঃ

মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ অভিনয় সাধাৰণতে নামঘৰৰ মজিয়াতে হয়। নামঘৰক সপ্ত বৈকুণ্ঠ পৰিত্রতাৰে জ্ঞান কৰি মূল অভিনয় মঞ্চৰ পশ্চিম দিশত নৱবিধ ভক্তিৰ প্রতীক স্বৰূপ অগ্নিগড় প্রতিষ্ঠা কৰা হয়। ভাৱৰীয়াসকলে আঁৰ কাপোৰত সেয়া লৈ প্রৱেশৰ গীত আৰু নাচৰ মাধ্যমেৰে ৰংগমঞ্চত প্রৱেশ কৰে আৰু অভিনয় কৰে। নামঘৰৰ বাহিৰেও মুকলি মঞ্চ বা খলাতো ভাওনাৰ অভিনয় কৰা হয়। মুকলি মঞ্চত অভিনয় হ'লে মঞ্চৰ পূব দিশে গুৰু আসন প্রতিষ্ঠা কৰি লোৱা হয় আৰু কেতিয়াবা সেই মঞ্চক বাকী স্থানতকৈ ওখ কৰি লোৱা হয়। ভাওনাৰ মঞ্চ নির্দেশনা তলত দিয়া ধৰণে দেখুৱাব পাৰি—

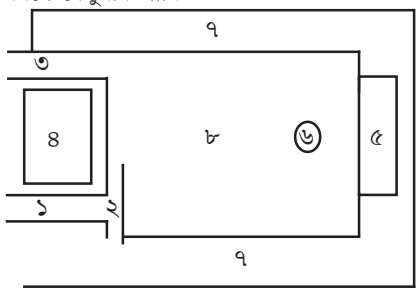

১) প্রৱেশ পথ
২) অগ্নিগড়
৩) প্রস্থান
৪) দোহাৰ/গায়ন-বায়ন
৫) গুৰু আসন
৬) ভোটা চাকি
৭) দর্শক
৮) মূল মঞ্চ

১.৩ নাটৰ গদ্য ঃ

মাতৃভাষাৰ ভাওনাত এটা প্রধান উল্লেখযোগ্য দিশ হৈছে নাটৰ গদ্য। এই নাটসমূহৰ ভাষা মাতৃভাষা অর্থাৎ অসমীয়াত ৰচিত। এই নাটসমূহৰ সৃষ্টিৰ প্রাৰম্ভিক সময়ছোৱাত নাট্যকাৰসকলে অমিত্রাক্ষৰ ছন্দৰ প্রয়োগেৰে বৃত্তগন্ধী গদ্যৰ প্রয়োগ কৰিছিল। এই নাটসমূহত পুৰণি অসমীয়া ভাষাৰ ঠাঁচটো আছিল অধিক। কিন্তু কোনো কোনো লোকে বর্তমান সময়তো এনে নাটৰ চর্চা অব্যাহত ৰাখিছে। অতি সাম্প্রতিক কালত ৰচনা কৰা এনে নাটসমূহৰ ভাষা সম্পূর্ণ আধুনিক অসমীয়া। তলত এই দুটা উদাহৰণ দাঙি ধৰা হ'ল—

১। কর্ণ ঃ কুমাৰী আছিল মোৰ জননী যেতিয়া, আদিত্য তেজত, দেখা পালে তেতিয়াই কর্ণক তোমাৰ। কলংকৰ চেকা ধুই নিকা কৰিবৰ উপায় আছিল মাথো, নিঃসহায়, নির্দোষী শিশুক জ্ঞান কৰি মাটিৰ পুতলা, অকাতৰে, অম্লান বদনে, নদীৰ গর্ভত প্রিয়ে, বিসর্জন দিয়া।

পদ্মা ঃ বিসর্জ্জিলে নদীৰ গর্ভত।

কর্ণ ঃ নিদিব ? নহ'লে যে নেথাকে নাৰী সতীৰ মহিমা।

(শকুনিৰ প্ৰতিশোধ— গণেশ গগৈ পৃ. ১১)

২। কৰ্ণ দত্ত ঃ বাচা তুমি অৰণ্যত মৃগয়া কৰিবলৈ যাব নালাগে। এহাতে দুৰ্যোৰ অৰণ্য আৰু আনহাতে অৰণ্যৰ মাজত ঋষিমুনিসকলে তপস্যা কৰি থাকে। বাচা বনৰ জীৱ-জন্তুৰ পৰা ৰক্ষা পালেও বিনা কাৰণত যদি ঋষিৰ কোপত পৰা তেন্তে বৰ বিপদৰ কথা হ'ল।

ধ্ৰুমাক্ষ ঃ পিতা, বিপদলৈ ভয় কৰি কৰ্ম ত্যাগ কৰা কাপুৰুষৰ লক্ষণ। মোক উপদেশৰ প্ৰয়োজন নাই। লাগে মোক অনুমতি। কওঁক পিতা, অনুমতি দিবনে নিদিয়ে? (কুলাচলৰ মুক্তিলাভ)

উপৰোক্ত দুয়োটা উদাহৰণৰ পৰা নাট দুখনত ভাষাৰ পাৰ্থক্য স্পষ্ট ৰূপত ফুটি উঠিছে। দ্বিতীয়খন নাটৰ ভাষা সম্পূৰ্ণ আধুনিক। অৱশ্যে মাতৃভাষাৰ নাটৰ ভাষা অসমীয়া হ'লেও ইয়াত কৃত্ৰিমতাৰ চাপ এটা চিৰ বিদ্যমান। নহ'লে সামাজিক নাটক বা দৈনন্দিন জীৱন আদিত 'যাওঁ এৰে নিজ কৰ্তব্যত হওঁ অগ্ৰসৰ', 'স্বৰ্গ-মৰ্ত্য এই বিশাল বিশ্ব, ধ্বংস কৰি এটি নিমিষতে, এক নতুন সৃষ্টিৰ মই মেলিম পাতনি' আদি ধৰণেৰে কোনো চৰিত্ৰই কথা নকয়।

মাতৃভাষাৰ ভাওনাত সূত্ৰধাৰীৰ শ্লোক, অথ ভটিমা আদিৰ বাহিৰে সংলাপসমূহ সম্পূৰ্ণ অসমীয়া। কিন্তু প্ৰৱেশৰ গীত, যুদ্ধৰ গীত, বিলাপ পয়াৰ আদিত কিছু পৰিমাণে ব্ৰজাৱলীৰ ঠাঁচ এটা অনুভূত হয়।

২.০ সামৰণি ঃ

অংকীয়া নাটৰ উদ্দেশ্য আছিল ধৰ্ম, অৰ্থ, কাম আৰু মুক্তি সাধন কৰা। সাম্প্ৰতিক মাতৃভাষাৰ ভাওনাই এই চাৰিটা দিশ ৰক্ষিত কৰিব পাৰিছেনে নাই সেয়া আলোচনাৰ বিষয়। বৰ্তমান সময়ত উজনি অসমত মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ প্ৰসাৰ আৰু জনপ্ৰিয়তা যথেষ্ট বেছি। কিন্তু মাতৃভাষাৰ ভাওনাই বৰ্তমান সময়ত আধ্যাত্মিকতাৰ পৰা আঁতৰি যেন অধিক মনোৰঞ্জনধৰ্মিতাত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে তেনে আলোচনা হোৱা দেখা যায়। এই আলোচনাৰ পৰা আমি কেইটামান সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পাৰোঁ—

১। মাতৃভাষাৰ ভাওনা শংকৰদেৱে সৃষ্টি কৰা অংকীয়া ভাওনাৰেই এটা পৰিৱৰ্তিত ৰূপ।

২। এই ভাওনা উজনি অসমৰ জিলাসমূহত ঘাইকৈ প্ৰচলিত।

৩। মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ গদ্য আধুনিক অসমীয়া কথিত বা লিখিত ৰূপৰ ওচৰ চপা।

৪। মাতৃভাষাৰ ভাওনাত সূত্ৰধাৰৰ প্ৰাধান্য কম।

৫। মাতৃভাষাৰ ভাওনাত গীতিধৰ্মিতাতকৈ সংলাপ, অভিনয়, যুদ্ধ বিগ্ৰহ আদিৰ প্ৰাধান্য বেছি।

৬। মাতৃভাষাৰ ভাওনা যিহেতু গুৰু সংস্কৃতিৰে এটা বিৱৰ্তিত ৰূপ সেই অনুসাৰে এতিয়াও আলোচনা বা চিন্তা-চৰ্চা কৰি সীমিত পৰিসৰতহে হৈছে। এই সম্পৰ্কে যথেষ্ট আলোচনাৰ অৱকাশ আছে।

এখন সমালোচনা পত্ৰত মাতৃভাষাৰ ভাওনাৰ দৰে বৈচিত্ৰ্যময় বিশাল পৰিসৰৰ বিষয় এটা সামৰি লোৱা সম্ভৱ নহয়। গতিকে এই আলোচনা পত্ৰখনিত বহুতো গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ বাদ পৰি যাব পাৰে। ইয়াত যথাসম্ভৱ বিষয়টোৰ সম্পৰ্কে সম্যক আভাস দিয়াৰহে চেষ্টা কৰা হ'ল। এই বিষয়টো সম্পৰ্কে ভৱিষ্যত অধ্যয়নৰ যথেষ্ট অৱকাশ দেখা যায়। ❑

প্ৰসংগ টোকা ঃ

শৰ্ম্মাদলৈ, হৰিনাথ। *অসমীয়া গদ্য-সাহিত্যৰ গতি-পথ* (প্ৰথম খণ্ড)। পদ্মপ্ৰিয়া লাইব্ৰেৰী, ২০১৩, পৃ. ৩২

শইকীয়া, মাণিক। *মাতৃভাষাৰ ভাওনাঃ ঐতিহ্য আৰু বিৱৰ্তন*। শব্দ, ২০১৬, পৃ. ৪৩

বৰা, পৰেশ চন্দ্ৰ। "প্ৰতিযোগিতাৰ আওতালৈ ভাওনা ঃ এক আলোচনা।" মানস প্ৰতিম দত্ত (সম্পা.)। *গায়নজ্যোতি*, ২০১৬, পৃ. ১২৬

দেৱগোস্বামী, পীতাম্বৰ। সত্ৰীয়া উৎসৱৰ পৰিচয় আৰু তাৎপৰ্য। কৌস্তুভ প্ৰকাশন, ২০০১, পৃ. ২৪১

গোস্বামী, পবিত্ৰপ্ৰাণ। "শংকৰদেৱৰ অপূৰ্ব সৃষ্টি ভাওনা আজি কোন দিশে।" মানস প্ৰতিম দত্ত (সম্পা.)। *গায়নজ্যোতি*, ২০১৬, পৃ. ১০৪

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কলিতা, মণিৰাম (সম্পা.)। *নাট্যালোচনা*। প্ৰথম প্ৰকাশ, অলিম্পিয়া প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ১৮ নৱেম্বৰ, ২০১৬

দত্ত, মানস প্ৰতিম (সম্পা.)। *গায়নজ্যোতি*। ঋতুৰাজ প্ৰিণ্টাৰ্ছ, যোৰহাট, ১ জানুৱাৰী, ২০১৬

নেওগ মহেশ্বৰ। *অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা*। দ্বাদশ তাঙৰণ, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, জুলাই, ২০১২

বৰ্মন, শিৱনাথ (সম্পা.)। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী* (দ্বিতীয় খণ্ড)। দ্বিতীয় প্ৰকাশ, আবিলেক, গুৱাহাটী, মে', ২০১৫

শইকীয়া, অকণ চন্দ্ৰ। *ভাওনা— প্ৰদৰ্শন ঃ প্ৰতিযোগিতা ঃ মূল্যায়ন*। প্ৰথম প্ৰকাশ, শব্দ, যোৰহাট, ১২ মাৰ্চ, ২০১৬

শইকীয়া মানিক। *মাতৃভাষাৰ ভাওনা ঃ ঐতিহ্য আৰু বিৱৰ্তন*। প্ৰথম প্ৰকাশ, শব্দ, যোৰহাট, ১২ মাৰ্চ, ২০১৬

শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ। *ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ পৰিৱেশ্য কলা*। দ্বিতীয় সংশোধিত সংস্কৰণ, বনলতা, গুৱাহাটী, আগষ্ট, ২০১৩

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। *অসমীয়া নাট্য সাহিত্য*। পুনৰ মুদ্ৰণ, সৌমাৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০১৫

— — —। *অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত*। পুনৰ মুদ্ৰণ, সৌমাৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, জুন ২০১৩

শৰ্ম্মাদলৈ, হৰিনাথ। *অসমীয়া গদ্য-সাহিত্যৰ গতি-পথ* (প্ৰথম খণ্ড)। চতুৰ্থ প্ৰকাশ, পদ্মপ্ৰিয়া লাইব্ৰেৰী, নলবাৰী, আগষ্ট, ২০১৩

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

প্রপীয় পদ্ধতিৰে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ ‘বুঢ়ী আইৰ সাধু’ৰ ৰূপতাত্ত্বিক বিশ্লেষণ

(‘তেজীমলা’ সাধুটিৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)

গুলতাজ ইয়াচমিন

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
৬০০০৪৮২০৬০
gultazyesmin99@gmail.com

ড° নুৰুল ইছলাম শইকীয়া

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
৭০৮৬৩১৪৯১২
saikianur@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

লোকসাহিত্যৰ এক গুৰুত্বপূর্ণ ভাগ হৈছে সাধুকথা। বিষয়বস্তু, চৰিত্র, সাংস্কৃতিক তাৎপর্য আদিৰ দিশৰপৰা সাধুকথাবোৰক বিভিন্ন ধৰণে অধ্যয়ন কৰিব পাৰি। সাধুকথা বিশ্লেষণৰ আন এটা বিশিষ্ট পদ্ধতি হ’ল অবয়ৱবাদী বা ৰূপতাত্ত্বিক পদ্ধতি। ৰাছিয়াৰ অবয়ৱবাদী সাহিত্য আন্দোলনৰ অন্যতম প্রবক্তা ভ্লাদিমিৰ প্রপ (Vladimir Propp) য়ে সাধুকথাৰ গাঁথনিক অধ্যয়নৰ বাবে ‘সাধুকথাৰ ৰূপতত্ত্ব’ নামেৰে এক পদ্ধতি সূত্রবদ্ধ কৰিছিল। প্রপৰ মতে সাধুকথাৰোৰৰ আপাতঃ বৈচিত্র্যৰ অন্তৰালত বিশেষ কিছুমান স্থিৰ ঘটনাহে সংঘটিত হয়। এই ঘটনাবোৰৰ ব্যতিক্রম নঘটে আৰু এক ক্রমিক শৃংখলা বজাই ৰাখিহে সেইবোৰ সংঘটিত হয়। এনে বৈশিষ্ট্য প্রপে ৰাছিয়াৰ পৰীৰ সাধুসমূহত বিচাৰি পাইছিল। সাধুকথাৰ ৰূপতাত্ত্বিক বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰে প্রপে কাহিনীৰ মৌলিক গাঁথনিক ৰূপসমূহ বা উপাদানবোৰ বিশ্লেষণ কৰিছিল। ৰাছিয়াৰ পৰীৰ সাধুসমূহৰ দৰে আন আন দেশৰ সাধুবোৰতো এই উপাদানবোৰৰ প্রয়োগ হোৱা দেখা যায়। এই আলোচনাত প্রপৰ ৰূপতাত্ত্বিক পদ্ধতি প্রয়োগ কৰি লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ ‘বুঢ়ী আইৰ সাধু’ সংকলনখনৰ পৰা ‘তেজীমলা’ সাধুটো নির্বাচন কৰি এক বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

প্রপীয় পদ্ধতি, সাধুকথা, সাধুকথাৰ ৰূপতত্ত্ব, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, লোক সাহিত্য, ৰুছ অৱয়ববাদ।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

লোকজীৱনৰ নানান অনুষংগ লোককথাসমূহত সংৰক্ষিত হৈ থাকে। ‘তাত্ত্বিক শ্রেণী বিভাজনৰ আধাৰত লোকসাহিত্যক পাঁচটা শ্রেণীত ভগোৱা হৈছে— (১) লোক কবিতা বা লোকগীত, (২) গদ্যধর্মী লোককথা, (৩) প্রবচন, লোকোক্তি, যোজনা, পটন্তৰ, (৪) সাঁথৰ, দৃষ্টান্ত আৰু (৫) লোকভাষা” (শর্মা, পৃ. ৪৯)। “গদ্যধর্মী লোককথাক তিনিটা ভাগত ভগোৱা হয়— (১) পুৰাণকথা বা পুৰাকথা, আখ্যান, অতিকথা (Myth), (২) জনশ্রুতিমূলক কাহিনী (Legend), উপাখ্যান আৰু (৩) সাধুকথা বা উপকথা (Tales)” (শর্মা, পৃ. ৫০)। লোকজীৱনৰ অনুভূতিৰ স্বতঃস্ফূর্ত বহিঃপ্রকাশ ঘটা লোকসাহিত্যৰ অন্যতম ভাগ হৈছে সাধুকথা। পৃথিৱীৰ বিভিন্ন জাতিৰ দৰে অসমীয়া জাতিৰ মাজতো সাধুকথাৰ প্রচলন দেখা যায়। লোক মনোৰঞ্জন তথা জাতীয় ইতিহাস চর্চাৰ উৎসৰূপে সাধুসমূহক বিশ্লেষণ কৰাৰ প্রথম

প্রয়াস কৰে জার্মানীৰ গ্রীম ভ্রাতৃদ্বয় নামেৰে পৰিচিত জেকব গ্রীম (Jacob Grimm) আৰু উইলহেল্ম গ্রীম (Wilhelm Grimm) য়ে। ১৮১২ চনত এওঁলোকে 'Children's and Household Tales' নামৰ সাধুকথাৰ সংকলনটিৰ প্রকাশ কৰে। তাৰপিছত সাধুকথাক সাহিত্যৰ স্বতন্ত্র ৰূপ হিচাপে বিচাৰ কৰাৰ অভিনৱ প্রচেষ্টাৰ বাট মুকলি হয় কুৰি শতিকাত। এই ক্ষেত্রত বাছিয়াৰ লোকসাহিত্যতত্ত্ববিদ ভ্লাদিমিৰ প্রপৰ নাম প্রথমেই ল'ব লাগিব। ১৯২৮ চনত 'Morphologija Skazki' নামেৰে ৰুছ ভাষাত প্রকাশিত তেওঁৰ কিতাপখন ১৯৫৮ চনত 'Morphology of the Folktale' নামেৰে ইংৰাজী ভাষালৈ অনুবাদ হোৱাৰ পাছতহে কিতাপখনে লোককথাকেন্দ্রিক সাহিত্য সমালোচনা তত্ত্বৰ ক্ষেত্রখনত নতুন চিন্তা-চর্চাৰ বাট মুকলি কৰি দিয়ে। ভাৰতৰ উত্তৰ-পূর্বাঞ্চলৰ সাধুকথাৰ বিদ্যায়তনিক চর্চাৰ প্রথম প্রচেষ্টা আৰম্ভ কৰিছিল জি. এইচ. ডামাণ্টে। অসমীয়া ভাষাত সাধুকথাৰ বিদ্যায়তনিক চর্চাৰ বাটকটীয়া হৈছে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা। তেওঁৰ প্রথমখন সাধুকথাৰ পুথি 'বুঢ়ী আইৰ সাধু' ১৯১১ চনত প্রকাশ পায়। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই 'সাধু' শব্দটিৰে প্রাচীন পৰম্পৰাগত আখ্যান আৰু আধুনিক ভাব-গঢ়ৰ চুটিগল্প উভয়কে সামৰি লৈছিল। তেওঁৰ অন্য দুখন সাধুকথাৰ সংকলন হ'ল 'ককাদেউতা আৰু নাতিল'ৰা' আৰু 'জুনুকা'। পৃথিৱীৰ বিভিন্ন দেশৰ বিভিন্ন ভাষাৰ সাধুবোৰ বিভিন্ন ৰূপত পোৱা যায়। সেয়ে ইয়াৰ শ্রেণী বিভাজন গুৰুত্বপূর্ণ। সাধুৰ শ্রেণী বিভাজনৰ বিভিন্ন সমস্যাৰ সমাধানৰ বাবে সাধুৰ চৰিত্র আৰু বিষয়বস্তুক নির্ণায়ক উপাদান হিচাপে লৈ ভ্লাদিমিৰ প্রপে সকলো সাধুৰ ক্ষেত্রত প্রযোজ্য হোৱাকৈ সাধুৰ ৰূপতাত্ত্বিক পদ্ধতি প্রয়োগ কৰিছিল। তেওঁ লক্ষ্য কৰিছিল যে সাধুবোৰৰ বিষয়বস্তু, চৰিত্র আৰু পটভূমি ভিন্ন হ'ব পাৰে, কিন্তু সকলো সাধুতে কিছুমান একেধর্মী কার্য বা ঘটনাক্রমহে সংঘটিত হয়।

০.১ গৱেষণাৰ উদ্দেশ্য ঃ

প্রস্তুত গৱেষণা পত্রখনৰ মূল উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল—

১। ভ্লাদিমিৰ প্রপৰ সাধুকথাৰ ৰূপতাত্ত্বিক পদ্ধতিটো আলোচনা কৰা।

২। প্রপীয় পদ্ধতিটোৰ সীমাবদ্ধতা প্রদর্শন কৰা।

৩। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'তেজীমলা' সাধুটোৰ মাজত থকা প্রপীয় পদ্ধতিৰ উপাদানসমূহ চিহ্নিত কৰা।

৪। প্রপীয় পদ্ধতিৰে কৰা 'তেজীমলা' সাধুটোৰ বিশ্লেষণ তাৎপর্যপূর্ণ হ'লেও অসমীয়া সাধুটোৰ সকলো দিশ যে এই পদ্ধতিত ধৰা নপৰে, সেইটো সাব্যস্ত কৰা।

০.২ গৱেষণাৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্রখনি তাত্ত্বিক, বর্ণনাত্মক, বিশ্লেষণাত্মক আৰু সমালোচনাত্মক পদ্ধতিৰে প্রস্তুত কৰা হৈছে। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'বুঢ়ী আইৰ সাধু'ত সন্নিবিষ্ট 'তেজীমলা' সাধুটি গৱেষণাৰ বাবে নির্বাচন কৰা হৈছে। প্রপৰ সাধুকথাৰ বিশ্লেষণৰ ৰূপতাত্ত্বিক পদ্ধতিটোৰ বিষয়বোৰ তাত্ত্বিক পদ্ধতিৰে অধ্যয়ন কৰা হৈছে। 'তেজীমলা' সাধুটিৰ কাহিনীভাগ বর্ণনাত্মক পদ্ধতিৰে উপস্থাপন কৰা হৈছে। সাধুটিত ভ্লাদিমিৰ প্রপে চিহ্নিত কৰা ফলনবোৰৰ প্রয়োগ কেনেকৈ হৈছে আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে। প্রপৰ সাধুকথাৰ বিশ্লেষণৰ সীমাবদ্ধতা দেখুৱাবলৈ আৰু তেজীমলাৰ সাধুৰ বিভিন্ন দিশসমূহ চিহ্নিত কৰিবলৈ সমালোচনাত্মক পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

০.৩ গৱেষণাৰ পৰিসৰ ঃ

প্রস্তুত গৱেষণা পত্রখনিত ভ্লাদিমিৰ প্রপৰ সাধুকথাৰ বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ আভাস দিয়া হৈছে। উক্ত পদ্ধতিৰ সীমাবদ্ধতাসমূহো ইয়াত দেখুওৱা হৈছে। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'বুঢ়ী আইৰ সাধু' সংকলনখনৰ চমু আভাস দিয়া হৈছে। 'তেজীমলা' সাধুটিৰ কাহিনীভাগ থুলমূলকৈ দাঙি ধৰা হৈছে। প্রপীয় পদ্ধতি প্রয়োগ কৰি 'তেজীমলা' সাধুটিৰ বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। লগতে প্রপীয় পদ্ধতিত ধৰা নপৰা সাধুটিৰ কেইটামান দিশো আঙুলিয়াই দিয়া হৈছে।

১.০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

ৰুছ দেশৰ লেনিনগ্রাড বিশ্ববিদ্যালয়ৰ ৰুছ ভাষা আৰু তুলনামূলক লোকসাহিত্যৰ অধ্যাপক ভ্লাদিমিৰ প্রপ। তেওঁৰ লোকবিদ্যাৰ বিশ্লেষণৰ পৰিসৰ ভাষাতত্ত্ব, নৃতত্ত্ব, সাহিত্য ইত্যাদি ক্ষেত্রলৈ বিস্তৃত হৈছিল। লোকবিদ্যাৰ অধ্যয়নত গঠনবাদী পদ্ধতি প্রয়োগৰ ক্ষেত্রত তেওঁৰ অৱদান বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। কুৰি শতিকাৰ দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় দশকত ৰাছিয়াত সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ সমালোচনাত অৱয়ববাদ বা আকাৰবাদ নামৰ মতবাদটো গঢ় লৈ উঠিছিল। ৰোমান জেকবছন আৰু ভ্লাদিমিৰ প্রপ এই মতবাদৰ উল্লেখযোগ্য প্রবক্তা আছিল। অৱয়ববাদীসকলে সাহিত্য পাঠত কেতবোৰ গঠনমূলক সূত্র বা কৌশলে কিদৰে কাম কৰে সেইবোৰ

অধ্যয়ন কৰিব বিচাৰিছিল। এই অধ্যয়নৰ ধাৰাটোৱে পিছলৈ এটা পদ্ধতি হিচাপে পৰিগণিত হয়। পৰৱৰ্তী কালত পাশ্চাত্যৰ দেশবোৰত ইয়ে গঠন বা সংযুতি (Structure) ৰ ধাৰণা গঢ় দিয়াত ইন্ধন যোগায়। এই চিন্তাধাৰাই বিষয়বস্তুতকৈ তাৰ অৱয়ব অর্থাৎ গঠনৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিছিল। প্ৰপৰ গৱেষণাৰ বিষয় আছিল সাধুকথা, বিশেষকৈ পৰীৰ সাধু। বিংশ শতিকাৰ অৱয়ববাদীসকলে সাহিত্যক যিদৰে গঠনবাদী দর্শন অৱলম্বন কৰি অধ্যয়ন কৰিছিল, তেনেদৰে সাধুবোৰৰ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰতো প্ৰপে এই পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰিছিল। ৰাছিয়াৰ অৱয়ববাদী দর্শনৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হোৱা প্ৰপে সাধুকথাৰ বিশ্লেষণত তাৎপর্যপূর্ণ পৰিৱর্তনৰ সূচনা কৰিছিল। প্ৰপে এ. এন. আফানাছিয়েভ (A.N. Afanasyev)ৰ সাধুকথাৰ পুথি Russian Fairy Tales-ৰ প্ৰায় ১১৫টা পৰীৰ সাধু গৱেষণাৰ সমল হিচাপে লৈছিল। প্ৰপে সমসাময়িক পণ্ডিতসকলে কৰা সাধুৰ আলোচনাসমূহত যথেষ্ট আঁসোৱাহ দেখিছিল আৰু সেই সম্পর্কে সমালোচনা কৰিছিল। পৰীৰ সাধুকথাৰ গৱেষণা কৰি প্ৰপে ১৯২৮ চনত ৰুছ ভাষাত Morphologija Skazki নামৰ গ্ৰন্থখন প্ৰকাশ কৰে। ১৯৫৮ চনত এই গ্ৰন্থখন ইংৰাজীলৈ অনুবাদ হৈ 'Morphology of the Folktale' নামেৰে প্ৰকাশ পায়।

প্ৰপৰ মতে প্ৰায়বোৰ সাধুতে কিছুমান একেধর্মী কার্য বা ঘটনাক্ৰম সংঘটিত হয়, কেৱল চৰিত্ৰ আৰু পটভূমিহে ভিন্ন ভিন্ন। এই ঘটনাসমূহে এক সৰলৰৈখিক ক্ৰম অনুসৰণ কৰে। প্ৰপে ইয়াক সাধুৰ ধ্ৰুৱক (Constant) বুলি কৈছে। এই ধ্ৰুৱক অর্থাৎ স্থিৰ অংশটোকে প্ৰপে Function নাম দিছে। ইয়াৰ অসমীয়া প্ৰতিশব্দ হৈছে ফলন। ফলন হৈছে কাহিনীৰ চৰিত্ৰৰ দ্বাৰা সম্পাদিত হোৱা কার্য, যিয়ে কাহিনীৰ ঘটনা প্ৰবাহক গতি প্ৰদান কৰে। বাক্যত ব্যৱহাৰ হোৱা শব্দবোৰৰ নির্দিষ্ট শৃংখলা থকাৰ দৰে ফলনসমূহৰো এক ক্ৰমিক শৃংখলা আছে। প্ৰপৰ মতে প্ৰত্যেকটো সাধুৱেই কিছুমান ফলনৰ সমষ্টি। ইয়ে সাধুৰ ৰূপ। সাধুৰ এই ৰূপসমূহৰ বিশ্লেষণক বুজাবলৈ প্ৰপে Morphology শব্দৰ প্ৰয়োগ কৰিছিল, যাৰ অসমীয়া প্ৰতিশব্দ ৰূপতত্ত্ব। সকলোবোৰ কার্যই ফলন নহয়। ফলন হ'বলৈ হ'লে কাহিনীত কার্যটোৰ গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা থাকিব লাগিব। প্ৰপে কার্যৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিছে। তেওঁ চৰিত্ৰই কৰা প্ৰতিটো কার্যকে তন্ন-তন্নকৈ নিৰীক্ষণ কৰি চাইছিল। প্ৰপৰ মতে সাধুৰ কাহিনীয়েহে ফলনৰ অন্তর্নিহিত অর্থ নির্দ্ধাৰণ কৰে, কাৰণ ভিন্ন সাধুৰ মাজত একে ফলন বা কার্য থাকিলেও পৰিস্থিতি বা বিষয়বস্তু সাপেক্ষে ইয়াৰ অর্থ ভিন্ন হয়।

ফলনবোৰ অধ্যয়ন কৰি প্ৰপে কেইটামান বৈশিষ্ট্য বিচাৰি পাইছিল—

১। সাধুকথাৰ ফলনবোৰে সাধুকথাৰ স্থিৰ উপাদান হিচাপে কাম কৰে।

২। পৰীৰ সাধুত উপলব্ধ ফলনৰ সংখ্যা সীমিত।

৩। ফলনৰ ঘটনাক্ৰম সদায় অভিন্ন ৰূপত পোৱা যায়।

৪। সংযুতিৰ দিশৰ পৰা সকলো পৰীৰ সাধুৱেই একেটা আর্হিৰ।

প্ৰপে ৰাছিয়াৰ পৰীৰ সাধুসমূহৰ বিশ্লেষণ কৰি মুঠতে একত্ৰিশটা ফলন চিনাক্ত কৰিছে, সেইবোৰ হ'ল—

১। পৰিয়ালৰ কোনো এজন সদস্যই ঘৰ এৰি গুচি যায় (One of the members of the family absents himself from home)।

২। নায়কক কোনো বিশেষ কাম কৰিবলৈ নিষেধ কৰা হয় (An interdiction is addressed to the hero)।

৩। নায়কে সেই নিষেধাজ্ঞা অমান্য কৰে (The interdiction is violated)।

৪। খলনায়কে নায়কৰ শুংসূত্ৰ উলিয়াবলৈ চেষ্টা কৰে (The villain makes an attempt at reconnaissance)।

৫। খলনায়কে নায়কৰ শুংসূত্ৰ লাভ কৰে (The villain receives infromation about his victim)।

৬। খলনায়কে নায়কক প্ৰতাৰণা কৰি তেওঁৰ ওপৰত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ নাইবা তেওঁৰ সা-সম্পত্তি গ্ৰাস কৰিবলৈ চেষ্টা কৰে (The villain attempts to deceive his victim in order to take possession of him or of his belongings)।

৭। নায়কগৰাকী খলনায়কৰ প্ৰতাৰণাৰ চিকাৰ হয় আৰু নিজৰ অজ্ঞাতসাৰে শত্ৰুক খলনায়কক সহায় কৰে (The victim submits to deception and thereby unwittingly helps his enemy)।

৮। খলনায়কে পৰিয়ালৰ কোনো সদস্যৰ অনিষ্ট সাধন কৰে বা কোনো সদস্যক আঘাত কৰে (The villain causes harm or injury to a member of the family)।

৯। দুর্ভাগ্য বা দুর্বলতাৰ কথা প্ৰকাশ কৰা হয়, প্ৰতিকাৰৰ অনুৰোধ বা আদেশ লৈ নায়কৰ ওচৰ চপা হয়, নায়কক যাবলৈ অনুমতি দিয়া হয় নাইবা তেওঁক প্ৰেৰণ

কৰা হয় (Misfortune or lack is made known, the hero is approached with a request or command, he is allowed to go or he is dispatched)।

১০। নায়কে সন্মতি প্রদান কৰে নাইবা প্রতিকাৰ কৰিবলৈ সিদ্ধান্ত লয় (The seeker agrees to or decides upon counteraction)।

১১। নায়কে গৃহ ত্যাগ কৰে (The hero leaves home)।

১২। নায়কক পৰীক্ষা কৰা হয়, সোধা-পোছা কৰা হয়, আক্রমণ আদি কৰা হয়· যিয়ে তেওঁৰ বাবে কোনো যাদুকৰী মাধ্যম অথবা সহায়কাৰী লাভৰ বাট মোকলাই দিয়ে (The hero is tested, interrogated, attacked, etc. which prepares the way for his receiving either a magical agent or helper)।

১৩। নায়কে ভৱিষ্যৎ দাতাজনৰ কাম-কাজকলৈ প্রতিক্রিয়া প্রকাশ কৰে (The hero reacts to the action of the future donor)।

১৪। নায়কে যাদুকৰী মাধ্যমটোৰ ব্যৱহাৰ আয়ত্ত কৰে (The hero acquires the use of the magical agent)।

১৫। অনুসন্ধান কৰা বস্তুটোৰ সবিশেষ আহৰণ কৰিবলৈ নায়কজনক স্থানান্তৰ কৰা হয় বা উপস্থিত কৰোৱা হয় (The hero is transferred or delivered, or led to the whereabouts of an object of search)।

১৬। নায়ক আৰু খলনায়ক মুখামুখি সংঘাতত লিপ্ত হয় (The hero and the villain join in direct combat)।

১৭। নায়কজনক চিহ্নিত কৰা হয় (The hero is branded)।

১৮। খলনায়ক পৰাস্ত হয় (The villain is defeated)।

১৯। আৰম্ভণিৰ দুর্ভাগ্য নাইবা দুর্বলতা আঁতৰি যায় (The initial misfortune or lack is liquidated)।

২০। নায়ক উভতি আহে (The hero returns)।

২১। নায়কক অনুসৰণ কৰা হয় (The hero is pursued)।

২২। নায়কক উদ্ধাৰ কৰা হয় (Rescue of the hero from pursuit)।

২৩। অচিনাকি বেশত নায়কজন নিজৰ ঘৰ অথবা অন্য দেশত উপস্থিত হয় (The hero, unrecognized, arrives home or in another country)।

২৪। এজন ভুৱা নায়কে ভিত্তিহীন দাবী উত্থাপন কৰে (A false hero presents unfounded claims)।

২৫। নায়কজনক এটা কঠিন কাম সম্পন্ন কৰিবলৈ কোৱা হয় (A difficult task is proposed to the hero)।

২৬। কামটো নায়কে সম্পাদন কৰে (The task is resolved)।

২৭। প্রকৃত নায়কজন স্বীকৃত হয় (The hero is recognized)।

২৮। ভুৱা নায়ক বা খলনায়কজন ধৰা পৰে (The false hero or villain is exposed)।

২৯। নায়কজনক নতুন সাজ-সজ্জা প্রদান কৰা হয় (The hero is given a new appearance)।

৩০। খলনায়কজনক শাস্তি দিয়া হয় (The villain is punished)।

৩১। নায়কজনৰ বিয়া হয় আৰু সিংহাসনত আৰোহণ কৰে (The hero is married and ascends the throne)।

প্রপে এই ৩১টা ফলনক আকৌ মুঠ সাতটা ক্ষেত্রত ভাগ কৰিছে—

১। নায়ক (Hero)।

২। খলনায়ক (Villain)।

৩। ৰাজকুমাৰী বা বাঞ্ছিত ব্যক্তি (Princess or sought- for person)।

৪। প্রেৰক (Dispatcher)।

৫। দাতা (Donor)।

৬। সহায়কাৰী (Helper)।

৭। ভুৱা নায়ক (False hero)।

পৰীৰ সাধু বিশ্লেষণৰ বাবে প্রপে উদ্ভাৱন কৰা ৰূপতাত্ত্বিক পদ্ধতি অভিনৱ হ'লেও এই পদ্ধতি ত্রুটিমুক্ত নহয়। বিভিন্ন পণ্ডিতে প্রপৰ পদ্ধতিৰ সীমাবদ্ধতা দেখুৱাইছে—

১। প্রপে মাত্র ৩১টা ফলনহে উলিয়াইছে। বহুতো পণ্ডিতৰ মতে ফলনৰ সংখ্যা বঢ়াব বা কমাব পাৰি। এই সংখ্যাটোৰ যথার্থতাকলৈ মতবিৰোধ আছে।

২। ৩১ টা ফলনৰ ভিতৰত কিছুমান ফলনক সুকীয়াকৈ নলৈ একেলগে ৰাখিব পাৰি।

৩। প্রপে সাধুবোৰৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশসমূহ

উপেক্ষা কৰিছে।

৪। তেওঁ সাধুবোৰৰ চৰিত্ৰৰ স্বকীয়তাক উপেক্ষা কৰি চৰিত্ৰৰ কাৰ্যকহে গুৰুত্ব দিছে।

অসমীয়া সাহিত্যত লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ ১৯১১ চনত প্ৰকাশিত সংকলিত সাধুকথাৰ পুথি 'বুঢ়ী আইৰ সাধু'ত সন্নিৱিষ্ট সাধুসমূহত অসমীয়া লোকজীৱনৰ বিভিন্ন দিশৰ সন্ধেদ পোৱা যায়। গ্ৰন্থখনত মুঠ ত্ৰিশটা সাধু সংকলিত হৈছে। গ্ৰন্থখনৰ পাতনিত যিসকল ব্যক্তিৰ পৰা সাধুবোৰ সংগ্ৰহ কৰিছে তেওঁলোকৰ নাম উল্লেখ কৰিছে। বেজবৰুৱাই একেটা সাধুৰে কেইবাজনো পাঠক বা কেইবাটাও পাঠ পাইছিল। কিছুমান সাধু তেওঁ নিজা ৰচনা বুলি পাতনিত উল্লেখ কৰিছে। সাধুবোৰৰ সংকলনত বেজবৰুৱাই গ্ৰীম ভাতৃদ্বয়ৰ আৰ্হি অনুসৰণ কৰা দেখা যায়। 'তেজীমলা' সাধুটোত নানা ঘটনাৰ সমাহাৰদেখা যায়। সাধুটোত 'তেজীমলা' এজনী নিৰীহ ছোৱালীৰ প্ৰতীক হিচাপে উপস্থাপিত হৈছে। সাধুটোৰ আৰম্ভণিতে চৰিত্ৰসমূহৰ এক পৰিচয় পোৱা যায়। এজন সাউদৰ দুজনী ঘৈণীয়েক আছিল। বৰজনীৰ এজনী ছোৱালী, তাইৰ নাম তেজীমলা। সৰুজনীৰ কোনো ল'ৰা-ছোৱালী নাছিল। তেজীমলাৰ মাক তাইৰ কেঁচুৱা কালতে মৃত্যু হোৱাত মাহীমাকে তাইক ডাঙৰ কৰিছিল। বাপেকে তেজীমলাক বহুত মৰম কৰিছিল কিন্তু মাহীয়েকে পেটে পেটে তাইক দেখিব নোৱাৰিছিল। গিৰীয়েকৰ ভয়তহে তেজীমলাক প্ৰতিপালন কৰি ডাঙৰ-দীঘল কৰিছিল। তেজীমলাৰ বাপেক বিদেশলৈ বেপাৰৰ কামত যোৱাত মাহীমাকে তেজীমলাক বিভিন্ন ধৰণে অত্যাচাৰ কৰিব ধৰিলে। মাহীয়েকে ঢেঁকী দি থাকোঁতে এবাৰ চাব মাৰি ঢেঁকীটো পেলাই দি তেজীমলাৰ সোঁহাতখন খুন্দি পেলায়, তাৰ পিছত তেজীমলাক মাহীমাকে বাওঁহাতেৰে খুবলিত ধান বঢ়াই দিবলৈ কয় আৰু এবাৰত তেওঁ তেজীমলাৰ বাওঁহাতখনো খুন্দে। এইদৰে তেওঁ তেজীমলাৰ ভৰি দুখন আৰু মূৰটোৰো খুন্দি মাৰি কোনেও নেদেখাকৈ ঢেঁকীশালৰ পানীপোতাতে গাঁত খান্দি পুতি থয়। কিছুদিনৰ মূৰত তাত এজোপা লাওগছ গজি লহপহকৈ ডাঙৰ হৈ লাও লাগিবলৈ ধৰে। লাও দেখি এগৰাকী বুঢ়ীয়ে সাউদনীক লাও খোজে। লাও ছিঙিবলৈ ধৰোঁতেই লাওজোপাই ইনাই-বিনাই কান্দি কথা কোৱা শুনি বুঢ়ীগৰাকীয়ে ভয় খাই আহি সাউদনীক কথাটো জনায়। পিছত সাউদনীয়ে লাওজোপা কাটি পেলাই দিয়ে। কিন্তু লাওজোপা কাটি পেলাই দিয়া ঠাইতে এজোপা জৰাটেঙা গজি উঠি জৰা লাগিবলৈ ধৰে। এবাৰ গৰখীয়া ল'ৰাই জৰা ছিঙিবলৈ মন কৰি হাত মেলাত পুনৰ জৰাজোপাই ইনাই- বিনাই কান্দে। এই কথা গম পাই সাউদনীয়ে জৰাজোপা কাটি নদীত উটুৱাই দিয়ে। নদীত উটি গৈ ওচৰৰে ঘুলি এটাত ৰৈ এজোপা পদুম হৈ ফুলিবলৈ ধৰে। কিছুদিনৰ পিছত বেহা-বেপাৰ কৰি সেই নৈয়েদিয়েই তেজীমলাৰ বপেকে নাৱেৰে উভতি আহোঁতে পদুম ফুল এটা ফুলি থকা দেখি তেজীমলালৈ সেই ফুলটো লৈ যাওঁ বুলি ভাবি নাৱৰীয়াক সেই ফুলটো ছিঙি আনিবলৈ ক'লে। নাৱৰীয়াটোৱে ফুলটো ছিঙিবলৈ হাত মেলোঁতেই ফুলটোৱে কান্দিবলৈ ধৰিলে। সাউদে পদুম ফুলপাহ তেওঁৰেই কন্যা তেজীমলা বুলি প্ৰমাণ কৰি এটি শালিকাৰ ৰূপত ঘৰলৈ লৈ আনে। ঘৰত সাউদে তেজীমলাৰ বিষয়ে নানান প্ৰশ্ন কৰি পিছত শালিকাৰ পৰা পুনৰ আগৰ তেজীমলাক ঘূৰাই আনে আৰু ঘৈণীয়েকক ঘৰৰ পৰা খেদি দিয়ে।

'বুঢ়ী আইৰ সাধু'ৰ অন্তৰ্ভুক্ত 'তেজীমলা' সাধুৰ পৰা প্ৰপীয় পদ্ধতিৰে ফলনসমূহৰ আলোচনা কৰা হ'ল— পৰীসাধুৰ প্ৰথম ফলন হ'ল অনুপস্থিতি য'ত পৰিয়ালৰ কোনো এজন সদস্যই ঘৰ এৰি গুচি যায়। 'তেজীমলা' সাধুটিত এই ফলনটোৰ প্ৰয়োগ দেখা যায়। তেজীমলাৰ বাপেক বেপেৰুৱা মানুহ, বেহা-বেপাৰলৈ নগ'লে নচলে। সেয়ে সততে তেওঁ চাৰিওফালে বেহাই ফুৰিবলগীয়াত পৰে। এবাৰ তেওঁ ছয়-সাত মাহৰ বাবে বিদেশলৈ গ'ল। পৰীৰ সাধুৰ দ্বিতীয় ফলনত নায়কক কোনো বিশেষ কাম কৰিবলৈ নিষেধ কৰা হয়। 'তেজীমলা' সাধুটিত তেনে ফলন দেখা পোৱা যায়— "তোৰ হাতত মোৰ তেজীমলাক গতালোঁ। তাই আদৰুৱা ছোৱালী, তাইক মৰম-বেথা কৰি ভালকৈ ৰাখিবি" (কলিতা, পৃ. ১৬)। কিন্তু ইয়াত তেজীমলাৰ মাহীমাক খলনায়কহে। সেয়ে ক'ব পাৰি যে অসমীয়া সাধুত এনেধৰণৰ ফলন কাহিনীৰ নায়কৰ উদ্দেশ্য দিয়া নাথাকিবও পাৰে। ঠিক তেনেদৰে পৰীৰ সাধুৰ তৃতীয় ফলনটো হ'ল যে নায়কে নিষেধাজ্ঞা অমান্য কৰে। 'তেজীমলা' সাধুটিত খলনায়কে দ্বিতীয় ফলনত দিয়া বাধাৰ উলংঘা কৰিছে। তেজীমলাৰ দেউতাকে মাহীমাকলৈ যি আদেশ দিছিল বা অনুৰোধ কৰিছিল তাৰ উলংঘা কৰিছে। মাহীমাকে তেজীমলাক মৰম কৰাৰ সলনি অত্যাচাৰহে কৰিছিল। প্ৰপৰ ছয় নম্বৰ ফলনত খলনায়কে নায়কক প্ৰতাৰণা কৰি তেওঁৰ ওপৰত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ নাইবা তেওঁৰ সা-

সম্পত্তি গ্রাস কৰিবলৈ চেষ্টা কৰে। উক্ত সাধুৰ পিনে চালে দেখা যায় তেজীমলাৰ মাহীমাকে দেউতাক উভতি অহাৰ আগতেই তাইৰ ওৰ পেলাব বিচাৰিছিল। মাহীমাকে ভাবিছিল যে তেজীমলাক বিয়া দি বাপেকে তাইৰ লগত যিখিনি ধন-বস্তু উলিয়াই দিব সেইখিনি আইৰ ঘৰলৈ সৰকাব পাৰিলে লাভ হ'ব। সেইবাবে মাহীমাকে সাউদৰ সা-সম্পত্তি গ্রাস কৰি নিজৰ ঘৰলৈ নিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। পৰীৰ অষ্টম ফলনত খলনায়কে পৰিয়ালৰ কোনো সদস্যৰ অনিষ্ট সাধন কৰে বা কোনো সদস্যক আঘাত কৰে। 'তেজীমলা' সাধুটিত তেনেধৰণৰ ঘটনা সংঘটিত হোৱা দেখা যায়। খলনায়ক মাহীমাকে তেজীমলাক দেউতাক বেপাৰলৈ যোৱাৰ পিছত অকলে পাই বিভিন্ন ধৰণে অত্যাচাৰ কৰিছিল। পৰীৰ পঞ্চদশ নম্বৰ ফলনত অনুসন্ধান কৰা বস্তুটোৰ সবিশেষ আহৰণ কৰিবলৈ নায়কজনক স্থানান্তৰ কৰা হয়, উপস্থিত কৰোৱা হয় অথবা বাট দেখুৱাই দিয়া হয়। এই ফলনত নায়কে কোনো এক বস্তুৰ সন্ধানত অন্য ঠাইলৈ যায়। 'তেজীমলা' সাধুটিত তেজীমলাৰ বাপেকে বেপাৰ কৰিবলৈ বহুদূৰলৈ গৈছিল। পৰীৰ সাধুৰ বিশ নম্বৰ ফলনত নায়ক উভতি আহে। 'তেজীমলা' সাধুত তেজীমলাৰ বাপেক বেপাৰ কৰিবলৈ গৈ ঘূৰি আহে। 'তেজীমলা' সাধুটিত তেজীমলাৰ সৈতে হোৱা দুর্ব্যৱহাৰৰ কথা গম পাই দেউতাকে মাহীমাকক ঘৰৰপৰা খেদি দিয়ে। প্রপৰ ত্রিশ নম্বৰ ফলনৰ সৈতে ইয়াৰ মিল আছে। ত্রিশ নম্বৰ ফলনৰ মতে খলনায়কজনক শাস্তি দিয়া হয়।

২.০ সিদ্ধান্ত আৰু সামৰণি ঃ

'তেজীমলা' সাধু অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিৰ এটি জনপ্রিয় সৃষ্টি। যুগ যুগ ধৰি এই কাহিনী অসমীয়া সমাজত প্রচলিত হৈ আহিছে। আমাৰ কাৰণে 'তেজীমলা' সাধুৰ কাহিনী বা চৰিত্রটো অতি গুৰুত্বপূর্ণ। ঠিক তেনেদৰে সাধুটিৰ মাজেৰে প্রতিফলিত হোৱা সমাজ-সংস্কৃতিৰ দিশসমূহো অতিশয় গুৰুত্বপূর্ণ। প্রপীয় পদ্ধতিৰ সাধুৰ ৰূপতাত্ত্বিক বিশ্লেষণে এইবোৰ দিশ উলাই কৰিছে। সাধুটোৰ কেৱল জঁকাটো চালেই আলোচনা সম্পূর্ণ নহয়। ঠিক তেনেদৰে প্রপীয় পদ্ধতিৰে বিশ্লেষণ কৰিলে 'তেজীমলা' সাধুটিত খলনায়ক হিচাপে মাহীমাকক একপক্ষীয়ভাৱে চোৱা দেখা যায়। কি পৰিস্থিতিৰ বাবে মাহীমাক নিষ্ঠুৰ হৈ খলনায়ক হৈছে তাৰ যুক্তিসংগত কাৰণ থাকিব পাৰে, কিন্তু প্রপীয় পদ্ধতিৰ বিশ্লেষণত সমগ্র কাহিনীটো তেজীমলা আৰু দেউতাকৰ দৃষ্টিভংগীৰেহে চোৱা হৈছে।

'তেজীমলা' সাধুটিৰ কাহিনী পৰীসাধু নহয়। সেয়ে পৰীসাধুৰ ফলনবোৰৰ সৈতে ইয়াৰ তুলনা কৰা অনুচিত। কার্যৰ ফালৰ পৰা সাদৃশ্য দেখাৰ বাবে সাধুটোৰ আলোচনাত পৰীসাধুৰ ফলনবোৰৰ উল্লেখ কৰা হৈছে। এই আলোচনাত যিবোৰ ফলন পোৱা গৈছে সাধু সাপেক্ষে তাৰ অর্থ ভিন্ন ধৰণৰ। সেয়ে পৰীসাধুত সংঘটিত হোৱা ঘটনা অন্য শ্রেণীৰ সাধুৰ ঘটনাতকৈ পৃথক। সাধুটিত সংঘটিত প্রতিটো ফলনেই মূল বিষয়বস্তুৰ সৈতে জড়িত আৰু এটা ফলনে আন ফলনসমূহৰ সৃষ্টি কৰিছে। 'তেজীমলা' সাধুৰ ৰূপতাত্ত্বিক বিশ্লেষণ কৰাৰ ফলত মুঠ সাতটা ফলনৰ সন্ধান পোৱা গ'ল। এই ফলনবোৰে সাধুটোৰ কাহিনীক গঢ় দিছে। ❑

প্রসংগ সূত্র

১। শর্মা, নবীন চন্দ্র। লোকসংস্কৃতি। পঞ্চম সংস্কৰণ,গুৱাহাটী, চন্দ্র প্রকাশ,২০২২ পৃ. ৪৯

২। উল্লিখিত, পৃ. ৫০

৩৩। কলিতা, দেবেন। বুঢ়ী আইৰ সাধু। সপ্তম প্রকাশ, গুৱাহাটী, ৰেখা প্রকাশন,২০২২ পৃ. ২৬

গ্রন্থপঞ্জী

অসমীয়া

কলিতা, দেবেন। *বুঢ়ী আইৰ সাধু* । সপ্তম প্রকাশ,গুৱাহাটী, ৰেখা প্রকাশন, ২০২২

পাদুন, নাহেন্দ্র। *সাহিত্য তত্ত্ব আৰু সমালোচনা তত্ত্ব* । দ্বিতীয় প্রকাশ, গুৱাহাটী, বাণী মন্দিৰ, ১৯৩৬

শইকীয়া, নগেন। *বেজবৰুৱা ৰচনাৱলী* (সম্পা.)। প্রথম প্রকাশ, গুৱাহাটী, বনলতা, ২০১০

শর্মা, নবীনচন্দ্র। *লোকসংস্কৃতি* । পঞ্চম সংস্কৰণ, গুৱাহাটী, চন্দ্র প্রকাশ, ২০২২

ইংৰাজী গ্রন্থ

Propp, Vladimir. *Morphology of the folktale*.second edition, United State of America University of Texas Press,1968.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

‘অয়নান্ত’ উপন্যাসত লোকসাংস্কৃতিক প্রসংগৰ অনুসন্ধান

জয় জ্যোতি ডেকা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী
পাণবজাৰ - ১
৭০৮৬১০৯০০৫
dekajoyjyoti2@gmail.com

ড° দীপাঞ্জলি দাস গোস্বামী

সহযোগী অধ্যাপক,অসমীয়া বিভাগ
কটন বশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী,
পাণবজাৰ- ১
৭৫৭৭৯৮৮৬১০
dipanjali.goswami@ottonuniversity.ac.in

সাৰটোকা ঃ

সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধা (Genre) সমূহত, লোকসাংস্কৃতিক প্রসংগই এক গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা অর্জন কৰি আছে। প্রাচীনৰ পৰা সাম্প্রতিক উত্তৰ আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্রত লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় - কেতিয়াবা পাঠৰ বিষয়বস্তু ৰূপে , কেতিয়াবা ৰূপ বা সংযুতি নির্মাণৰ কাৰক হিচাপে আৰু কেতিয়াবা নতুন বাখ্যা বিশ্লেষণৰ মাজেদি এই লোকসাংস্কৃতিক প্রসংগসমূহ চিত্রিত হৈছে। সাহিত্যৰ এক জনপ্রিয় বিধা হ’ল ‘উপন্যাস’। অসমীয়া সাহিত্যৰ এই বিধা (Genre) বিধৰ ক্ষেত্রত দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰিলে দেখা যায় প্রথম উপন্যাস ‘ভানুমতী’ৰ পৰা আৰম্ভ কৰি সাম্প্রতিক ৰচিত প্রায় সকলোবোৰ উপন্যাসতে কম-বেছি পৰিমাণে ঔপন্যাসিকৰ জ্ঞাত বা অজ্ঞাত ভাবে লোকসাংস্কৃতিকমূলক উপাদানসমূহৰ প্রভাব পৰিছে। এনে প্রসংগত, অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ দ্বিতীয় উপন্যাস ‘অয়নান্ত’ও ব্যতিক্রমী নহয়। এই উপন্যাসখনত লোকসাংস্কৃতিকমূলক প্রসংগসমূহ কি দৰে অন্তর্নিহিত হৈ আছে, সেয়া বিচাৰ কৰাৰ উদ্দেশ্য আগত ৰাখিয়েই “অয়নান্ত উপন্যাসত লোকসাংস্কৃতিক প্রসংগৰ অনুসন্ধান” শীর্ষক প্রস্তাৱিত গৱেষণা পত্রখন প্রস্তুত কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

সংস্কৃতি, লোক সাহিত্য,ভৌতিক সংস্কৃতি, সামাজিক লোকাচাৰ, লোক পৰিৱেশ্য কলা

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

কৃষ্টিক যেতিয়া সংস্কাৰ কৰা হয় সেয়াই হ’ল সংস্কৃতি। এই সংস্কৃতি ৰ পৰিসৰ বৃহৎ। বিভিন্ন পণ্ডিত, নৃতত্ত্ববিদ, সংস্কৃতিবিদে তেওঁলোকৰ নিজা নিজা দৃষ্টিভংগীৰে সংস্কৃতিৰ সংজ্ঞা প্রদান কৰিছে যদিও উইলিয়াম এ.হেভিলেণ্ডে দিয়া সংজ্ঞাটোক সংস্কৃতিৰ সর্বজনগ্রাহ্য সংজ্ঞা বুলি কোৱা হয়। তেওঁৰ মতে “সংস্কৃতি কিছুমান নিয়মৰ সংযুতি অথবা পৰিমাপক। এই সংযুতিবোৰে কোনা এখন সমাজৰ অংগীভূত ব্যক্তিসকলক প্রাভাৱান্বিত কৰাৰ ফলস্বৰূপে সেই সমাজৰ অংগীভূত ব্যক্তিসকলৰ বাবে উপযুক্ত আৰু গ্রহণযোগ্য বিভিন্ন আচৰণৰ জন্ম হয়, এই আচৰণৰ সমষ্টিয়েই সংস্কৃতি” (Haviland, ১২) সংস্কৃতিক ইয়াৰ গুণ, লক্ষণ আৰু বৈশিষ্ট্যৰ ভিত্তিত তিনিটা বহল ভাগত ভাগ কৰা হৈছে। ভাগকেইটা হ’ল—

ক) অভিজাত সংস্কৃতি
খ) লোক সংস্কৃতি
গ) জনজাতীয় সংস্কৃতি

ইয়াৰ লোকসংস্কৃতি বা লোকবিদ্যা মানৱজাতিৰ সমানেই প্রাচীন। মানৱজাতিৰ জন্মৰ লগে লগে লোকসংস্কৃতিৰো জন্ম, কিন্তু ইয়াৰ পদ্ধতিগত চিন্তা-চর্চা আৰু বিচাৰ-বিশ্লেষণ প্রকৃতার্থত খ্রীঃ ঊনবিংশ শতিকাৰ প্রথমার্ধৰ পৰাহে আৰম্ভ হয়। ৰোমান্টিক

আন্দোলনৰ সুদূৰ প্ৰসাৰী প্ৰভাৱৰ পৰিণতিত খ্ৰীঃ ঊনবিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণিত ইংলেণ্ডৰ পুৰাতত্ত্ববিদ আৰু জাৰ্মানদেশীয় ভাষাতত্ত্ববিদসকলে জনসাধাৰণৰ ৰীতি নীতি আচাৰ ব্যৱহাৰদিত সন্ধানী দৃষ্টি সম্পাত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰাৰ লগে লগে লোকবিদ্যা বা লোকসংস্কৃতি অধ্যয়নৰ পথ প্ৰশস্ত হৈ উঠে আৰু "ইয়াৰ ফলস্বৰূপে অধ্যয়নৰ নতুন ক্ষেত্ৰত অৰ্থাৎ 'New field of learing' ৰূপে লোকসংস্কৃতি বা লোকবিদ্যাই আত্ম প্ৰকাশ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে" (শৰ্মা, ৫)

লোকসংস্কৃতি শব্দটোৰ ইংৰাজী প্ৰতিশব্দ হ'ল 'Folk-lore' এই 'Folklore' শব্দটো অৰ্বাচীন। ইয়াৰে 'Folk' শব্দটোৰ অৰ্থ হ'ল 'লোক বা জন', আৰু 'lore' শব্দটোৰ অৰ্থ হ'ল- 'বিদ্যা'। 'lore' পদে সংস্কৃতিক সূচায় বুলি স্পষ্টভাৱে কোৱা টান। এই ফালৰ পৰা Folklore ক বুজাবৰ বাবে লোকবিদ্যা পদটো প্ৰয়োগ কৰাহে অধিক সমীচীন' (শৰ্মা, ৪০) তথাপি কিন্তু তাৰ সমাৰ্থক হিচাপে 'Folkculture' অৰ্থাৎ 'লোকসংস্কৃতি' পদটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

লোকসাংস্কৃতিক প্ৰসংগই প্ৰধানকৈ দুটা দিশ নিৰ্দেশ কৰে। সেইকেইটা হ'ল—

ক) লোকসাহিত্য আৰু

খ) লোক জীৱন

লোকসংস্কৃতিৰ মূখ্য আধাৰেই হ'ল লোকজীৱন। পৰম্পৰাগত জীৱনৰ সকলোবোৰ দিশেই লোকজীৱনৰ ভিতৰুৱা। লোকসাহিত্য বা বাচিক কলাও লোকজীৱনৰে এক প্ৰয়োজনীয় দিশ। লোকজীৱনে পৰম্পৰাগত সংস্কৃতিৰ লগতে বাচিক কলাৰূপৰ পূৰ্ণচিত্ৰ ৰূপায়ন কৰে। লোকজীৱনে সামৰি লোৱা দিশকেইটা হ'ল ভৌতিক সংস্কৃতি ,সামাজিক লোকাচাৰ বা লোক প্ৰথা আৰু লোক পৰিৱেশ্য কলা। ৰিচার্ড এম.ডৰছনে লোকসংস্কৃতি আৰু লোকজীৱনক এনেদৰে চাৰিটা ভাগত ভাগ কৰিছে—

ক) লোকসাহিত্য (Oral literature)

খ) ভৌতিক সংস্কৃতি(Material Culture)

গ) সামাজিক লোকাচাৰ বা লোক প্ৰথা (Social Folk Custome)

ঘ) লোক পৰিৱেশ্য কলা (Folk performing Arts)

প্ৰদত্ত গৱেষণা পত্ৰখনৰ যোগেদি অৰুণা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ 'অয়নান্ত' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হোৱা লোকসংস্কৃতি ৰ এই আটাইকেইটা বিভাগৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

০.১ অধ্যয়নৰ প্ৰাসংগিকতা ঃ

গভীৰ অন্তদৃষ্টিৰে সমাজ পৰ্যবেক্ষণ আৰু সাহিত্যত সেই সমাজৰ বাস্তৱ প্ৰতিচ্ছবি দাঙি ধৰা সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত অৰুণা পটঙ্গীয়া কলিতা অন্যতম। মৃগনাভি (১৯৮৭) উপন্যাসৰ যোগেদি ঔপন্যাসিক জীৱনৰ পাতনি মেলা কলিতাৰ 'অয়নান্ত' (১৯৯৪) উপন্যাসখনে, অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ জগতখনত এক বিশেষ স্থান দখল কৰি আছে। বিভিন্নজনে সাহিত্যৰ বিভিন্ন তত্ত্বৰ তাত্ত্বিক দিশেৰে তথা ভাষিক দৃষ্টিভংগীৰে উপন্যাসখনৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰিছে যদিও লোকসাংস্কৃতিক দৃষ্টিকোণেৰে কৰা অধ্যয়ন অদ্যাৱধি পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। সেয়েহে বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ যথেষ্ট প্ৰাসংগিকতা দেখা যায়।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

"অয়নান্ত উপন্যাসত লোকসাংস্কৃতিক প্ৰসংগৰ অনুসন্ধান" শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ মূখ্য উদ্দেশ্য হ'ল—

ক) লোকসংস্কৃতিৰ মূলতঃ চাৰিটা ভাগৰ সংক্ষিপ্ত পৰিচয়মূলক বিবৃতি দাঙি ধৰা।

খ) লোকসংস্কৃতিৰ এই আটাইকেইটা বিভাগ উপন্যাসখনৰ মূল পাঠত (Text) কি দৰে অন্তনিৰ্হিত হৈ আছে, সেয়া অনুসন্ধান কৰা ।

গ) উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হোৱা লোকসংস্কৃতিকেন্দ্ৰিক সামাজিক ৰুঢ়িমূলক প্ৰসংগসমূহৰ বিষয়ে বিচাৰ কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু সমল সংগ্ৰহৰ উৎস ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

গৱেষণা কৰ্মত মুখ্য আৰু গৌণ দুয়ো প্ৰকাৰৰ সমল ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। মুখ্য উৎসকেন্দ্ৰিক সমল হ'ল 'লয়ার্ছ বুক ষ্টল' প্ৰকাশনৰ দ্বাৰা ২০১২ চনত প্ৰকাশিত অৰুণা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ 'অয়নান্ত' উপন্যাসৰ ষষ্ঠ সংস্কৰণ। আনহাতে গৌণ সমল হিচাপে বিষয়ৰ লগত জড়িত বিভিন্ন প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ, আলোচনী আৰু গৱেষণা পত্ৰিকাৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

সংস্কৃতিৰ পৰিসৰৰ ব্যাপকতালৈ লক্ষ্য ৰাখি এই গৱেষণা পত্রখনত 'অয়নান্ত ' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্রতিফলিত হোৱা লোকসাংস্কৃতিক দিশসমূহৰ আলোচনাকহে মূলতঃ অধ্যয়নৰ পৰিসৰত আৱদ্ধ কৰা হৈছে। লগতে লোকসংস্কৃতিৰ প্রধান বিভাগসমূহৰ পৰিচয়মূলক প্রসংগকো আলোচনাৰ আওতালৈ অনা হৈছে।

১.০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

অসমীয়া লোকসংস্কৃতি আৰু লোকজীৱনৰ প্রতিফলনৰ দিশৰ পৰা অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ প্রকাশিত আটাইবোৰ উপন্যাসৰ ভিতৰত 'অয়নান্ত' এখন সার্থক উপন্যাস। অসমীয়া লোকসংস্কৃতিক বা লোক পৰম্পৰাগত জীৱন আৰু সমাজৰ বিবিধ আচৰণে 'অয়নান্ত' উপন্যাসখনত এনেদৰে যথার্থভাৱে স্থিতি লাভ কৰিছে যে, এই উপন্যাসখনক বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱাৰ 'জীৱনৰ বাটত' উপন্যাসখনৰ পিছতেই অসমীয়া লোকসংস্কৃতিৰ স্বচ্ছ মুকুৰ হিচাপে আখ্যা দিব পাৰি।

'অয়নান্ত' উপন্যাসখনৰ যোগেদি প্রতিফলিত হোৱা লোকসাংস্কৃতিক প্রসংগসমূহক এনেদৰে ভাগ কৰি আলোচনা কৰিব পৰা যায়—

ক) লোক সাহিত্যমূলক প্রসংগ
খ) ভৌতিক সংস্কৃতি মূলক প্রসংগ
গ) সামাজিক লোকাচাৰমূলক প্রসংগ
ঘ) লোক পৰিৱেশ্য কলামূলক প্রসংগ
ঙ) সামাজিক ৰূঢ়িমূলক প্রসংগ

১.০.১ লোকসাহিত্যমূলক প্রসংগ ঃ

যুগে যুগে মুখ পৰম্পৰাৰে চলি অহা মৌখিক সৃষ্টিৰাজিক লোকসাহিত্য বুলি কোৱা হয়। এই বিধ সৃষ্টিক সূচাবৰ বাবে 'অলিখিত সাহিত্য', 'জনসাহিত্য' , 'আদিম সাহিত্য' আৰু 'পৰম্পৰাগত সাহিত্য'- এনে বিভিন্ন পৰিভাষাৰ ব্যৱহাৰ কৰা দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই বিধ সাহিত্য ব্যক্তিনিৰপেক্ষ। অর্থাৎ এই সাহিত্যত লেখকৰ কোনোধৰণৰ বিজ্ঞাপন নাথাকে। ৰূপ আৰু সংযুতিৰ দিশৰ পৰা এই বিধ সাহিত্যক বাচিক কলা বুলিও কোৱা হয়। উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্রতিফলিত হোৱা লোক সাহিত্যমূলক প্রসংগক আলোচনাৰ সুবিধার্থে এনেদৰে দুটা ভাগত ভাগ কৰি দেখুৱাব পৰা যায়—

ক) সাধুকথা আৰু
খ) লোকগীত

১.০.১.১ সাধুকথা ঃ

সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত সাধুকথাবোৰৰ বৰ বিশেষ মূল্য নাথাকিলেও কিন্তু নৃতত্ত্ব আৰু সমাজতত্ত্বৰ অধ্যয়নৰ ফালৰ পৰা ইয়াৰ মূল্য যথেষ্ট আছে। লোক জীৱনৰ অভিজ্ঞতা, কল্পনা, বাস্তৱৰ সমন্বয়ত লোকমুখৰ মাধ্যমত জন্ম লাভ কৰি প্রজন্ম অনুসৰি প্রচলিত হৈ অহা সত্য, অর্ধ সত্য, অসত্য কাহিনীসমূহকে সাধুকথা বুলি অভিহিত কৰিব পৰা যায়। সাধুকথা মুখ্যতঃ শিশুক মনোৰঞ্জন যোগোৱা ৰোমাঞ্চধর্মী কাহিনী। কাল্পনিক চৰিত্র, অতি প্রাকৃত উপাদান, সাধাৰন জ্ঞান আৰু বিচাৰ, উৎকণ্ঠা বৃদ্ধি, সুখাত্মক পৰিণতি, নীতিশিক্ষা- এনে বিভিন্ন দিশসমূহে হৈছে সাধুকথাৰ প্রাথমিক চর্ত।

উপন্যাসখনৰ 'আঠ' অধ্যায়ত আইতাক যশোদাই বীণাক 'কাচন কুঁৱৰী' সাধু কৈ সেই সাধুৰ সামাজিক প্রাসংগিকতা সম্পর্কে ইংগিত প্রদান কৰে। সাধুটোৰ কোনবোৰ প্রসংগ নাৰী জীৱনৰ সৈতে সম্বন্ধিত তাৰেই শিক্ষা প্রদানৰ অর্থে যশোদাই বীণাৰ আগত এই সাধুৰ পাতনি মেলিছে।

'এঘাৰ' অধ্যায়ত বীণাক চিষ্টাৰ মেলিনাই কোৱা যীচুক চমৰীয়া তিৰোতাজনীয়ে ভৰিত তেল সনাৰ সাধুটোৰ প্রসংগই

আধ্যাত্মিকতা সম্বন্ধিত নীতিশিক্ষা প্রদানৰ ইংগিত বহন কৰে।

'ঊনৈশ অধ্যায়'ত বীণাক চাবলৈ অহা ৰায়বাহাদুৰৰ পৰিয়ালৰ আগত বীণাৰ মানসিক অৱস্থাৰ বর্ণনাৰ প্রসংগত 'তেজীমলা' সাধুটোৰ এটা অংশ ঔপন্যাসিকে উল্লেখ কৰিছে। যিয়ে ঔপন্যাসিক গৰাকীৰ বর্ণনা শৈলীৰ ক্ষেত্রত এক নতুনত্বৰ পৰিচয় প্রদান কৰে। বিষয়ৰ লগত সাদৃশ্য থকা কোনো সাধুকথাৰ অনুষংগক যেতিয়া মূল পাঠৰ বিষয়ৰ লগত নির্বাচিত সাধুকথাৰ পাঠটোৰ বিষয় এক কৰি বর্ণনীয় বিষয় বস্তুত অভিনৱত্ব প্রদান কৰা ঔপন্যাসিক কলিতাৰ উপন্যাস ৰচনাৰ এক নব্য কৌশল। একে কৌশল দেখিবলৈ পোৱা যায় 'একৈশ' অধ্যায়ত। এই অধ্যায়ত , বীণাৰ চিন্তা অনুষংগমূলক প্রসংগই 'কমলা কুঁৱৰী' সাধুটোৰ কথা অৱতাৰণা কৰিছে।

১.০.১.২ লোকগীত ঃ

আদিম কালৰে পৰা লোকসমাজত মুখে মুখে প্ৰচলিত হৈ অহা গীতসমূহকে 'লোকগীত' বুলি আখ্যা দিব পৰা যায়। যিসমূহ গীতৰ সাহিত্যিক মূল্য যথেষ্ট। এই গীতসমূহক প্ৰধানত তিনিটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে। ভাগকেইটা হ'ল-

ক) আখ্যানমূলক গীত

খ) অনুষ্ঠানমূলক গীত আৰু

গ) বিবিধ বিষয়ক গীত

এই তিনিটা বিভাগৰ ভিতৰত 'অয়নান্ত' উপন্যাসখনত কেৱল অনুষ্ঠানমূলক আৰু বিবিধ বিষয়ক লোকগীতৰ প্ৰসংগ বিচাৰি পোৱা যায়। অনুষ্ঠানমূলক লোকগীতৰ ভিতৰত 'বিহুনাম' আৰু বিবিধ বিষয়ক লোকগীতৰ ভিতৰত চাহ বাগিচাকেন্দ্ৰিক এক লোকগীতৰ প্ৰসংগ উপন্যাসখনৰ ৩ নং পৃষ্ঠাত দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিষয়ৰ সমৰ্থনত উক্ত দুয়োটা লোকগীতৰ প্ৰয়োগ নিৰ্বাচিত পাঠটিত ঔপন্যাসিক গৰাকীয়ে কি দৰে কৰিছে, সেয়া তলত উল্লিখিত তালিকাৰ সহায়ত দেখুৱাবলৈ যত্ন কৰা হ'ল—

১.০.২ ভৌতিক সংস্কৃতিমূলক প্ৰসংগ ঃ

ভৌতিক সংস্কৃতিয়ে প্ৰধানকৈ প্ৰাকৃতিক লোকজীৱন 'Physical folklife' ক নিৰ্দেশ কৰে। ভৌতিক সংস্কৃতিৰ বিষয়বস্তু শ্ৰাৱণিক (Aural) আচৰণৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ নকৰে, নিৰ্ভৰ কৰে দৃশ্যগত বা চাক্ষুষ (Visual) আচৰণৰ ওপৰত। বাচিক কলাৰ দৰেই ভৌতিক সংস্কৃতিতো এফালে ৰক্ষণশীল পৰম্পৰা আৰু ব্যক্তিগত পৰিবৰ্তন- এই উভয় শক্তিয়ে নিয়তভাবে ক্ৰিয়া কৰি থাকে। পৰম্পৰা আশ্ৰয়ী সমাজত পুৰুষ-স্ত্ৰী উভয়ে কি দৰে বা কেনেকৈ ঘৰ-দুৱাৰ নিৰ্মান

ক্ৰমিক নং	লোকগীত	বিষয়ৰ সমৰ্থনত লোকগীতসমূহৰ প্ৰয়োগৰ কাৰণ
(১)	"অ' চেনাই, কমোৱা তুলাবোৰ যেনেকৈ উৰিছে, তেনেকৈ উৰিবৰ মন" (বিহুনাম)	উকীলৰ কথা জেউতিক সোধা বুলি কোৱাৰ প্ৰসংগত বগীয়ে এই বিহুনামফাঁকি জুৰিছে। এই বিহুনামফাঁকিৰ যোগেদি জেউতিৰ মনৰ পৰিচয় পোৱা যায়। উকীলৰ কথা শুনাৰ লগে লগে কমোৱা তুলাবোৰ বতাহত উৰাৰ দৰে জেউতিৰ মনটোও যে উৰিছে সেই কথাৰ উমান পাই উক্ত বিহুনামফাঁকি জেউতিৰ আগত বগীয়ে গাইছে।
(২)	"ধনশিৰিৰ পাৰতে কাপোৰ ধুই আছিলো চেনায়ে নাও মেলি যায়" (বিহুনাম)	এই বিহুনামফাঁকিয়ে বীণাৰ জীৱনলৈ অহা প্ৰথম প্ৰেমৰ ইংগিত প্ৰদান কৰে। খ্ৰীষ্টান ল'ৰা ৰতনক বীণাই ভালপায় আৰু সেই ৰতনৰ কথাই জেউতিক সুধিবলৈ তাই উত্ৰাৱল হৈ আছে। তাইৰ মনত সৃষ্টি হোৱা ভয়, শংকা লাজ মিশ্ৰিত এক ভাৱধাৰাৰে উক্ত বিহুনামফাঁকি গাই নিজৰ মনক বশ কৰাৰ চেষ্টা কৰিছে।
(৩)	"ফাঁকি দিয়া আনিলি আসাম" (চাহ-বাগিচা -কেন্দ্ৰিক লোকগীত)	অসমলৈ বৃটিছ অহাৰ পাছত পট্টন হোৱা চাহ বাগিচাবোৰত কাম কৰিবলৈ বৃটিছ কৰ্তৃপক্ষই ছল-চক্ৰান্ত কৰি ফাঁকি দি বিহাৰ, পশ্চিমবংগ, উৰিষ্যা, পুৰুলিয়াৰ সহজ-সৰল দাৰিদ্ৰ -পীড়িত আদিবাসী জনগোষ্ঠীসমূহৰ পৰা বনুৱা আনে। মিছা আশা প্ৰদান কৰি অনা এই বনুৱাসকলৰ আশা ভংগতাৰ প্ৰতীকস্বৰূপ 'ফাঁকি দিয়া আনিলি আসাম' লোকগীতটি মংলুহঁতে নৈৰফালে নতুন মাটি ভাঙিবলৈ গৈ কামৰ মাজে মাজে গোৱাৰ কথা উপন্যাসখনৰ ৩ নং পৃষ্ঠাত উল্লেখ আছে।

কৰে, কাপোৰ প্ৰস্তুত কৰে, খাদ্য ৰান্ধে, খেতি-বাতি কৰে, মাছ-কাছ পোহে, মাটি-পানীৰ ব্যৱস্থা কৰে, তথা নিত্য-নৈমিত্তিক সকলো প্ৰয়োজনীয় সামগ্ৰী প্ৰস্তুত কৰে- এই সকলোবোৰৰ চৰ্চাই হ'ল ভৌতিক সংস্কৃতিৰ প্ৰধান বিষয়।

'অয়নান্ত' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হোৱা ভৌতিক সংস্কৃতিৰ প্ৰধান দিশসমূহ এনেধৰণৰ—

ক) লোকশিল্প

খ) লোকস্থপতি বিদ্যা

গ) লোকৰন্ধন প্ৰণালী আৰু

ঘ) লোক আভৰণ

লোকশিল্প বা হস্তশিল্প ভৌতিক সংস্কৃতিৰ এটি প্ৰয়োজনীয় উপাদান। 'লোকসমাজত নাৰী-পুৰুষসকলে জীৱনৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ প্ৰতি সচেতন হৈ হাতেৰে কিছুমান শিল্পবস্তু সৃষ্টি কৰে। এই শিল্পবস্তুৰ নামেই লোক শিল্প বা হস্তশিল্পৰ নিৰ্মাণ বা 'Folk craft or handicrafts ' (শৰ্মা,৬২)। এই লোকশিল্পসমূহ জীৱনৰ বাস্তৱিক বা প্ৰাত্যহিক দিশৰ সৈতে সম্পৃক্ত। উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হোৱা তাঁতশালত বোৱা গামোচাখনেই হ'ল লোকশিল্পৰ শ্ৰেষ্ঠ নিদৰ্শন। এই গামোচাৰ লগতে সমান্তৰালকৈ উপন্যাসখনত উল্লেখ থকা তাঁতশালতে বোৱা ৰিহা, মেখেলা, চাদৰ, বীণাই হাতেৰে বনোৱা শৰাই ঢাকনী, নন্দ বৰুৱাৰ ঘৰৰ নামঘৰত থকা হেঙুল-হাইতাল বোলোৱা চাকিৰ গছাটোৰ সিংহৰ মুখখন, কাৰুকাৰ্য থকা কীৰ্ত্তন থোৱা ঠগাখন, মণিকূটত থকা সিংহাসনখন, কুন্দত কটা বৰপীৰা আৰু চালপীৰাখনে এই লোকশিল্পকে নিৰ্দেশ কৰে।

লোকসমাজত পৰম্পৰাগতভাৱে চলি অহা স্থপতি বিদ্যাৰ নামেই হ'ল লোকস্থপতি বিদ্যা। লোকস্থপতি বিদ্যাৰ পৰিসৰে আৱদ্ধ কৰা সকলোবোৰ বিষয়েই উপন্যাসখনত স্পষ্ট। স্থপতি বিদ্যাই সামৰি লোৱা 'মাটি বা স্থান নিৰ্বাচন'ৰ দিশটো উপন্যাসখনৰ ৪ নং পৃষ্ঠাত দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই পৃষ্ঠাত উল্লেখ থকা অনুসৰি পূবফালে কলঘৰ , পশ্চিমফালে বাগান,উত্তৰফালে চাহাবৰ বঙলা আৰু সেই বঙলা পাৰ হৈ বাবু বিলাকৰ থকা বঙলাৰ শাৰীসমূহকে কেন্দ্ৰ কৰি উপন্যাসখনৰ ১৮ নং পৃষ্ঠাত থকা মিছন স্কুলৰ কাষত থকা মুকলি মাটি খিনি একমাত্ৰ টিলা হোৱাৰ বাবে কোনোধৰণৰ খেতি খোলা নকৰা, ১৯ নং পৃষ্ঠাত থকা হস্ত নিৰ্মিত হাতী দাঁতৰ লাঠি, ২১৫ নং পৃষ্ঠাত থকা হস্ত নিৰ্মিত নামঘৰৰ বাটচৰাত কৃষ্ণৰ দশ অৱতাৰ মূৰ্তি এনে বিভিন্ন প্ৰসংগই স্থপতি বিদ্যৰ কথাকে নিৰ্দেশ কৰিছে। ইয়াৰোপৰি উপন্যাসখনৰ বিভিন্ন অধ্যায়ত বিষয়ৰ সমৰ্থনত উল্লেখ থকা চাৰি হদ অৰ্থাৎ সুনিশ্চিতকৰণ, পুখুৰী, বাৰী, বাঁহতলি, ঘৰৰ বিভিন্ন বিভাগ যেনে - চৰাঘৰ, ৰান্ধনীঘৰ, ভঁৰালঘৰ , গোসাঁইঘৰ, গোহালি ঘৰ, জুহাল ৰখা ঘৰ, গাধোৱাঘৰ, শৌচকৰাঘৰ, তথা সেই ঘৰসমূহ বন্ধাৰ বাবে প্ৰয়োজন হোৱা বিভিন্ন উপাদানসমূহ এই লোকস্থপতি বিদ্যাৰে ভিতৰুৱা বিষয়।

ভৌতিক সংস্কৃতিৰ আন এটি বিশিষ্ট উপাদান হ'ল লোকৰন্ধন প্ৰণালী। যাক ইংৰাজীত 'Folk cookery' বুলি কোৱা হয়। উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হোৱা চিতল মাছৰ গদাখিনি সিজাই কাঁইট গুচাই কৰা আঞ্জা , পিঠা গুৰিৰ লাড়ু, মাছৰ টেঙা আঞ্জা, চিৰা, কোমল, বৰা চাউল দৈৰ সৈতে জুলীয়া গুৰেৰে খোৱা জলপান- এনে বিভিন্ন খাদ্য বনাম লোকৰন্ধন প্ৰণালীয়ে অস্ত্যাৰ্থক প্ৰকাৰ্য সাধন কৰে।

বস্তু সংস্কৃতিৰ অন্তৰ্গত এটি তাৎপৰ্যপূৰ্ণ উপশ্ৰেণী হ'ল লোকআভৰণ। সংস্কৃতিৰ দুই প্ৰকাৰৰ ভিতৰত লোক আভৰণে বহিঃসংস্কৃতি প্ৰকাশ ঘটায়। লোকআভৰণৰ পৰিসৰে বিভিন্ন ধৰণৰ পোচাক-পৰিচ্ছদ বিভিধ অলংকাৰ আদিক সামৰি লয়। উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হোৱা মহিলাৰ পৰম্পৰাগত সাজ-পাৰৰ ক্ষেত্ৰত মেখেলা-চাদৰ , ৰিহা আৰু পুৰুষৰ ক্ষেত্ৰত ধুতি,চোলা আৰু ডিঙিত লোৱা গামোচাখনৰ কথা ক'ব পৰা যায়। আনহাতে মহিলাৰ পৰম্পৰাগত আ-অলংকাৰৰ ক্ষেত্ৰত গলপতা, জেঠীপতা আঙুঠি , থুৰীয়া , জোনবিৰি , দুগদুগি , গামখাৰু , লোকাপাৰৰ প্ৰসংগই এই লোকআভৰণকে সূচায়।

১.০.৩ সামাজিক লোকাচাৰমূলক প্ৰসংগ ঃ

লোকসাহিত্য আৰু ভৌতিক সংস্কৃতিৰ মাজেৰে পৰম্পৰাগত জীৱন (Traditional life) পৰিচালিত হয়। এই পৰম্পৰাগত জীৱনকে এক কথাত সামাজিক লোক-আচাৰ বুলি কব পৰা যায়। লোকসংস্কৃতিৰ এক প্ৰয়োজনীয় দিশ "সামাজিক লোকআচাৰ বা লোকাচাৰক ইংৰাজীত 'Social folk custom' বোলে" (শৰ্মা,৭৫)। মৌখিক লোকবিদ্যা আৰু ভৌতিক সংস্কৃতিৰ মাজত অৱস্থিত এই লোকাচাৰসমূহৰ প্ৰসংগ 'অয়নান্ত' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে কি দৰে প্ৰতিফলিত হৈছে, সেই বিষয়ে এনেদৰে ভাগ কৰি আলোচনা কৰিব পৰা যায়—

ক) লোকবিশ্বাস

খ) সামাজিক উৎসৱ অনুষ্ঠান

গ) লোক ঔষধকেন্দ্রিক লোকচিকিৎসা

১.০.৩.১ লোকবিশ্বাস ঃ

সামাজিক লোকচাৰৰ এটি প্ৰধান উপশ্ৰেণী হ'ল লোকবিশ্বাস। 'অয়নান্ত' উপন্যাসখনৰ যোগেদি প্ৰকাশ্য হোৱা লোকবিশ্বাসসমূহক এনেদৰে শ্ৰেণী বিভাজন কৰি দেখুৱাব পৰা যায়—

ক) পাপ-পূণ্য সম্বন্ধীয় লোকবিশ্বাস

খ) অভিষ্ট সিদ্ধিৰ সৈতে জড়িত লোকবিশ্বাস

গ) তাঁতশালকেন্দ্রিক লোকবিশ্বাস

ঘ) পৰিস্কাৰ পৰিচ্ছন্নতা তথা দৈহিক সৌন্দৰ্য চৰ্চাৰ সৈতে সম্বন্ধীত লোকবিধানমূলক লোক বিশ্বাস

ঙ) নৈদানিকমূলক লোকবিশ্বাস

চ) সংকেৎজনিত লোকবিশ্বাস

ছ) যাদুমূলক লোকবিশ্বাস

জ) অলৌকিক বনাম ভূতপ্ৰেত জনিত লোকবিশ্বাস

১.০.৩.১.১ পাপ-পূণ্য সম্বন্ধীয় লোকবিশ্বাস ঃ

উপন্যাসখনৰ মাজেৰে স্পষ্ট হৈ উঠা পাপ-পূণ্য সম্বন্ধীয় দুটা লোকবিশ্বাস হ'ল—

ক) মৃতদেহ বাহী হোৱা

খ) নিজৰ থাকিও আনক ভোকত ৰখা কার্য

গ) মূৰৰ চুলি লৈ বাপেকৰ পিণ্ড দিয়া কার্য

প্ৰথমবিধ লোকবিশ্বাসৰ প্ৰতিফলন উপন্যাসখনত উপেন শৰ্মাক ইন্দ্ৰ গোসাঁইয়ে কৰা অপমানৰ প্ৰসংগত দেখিবলৈ পোৱা যায়। পৰম্পৰাগত সমাজ ব্যৱস্থাই নিৰ্মান কৰা এটি কথন হ'ল ব্ৰাহ্মনক অপমান কৰা মহাপাপ। সেই পাপকার্যত লিপ্ত হোৱাজনৰ মৃতদেহ বাহী হয়। হিন্দুধৰ্মৰ পৰম্পৰা অনুসৰি মৃতদেহ বাহী হ'ব নাপায়। বাহী হোৱা মানে মৃত ব্যক্তিজনৰ পাপ কৰ্মৰ ফল। সেয়েহে এই লোকবিশ্বাসক আশ্ৰয় কৰি সৃষ্টি হোৱা এই প্ৰবচন ফাঁকি কেতিয়াবা গালি শপনিৰ ক্ষেত্ৰতো প্ৰয়োগ কৰি উদ্দেশ্য ব্যক্তিগৰাকীক তেওঁ কৰা পাপকৰ্মৰ ফল সম্বন্ধীয় ভবিষ্যৎবাণী প্ৰদান কৰা হয়।

দ্বিতীয়বিধ লোকবিশ্বাসমূলক প্ৰবচন ফাঁকিয়ে এই কথাৰে ইংগিত বহন কৰে যে কোনো গৃহস্থৰ নিজৰ থাকিও যেতিয়া সেই গৃহস্থৰ আন সদস্য ভোকত থাকিব লগা হয়, হিন্দুধৰ্মীয় পৰম্পৰাত তেনে পাপ কার্যৰ তুল্য আন কোনো কার্য পোৱা নাযায়। উপন্যাসখনত যশোদাই ৰতনক চাহ-জলপান দিয়াৰ ক্ষেত্ৰত বীণাক খাতনি ধৰা আৰু বীণাই সেই কার্যৰ বিৰুধীতা কৰা প্ৰসংগত আইতাক যশোদাই এনেদৰে কয— "আই তোৰ এদিন সংসাৰ হ'ব। তোৰ থাকিও মানুহক ভোকত ৰখাটো বৰ ডাঙৰ পাপ বুজিছ?" (কলিতা, ১৩৫)

একেদৰে তৃতীয়বিধ লোকবিশ্বাস উপন্যাসখনত দেউতাকৰ মৃত্যুত মূৰৰ চুলি লৈ পুত্ৰ কৰুণা বৰুৱাই বাপেকৰ পিণ্ড দিবলৈ অহা কার্যই যে পাপ কৰ্মক সূচায় তাৰেই প্ৰসংগত উক্ত লোকবিশ্বাসটিৰ অৱতাৰণা কৰা হৈছে।

১.০.৩.১.২ অভিষ্ট সিদ্ধিৰ সৈতে জড়িত লোকবিশ্বাস

উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হোৱা অভিষ্ট সিদ্ধি সম্বন্ধীয় লোকবিশ্বাস দুটা হ'ল—

ক) গোপিনী সভা পতা

খ) থাপনাত ফুল আগবঢ়োৱা

উপন্যাসখনৰ প্ৰসংগত এই দুটা লোকবিশ্বাস বিচাৰ কৰি চালে দেখা যায় কৰুণা বৰুৱাৰ ঘৰত গোপিনী দোষ লগা বুলি ভাবি গৃহস্থই ইষ্টজনৰ সন্তুষ্টিৰ অর্থে গোপিনী সভাৰ আয়োজন কৰিছে।

আনহাতে মহানন্দ বৰুৱাৰ পত্নীৰ নামত যশোদাই থাপনালৈ ফুল আগবঢ়াই, ভগৱান মানুহ গৰাকীৰ সহায় হওক বুলি কৰা প্ৰার্থনাই তেখেতৰ অভিষ্ট সিদ্ধিৰ বাবে কৰা লোকবিশ্বাসজনিত কার্যৰে পৰিচয় প্ৰদান কৰে।

১.০.৩.১.৩ তাঁতশালকেন্দ্রিক লোকবিশ্বাস

অসমীয়া পৰম্পৰাগত লোকজীৱনত প্ৰচলিত তাঁতশালকেন্দ্রিক এক লোকবিশ্বাস হ'ল সূতাৰ ওপৰত শালিকী চৰায়ে নাচিলে সূতাত এটা এৰাব নোৱাৰা জঁট লাগে। যাক 'শালিকী জঁট' বুলি কোৱা হয়।

নির্বাচিত পাঠটিৰ পৃষ্ঠপটত এই লোকসংস্কৃতিমূলক প্ৰসংগটোক বিচাৰ কৰি চালে দেখা যায় উপন্যাসখনৰ ১৩৭ নং পৃষ্ঠাত উল্লেখ আছে যে যশোদাই দুপৰীয়া এদিন তাঁত বৈ থকোতে কি দৰে শালিকী এজনী আহি সূতাত এই জঁট লগায়। যি জঁট ভাঙিব নোৱাৰালৈকে যশোদা শালৰ পৰা উঠি নাহে।

১.০.৩.১.৪ পৰিস্কাৰ পৰিচ্ছন্নতা তথা দৈহিক সৌন্দৰ্য চৰ্চাৰ

সৈতে সম্বন্ধীত লোকবিধানমূলক লোকবিশ্বাস

উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্রতিফলিত হোৱা উক্ত বিষয় সম্বন্ধীয় লোকবিধানমূলক লোকবিশ্বাসসমূহ এনেধৰণৰ—

ক) নেমুৰে নখ পৰিস্কাৰ কৰা

খ) খাৰনীৰে চুলি ধুলে চুলি পিছল আৰু ভাল হয়।

গ) মচোৱাগোম সাপ এডাল মাৰি নেজডাল ভীমকলৰ গছৰ তলত পুতি থৈ সেই গছজোপাৰ পটুৱাৰ মাজত এমুঠি মাটিমাহ তিয়াই থৈ গাজ মেলিলে সেই মাহেৰে মূৰ ধুলে লোকবিশ্বাস অনুসৰি চুলি মচোৱা গোম সাপৰ দৰে হয়।

উপন্যাসখনত প্রথমবিধলোকবিধান বীণাই নিজৰ লেতেৰা হৈ থকা নখবোৰ পৰিস্কাৰ কৰা, দ্বিতীয়বিধ তগৰে খাৰণীৰে ধোৱা চুলিৰ আঙুঠিবোৰ আৰু তৃতীয়বিধ ভাদৈয়ে বীণাক দিয়া বিধানৰ প্রসংগত ঔপন্যাসিকে উল্লেখ কৰিছে।

১.০.৩.১.৫ নৈদানিকমূলক লোকবিশ্বাস

ধোদৰ আলি নির্মাণৰ প্রসংগত সৃষ্টি হোৱা এটি লোকবিশ্বাস জনসমাজত কি দৰে প্রচলিত হৈ আছে, তাৰ ইংগিত ঔপন্যাসিকে উপন্যাসখনৰ ১৫৯ নং পৃষ্ঠাত এইদৰে প্রদান কৰিছে যে ধোদৰ আলি যি স্থানত নির্মাণ হৈছিল সেই স্থানত থকা এজোপা শিমলু গছৰ তলত কটোৱালে দুটা ধোদক কাটি দুছেও কৰে। লোকবিশ্বাস অনুসৰি সেয়েহে এই শিমলুজোপাৰ ফুলবোৰ আন শিমলুৰ ফুলতকৈ বেছি ৰঙা। কোনোৱেই এই শিমলুজোপাৰ তুলা পাৰি নিনিয়ে। আউসীৰ ৰাতি এই শিমলুজোপাৰ তলতে দুটা মানুহ নাকৰ শব্দ কৰি শুই থকাও লোক চক্ষুত ধৰা পৰিছে।

১.০.৩.১.৬ সংকেৎজনিত লোকবিশ্বাস ঃ

নির্বাচিত পাঠটিৰ আলমত গৱেষণাই উন্মেষ ঘটোৱা পৰম্পৰাগত লোকসমাজত প্রচলিত সংকেৎজনিত লোকবিশ্বাসসমূহ এনেধৰণৰ—

ক) হাতৰ পৰা বাচন বর্তন পৰিলে আলহী আহে ।

খ) ঘৰৰ মূধছত কাউৰী পৰিলে, সেই কাউৰীক দেখি চোতালত 'অমঙ্গল', 'আলহী', 'কু-বতৰা'-এনেদৰে চাৰি ভাগ কৰিলে যি ভাগত কাউৰীয়ে মুখ দিয়ে সেই কার্যই ঘৰত হয় বুলি বিশ্বাস কৰা হয়।

গ) কান্দি থাকিলে অমঙ্গল মতা হয়।

ঘ) ভাদমাহত গৰু পোৱালী জগিলে লেঠা তথা অশুভতাৰ প্রতীক।

ঙ) নবছা মাটিয়ে বালিয়ে লেতেৰা হৈ থকা সৰু মাছ পাণৰ গুৰিত দিলে পাণজোপা ভৱিষ্যতে ভাল হোৱাৰ সম্ভাৱনা থাকে।

চ) অমাৱস্যাত লঘোণ দিলে সংসাৰ ভাল হোৱাৰ সম্ভাৱনা থাকে।

ছ) বৰশীৰ ডাৰত জিঞা পৰিলে মাছ নুঠে।

উ পন্যাসখনৰ প্রেক্ষাপটত এই আটাইকেইটা লোকবিশ্বাসৰ প্রসংগ বিচাৰ কৰি চালে দেখা যায় প্রথম আৰু দ্বিতীয়টো লোকবিশ্বাস নন্দ বৰুৱাৰ ঘৰত নিজ জী সীতা ওৰফে বীণাৰ মাক অহাৰ আগে আগে সৰু বোৱাৰীয়েকৰ হাতৰ পৰা বাচন পৰা আৰু কোনো এজন নামবিহীন সৰু ল'ৰাই আইতাক যশোদাক ঘৰৰ মূধছত কাউৰী পৰাৰ কথা কৈ বৰমাকৰ হাতৰ পৰা চাউলমুঠি লৈ চোতালত চাৰিভাগ কৰি উক্ত পৰম্পৰাগত বিধান মনা কার্যৰ লগতে বীণাক বিচাৰি নাপাই মাতৃ সীতাই কন্দা কটা কৰা, যশোদাই বৰুৱাক ক্রীম দিয়াৰ প্রসংগত ভাদ মাহত গাই জগিলে লেঠা লাগিব বুলি কোৱা, বেছি মাছ হোৱাৰ ফলত বৰমামীয়েকে শাহু যশোদাক আধা মাছ পাণৰ গুৰিতে দিম নেকি বুলি প্রশ্ন কৰা, অমাৱস্যা ৰাতি সংসাৰ ভাল হোৱাৰ নিমিত্তে আইতাক যশোদাই লঘোণ দিয়া আৰু জেউতীৰ বৰশীত জিঞা পৰাত বীণাই মাছ নুঠে বুলি কোৱা— এনে সকলো চিহ্নজনিত লোকবিশ্বাসে ভৱিষ্যদ্বাণীৰূপে প্রকার্য সাধন কৰে।

১.০.৩.১.৭ যাদুমূলক লোকবিশ্বাস ঃ

উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্রতিফলিত হোৱা এটাই মাথোঁ যাদুমূলক লোকবিশ্বাস হ'ল--বীণাক আইতাকে সৰিয়হৰ দ্বাৰা মুখলগা ভঙা কার্য। এমুঠি সৰিয়হ লৈ আইতাকে তাইৰ মুখৰ চাৰিওফালে ঘূৰাই একুৰা জুই জ্বলাই সেই জুইত সৰিয়হকেইটা পেলাই দিয়ে। সেই সৰিয়হকেইটা ফট্‌ফটকৈ শব্দ কৰি যেতিয়া এটা দুর্গন্ধ ওলাই তেতিয়া জনসমাজত মনা হয় যে প্রকৃতার্থত ব্যক্তিগৰাকীৰ মুখ লাগিছে। উপন্যাসখনত উল্লেখ থকা অনুসৰি বীণাৰ ক্ষেত্রত ব্যৱহাৰ কৰা সৰিয়হকেইটাৰো শব্দ ওলাই আৰু আইতাক যশোদাই সন্দেহ কৰে যে বীণাৰ ফুকননী বুঢ়ীৰ মুখ লগা বুলি।

১.০.৩.১.৮ অলৌকিক বনাম ভূত-প্রেতজনিত লোকবিশ্বাস

উপন্যাসখনৰ 'পোন্ধৰ' অধ্যায়ত আইতাক যশোদাই নাতিনীয়েক বীণাক 'যাম ব'ল ,ওলাগৈ, দিনে-পোহৰে যাম,

দিনে পোহৰে আহিম। সন্ধিয়া ঔ তলেদি আহিব নালাগে' (কলিতা, ১২৮) বুলি কোৱা উক্তিত এক ভূতপ্রেত জনিত লোক বিশ্বাস জড়িত হৈ আছে বুলি ক'ব পৰা যায়। এই লোক বিশ্বাসটিৰ লোক পাঠ বিশ্লেষণে এই অর্থ প্রদান কৰে যে চকুত লগা গাভৰু সন্ধিয়া বা নিশা ঔ গছৰ তলেৰে আহিলে যখিনীয়ে লম্ভে। সেই প্রসংগতেই যিহেতু বীণা বয়সতকৈ বেছি সুঠাম, ৰঙা-বগা হৈছে বা বাঢ়িছে, সেয়েহে বীণাৰ ফালে দৃষ্টি নিক্ষেপ কৰি ভয়তে আইতাক যশোদাই উক্ত কথাষাৰ বীণাক কৈছে।

১.০.৩.২ সামাজিক উৎসৱ অনুষ্ঠান ঃ

সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক আচৰণসমূহৰ সমষ্টিত একোটা উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ জন্ম হয়। এই উৎসৱ অনুষ্ঠানসমূহৰ লগত কিছুমান লোকাচাৰ জড়িত হৈ থাকে। উপন্যাসখনৰ যোগেদি প্রধানকৈ প্রকাশ্য হোৱা এটা সামাজিক অনুষ্ঠান হ'ল 'বিবাহ'। উক্ত অনুষ্ঠানটোৰ সৈতে জড়িত লোকাচাৰসমূহ উপন্যাসখনত এনেদৰে প্রতিফলিত হৈছে—

ক) কইনা নোৱাবলৈ বেই সজা।

খ) মৰল সজা আৰু সেই মৰলৰ ওচৰত থোৱা শৰাইত চাউল, বিথুৰীয়া কেঁচা তামোল, পাণ থোৱা।

গ) তোলনি বিয়াৰ প্রসংগত গামোচা এখনেৰে টোপোলা বনাই কানাই সজোৱা লোকাচাৰ অসমীয়া পৰম্পৰাগত সমাজত আছে।

ঘ) বিয়া ঘৰত তোৰণ সজাওতে কলপুলি পুতা আৰু আমডালি গঁঠা।

ঙ) বিবাহত লগুণ গাঁঠি বন্ধা নিয়ম।

১.০.৩.৩ লোকঔষধকেন্দ্রিক লোকচিকিৎসা ঃ

সামাজিক লোকাচাৰসমূহৰ উপাদানৰাজিৰ ভিতৰত লোকঔষধ উল্লেখযোগ্য। সাধাৰণ অর্থত ক'বলৈ গ'লে লোকসমাজত মুখ পৰম্পৰাত প্রচলিত হৈ অহা বিভিন্ন ঔষধ-পাতিক লোকঔষধ বুলি কোৱা হয়। 'অয়নান্ত' উপন্যাসখনত উল্লেখ থকা অনুসৰি বীণাৰ বিহফোৱা হোৱাত সেই বিহফোৱা গৰম পানীৰে চফা কৰা লগতে লোক ঔষধকেন্দ্রিক পকনি ঔষধ দিবলৈ নন্দ বৰুৱাই দিয়া আদেশ, সেই বীণাৰে আকৌ কলাফুলত আঁচোৰ খোৱাৰ বাবে নগা বনৰ ৰস লগোৱা, যশোদাই কৰুণা বৰুৱাৰ পত্নীৰ বাত বিষৰ বাবে গুঁই তেলেৰে মালিচ কৰিব লাগে বুলি দিয়া বিধান, কাহৰ বাবে যশোদাই তুলসী ৰসৰ লগত মৌ মিহলাই খোৱা- এনে বিভিন্ন প্রসংগই লোকঔষধকেন্দ্রিক লোকচিকিৎসাৰ কথায়ে সূচাইছে।

১.০.৪ লোকপৰিৰেশ্য কলামূলক প্রসংগ ঃ

যি কলাক লোকসংস্কৃতিৰ সৈতে সম্পর্কিত কৰি জনসাধাৰণৰ আগত উপভোগ কৰিবলৈ পৰিৰেশন কৰা হয়, সেয়াই হ'ল লোক পৰিৰেশ্য কলা। উপন্যাসখনত লোকপৰিৰেশ্য কলাৰ প্রধানতঃ ' ভাওনা' আৰু 'পুতলা নাচ' ৰ প্রসংগ বিচাৰি পোৱা যায়। কৰুণা বৰুৱাৰ ঘৰত আয়োজন কৰা 'ৰামৰ সীতা উদ্ধাৰ' ভাওনা আৰু সেই ভাওনা চাবলৈ নন্দ বৰুৱাৰ ঘৰত সৃষ্টি হোৱা পৰিৰেশ তথা মহীৰামে বীণাক পিঠিত তুলি পুতলা নাচ দেখুওৱা- এই সকলোবোৰ বিষয়ে লোকপৰিৰেশ্য কলাৰে ইংগিত প্রদান কৰে।

১.০.৫ সামাজিক ৰুঢ়িমূলক প্রসংগ ঃ

লোকসাংস্কৃতিক দৃষ্টিভংগীৰে একোখন সমাজৰ সামাজিক সাংস্কৃতিক প্রসংগ বিচাৰ কৰিবলৈ যাওঁতে, সেই সমাজখনত পূর্বপুৰুষৰ পৰা প্রচলিত হৈ অহা কিছুমান নীতি-নিয়মৰ সৈতে পৰিচিত হোৱাত- এই দৃষ্টিভংগীয়ে সুবিধা প্রদান কৰে। প্রত্যেক সমাজৰে কিছুমান বিশেষ সামাজিক ৰুঢ়ি বা পৰম্পৰা থাকে। 'অয়নান্ত' উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্রতিফলিত হোৱা পৰম্পৰাগত অসমীয়া সমাজৰ কিছুমান সামাজিক ৰুঢ়ি এনেধৰণৰ—

ক) শিশুক ছয় বা আঠমাহত অন্নপ্রাশন দিয়াৰ ৰুঢ়ি আছে।

খ) মাঘ বিহুত মেজি জ্বলোৱা নিয়ম আছে।

গ) বিহুত ডাঙৰক সৰুৱে সেৱা কৰা নিয়ম আছে।

ঘ) ব'হাগ বিহুত গোহালিত জাগ দিয়া, আৰু সেই জাগত মাখিয়তী পাতৰ ব্যৱহাৰ কৰাটো পূর্বপুৰুষৰ পৰা প্রচলিত হৈ অহা নিয়ম।

ঙ) গা ভাৰী নাৰীক পাঁচমাহত পঞ্চামৃত দিয়া নিয়ম আছে।

২.০ সিদ্ধান্ত আৰু সামৰণি ঃ

উক্ত আলোচনাৰ পৰা এইকেইটা সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পৰা যায়--

ক) 'অয়নান্ত' উপন্যাসখনত লোকসংস্কৃতিৰ মূল চাৰিটা বিভাগৰে প্রভাৱৰ স্বৰূপ স্পষ্ট।

খ) উপন্যাসখনত লোকসংস্কৃতিৰ মূল চাৰিটা বিভাগৰ

ভিতৰত প্ৰধানত সামাজিক লোকাচাৰমূলক প্ৰসংগৰ দিশ সবাটোতকৈ বেছি উন্মোচন কৰিব পৰা গ'ল।

গ) উপন্যাসখনৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হোৱা লোকসংস্কৃতিকেন্দ্ৰিক সামাজিক ৰূঢ়িমূলক প্ৰসংগসমূহে, পৰম্পৰাগত অসমীয়া সমাজখনত পূৰ্বপুৰুষৰ পৰা প্ৰচলিত হৈ অহা সামাজিক প্ৰাসংগিকতা থকা কিছুমান নীতি-নিয়মৰ সৈতে পাঠক সমাজক পৰিচয় কৰাই দিয়াত সার্থক হৈছে। ❑

প্ৰসংগসূচী ঃ

Haviland,william A,*Cultural Anthropology*, New Delhi,1974

শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ। *লোকজীৱন আৰু লোকসংস্কৃতি*। গুৱাহাটী ঃ বাণীপ্ৰকাশ মন্দিৰ, ২০২৩

শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ। *অসমীয়া লোক সংস্কৃতিৰ আভাস*। গুৱাহাটী ঃ বাণীপ্ৰকাশ প্ৰাইভেট লিমিটেড, ২০১১

শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ। *লোকজীৱন আৰু লোক সংস্কৃতি*। গুৱাহাটী ঃ বাণীপ্ৰকাশ মন্দিৰ, ২০২৩ প্ৰাগুক্ত

কলিতা, অৰূপা পটঙ্গীয়া। *অয়নান্ত*। গুৱাহাটী ঃ লয়ার্ছ বুক ষ্টল, ২০১২ প্ৰাগুক্ত

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

কলিতা, অৰূপা পটঙ্গীয়া। *অয়নান্ত*। গুৱাহাটী, লয়ার্ছ বুক ষ্টল, ২০১২

ঠাকুৰ, নগেন (সম্পা)। *এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস*। জ্যোতিপ্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় সংস্কৰণ,২০২০

দাস,অমল চন্দ্ৰ (সম্পা)। *অসমীয়া উপন্যাস পৰিক্ৰমা*, বনলতা,পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰকাশ সংস্কৰণ,২০১২

দেৱচৌধুৰী , বিনীতা ৰৰা। *অসমীয়া মহিলা ঔপন্যাসিকৰ উপন্যাস (স্ব-নির্বাচিত)* । গুৱাহাটী ,পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, ২০২১

দাস, বিৰিঞ্চি কুমাৰ । *বিষয় অসমীয়া সাহিত্যঃ জীৱনৰ কোলাহল আৰু নৈঃশব্দ্য*। গুৱাহাটী,পূৰ্বায়ণ প্ৰকাশন,২০২৫

বুজৰবৰুৱা,পল্লৱী ডেকা (সম্পা)। *তুলনামূলক সাহিত্য আৰু পৰিধীয় ক্ষেত্ৰ*। সদৌ ধেমাজি জিলা ছাত্ৰ সম্থা, ডিব্ৰুগড়, ২০২১

শইকীয়া, গীতাশ্ৰী (সম্পা)। *একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া উপন্যাস*, অসম বুক ট্ৰাষ্ট,পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, ২০২০

শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ। *নাৰীবাদ আৰু অসমীয়া উপন্যাস*। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ,তৃতীয় সংস্কৰণ, ২০১৬

হিলৈদাৰী, পৰী। *পাঠ প্ৰতিপাঠ নিৰ্মান বিনির্মাণ*। পেপিৰাছ,পাণবজাৰ, গুৱাহাটী,২০২২

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

সাম্প্রতিক সময়ত জীৱন-জীৱিকা, অর্থনৈতিক বহনক্ষমতা তথা গ্রাম্য উন্নয়নত অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ ভূমিকা ঃ মেৰাগড় গাঁও, মাজুলীত এক ক্ষেত্রভিত্তিক অধ্যয়ন

জ্ঞানদীপ শইকীয়া

গৱেষক, অর্থনীতি বিভাগ
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, অসম
৭০৮৬৭৪৮৬৩৬
sgyandeep01@gmail

ড° উৎপল ডেকা

সহকাৰী অধ্যাপক, অর্থনীতি বিভাগ,
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, অসম
৯৮৬৪৮৫২২৮২
utpaldeka007@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

এই গৱেষণা পত্রখনত মেৰাগড় গাঁও, মাজুলী, অসমৰ ক্ষেত্রত অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানে জীৱন-জীৱিকা, আর্থিক আৰু পৰিৱেশ বহনক্ষমতা বর্তাই ৰখাৰ ক্ষেত্রত পালন কৰা গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকাৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হৈছে। গুণগত আৰু পৰিমাণগত পদ্ধতিৰ সহায়েৰে গঠিত এই অধ্যয়নত মৌখিক কৃষি জ্ঞান, লিখিত ৰূপ প্রাপ্ত কৃষি জ্ঞান, সংহত কৃষি প্রণালী, আৰু সম্পদ সংৰক্ষণৰ পৰম্পৰাবোৰৰ দ্বাৰা আঞ্চলিক উন্নয়ন আৰু অর্থনৈতিক বিকাশ কিদৰে সম্ভৱ হৈছে তাক বুজোৱা হৈছে। ১৩২ গৰাকী কৃষকৰ পৰা সংগ্রহীত তথ্যৰ ভিত্তিত, গো-পালন, পাণ-তামোলৰ খেতি, কল খেতি, ৰেচম শিল্প আদিৰ দৃষ্টান্তৰ জৰিয়তে ইয়াকে প্রতিপন্ন কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে যে— এই পৰম্পৰাগত জ্ঞানসমূহ কেৱল উপার্জনৰ পথেই নহয়, পৰিৱেশৰ ভাৰসাম্যতা, প্রজন্মগত জ্ঞানৰ স্থানান্তৰ আৰু সমাজিক সংহতিৰ ক্ষেত্রতো গুৰুত্বপূর্ণ। এই গৱেষণাৰ ফলাফলে বুজাইছে যে, উন্নয়নৰ নীতিত এনে থলুৱা জ্ঞানৰ সংহতকৰণে গাঁওসমূহৰ স্থায়িত্ব আৰু অর্থনৈতিক বহনক্ষমতা ৰক্ষাত সহায়ক হ'ব পাৰে।

বীজ শব্দ ঃ

অসমীয়াৰ থলুৱা জ্ঞান, মৌখিক কৃষি জ্ঞান, জীৱন-জীৱিকা, বহনক্ষমতা, গ্রাম্য উন্নয়ন।

১.০ পৰিচয় ঃ

থলুৱা জনগোষ্ঠীসমূহে নিজৰ প্রাকৃতিক পৰিবেশৰ সৈতে খাপ খুৱাই যিসমূহ ক্রিয়া-কলাপ, দক্ষতা তথা বোধ গঢ়ি তোলে সাধাৰণ অর্থত ইয়াকেই থলুৱা জ্ঞান বোলা হয়। "বিশেষ কোনো স্থানীয় জনগোষ্ঠীয়ে বিকাশ কৰা জ্ঞানক বিশ্ববিদ্যালয়, গৱেষণা প্রতিষ্ঠান আৰু ব্যক্তিগত উদ্যোগত উৎপত্তি হোৱা আন্তর্জাতিক জ্ঞান ব্যৱস্থাৰ পৰা পৃথক কৰিবলৈ থলুৱা জ্ঞান" (Indigenous Knowledge) শব্দটো 'পৰম্পৰাগত' আৰু 'স্থানীয়' জ্ঞানৰ সৈতে সমার্থক হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। "থলুৱা জ্ঞান হৈছে খিলঞ্জীয়া জনগোষ্ঠী তথা যিকোনো ক্ষুদ্র সংজ্ঞাভুক্ত সমাজৰ জ্ঞান" (Warren, ১৯৯১)। এই জ্ঞানৰ ধাৰাটো দৈনন্দিন জীৱনৰ অভিজ্ঞতা আৰু পর্যবেক্ষণৰ পৰা আহৰণ কৰা হয়, আৰু প্রজন্মৰ পাছত প্রজন্ম ধৰি চলি আহিছে। অসমৰ দৰে এখন কৃষিপ্রধান ৰাজ্যত কৃষিখণ্ডৰ প্রতিটো দিশতে থলুৱা জ্ঞানে বিশেষ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। সম্পূর্ণ ব্যৱহাৰিক ফলপ্রসুতাৰে সমৃদ্ধ অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানে সমাজৰ জীৱন-জীৱিকাৰ লগতে বহনক্ষম পৰিৱেশ তথা আর্থিক স্থিতিৰ ভেঁটিও সুদৃঢ় কৰিছে। আজিৰ সময়তো অসমীয়া সমাজত বিভিন্ন প্রকাৰৰ থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ ওপৰতে মানুহৰ

জীৱন-জীৱিকা নির্ভৰ কৰে। "থলুৱা জ্ঞান হৈছে স্থানীয় জ্ঞান - যি এটা সুনির্দিষ্ট সংস্কৃতি বা সমাজৰ বাবে একমাত্রিক। এই জ্ঞানে গ্রাম্য সমাজসমূহৰ কৃষি, স্বাস্থ্য, খাদ্য উৎপাদন, শিক্ষা, প্রাকৃতিক সম্পদ ব্যৱস্থাপনাসহ বহু ক্ষেত্রত স্থানীয় পর্যায়ত সিদ্ধান্ত গ্রহণৰ আধাৰ হিচাপে কাম কৰে" (Abdullah & Hasan, ২০১৩)।

২.০ গৱেষণা সমস্যাৰ বিবৃত্তি ঃ

প্রজন্মৰ পাছত প্রজন্ম ধৰি অসম নামৰ ভূ-খণ্ডটিত চলি অহা লোককথা, জনৰীতি, লোকাচাৰ আদিৰ লগতে ডাকৰ বচন, খনাৰ বচন, প্রবচন, ফকৰা-যোজনা, মৌখিক পৰম্পৰা আদিক অসমীয়া থলুৱা জ্ঞান হিচাপে গণ্য কৰা হয় আৰু ইয়াৰে যিসমূহক ভিত্তি কৰি অসমৰ কৃষি প্রণালীটো গঢ় লৈ উঠিছে তথা বর্তি আছে তাকেই অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞান হিচাপে সংজ্ঞাবদ্ধ কৰিব পাৰি। "থলুৱা জ্ঞানক দৰিদ্র জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক পুঁজিৰূপে গণ্য কৰা হয়। ই তেওঁলোকৰ জীৱন-সংগ্রামত, খাদ্য উৎপাদনত, আশ্রয়ৰ ব্যৱস্থাপনাত আৰু নিজৰ জীৱনৰ ওপৰত নিয়ন্ত্রণ স্থাপন কৰাত মুখ্য পুঁজি হিচাপে কাম কৰে" (Senanayake, ২০০৬)।

অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ পৰিসৰ অতি বহল, বহনক্ষম আৰু বিজ্ঞানসম্মত। শস্যৰ উৎপাদন, আৰু সংৰক্ষণৰ পৰা বিপনন তথা বজাৰ ব্যৱস্থালৈকে অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানে সমগ্র কৃষি প্রণালীটোক পৰিচালনা কৰি আছে। কি উৎপাদন কৰিব, কেতিয়া উৎপাদন কৰিব, কেনেকৈ উৎপাদন কৰিব, কিমান পৰিমাণৰ উৎপাদন কৰিব আদি সকলো দিশতে অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ স্বকীয় নির্দেশনা আছে। আনহাতে কৃষকক মানসিকভাৱে উদ্বুদ্ধ কৰাৰ ক্ষেত্রতো অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ ভূমিকা লেখত ল'বলগীয়া।

এইক্ষেত্রত অসমৰ অন্যতম এখন কৃষি প্রধান নদীদ্বীপ জিলা মাজুলীৰ নিজা থলুৱা কৃষি জ্ঞান বিশেষভাৱে উল্লেখনীয় আৰু অধ্যয়নযোগ্য। মাজুলী শব্দটোৰ 'মা' শব্দই লক্ষ্মী অর্থাৎ ধন-ঐশ্বর্য্যৰ অধিষ্ঠাত্রী দেৱীক আৰু 'জুলী' শব্দই শস্যৰ ভঁৰালক সূচায়। গতিকে মাজুলীৰ থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ গুৰুত্ব আৰু মহত্বক ইয়াৰ পৰাই অনুমান কৰিব পাৰি।

এই গৱেষণা পত্রখনৰ লক্ষ্য হৈছে— জীৱন-জীৱিকা, বহনক্ষম অর্থনীতি আৰু গ্রাম্য উন্নয়নৰ ক্ষেত্রত প্রচলিত থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ ভূমিকা আৰু সাম্প্রতিক সময়ত ইয়াৰ ব্যৱহাৰিক দিশৰ ওপৰত সম্পৰীক্ষা কৰা। ইয়াৰ বাবে অসমৰ মাজুলী জিলাৰ অন্তর্গত 'মেৰাগড় গাঁও' নামৰ গাঁওখন বাছনি কৰা হৈছে।

ভৌগলিকভাৱে উক্ত গাঁওখন ব্রহ্মপুত্র নদীৰ দাঁতিকাষৰীয়া আৰু বানপানীত আক্রান্ত এখন গাঁও। গাঁওখনত কৃষি-কার্য্যক সামাজিক লোকাচাৰ হিচাপে পালন কৰে। লিখিত থলুৱা অসমীয়া কৃষি জ্ঞান হিচাপে, নির্বাচিত ডাকৰ বচনসমূহৰ সাম্প্রতিক ব্যৱহাৰ বিশ্লেষণ কৰা হৈছে আৰু গাঁওখনত প্রচলিত মৌখিক কৃষি জ্ঞানৰ স্থিতিকো অন্বেষণ কৰা হৈছে।

৩.০ পূর্বকৃত অধ্যয়ন ঃ

ভাৰতবর্ষৰ দৰে এখন কৃষি প্রধান ৰাষ্ট্রত কৃষি বিজ্ঞানৰ নতুন উদ্ভাৱন, নতুন অধ্যয়ন তথা আলোচনাৰ লগতে যিকোনো অর্থনৈতিক কার্য্য-কলাপৰ পর্য্যালোচনাৰ ক্ষেত্রত সমাজত প্রচলিত পৰম্পৰাগত ধ্যান-ধাৰণাসমূহে বিশেষ গুৰুত্ব লাভ কৰিছে। কৃষিৰ লগত জড়িত থলুৱা পৰম্পৰাগত কার্য্য-পদ্ধতি, কাৰিকৰী জ্ঞান আদিৰ সন্দর্ভত বিভিন্ন গৱেষণা, অধ্যয়ন হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে।

Warren ৰ মতে, থলুৱা জ্ঞান হৈছে স্থানীয় জ্ঞান, যি কোনো এটি নির্দিষ্ট সংস্কৃতি বা সমাজৰ সৈতে সম্পর্কিত। গতিকে, আধুনিক সমাজ ব্যৱস্থাৰ সৈতে এই জ্ঞানসমূহ একত্রীকৰণ কৰিব পাৰিলেহে প্রকৃত উন্নয়ন সম্ভৱ হৈ উঠিব। যিহেতু এনে জ্ঞান পৰম্পৰাৰ সৈতে স্থানীয় লোকসকল পূর্বৰে পৰা অভ্যস্ত হৈয়ে থাকে, গতিকে ব্যৱহাৰিক দিশত এইসমূহ জ্ঞানৰ গুৰুত্ব অপৰিসীম।

Abdullah আৰু Hassan এ "The use of indigenous knowledge in agriculture and its Role in Sustainable Development" শীর্ষক প্রবন্ধত উল্লেখ কৰে যে, বর্তমানলৈকে থলুৱা জ্ঞান (Indigenous Knowledge) ৰ এটা সুস্পষ্ট সংজ্ঞা প্রদান কৰাটো প্রত্যাহ্বান হিচাপেই আছে, কাৰণ থলুৱা জ্ঞান আৰু বৈজ্ঞানিক জ্ঞানৰ মাজত কিছু পৰিমাণত বিতর্ক দেখা যায়। বহুক্ষেত্রত থলুৱা জ্ঞান আৰু আধুনিক ব্যৱস্থাসমূহৰ মাজত সমযোজনৰ অভাৱ দেখা যায়, তেনে প্রেক্ষাপটত সামাজিক গতিশীলতাত প্রত্যাহ্বানে দেখা দিয়ে।

Senanayake ৰ মতে, থলুৱা জ্ঞানক দৰিদ্রৰ সামাজিক মূলধন হিচাপে গণ্য কৰা হয়। ইয়াক তেওঁলোকে মুখ্য সম্পদ হিচাপে গ্রহণ কৰে, যাৰ জৰিয়তে তেওঁলোকে জীয়াই থাকে, খাদ্য উৎপাদন কৰে, আশ্রয়ৰ ব্যৱস্থা কৰে,

আৰু নিজৰ জীৱনক নিয়ন্ত্ৰণ কৰাৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰে। থলুৱা জ্ঞানকে দৈনন্দিন জীৱনৰ ভিত্তি কৰি তেওঁলোকে জীৱন নিৰ্বাহ কৰে।

Chambers আৰু Warran এ উল্লেখ কৰিছে যে, গ্ৰাম্য উন্নয়নত থলুৱা জ্ঞান এক অত্যাৱশ্যকীয় সম্পদস্বৰূপ। এইসমূহ জ্ঞান-পৰম্পৰাক উলাই কৰি সমাজ এখন বিকাশৰ পথত আগুৱাব নোৱাৰে। প্ৰকৃত অৰ্থত সমাজখন বিকাশৰ পথত আগবঢ়াই নিবলৈ থলুৱা জ্ঞান-পৰম্পৰাৰ উপযুক্ত অধ্যয়ন হোৱাটো বাঞ্ছনীয়।

Berkes, Colding আৰু Folke এ উল্লেখ কৰিছে যে, স্থানীয় পৰিৱেশ, সমাজ আৰু সংস্কৃতিৰ লগত সামঞ্জস্য ৰাখি ক্ৰমান্বয়ে গঢ় লৈ উঠা থলুৱা জ্ঞান পদ্ধতিসমূহ স্থানীয় জনগোষ্ঠীয়ে দৈনন্দিন অভিজ্ঞতাৰ জৰিয়তে লাভ কৰে। অসমীয়াৰ থলুৱা সমাজত এই জ্ঞান গাঁথনি ডাকৰ বচন, খনাৰ বচন, লোককথা, পৰম্পৰাগত আচাৰ-অনুষ্ঠান আৰু মুখে মুখে চলি অহা শিক্ষাৰ জৰিয়তে সঁচাকৈয়ে সংৰক্ষিত হৈ আছে।

ডেকা আৰু শইকীয়াই উল্লেখ কৰা অনুসৰি, অসমৰ কৃষি পদ্ধতিত জলবায়ুগত পৰিবৰ্তন, বানপানী, উৎপাদনশীলতাৰ সীমা ইত্যাদিৰ বাবে থলুৱা জ্ঞানে অতিকে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। বীজ নিৰ্বাচন, মৌলিক শস্য উৎপাদন, প্ৰাকৃতিক ক্ৰমিক চক্ৰ অনুসৰণ, পশু পালনৰ বাবে খাদ্য সংৰক্ষণ আদিত এই জ্ঞানৰ প্ৰয়োগ দেখা যায়।

আনহাতে, Altieri আৰু Gliessman ৰ দৰে কৃষি বিজ্ঞানীসকলে প্ৰমাণ কৰিছে যে স্থানীয় বীজ, প্ৰাকৃতিক সাৰ আৰু পোক-পতংগ নিয়ন্ত্ৰণ পদ্ধতিয়ে কৃষিৰ সমস্যা হ্ৰাস কৰাৰ লগতে পৰিৱেশ অনুকূল কৃষি-কাৰ্য্যত সহায়ক হয়।

বৰুৱাই তেখেতৰ গ্ৰন্থ 'ডাকৰ বচন আৰু খনাৰ বচন'ত কৃষিৰ লগত জড়িত ভালেখিনি ডাকৰ বচন সন্নিবিষ্ট কৰাৰ লগতে বিভিন্ন সময়ত এই ডাকৰ বচনসমূহৰ প্ৰায়োগিক দিশৰ বিষয়েও বিস্তৃত আলোচনা আগবঢ়াইছে।

৪.০ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবলৈ যাওঁতে গুণগত আৰু পৰিমাণগত দুয়োবিধ তথ্যকে সামৰি লোৱা হৈছে। তথ্যৰ বাবে লিখিত সমল যেনে- গ্ৰন্থ, আলোচনী, গৱেষণা-পত্ৰ আদি আৰু প্ৰাথমিক তথ্যৰ বাবে জৰীপ, ব্যক্তিগত সাক্ষাৎকাৰ গ্ৰহণ কৰা হৈছে। মেৰাগড় গাঁৱৰ মুঠ ৬৬ ঘৰ মানুহক এই অধ্যয়নত সামৰি লোৱা হৈছে। উক্ত ৬৬ ঘৰ মানুহৰ পৰা কৃষিৰ লগত ওতপ্ৰোতভাৱে জড়িত এগৰাকীকৈ পুৰুষ আৰু এগৰাকীকৈ মহিলা (১৫ পৰা ৫৫ বছৰৰ ভিতৰত), মুঠ ৬৬ গৰাকী পুৰুষ আৰু ৬৬ গৰাকী মহিলা তথা ১৩২ গৰাকী কৃষকক সামৰি লৈ গুণগত আৰু সংখ্যাগত তথ্য আহৰণৰ বাবে সাক্ষাৎকাৰ, ব্যক্তিগত পৰ্যবেক্ষণ আৰু জৰীপ ৰূপায়ণ কৰা হৈছে।

৫.০ উদ্দেশ্য ঃ

গৱেষণা পত্ৰখনৰ উদ্দেশ্যসমূহ তলত উল্লেখ কৰা হ'ল—

(ক) অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ বাস্তৱিক ব্যৱহাৰ আৰু জীৱন-জীৱিকা তথা গ্ৰাম্য অৰ্থনীতিত ইয়াৰ ভূমিকা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

(খ) অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞান আৰু অৰ্থনৈতিক বহনক্ষমতাত ইয়াৰ সম্ভাৱনাৰ বিষয়ে বিশ্লেষণ কৰা।

৬.০ আলোচনা আৰু ফলাফল ঃ

থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ বাস্তৱিক ব্যৱহাৰ আৰু জীৱন-জীৱিকা, গ্ৰাম্য অৰ্থনীতি আৰু অৰ্থনৈতিক বহনক্ষমতাত ইয়াৰ ভূমিকা সম্পৰ্কে তলত আলোচনা কৰা হ'ল—

৬.১ ডাকৰ বচন ঃ

ডাকৰ বচনসমূহ হৈছে ইতিহাসে ঢুকি নোপোৱা কালৰে পৰা চলি অহা কিছুমান উপদেশমূলক নীতিবাক্য। অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ প্ৰতিটো দিশতে 'ডাকৰ বচন'ৰ ভূমিকা অতি স্পৰ্শকাতৰ। অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ মূল ভিত্তিয়েই হৈছে ডাকৰ বচন। "অসম এখন কৃষিপ্ৰধান ৰাজ্য। অধিকাংশ মানুহেই কৃষিৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰি জীৱন-যাপন কৰে। কোন মাহৰ কোন তিথিত শস্যৰ বীজ ৰোপণ কৰিব লাগে, কোন কোন সময়ত বীজ ৰোপণ কৰিলে বিফলে যায় আৰু কেনেকৈ অধিক শস্য উৎপাদন কৰিব পাৰি, ধাননিপথাৰত কেনেকৈ কঠীয়া ৰুব লাগে, কোন কোন মাহত শস্যৰ পথাৰত পানী ৰাখিব লাগে সেই সকলোবোৰৰ দিহা-পৰামৰ্শ ডাকৰ বচনত দিয়া আছে। বৰ্তমানো অসমীয়া সমাজত ডাকৰ বচন অনুসৰিয়েই কৃষকসকলে কৃষি কাৰ্য্য পৰিচালনা কৰা দেখা যায়। ডাকৰ বচনত বৈজ্ঞানিক সত্যতাও আছে" (বৰুৱা, ৰুণিমা, ২০১৪)।

সাম্প্ৰতিক সময়ত অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ

বাস্তৱিক ব্যৱহাৰ আৰু গ্ৰাম্য অৰ্থনীতিত ইয়াৰ ভূমিকা বিচাৰ কৰিবলৈ যাওঁতে ৪ টা ডাকৰ বচন অধ্যয়নৰ বাবে বাছনি কৰা হৈছে আৰু এই নিৰ্বাচিত ডাকৰ বচনসমূহে আগবঢ়োৱা নিৰ্দেশনাৰ গুৰুত্বৰাজি জৰীপ আৰু পৰ্যবেক্ষনৰ জড়িয়তে আলোচনা কৰা হৈছে।

উক্ত ৪ টা ডাকৰ বচন কৃষিৰ লগত জড়িত আৰু ইয়াৰ প্ৰকৃত অৰ্থ সন্দৰ্ভত অধ্যয়নৰ বাবে নিৰ্বাচিত প্ৰতিগৰাকী কৃষক পূৰ্বৰে পৰাই জ্ঞাত।

তালিকা ১ ঃ নিৰ্বাচিত কৃষকসকলৰ শৈক্ষিক স্থিতি

শিক্ষাৰ নাম	পুৰুষ	মহিলা
লিখিব আৰু পঢ়িব (এটাও নজনা)	৩	৫
কেৱল লিখিব আৰু পঢ়িব জনা	১৪	১৭
প্ৰাথমিক উত্তীৰ্ণ	১৩	৮
মাধ্যমিক উত্তীৰ্ণ	৪	২
হাইস্কুল শিক্ষান্ত উত্তীৰ্ণ	১৩	১৬
উচ্চতৰ মাধ্যমিক উত্তীৰ্ণ	১৬	৭
স্নাতক	৩	১
স্নাতকোত্তৰ	০	০
মুঠ	৬৬	৬৬

৬.১.১ "যাৰ নাই গৰু, সি সবাতোকৈ সৰু" ঃ

আন শস্যৰ উৎপাদনৰ সমান্তৰালভাৱে অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানে মানুহক পশু পালনৰ বাবে সদায়ে উদ্বুদ্ধ কৰি আহিছে আৰু অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিত গো-পালনক এটা সন্মানজনক বৃত্তি হিচাপেও গণ্য কৰা হয়। উক্ত ডাকৰ বচনটিয়ে গোপালন নকৰা মানুহক সৰু হিচাপে গণ্য কৰি, গোপালনৰ পৰম্পৰাক অসমীয়া সমাজত এটা সন্মানজনক পৰম্পৰা হিচাপে স্বীকৃতি প্ৰদান কৰিছে।

গৰুৰ বহুমুখী চাহিদা আছে। গৰুৰ ছাল, গৰুৰ গোবৰ আৰু গৰুৰ গাখীৰৰ চাহিদা অস্থিতিস্থাপক। অধ্যয়নৰ বাবে নিৰ্বাচিত প্ৰতিঘৰ (মুঠ ৬৬) মানুহেই গো-পালনৰ পৰম্পৰা অব্যাহত ৰাখিছে। গৰুৰ গোবৰ কৃষিত সাৰ হিচাপে যোগান ধৰাৰ লগতে ই এক উপাৰ্জনৰ পথো প্ৰশস্ত কৰিছে। দুগ্ধজাত সামগ্ৰীৰ অস্থিতিস্থাপক চাহিদাৰ হেতু গো-পালন এক লাভজনক অৰ্থনৈতিক কাৰ্য। সমাজত পুষ্টিহীনতাৰ দৰে সমস্যা দূৰ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত দুগ্ধজাত সামগ্ৰীৰ ভূমিকা উল্লেখনীয়। ভাৰতবৰ্ষত প্ৰতিদিনে জনমূৰি গড় দুগ্ধ উপভোগ পৰিমাণ প্ৰায় ০.৪৫৯ লিটাৰ। ভাৰতবৰ্ষ হৈছে বিশ্বৰ ভিতৰতে সৰ্বাধিক গাখীৰ উৎপাদনকাৰী দেশ। সেয়েহে দুগ্ধজাত সামগ্ৰীৰ উৎপাদন এক লাভজনক অৰ্থনৈতিক কাৰ্য।

তালিকা ২ ঃ গৰু পালনৰ তথ্যভিত্তিক বিস্তৃত পৰিসংখ্যা

উপাদান	সংখ্যা	মন্তব্য
কৃষক পৰিয়াল মুঠ সংখ্যা	৬৬	প্ৰতিঘৰতে গো-পান কৰা হয়
পুৰুষ কৃষক	৬৬	প্ৰতিঘৰতে পুৰুষসকল গো-পালনৰ লগত জড়িত
মহিলা কৃষক	৬৬	প্ৰতিঘৰতে মহিলাসকল গো-পালনৰ লগত জড়িত
মুঠ গৰু	৬৬০	প্ৰতিঘৰতে গড়ে ১০ টা গৰু
স্থানীয় জাত	৬৬০	সকলো গৰু স্থানীয় জাতৰ
বছৰৰ উপাৰ্জন	২৫,০০০ - ৩০০০০	দুগ্ধ উৎপাদন, গৰু বিক্ৰীৰ পৰা
গড় দুগ্ধ উৎপাদন	২-৪ লিটাৰ/ গৰু	স্থানীয় গৰুৰ দুগ্ধ স্বাস্থ্য উপযোগী
গোবৰ ব্যৱহাৰ	৬৬	প্ৰতিঘৰতে গোবৰ সাৰ হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে
পশুখাদ্য উৎস	থলুৱা ঘাঁহ, কৃষি উৎপাদিত অৱশিষ্ট	স্থানীয়ভাৱে সংগৃহীত খাদ্য
উৎপাদন গড় খৰচ (বছৰি/গৰু)	৫০০-৬০০	থলুৱা চিকিৎসা পালন পদ্ধতিৰ প্ৰয়োগ
গৰুৰ প্ৰয়োজন	৬৬ (প্ৰাকৃতিক প্ৰজনন)	স্থানীয় ষাড় ব্যৱহাৰ
নাৰী অংশগ্ৰহণ	৬৬ ঘৰ (১০০%)	নাৰীসকলে প্ৰধান ভূমিকা পালন কৰে

■ মেৰাগড় গাঁৱৰ ৬৬ ঘৰ মানুহৰ প্ৰতিঘৰতে গড়ে ১০টাকৈ গৰু আছে। প্ৰতিঘৰ মানুহৰ নাৰী আৰু পুৰুষ উভয়ে সমানেই গো-পালনত জড়িত। প্ৰতিঘৰ মানুহেই গো-পালনক এক বাধ্যতামূলক সন্মানজনক পৰম্পৰা হিচাপে গণ্য কৰে আৰু অতি গুৰুত্বসহকাৰে গো-পালনত ব্ৰতী হৈ আছে।

■ গাঁওখনৰ ৬৬ ঘৰ মানুহেই কেৱল থলুৱা জাতৰ গৰু পালন কৰে। থলুৱা জাতৰ গৰুৱে স্থানীয় জলবায়ুৰ লগতে বানপানীৰ দৰে প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগৰ লগতো সহাৱস্থান কৰিব পাৰে। বানপানীৰ সময়ত থলুৱা জাতৰ গৰুৱে ৫/৬

কিলোমিটাৰ পৰ্যন্ত অনায়াসে সাতুৰি যোৱাৰ লগতে ২৪-৩৬ ঘন্টা পৰ্যন্ত পানী থকা ঠাইত বাস কৰিব পাৰে।

■ গো-পালনৰ পৰম্পৰাই প্ৰতিঘৰ মানুহকে এক স্থায়ী উপাৰ্জনৰ পথ প্ৰদান কৰিছে।

■ গো-পালনৰ ফলত প্ৰতিঘৰ মানুহেই জৈৱিকভাৱে কৃষি-কাৰ্য্য কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

■ গৰুৰ গোবৰে ৰাসায়নিক সাৰৰ ব্যৱহাৰ হ্ৰাস কৰিছে, লগতে উৎপাদন ব্যয়ো কম কৰিছে আৰু মাটিৰ গুণাগুণ বৃদ্ধি কৰাত সহায়ক হৈছে।

■ নাৰী আৰু পুৰুষ উভয়েই অৰ্থনৈতিক কাম-কাজত নিয়োজিত হ'বলৈ সক্ষম হৈছে।

■ গ্ৰাম্য অৰ্থনীতিৰ সমৃদ্ধি আৰু বহনক্ষমতা ৰক্ষাত গোপালন এক উৎকৃষ্ট বৃত্তি তথা অৰ্থনৈতিক কাৰ্য্য।

৬.১.২ "যাৰ নাই পাণ, তাৰ নাই মান"

নিৰ্বাচিত গাঁৱখনৰ সকলো মানুহৰ ঘৰত তামোল-পাণৰ গছ আছে। সংহত কৃষি কৰাৰ বাবে অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানে সদায় প্ৰেৰণা যোগায়। উক্ত ডাকৰ বচনটিয়েও পাণৰ গছ থকা মানুহক উচ্চস্থানত ৰাখিছে। এবিধ মুখৰোচক খাদ্য আৰু অসমীয়া সংস্কৃতিৰ অবিচ্ছেদ্য অংগ হিচাপে তামোল-পাণৰ এক উচ্চ অস্থিতিস্থাপক চাহিদা আছে। এক পোণ (৮০টা) তামোলৰ আজিৰ বজাৰ মূল্য প্ৰায় ৪০০ টকা পৰ্যন্ত। মেৰাগড় গাঁৱৰ ৬৬ ঘৰ মানুহৰে তামোলৰ বাৰী আছে আৰু ৪২ ঘৰত পাণৰ গছ আছে। প্ৰতিঘৰ মানুহেই তামোলৰ পৰা বছৰি গড়ে ১৫-২০ হাজাৰ টকা উপার্জন কৰে। থলুৱা জাতৰ তামোল আৰু পাণৰ উৎপাদনী ব্যয় অতি নগণ্য। সেয়েহে ই লাভৰ এক সহজ উৎস। এই অধ্যয়নত প্ৰকাশ পাইছে যে গাঁওখনৰ ৭জন কৃষকে তামোলৰ ঢকুৰাৰ প্লেট নিৰ্মাণ কৰা কুটীৰ উদ্যোগলৈ তামোলৰ ঢকুৰাৰ যোগান ধৰিছে।

যিহেতু গাঁওখনৰ প্ৰতিঘৰ মানুহেই একোখনকৈ তামোলৰ বাৰী পাতিছে গতিকে এনে পৰিৱেশ অনুকূল উদ্যোগ স্থাপনে গাঁওখনৰ কৃষকসকলৰ বাবে উপার্জনৰ নতুন পথ মুকলি কৰিছে।

তামোল-পাণৰ লগতে প্ৰতিঘৰ মানুহেই আদা, হালধি আৰু জালুকৰ খেতিও সম্পাদন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। কৃষিৰ এনে পৰম্পৰাই পৰিৱেশৰ ভাৰসাম্যতা ৰক্ষাতো সহায়ক হৈছে।

৬.১.৩ "তিনিশ ষাঠিজোপা ৰুবা কল, মাহেকে পযেকে চিকুণাৰা তল

পাত-পচলা লাভত খাবা, লংকাৰ বণিজ হাততে পাবা"

বাণিজ্যিকভাৱে উদ্যান শস্যৰ খেতি কৰাৰ বাবে অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানে অতীজৰে পৰা কৃষকক প্ৰেৰণা যোগাই আহিছে। উক্ত ডাকৰ বচনটিয়ে এজন কৃষকক মুঠ তিনিশ ষাঠি (৩৬০) জোপা কলগছ ৰুবলৈ নিৰ্দেশ দিছে। কিয়নো কল এবিধ অৰ্থকৰী উদ্যান শস্য। সমগ্ৰ পৃথিৱীতে কলগছৰ উচ্চ চাহিদা আছে। ফল হিচাপে কলৰ বিশ্বজনীন চাহিদাৰ উপৰিও কলৰ পাত, কলৰ গা গছ, কলগছৰ শিপালৈকে অনেক চাহিদা আছে। কলৰ খেতিত উৎপাদন ব্যয় অতি নগণ্য। সেয়েহে কলৰ খেতি অতিশয় লাভজনক আৰু এক বহনক্ষম তথা স্থায়ী অৰ্থনৈতিক কাৰ্য্য।

তালিকা ৩ ঃ কল খেতি সংক্ৰান্তীয় তথ্য

উপাদান	সংখ্যা	মন্তব্য
কলগছ থকা পৰিয়াল	৬৬	প্ৰতিঘৰতে স্থানীয় জাতৰ কলগছ আছে
মুঠ কলগছ	২৬৪০	গড়ে প্ৰতিঘৰত৪০জোপা কলগছ আছে
কলৰ জাতৰ সংখ্যা	৭ বিধ	স্থানীয় জাতৰ (মনোহৰ, জাহাজী মালভোগ, চেনীচম্পা, পূৰাকল, জাতিকল, ভীমকল)
স্থানীয় জাতৰ অনুপাত	১০০	সকলো কলগছ স্থানীয়, জাতৰ, পৰিৱেশ সহনশীল
কল বিক্ৰীৰ পৰা উপার্জন	১০০০ ১২০০/মাহ	উপার্জনৰ স্থায়ী নিয়মীয়া উৎস
কলপাতৰ ব্যৱহাৰ	৬৬	খাদ্য-পৰিৱেশন আৰু পম্পৰাগত উৎসৱত ব্যৱহাৰ
কলাখাৰ উৎপাদন	১ টা (মহিলা)	ব্যৱসায়ভিত্তিত জৈৱিক উৎপাদন
মহিলাৰ অংশগ্ৰহণ	৬৬(১০০%)	সকলো মহিলাই কলখেতিৰ লগত জড়িত

■ মেৰাগড় গাঁৱৰ প্ৰতিটো পৰিয়াল (৬৬ টা পৰিয়াল)ত গড়ে ৪০ জোপাকৈ কলৰ গছ আছে। প্ৰতিঘৰ মানুহেই গড়ে ৫ বিধকৈ থলুৱা প্ৰজাতিৰ কলৰ গছ ৰোপন কৰিছে। থলুৱা জাতৰ যিকোনো শস্যৰে স্থানীয় জলবায়ুৰ লগত সহৱস্থান কৰিব পৰা শক্তি থাকে। সেয়েহে গাঁওখন বানপানীত আক্ৰান্ত যদিও এনে থলুৱা জাতৰ কল উৎপাদনত বানপানীৰ দৰে প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগে প্ৰত্যাহ্বানৰ

সৃষ্টি কৰিব নোৱাৰে।

■ কলৰ খেতিৰ পৰা প্ৰতিটো পৰিয়ালে মাহেকত গড়ে ১০০০-১২০০ টকাকৈ উপাৰ্জন কৰে।

■ গাঁওখনৰ এটি মহিলা আত্ম-সহায়ক গোটে থলুৱা পদ্ধতিৰে কলাখাৰ উৎপাদনৰ প্ৰচেষ্টাও হাতত লৈছে। অৰ্থাৎ কলখেতিক কেন্দ্ৰ কৰি বিভিন্ন ধৰণৰ গ্ৰাম্য ক্ষুদ্ৰ উদ্যোগ গঢ়ি তুলিব পৰাও সম্ভাৱনা আছে।

■ থলুৱা পদ্ধতিৰে থলুৱা জাতৰ কলৰ খেতিত উৎপাদন ব্যয় প্ৰায় শূণ্য।

■ কলগছৰ সহজলভ্যতাৰ বাবে গাঁওখনৰ যিকোনো অনুষ্ঠানত সাম্প্ৰতিক সময়তো কলপাত আৰু কল-পটুৰাক খাদ্য পৰিৱেশনৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। এনে পৰম্পৰাই প্লাষ্টিক প্ৰদূষণ হ্ৰাস কৰি অঞ্চলটোৰ পৰিৱেশ তথা কৃষি বহনক্ষমতাত সুপ্ৰভাৱ পেলাইছে।

৬.১.৪ "কাজি তিৰোতাৰ পিচল বস্ত্ৰ"

গ্ৰাম্য মহিলাসকলৰ অৰ্থনৈতিক স্বাৱলম্বিতাৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ ভূমিকা মনকৰিবলগীয়া। মহিলাসকলক উৎপাদনমুখী কৰাত উপৰোক্ত ডাকৰ বচনটি এক অনন্য উদাহৰণ। 'বস্ত্ৰ' হৈছে মানুহৰ মৌলিক প্ৰয়োজন। সেয়েহে বস্ত্ৰৰ চাহিদাও অতিশয় উচ্চ। অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানে পূৰ্বৰে পৰা পলু পালন কৰি ৰেচম উৎপাদনৰ পোষকতা কৰিছে। মেৰাগড় গাঁৱৰ প্ৰতি গৰাকী মহিলাই বয়ন শিল্পৰ লগত জড়িত আৰু প্ৰাপ্ত বয়স্ক সকলো মহিলাই বয়নৰ কৌশল জানে।

■ মেৰাগড় গাঁৱৰ মুঠ ২৩ গৰাকী মহিলা এড়ীপলু পালনৰ লগত জড়িত।

■ গাঁওখনৰ ৪৫ গৰাকী মহিলাই নুনী পলু পালনত জড়িত আৰু বছৰত এবাৰ সূতা উৎপাদন কৰে।

■ স্থানীয়ভাৱে এক কেজি নুনী পাটৰ সূতাৰ বজাৰ মূল্য ১০,০০০ টকা আৰু এক কেজি এড়ী সূতাৰ বজাৰ মূল্য ১২,০০০ টকা।

■ নিজে সুতা উৎপাদন কৰাৰ উপৰিও বয়ন কাৰ্যত দক্ষ হোৱাৰ হেতু গাঁওখনৰ মহিলাসকলে এটা মোটা অংকৰ ধন উপাৰ্জন কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

■ পলু পালনৰ বাবে নুনী গছ আৰু এৰাগছৰ প্ৰয়োজন হোৱাত, এই পৰম্পৰাই পৰিৱেশক সুস্থিৰ কৰি ৰখাত সহায় কৰিছে আৰু কৃষি-ক্ষেত্ৰৰ বহনক্ষমতাকো ধৰি ৰাখিছে।

৬.২ মৌখিক থলুৱা কৃষি জ্ঞান

"থলুৱা জ্ঞানক স্থানীয় লোকসকলৰ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ সাংস্কৃতিক উপাদান হিচাপে গণ্য কৰা হয় আৰু সাধাৰণতে ইয়াক লিখিত ৰূপত নহয়, বৰং মৌখিকভাৱে আৰু অনুকৰণৰ জৰিয়তেহে প্ৰেৰণ কৰা হয়", (Amoah & Bi, ২০২৩)। কৃষিৰ সৈতে জড়িত পৰম্পৰাগত, অভিজ্ঞতাভিত্তিক আৰু প্ৰায়ে অনানুষ্ঠানিক জ্ঞান তথা পদ্ধতিকে মৌখিক কৃষি জ্ঞান হিচাপে সংজ্ঞাবদ্ধ কৰিব পাৰি। যিবোৰ প্ৰজন্মৰ পিছত প্ৰজন্মলৈ মুখ বাগৰি প্ৰচলিত হৈ আহিছে আৰু ইয়াক আজিকোপতি লিখিত ৰূপ দিয়া হোৱা নাই। এই ধৰণৰ জ্ঞান সাধাৰণতে কৃষক, পশুপালক আৰু স্থানীয় লোকসকলে বৰ্তাই ৰাখে। এনে মৌখিক কৃষি জ্ঞান কোনো বিশেষ অঞ্চল, সংস্কৃতি বা পৰিৱেশ তন্ত্ৰৰ বাবে সীমাবদ্ধ হৈ থাকে।

মৌখিক থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ ভিতৰত আছে—

কৃষি কৌশল ঃ শস্য ৰোপণ, জলসিঞ্চন, আৰু চপোৱাৰ পদ্ধতিৰ লগতে কীট-পতংগ আৰু ৰোগ নিয়ন্ত্ৰণৰ কৌশল।

শস্যৰ নিৰ্বাচন ঃ নিৰ্দিষ্ট মাটিৰ প্ৰকাৰ, জলবায়ুৰ অৱস্থা, বজাৰৰ চাহিদাৰ বাবে কোনবোৰ শস্য সৰ্বোত্তম সেই বিষয়ে জ্ঞান।

মাটি ব্যৱস্থাপনা ঃ মাটিৰ উৰ্বৰতা, গঠন, আৰু স্বাস্থ্য বজাই ৰখাৰ কৌশল।

পশুধন ব্যৱস্থাপনা ঃ পশুৰ আচৰণ, স্বাস্থ্য, আৰু পুষ্টিৰ জ্ঞানকে ধৰি পশুধনৰ প্ৰজনন, খাদ্য, আৰু যত্ন লোৱাৰ পদ্ধতি।

বতৰৰ পূৰ্বাভাস ঃ কৃষি সিদ্ধান্ত গ্ৰহণৰ ক্ষেত্ৰত অৱগত কৰিবলৈ বতৰৰ আৰ্হিৰ ভৱিষ্যদ্বাণী কৰাৰ পৰম্পৰাগত পদ্ধতি, যেনে প্ৰকৃতিৰ পৰিৱৰ্তন পৰ্যবেক্ষণ কৰা।

কীট-পতংগ আৰু ৰোগ ব্যৱস্থাপনা ঃ জৈৱিক নিয়ন্ত্ৰণ পদ্ধতিৰ ব্যৱহাৰকে ধৰি কীট-পতংগ আৰু ৰোগ নিয়ন্ত্ৰণৰ কৌশল।

কৃষি বনানীকৰণ ঃ জৈৱ-বৈচিত্ৰ্যক প্ৰসাৰিত কৰিবলৈ উদ্ভিদক কৃষি ব্যৱস্থাত কেনেকৈ একত্ৰিত কৰিব পাৰি, তাৰ জ্ঞান।

"থলুৱা জ্ঞান কেৱল স্থানভিত্তিক নহয়, ই হৈছে দৈনন্দিন জীৱনৰ সাংস্কৃতিক অনুশীলন, ধৰ্মীয় আচাৰ-অনুষ্ঠান আৰু উপমাত গভীৰভাৱে নিহীত হৈ থাকে" (Gupta, ১৯৯২)। "থলুৱা জ্ঞানক উপেক্ষা কৰা উন্নয়নমূলক পদক্ষেপবোৰ

বেছি ভাগ সময়তে বিফল হয়, কিয়নো এনে পদক্ষেপে স্থানীয় সমাজৰ সাংস্কৃতিক বাস্তৱতা আৰু পৰিৱেশগত জ্ঞানক অগ্ৰাহ্য কৰে" (Sillitoe, ১৯৯৮)। এই গৱেষণাৰ বাবে নিৰ্বাচিত অধ্যয়ন ক্ষেত্ৰ মেৰাগড় গাঁৱত তলত সন্নিবিষ্ট মৌখিক কৃষি জ্ঞানসমূহ প্ৰচলিত হৈ আহিছে আৰু জীৱন-জীৱিকা, গ্ৰাম্য অৰ্থনীতি আৰু অৰ্থনৈতিক বহনক্ষমতাত এই মৌখিক কৃষি জ্ঞানে বিশেষ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। নিৰ্বাচিত কৃষকসকলৰ সৈতে হোৱা সাক্ষাৎকাৰ আৰু কৃষি-ক্ষেত্ৰৰ পৰ্যবেক্ষণৰ পৰা নিম্নোক্ত মৌখিক কৃষি-জ্ঞানসমূহ আহৰণ কৰি সাম্প্ৰতিক সময়ত ইয়াৰ গুৰুত্ববাজিৰ বিষয়ে পৰ্য্যালোচনা কৰা হৈছে।

৬.২.১ বিহুৱা মৰা সিঁচা পৰ্ব ঃ

এছিয়াৰ স্থানীয় প্ৰজাতিৰ মৰাপাট হৈছে এবিধ বহুমুখী শস্য যিটো শতিকাজুৰি বস্ত্ৰ, কাগজ, পেকেজিং সামগ্ৰীকে ধৰি বিভিন্ন ধৰণৰ সামগ্ৰী উৎপাদনৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰি অহা হৈছে। বিশ্বৰ মুঠ উৎপাদনৰ ৬১.২ শতাংশ মৰাপাটৰ উৎপাদন কৰা ভাৰতবৰ্ষ হৈছে সৰ্বাধিক মৰাপাটৰ উৎপাদনকাৰী দেশ। মৰাপাট হৈছে পূব আৰু উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ প্ৰধান বাণিজ্যিক শস্য যিয়ে প্ৰায় ৫০ লাখ লোকক জীৱিকাৰ সুৰক্ষা প্ৰদান কৰে। ক্ৰমবৰ্ধমান পৰিৱেশ সজাগতা আৰু পৰিৱেশগত চিন্তাৰ বাবে সমগ্ৰ বিশ্বতে পৰিৱেশ সচেতন গ্ৰাহকৰ মাজত প্ৰাকৃতিক আঁহৰ চাহিদা বৃদ্ধি পাইছে। সাম্প্ৰতিক সময়ত অসমত মৰাপাট উৎপাদনৰ হাৰ হ্ৰাস পাইছে যদিও মৌখিক কৃষি জ্ঞানে কৃষকক মৰাপাট উৎপাদনৰ বাবে উদ্বুদ্ধ কৰি আহিছে। মেৰাগড় গাঁৱত প্ৰচলিত তেনে এক পৰম্পৰা হৈছে বিহুৱা মৰাপাট সিঁচাৰ পৰ্ব। যিহেতু এপ্ৰিল মাহত উদ্‌যাপিত গৰু বিহুত মৰাপাটৰ পৰা তৈয়াৰী পঘা ব্যৱহাৰৰ পৰম্পৰা আছে; গতিকে অঞ্চলটোত মৰাপাট উৎপাদনৰ পৰম্পৰাও আছে। নিজে উৎপাদন কৰা মৰাপাটৰ আঁহেৰে পঘা তৈয়াৰ কৰাৰ দৰে পৰম্পৰাই সমাজখনত এক অৰ্থনৈতিক বহনক্ষমতাৰ সৃষ্টি কৰি ৰাখিছে। মৰাপাটৰ শিপাই মাটিৰ খহনীয়া ৰোধ কৰাত সহায় কৰে আৰু মাটিৰ উৰ্বৰতা বৃদ্ধি কৰে। ই হৈছে এবিধ উচ্চ উৎপাদনক্ষম শস্য। প্ৰতি হেক্টৰত ২-৩ টন পৰ্যন্ত আঁহ উৎপাদন হয়। আন শস্যৰ তুলনাত মৰাপাটৰ পানীৰ প্ৰয়োজন কম, যাৰ বাবে ই সীমিত জলসম্পদ থকা অঞ্চলৰ বাবে এক আদৰ্শ শস্য। মৰাপাটৰ কীট-পতংগ আৰু ৰোগৰ প্ৰতি স্বাভাৱিক প্ৰতিৰোধ ক্ষমতা থকাৰ বাবে কীটনাশক আৰু অন্যান্য ৰাসায়নিক দ্ৰব্যৰ প্ৰয়োজন কমি যায়। মৰাপাটে মাটিত জৈৱিক পদাৰ্থ যোগ কৰে, যাৰ ফলত ইয়াৰ গঠন আৰু উৰ্বৰতা বৃদ্ধি পায়। ব্যৱসায়িক ভিত্তিক মৰাপাটৰ খেতিৰ পৰম্পৰা নাথাকিলেও এনে মৌখিক থলুৱা পৰম্পৰাই মেৰাগড় গাঁৱৰ দৰে অঞ্চলত এক বহনক্ষম কৃষিৰ পৰম্পৰা বৰ্তাই ৰাখিছে।

৬.২.২ "ভঁৰালৰ তলত নেপাতিলে চেপা, খেতিয়ক বুলি নকʼবা একা"

বহুমুখী আৰু অৰ্থকৰী শস্যৰ উৎপাদনৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া মৌখিক কৃষি জ্ঞানৰ ভূমিকা মন কৰিবলগীয়া। এইক্ষেত্ৰত মেৰাগড় গাঁৱৰ কৃষক সমাজৰ মাজত প্ৰচলিত উক্ত প্ৰবাদটিৰ গুৰুত্ব বিশেষভাৱে উল্লেখনীয়। চেপা হৈছে এবিধ মাছধৰা সঁজুলি আৰু ভঁৰাল হৈছে শস্য মজুত ৰখা ঘৰ। উক্ত প্ৰচলিত প্ৰবাদটিত নিহিত হৈ থকা অৰ্থ এয়ে যে কৃষকে ঘৰত ইমানেই শস্যৰ উৎপাদন কৰিব লাগে যাতে মাছুৰেয়ে নিজে আহি মাছৰ সলনি উৎপাদিত শস্যসমূহ বিনিময় কৰি লৈ যাবলৈ বিচাৰে। কৃষকসকলক প্ৰতিটো বতৰতে এনেদৰে বিভিন্ন শস্য উৎপাদনৰ দিহা দিয়া হৈছে যাতে কেতিয়াও ঘৰত অভাৱে দেখা নিদিয়ে আৰু ভঁৰালৰ তলত চেপা পাতিলেও যাতে মাছুৰেয়ে মাছ দি যাব পাৰে। এনে মৌখিক কৃষি জ্ঞানসমূহে কৃষক সম্প্ৰদায়ক মানসিকভাৱে শক্তিশালী কৰি তোলে। প্ৰতিটো বতৰতে বহুমুখী শস্যৰ উৎপাদনৰ ফলত অভাৱ-অনাটন নহয় আৰু অৰ্থনৈতিকভাৱেও সমৃদ্ধিশালী হৈ থাকিব পাৰে।

৬.২.৩ "চিকুণটো থʼবা কঠিয়ালৈ সামৰিবা লোভ তেহে ৰʼব পথাৰ-বাৰী বাঢ়ি যাব ভোগ"

ভাৰতবৰ্ষৰ দৰে বৈচিত্ৰ্যময় জলবায়ুৰ এখন দেশত ঠাই বিশেষে কৃষিৰ পদ্ধতি আৰু উৎপাদন প্ৰণালী পৃথক। কৃষি উৎপাদন নিৰ্ভৰ কৰে সেই ঠাইখনৰ নিৰ্দিষ্ট জলবায়ু, মাটিৰ গুণাগুণ আৰু মানৱ সমাজখনৰ গতি-প্ৰকৃতিৰ ওপৰত। অত্যাধিক ৰাসায়নিক সাৰৰ প্ৰয়োগ, অত্যাধিক ভূ-গৰ্ভৰ পানীৰ ব্যৱহাৰ, প্ৰদূষণ আদি কাৰ্য-কলাপৰ ফলত একোটা কৃষি ব্যৱস্থাই নিজৰ বহনক্ষমতা হেৰুৱায় আৰু ইয়াৰ ফলত পৰৱৰ্তী প্ৰজন্মৰ বাবে কৃষি ব্যৱস্থাটো বিপদাপন্ন হৈ উঠে। প্ৰজন্মৰ পাছত প্ৰজন্ম ধৰি মৌখিকভাৱে চলি অহা থলুৱা কৃষি জ্ঞানে অৰ্থনৈতিক বহনক্ষমতা ৰক্ষাত বিশেষ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে।

মেৰাগড় গাঁৱত প্ৰচলিত উক্ত প্ৰবাদটিয়ে এটা কৃষিচক্ৰত উৎপাদিত শস্যৰ পৰা উৎকৃষ্টমানৰ শস্যখিনিক পৰৱৰ্তী কৃষিচক্ৰৰ বীজ হিচাপে সংৰক্ষণৰ পোষকতা কৰে। সময়ৰ লগে লগে একোবিধ শস্যৰ গুণগত মান হ্ৰাস হৈ আহে, কিন্তু বীজ সংৰক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত লোৱা এনে সচেতনতাই শস্যৰ উন্নত জীনীয় চৰিত্ৰক অক্ষুন্ন ৰখাত সহায় কৰে।

উচ্চ ক্ষমতা সম্পন্ন বীজৰ তুলনাত থলুৱা বীজৰ ৰোগ প্ৰতিৰোধ ক্ষমতা বেছি। ইয়াৰ লগতে, অতিবৃষ্টি, অনাবৃষ্টি, খৰাং আদি অৱস্থাৰ লগত থলুৱা বীজৰ শস্যই সহজেই সহৱস্থান কৰি ল'ব পাৰে। থলুৱা বীজৰ এনে বৈশিষ্ট্যৰ বাবে শস্যৰ উৎপাদন প্ৰক্ৰিয়াত ৰাসায়নিক সাৰ আদিৰ প্ৰয়োজনীয়তাও কম হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। থলুৱা বীজৰ এনে সংৰক্ষণ আৰু ব্যৱহাৰৰ পৰম্পৰাই একোটি নিৰ্দিষ্ট অঞ্চলৰ পৰিৱেশৰ লগতে অৰ্থনৈতিক বহনক্ষমতা ৰক্ষাত বিশেষভাৱে সহায় কৰে। কিয়নো এই পৰম্পৰা অনুসৰি উৎপাদিত শস্যৰ উৎকৃষ্টখিনি বীজ হিচাপে সংৰক্ষণ কৰিলেহে আগন্তুক প্ৰজন্মবোৰতো ভোগৰ পৰিমাণ বৃদ্ধি পাব। অৰ্থনৈতিক বহনক্ষমতা ৰক্ষাত ই এক ব্যৱহাৰিকভাৱে ফলপ্ৰসু পৰম্পৰা।

৭.০ উপসংহাৰ ঃ

এই অধ্যয়নত প্ৰকাশ পাইছে যে, প্ৰজন্মৰ পাছত প্ৰজন্ম ধৰি চলি অহা লিখিত আৰু অঞ্চল বিশেষৰ থলুৱা মৌখিক অসমীয়া কৃষি জ্ঞানে কেৱল কৃষিৰ ক্ষেত্ৰতে নহয় সামগ্ৰিকভাৱে এখন সমাজৰ বহনক্ষমতা ৰক্ষাত সৰ্বতোপ্ৰকাৰে সহায় কৰি আহিছে। বহুমুখী কৃষি পৰম্পৰা, বীজ সংৰক্ষণৰ পদ্ধতি, উৎপাদনী কৌশলৰ নিৰ্দেশনা প্ৰদানৰ পৰা পৰিৱেশৰ লগত সহনশীলতাৰে সহৱস্থান কৰাৰ বাবে প্ৰেৰণা যোগোৱালৈকে অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ সম্পূৰ্ণ বিজ্ঞানসম্মত ব্যৱহাৰযোগ্যতা আছে। এই কৃষি জ্ঞানে উপাৰ্জনৰ পথ মুকলি কৰাৰ সমান্তৰালভাৱে কৃষকসকলৰ মানসিক স্বাস্থ্যও শক্তিশালী কৰি ৰাখিছে। যাৰফলত কৃষকসকলে কৃষিখণ্ডত নিয়োজিত হৈথাকিবলৈ আগ্ৰহী হৈছে আৰু উদ্যোগ তথা নগৰাঞ্চললৈ গ্ৰাম্য শ্ৰমিকৰ প্ৰব্ৰজনো ৰোধ হৈছে। সেয়েহে, ক'ব পাৰি অসমীয়া থলুৱা কৃষি জ্ঞানৰ সঠিক অধ্যয়ন, গৱেষণা আৰু মূল্যায়নে বহনক্ষম অৰ্থনৈতিক বিকাশৰ এক নতুন বাট মুকলি কৰিব। ❑

ব্যৱহৃত তথ্যৰ উৎস ঃ

ইংৰাজী ঃ

Abdullah, H. J., & Hasan, T. K. (2013). *The use of indigenous knowledge in agriculture and its role in sustainable development*. International Journal of Science and Research, 4, 1312–1317. https://www.ijsr.net/archive/v4i10/SUB159053.pdf

Altieri, M. A. (1995). *Agroecology ঃ The science of sustainable agriculture (2nd ed.)*. CRC Press. https://doi.org/10.1007/BF02345332

Berkes, F., Colding, J., & Folke, C. (2000). *Rediscovery of traditional ecological knowledge as adaptive management. Ecological Applications*, 10(5), 1251–1262. https://doi.org/10.1890/1051-0761(2000)010[1251:ROTEKA]2.0.CO:,2

Chambers, R. (1983). *Rural development:Putting the last first. Longman*. http://ndl.ethernet.edu.et/bitstream/123456789/54506/1/198.pdf

Gliessman, S. R. (2007). *Agroecology: The ecology of sustainable food systems (2nd ed.)*. CRC Press. https://doi.org/10.1201/b17420

Senanayake, S. G. J. N. (2006). *Indigenous knowledge as a key to sustainable development*. The Journal of Agricultural Science, 2(1). https://share.google/PvBWNCgEJfnnBxBxj

Sharma, D. (2018). *Traditional seed conservation and livelihood security: A study of rural women in Upper Assam*. Indian Journal of Traditional Knowledge, 17(4), 671–677. https://share.google/SRQsQLce9moCooR67

Warren, D. M. (1991). *Using indigenous knowledge in agricultural development (World Bank Discussion Paper No. 127)*. The World Bank. https://documents.worldbank.org/curated/en/408731468740976906

Amoah, S. T., & Bi, X. (2023). *The role of indigenous knowledge in agroecological food systems for sustainable development: A systematic review.* Sustainability, 15(11), 8993. https://doi.org/10.3390/su15118993

Sillitoe, P. (1998). *The development of indigenous knowledge: A new applied anthropology*. Current Anthropology, 39(2), 223–252. https://doi.org/10.1086/204722

অসমীয়া ঃ

কলিতা, মঞ্জুৰা মোহন। *কৃষি কৃষক আৰু অসমৰ কৃষি বিকাশ*। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, পাণবজাৰ। ফেব্ৰুৱাৰী, ২০০৮

বৰুৱা, ৰুণিমা। *ডাকৰ বচন আৰু খনাৰ বচন*। কথা বিডাৰ্চ ফ'ৰাম, গুৱাহাটী। চেপ্টেম্বৰ, ২০১৪

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

ৰাহুল কলিতা

গৱেষক , অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়,
মাজুলী, পিন ঃ ৭৮৫১০৪
৮০১১০০৮২৬৮
kalitarahul80@gmail.com

ড° হিমাদ্রী শইকীয়া

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়, মাজুলী
পিন ঃ ৭৮৫১০৪
৯৭৬৫২২১১৭২
himadrispanish@gmail.com

সাৰংশ ঃ

ভাৰতৰ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ অৰুণাচল প্ৰদেশত বসবাস কৰা ইদু-মিচিমিসকলে প্ৰধানত প্ৰতি বছৰে ৰেহ আৰু কে-মেহ-হা উৎসৱ পালন কৰে। প্ৰতি বছৰে ফেব্ৰুৱাৰী মাহত পালন কৰা ৰেহ উৎসৱত দেৱী নানি-ইন্তিয়াক সন্মান জনোৱা হয়, সমৃদ্ধি, স্বাস্থ্য আৰু সম্প্ৰীতিৰ বাবে আশীৰ্বাদ বিচাৰে। ইয়াত পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি আৰু সাম্প্ৰদায়িক ভোজ-ভাতৰ খোৱাৰ নিয়ম আছে, যিয়ে ঐক্যক লালন-পালন আৰু প্ৰকৃতিৰ সৈতে জনগোষ্ঠীটোৰ আধ্যাত্মিক সংযোগ প্ৰতিস্থা কৰে। অতীততে ৰেহ উৎসৱ ব্যক্তিগতভাৱে পালন কৰিছিল। ১৯৬০ চনৰ শেষৰ দিনত ইটা পুলুৰ নেতৃত্বত সমগ্ৰ ইদু- মিচিমিসকলক একত্ৰিত কৰি ৰেহ সাম্প্ৰদায়িক ৰূপত উৎদ্‌যাপন আৰম্ভ কৰে। যাৰ জড়িতে মানুহৰ মাজত ভাতৃত্ববোধ, একত্ৰা আৰু শান্তিৰ বাণী প্ৰৱাহিত হয়।

প্ৰতি বছৰে অক্টোবৰ মাহত পালন কৰা কে-মেহ-হা হৈছে শস্য চপোৱাৰ পিছৰ উৎসৱ, য'ত প্ৰচুৰ উৎপাদনৰ বাবে দেৱতাসকলৰ প্ৰতি কৃতজ্ঞতা প্ৰকাশ কৰে। এই উৎসৱত গীত-নৃত্য, আৰু পৰম্পৰাগত শিল্পকৰ্মৰ আদান-প্ৰদান জড়িত হৈ আছে, যিয়ে তেওঁলোকৰ চহকী ঐতিহ্যক প্ৰতিফলিত কৰে। দুয়োটা উৎসৱতে ইদু-মিচিমিসকলৰ পৰিৱেশ আৰু পৰম্পৰাৰ প্ৰতি গভীৰভাৱে শিপাই থকা সন্মানৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে।

এই উৎসৱসমূহৰ আধুনিকীকৰণৰ মাজত ইদু-মিচিমিসকলৰ অন্যান্য পৰিচয় ৰক্ষা কৰি অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য বহন কৰি আহিছে। ইদু-মিচিমিসকলৰ সংস্কৃতিয়ে স্থানীয় আৰু বিশ্বব্যাপী সকলোকে আকৰ্ষণ কৰি আহিছে, সাংস্কৃতিক পৰ্যটনক প্ৰসাৰিত কৰে আৰু অৰুণাচল প্ৰদেশৰ বৈচিত্ৰময় পৰম্পৰাৰ বিষয়ে অন্তৰ্দৃষ্টি প্ৰদান কৰে।

বীজ শব্দ ঃ

ইদু-মিচিমি, উৎসৱ, সংস্কৃতি, ৰেহ, লোকবিশ্বাস, পৰম্পৰা আদি।

০.০ আৰম্ভণি ঃ

ইদু-মিচিমিসকল মূলতঃ ভাৰতৰ উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ অৰুণাচল প্ৰদেশৰ উজনি দিবাং উপত্যকা আৰু দিবাং উপত্যকা জিলাত বাস কৰা এটা খিলঞ্জীয়া জনগোষ্ঠী। তেওঁলোকৰ চহকী সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য, উৎসৱ, পূৰ্বপুৰুষৰ পূজাক কেন্দ্ৰ কৰি গভীৰ আধ্যাত্মিক বিশ্বাসৰ বাবে পৰিচিত। ইদু-মিচিমিসকলৰ ইণ্ড নামেৰে জনাজাত পুৰোহিতসকলৰ দ্বাৰা ৰীতি-নীতি পৰিচালিত হয়, যিসকলে আত্মাক সন্মান জনায় আৰু সমন্বয় বজাই ৰাখিবলৈ তেওঁলোকে অনুষ্ঠান পৰিচালনা কৰে। ইদু-মিচিমি ভাষা তিব্বত-বৰ্মী ভাষা পৰিয়ালৰ অন্তৰ্গত তেওঁলোক হস্তশিল্পত পাকৈত আৰু

প্রকৃতি আৰু পৰিৱেশৰ সৈতে সংগতি পূর্ণ ওতঃপ্রোতভাৱে জড়িত বহুনক্ষম জীৱনশৈলী বজাই ৰাখে। অৰুণাচল প্রদেশৰ ইদু-মিচিমিসকলে ৰেহ আৰু কে-মেহ-হা নামৰ দুটা প্রধান উৎসৱ পালন কৰে। ইদু-মিচিমি জনগোষ্ঠীৰ আধ্যাত্মিক বিশ্বাস, পৰম্পৰাই তেওঁলোকৰ জীৱনশৈলীক সামৰি লয়। ফেব্রুৱাৰী মাহত পালন কৰা ৰেহ হৈছে তেওঁলোকৰ মুখ্য দেৱতা নানি ইন্তিয়া প্রতি উৎসর্গিত এক বিশিষ্ট উৎসৱ, যিয়ে জনসাধাৰণক সমৃদ্ধি, সুস্বাস্থ্য আৰু সুৰক্ষা প্রদান কৰে বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। ৰেহৰ সময়ত নৃত্য, গীত আৰু আনুষ্ঠানিকভাৱে পশু বলি দিয়াকে ধৰি বিভিন্ন অনুষ্ঠানৰ আয়োজন কৰে, যিয়ে ইদু-মিচিমিসকলৰ প্রকৃতি আৰু আধ্যাত্মিক ক্ষেত্রৰ প্রতি থকা শ্রদ্ধাক প্রতিফলিত কৰে। প্রতিকী ধৰণে সমৃদ্ধ পৰম্পৰাগত সাজ-পোছাক পৰিধান কৰা হয়, যিয়ে সম্প্রদায়টোৰ অন্যান্য কাৰুকার্য আৰু সাংস্কৃতিক বৈচিত্র্যৰ প্রমাণ দিয়ে। বছৰৰ শেষৰ ফালে উদ্‌যাপন কৰা কে-মেহ-হা এক বেলেগ অথচ পৰিপূৰক উদ্দেশ্য সাধন কৰে। প্রচুৰ শস্য আৰু আশীর্বাদৰ বাবে প্রকৃতিৰ প্রতি কৃতজ্ঞতা প্রকাশ কৰা এক উৎসৱ। অনুষ্ঠান, নৃত্য, আৰু সাম্প্রদায়িক সমাৱেশৰ জৰিয়তে কে-মেহ-হা উৎসৱে সামাজিক বন্ধন শক্তিশালী কৰে আৰু সমাজখন কৃতজ্ঞতাৰে একত্রিত হ'বলৈ সুযোগ দিয়ে। দুয়োটা উৎসৱেই ইদু-মিচিমিৰ সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য সংৰক্ষণ আৰু প্রসাৰত অপৰিহার্য ভূমিকা পালন কৰে, লোকবিশ্বাস আৰু পৰম্পৰাৰ ৰীতি-নীতিৰ জৰিয়তে প্রজন্মৰ পিছত প্রজন্মক সংযোগ কৰে। এই উদ্‌যাপনসমূহে কেৱল সম্প্রদায়টোৰ পৰিচয় শক্তিশালী কৰাই নহয়, ইদু-মিচিমিসকলৰ চহকী আৰু বৈচিত্র্যময় সাংস্কৃতিক পৰিৱেশৰ প্রতি সজাগতা বৃদ্ধি কৰে।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন- শীর্ষক আলোচনা পত্রখনৰ প্রধান উদ্দেশ্য কেইটা হ'ল -

ক) ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ লগত জড়িত সামাজিক ৰীতি-নীতি আদিৰ প্রেক্ষাপট বিচাৰ কৰা।

খ) ইদু- মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ লগত সংপৃক্ত লোকাচাৰ-লোকবিশ্বাস, পৰম্পৰা, পৰিৱর্তন আদি বিচাৰ কৰা।

০.২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব

ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন- শীর্ষক গৱেষণা পত্রখনৰ প্রধান গুৰুত্ব কেইটা হ'ল -

ক) ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ লগত জড়িত সামাজিক ৰীতি-নীতি, ধর্মীয় পৰম্পৰা, লোকাচাৰ-লোকবিশ্বাসসমূহত নিহিত হৈ থকা দিশসমূহ পোহৰলৈ অনাৰ ক্ষেত্রত এই গৱেষণাৰ গুৰুত্ব আছে।

খ) ইদু- মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ লগত জৰিত দিশসমূহ আলেখ্যন (Documentation) কৰা।

গ) ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ সম্পর্কে বর্তমানলৈকে কোনো গৱেষণাধর্মী অধ্যয়ন হোৱা নাই, সেয়েহে অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন- শীর্ষক গৱেষণা পত্রখনত তথ্য আহৰণৰ পদ্ধতি আৰু বিষয় বিশ্লেষণৰ পদ্ধতি এই দুই প্রকাৰৰ পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে ।

০.৩.১ তথ্য আহৰণৰ পদ্ধতি হিচাপে ক্ষেত্র অধ্যয়ন

সাক্ষৎকাৰ পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হ'ব।

সাক্ষৎকাৰ পদ্ধতি ঃ

ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ লগত জৰিত ধর্মীয় ৰীতি-নীতি, লোকাচাৰ-লোকবিশ্বাস আদি কথাসমূহ জানিবলৈ সাক্ষৎকাৰ পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হ'ব।

০.৪.২ বিষয় বিশ্লেষণ পদ্ধতি ঃ

আলোচনা পত্রখনিত বিষয় বিশ্লেষণ পদ্ধতিকেইটা ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে —

ক) বর্ণনাত্মক পদ্ধতি

খ) বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি

ক) বর্ণনাত্মক পদ্ধতি

এই গৱেষণা পত্রখনত ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ পৰিচয় দিবলৈ যাওঁতে বর্ণনাত্মকপদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

খ) বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি ঃ ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱত নিহিত হৈ থকা সমাজ-সংস্কৃতিৰ দিশসমূহ বিচাৰ কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন শীর্ষক গৱেষণা পত্রখনৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰৰ

ভিতৰত ইদু-মিচিমিসকলৰ লগত জড়িত ৰীতি-নীতি, ধর্মীয় পৰম্পৰা, লোকাচাৰ-লোকবিশ্বাস আৰু উৎসৱলৈ অহা পৰিৱর্তন আদি দিশসমূসহ সামৰি লোৱা হৈছে।

০.৫ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্র ঃ

ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন - শীর্ষক গৱেষণাৰ বাবে অৰুণাচল প্রদেশৰ উজনি দিবাং উপত্যকা-আনিনি আৰু দিবাং উপত্যকাৰ কোৰানু, ভীষ্মকনগৰ, এজেংগা, ইন্টায়া আদি ক্ষেত্র অধ্যয়নৰ ভিতৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

১.০ ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ বিশ্লেষণ ঃ

ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱ ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন - শীর্ষক আলোচনা পত্রখনিত বিষয়টি আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে ৰেহ উৎসৱক সামৰি লোৱা হৈছে । ইদু-মিচিমিসকলৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক জীৱনত পালন কৰা উৎসৱ-পার্বণৰ জৰিয়তে নিজৰ সংস্কৃতি প্রাণৱন্ত হৈ উঠে।

১.১ ৰেহ উৎসৱৰ বিশ্লেষণ ঃ

ইদু-মিচিমিসকলৰ প্রধান উৎসৱ হিচাপে ৰেহ উদ্‌যাপন কৰা হয়। এই উৎসৱটো মূলতঃ ব্যক্তিগতভাৱে পালন কৰা হৈছিল যদিও প্রায় দুটা দশকৰো অধিক সময় ধৰি এই সামূহিক উৎসৱ হিচাপে ডাঙৰকৈ পালন কৰি অহা হৈছে। ৰেহ শব্দই ইদু উপভাষাত 'আমন্ত্রণ'ৰ অর্থ বহন কৰে।[১] ৰেহ পূজাৰ স্পষ্ট উদ্দেশ্য হৈছে সাধাৰণতে নানি ইন্তিয়া আৰু মাচেলো জিনো নামেৰে জনাজাত তেওঁলোকৰ উপাস্য দেৱতাৰ সন্তুষ্ট কৰি ধন, সমৃদ্ধি আৰু খ্যাতি লাভ কৰা।

ৰেহ উৎসৱৰ প্রথম খণ্ডক আডা বুলি কোৱা হয়। ৰেহ সম্পন্ন কৰা মেংগা নামৰ ব্যক্তিজনক নগদ আৰু বস্তুগতভাৱে ঋণ আগবঢ়ায়। ঋণ নগদ ধনৰ ৰূপত বা গাহৰি, মেথুন, শুকান মাছ, শুকান নিগনি, চাউল বা অন্যান্য প্রয়োজনীয় সামগ্রীৰ ৰূপত হ'ব পাৰে। এই ঋণ ৰেহ পূজাৰ সময়ত মেংগাক নামৰ ব্যক্তিজনক নগদ আৰু বস্তুগতভাৱে ঋণ আগবঢ়ায়। ঋণৰ বস্তুবোৰৰ হিচাপ মেংগাই ৰাখে কাৰণ ঋণ আগবঢ়োৱা ব্যক্তিজনে নিজাকৈ ৰেহ পূজা কৰাৰ সময়ত তেওঁ একেটা ঋণ পৰিশোধ কৰিব লাগিব।

যদি কোনোবাই এবছৰৰ ভিতৰত ৰেহ সম্পন্ন কৰাৰ সিদ্ধান্ত লয় তেন্তে তেওঁ হাথৰু অনুষ্ঠান কৰি ঘোষণা কৰে য'ত অন্ততঃ মেথুন বলি দি ভোজ দিয়া হয়। পৰৱর্তী পর্যায়টোক মৰনঅ-চে বুলি কোৱা হয়। যেতিয়া ব্যক্তিজনে ৰেহ কৰিবলৈ ওলাই তেতিয়া তেওঁ খেতিৰ বাবে জংঘল চাফা কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে। এই খেতিৰ শস্য ৰেহত একান্তভাৱে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। গাঁৱৰ ওচৰ-চুবুৰীয়া মানুহবোৰে তেওঁক খেতি কৰাত সহায় কৰিবলৈ আহে।

পৰৱর্তী পর্যায়টো হ'ল এজন পুৰোহিত বা ইগুক ৰেহ কৰিবলৈ চুক্তিবদ্ধ কৰা ইগু বাছনি কৰাৰ ব্যৱস্থাটোক ৰেগু-চি বুলি কোৱা হয়। পৰৱর্তী পর্যায়টোক হাৱে-আঞ্জি বুলি কোৱা হয় এই পর্যায়ত বিভিন্ন খাদ্য মজুত প্রস্তুতি বাবে চাউল আৰু গোমধান পিহি লোৱাৰ অনুষ্ঠান হয়। ইয়াৰ পিছত আহে ইউ-ফি নামৰ এটা গুৰুত্বপূর্ণ অনুষ্ঠান। এই অনুষ্ঠানত বিভিন্ন প্রক্রিয়াৰে ইউ (স্থানীয় চাউলৰ মদ)ৰ প্রস্তুত কৰা হয়। এনেধৰণে বিভিন্ন চাউলৰ পৰা প্রস্তুত কৰা বিভিন্ন পানীয়সমূহৰ নাম হৈছে ইউ-নিয়, ইউ-নু, ইউ-য়ু, ইউ-আন্দ্রো আদি। ইয়াৰ পৰৱর্তী সময়ত মেথুন আৰু গাহৰিৰ বলি দিয়াৰ বাবে সাজু কৰে।

ৰেহৰ নিমন্ত্রণ ইদু-মিচিমিসকলো গাঁৱৰ আত্মীয়লৈ পঠিওৱা হয়। মৰাপাটৰ ৰছী, যাৰ বাবে নির্দিষ্ট দিনৰ সংখ্যাৰ ওপৰত নির্ভৰ কৰি গাঁঠিৰ সংখ্যা থাকে। দিন আৰম্ভ হোৱাৰ লগে লগে প্রতিটো দিনত এটা গাঁঠি কাটি দিয়া হয়। এইদৰে সকলো প্রস্তুতি কৰি শেষত নির্ধাৰিত তাৰিখত ৰেহ পূজা আৰম্ভ হয়।

ৰেহৰ প্রথম দিনটোক আন্দ্রোপু বোলা হয়। এই দিনটোতে ইগু বা পুৰোহিত আহি মেৰে-আজি নামৰ অনুষ্ঠান সকলো অতিথিৰ মংগলৰ বাবে আৰম্ভ কৰে। অতিথিসকলৰ আগমনৰ লগে লগে গৃহস্থ আৰু গাঁৱৰ মানুহে ২-৩ বাৰ একেলগে সমস্বৰে মেৰে-বো চিঞৰি তেওঁলোকক সম্ভাষণ জনায়। অতিথিসকলে চাঙত ভৰি দিয়াৰ লগে লগে তেওঁলোকক বাঁহৰ পাত্রত ইউ আগবঢ়োৱা হয়। এই সময়ছোৱাত মহিলা আত্মীয়ৰ পৰা নগদ ধন বা বস্তুগতভাৱে উপহাৰ লাভ কৰা হয়। কিছুমান অতিথিয়ে নিজৰ উপহাৰ ধন ঘূৰাই দিয়ে আৰু কিছুমানে মেংগাক ঋণৰ প্রস্তাৱ দিয়ে।

ৰেহ-উদ্‌যাপনৰ দ্বিতীয় দিনটো ইয়ানলি নামেৰে জনাজাত। ইয়াক পশু বলি দিয়াৰ অর্থাৎ 'সা-চে-মাচিনয়ী' বুলি কোৱা হয়। ইগুৱে টোথ্র (বাঁহৰ ডাল)ৰে জীৱ-জন্তুবোৰক শুদ্ধ কৰে। এই অনুষ্ঠানক সা-আচা বোলা হয়। এই দিনটোত মেংগাই মাতৃৰ ফালৰ ককাক, ভায়েক আৰু

শহুৰেকক জীয়া গাহৰি আগবঢ়ায়। জীয়া গাহৰিৰ ৰূপত ইগুৰ মূল্য দিয়া হয়। ইয়াৰ পিছত মেংগাই পত্নী আৰু মাতৃৰ ককাকৰ সকলো আত্মীয়ক নগদ ধনেৰে উপহাৰ দিয়ে যাক ইমেটা বুলি কোৱা হয়।

ইয়ানলি উদ্‌যাপনৰ তৃতীয় দিনটো গাহৰি বলি দিয়াৰ বাবে তাৎপর্য্যপূর্ণ। মেংগাই বলি দিয়া গাহৰিৰ সকলো মূৰ খুলশালীবোৰৰ মাজত বিতৰণ কৰে। এই উদ্‌যাপনত উপহাৰ দিয়া আৰু গ্রহণ কৰাৰ নিয়ম ইদু-মিচিমিসকলৰ আন এটা গুৰুত্বপূর্ণ উৎসৱ হৈছে কে-মেহ-হা। কে-মেহ-হা ৰ অর্থ হৈছে প্রথম চপাই চাউল খোৱা। প্রথম শস্য ধান চপাই ঘৰলৈ অনা হয় তাৰে সামান্য পৰিমাণৰ ধান জ্বলাই আপেছা-আড়ুয়া'ক উন্নত শস্যৰ বাবে আগবঢ়াই দিয়া হয়। এই দিনটোত পৰিয়ালৰ পুৰুষ সদস্যসকলে মাছ ধৰা আৰু চিকাৰ কৰিবলৈ যাব। এই প্রথাক আম্পি-জী বুলি কোৱা হয়। চিকাৰ আৰু মাছ ধৰাৰ পৰা অহাৰ পিছত ঘৰৰ পৰিয়ালৰ সদস্যৰ ভিতৰত এক বৃহৎ ভোজৰ আয়োজন কৰা আছে। ইলিৰুমুনি হৈছে উৎসৱৰ চতুর্থ দিন। দূৰৈৰ ঠাইৰ অতিথিসকলৰ অধিকাংশই সেই দিনটোতে ৰাওনা হয়। সন্ধিয়াৰ সময়ত আপেছা-আদেগী নামৰ এক অনুষ্ঠান সম্পন্ন কৰা হয় য'ত দুজন পুৰুষক দম্পতীৰ দৰে সাজ-পোছাক পিন্ধাই সমাৱেশৰ উপস্থিতিত প্রতিকী যৌন কার্য্য প্রদর্শন কৰি মনোৰঞ্জন আৰু হাঁহিৰ সৃষ্টি কৰা হয়। এই অনুষ্ঠানটো সমৃদ্ধি আৰু শস্যৰ আশীর্বাদ লাভ কৰিবলৈ দেৰী আপেছাক সন্তুষ্ট কৰিবলৈ কৰা হয়।

ইটোনু-চে হৈছে উৎসৱৰ সামৰণি দিন। ইগুৰে ৰাতিপুৱাই ঘৰলৈ যাত্রা কৰে আৰু ইয়াৰ পৰাই বুজা যায় যে উৎসৱৰ সামৰণি পৰিছে। ভাল উৎপাদানৰ শস্যৰ বাবে দেৰী আপেছা- আড়ুয়াক সন্তুষ্ট কৰাৰ বাবে চৰাই বলি দিয়া হয়। ৰেহ সম্পূর্ণ হোৱাৰ পিছত মেংগা আৰু তেওঁৰ পৰিয়ালে ৫ ৰ পৰা ১০ দিনৰ কিছুমান সামাজিক ৰীতি-নীতি পালন কৰে।

পৰম্পৰাগতভাৱে ৰেহ উৎসৱ ফৈদ পর্যায়ত পালনকৰা হয়। শান্তি আৰু সমৃদ্ধি লাভৰ বাবে সকলো বংশৰ সদস্যক এটা বিশেষ স্থানত একত্রিত কৰাৰ বাবে উদ্‌যাপন কৰা হয। কিন্তু যোৱা প্রায় তিনি দশক ধৰি ইদু-মিচিমি সমাজত পৰম্পৰাগত ৰূপৰ সৈতে সমান্তৰালভাৱে ৰেহ উৎসৱৰ নতুন ৰূপও গ্রহণ কৰিছে । যিটো বছৰি ফেব্রুৱাৰী মাহৰ এক তাৰিখৰ পৰা তিনি তাৰিখলৈ ইদু-মিচিমিসকলে গোত্রৰ ভিত্তিত বিভিন্ন স্থানত পালন কৰি আহিছে । ১৯৬৮ চনৰ প্রথম ফেব্রুৱাৰীত তেতিয়াৰ অতিৰিক্ত উপ আয়ুক্ত অনিনি আই পি গুপ্তাই প্রথম বাৰৰ বাবে ৰেহ উৎসৱৰ কেন্দ্রীয় ৰূপটো জনগোষ্ঠীয় ভিত্তিত উদ্বোধন কৰি ইতিহাস ৰচনা কৰিছিল। যিটো বর্তমানৰ ডিবং উপত্যকা জিলাত মুখ্য কার্যালয় হিচাপে আছে।[২]

২.০ সামৰণি ঃ

অৰুণাচল প্রদেশৰ ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ বিষয়ে আলোচনা কৰি কেতবোৰ সিদ্ধান্ত পোৱা গ'ল-

ক) ইদু - মিচিমিসকলৰ আধ্যাত্মিক বিশ্বাস আৰু সাংস্কৃতিক আচাৰ-অনুষ্ঠান প্রতিফলিত হোৱা অন্যতম অনুষ্ঠান হ'ল ৰেহ। ৰেহ উৎসৱসৰ আৰম্ভণিতে নানি ইন্তিয়া আৰু অন্যান্য দেৱতাৰ আমন্ত্রণ কৰা হয়। ইগুৱেএই অনুষ্ঠানত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা পালন কৰে। শাৰীৰিক আৰু আধ্যাত্মিক ক্ষেত্রত মাজত মধ্যস্থতাকাৰী হিচাপে কাম কৰে। ইগুৱে প্রার্থনা আৰু গীত জপ কৰে, সমৃদ্ধি স্বাস্থ্য আৰু সুৰক্ষাৰ বাবে দেৱতাসকলৰ পৰা আর্শীবাদ বিচাৰে। ৰেহ উৎসৱৰ অন্যতম গুৰুত্বপূর্ণ প্রতিকী অনুষ্ঠান হৈছে পশু বলি দিয়া। মেথুন , গাহৰি, কুকুৰা আদি জীৱ-জন্তুক বেদিত দেৱতাৰ প্রসাদ হিচাপে বলি দিয়া হয়। এই কার্যই দেৱতাসকলক সন্তুষ্ট কৰে আৰু সমাজৰ প্রতি তেওলোকৰ অনুকূলতা নিশ্চিত কৰে বুলি লোকবিশ্বাস প্রচলিত হৈ আছে। অতি শ্রদ্ধাৰে বলিদান কৰাৰ পাছত সম্প্রদায়িক ভোজৰ অংশ হিচাপে অংশগ্রহণকাৰী সকলৰ মাজত মাংস বিতৰণ কৰে। ৰেহ অনুষ্ঠানত সম্প্রদায়টোৰ যিকোনো নেতিবাচক শক্তি বা অশুদ্ধিৰ পৰা পৰিস্কাৰ কৰাৰ লক্ষেৰে শুদ্ধিকৰণ অনুষ্ঠান আৰম্ভ কৰে।

খ) ইদু-মিচিমিসকলৰ নিজস্ব সাংস্কৃতিক ঐতিহ্য আৰু পৰম্পৰা ৰক্ষা কৰি ৰেহ উৎসৱ পালন কৰা হয়। প্রতি বছৰে ফেব্রুৱাৰী মাহত সামূহিকভাৱে ৰেহ উৎসৱ জনগোষ্ঠীটোৰ সমৃদ্ধি, উর্ৱৰতা আৰু সুৰক্ষা প্রদানৰ বাবে দেৰী নানি ইন্তিয়াৰ নামত উৎসর্গা কৰি অহা হৈছে।

গ) ইদু-মিচিমিসকলৰ ৰেহ উৎসৱৰ জড়িয়তে তেওঁলোকৰ সাংস্কৃতিক মূল্যবোধৰ প্রতি থকা সচেতনতা আৰু আত্মীয়তাৰ পৰিচয় দিয়ে। এই উৎসৱ-পার্ৱণসমূহে

এটা প্রজন্মৰ পৰা আন এটা প্রজন্মলৈ পৰম্পৰাগত জ্ঞান, ঐতিহ্য বহন কৰি আহিছে।

ঘ) আধুনিকতাৰ লগে লগে ইদু-মিচিমিসকলৰ সমাজ-সাংস্কৃতিক জীৱনলৈ কিছু পৰিৱর্তন আহিলেও পৰম্পৰাগত উৎসৱ-পার্ৱণক লৈ জাতিটোৰ লোকসকল সচেতন। ❑

প্রসংগসূত্র

১. মেগাং উম্বে, বয়স ৭২, আওহালি গাঁও, পূৱ চিয়াং জিলা।
২. অনিতা পুলু, বয়স ৩৮, আওহালি গাঁও, পূৱ চিয়াং জিলা।
৩. মুচু উম্বে, বয়স ৬২, আওহালি গাঁও, পূৱ চিয়াং জিলা।

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী

অসমীয়া ঃ

গগৈ, লীলা. *অসমৰ সংস্কৃতি.* বনলতাঃ ডিব্রুগড়. ১৯৯৪.
গগৈ, চাও লোকেশ্বৰ. *অসমৰ লোক-সংস্কৃতি.* ক্রান্তিকাল প্রকাশন ঃ নগাঁও. ২০০৭.
————————. *অসমৰ লোক-সংস্কৃতি২.* ক্রান্তিকাল প্রকাশন ঃ নগাঁও. ২০১১
গোহাঁই, সুনীল (সম্পা.). *লোক সংস্কৃতিৰ সৌৱভ.* অসম সাহিত্য সভা ঃ তিনিচুকীয়া, ২০০৮.
গোস্বামী, ভৃগু মোহন. *সংস্কৃতি আৰু লোক সংস্কৃতি.* চন্দ্র প্রকাশ ঃ গুৱাহাটী. ১৯৯৪.
চেতিয়া, উমেশ, *অসমৰ লোকসংস্কৃতিৰ ৰূপৰেখা,* কিৰণ প্রকাশন ঃ ধেমাজী,২০০৮.
দাস, ভুৱন মোহন. *অসমীয়া মানুহৰ নৃবৈজ্ঞানিক পৰিচয়,* অসম বিজ্ঞান সমিতি ঃ গুৱাহাটী. ২০০৩.
বৰগোহাঞি, যতীন্দ্রকুমাৰ. *অসমৰ সাংস্কৃতিক ইতিহাস* ঃ ভাগৱতী প্রকাশন, গোলাঘাট.১৯৯২.
বৰদলৈ, নির্মলপ্রভা. *অসমৰ লোকসংস্কৃতি.* বীণা লাইব্রেৰী ঃ গুৱাহাটী. ২০০৪.

ইংৰাজী ঃ

Baruah, Tapan Kumar. *The Idu Mishmis.* Directorate of Research, Government of arunachal Pradesh. Itanagar, 2017
Dolley, Razzeko. *Reh Ethnography of the Idu Mishmi Shamanic Ritualistic Festival of Arunachal Pradesh.* North East Zone Cultural Center, Ministry of Culture Govern-ment of India. 2023.
Dole (Dolley) Razzeko, *Igu Study of Four Idu Mishmi Shamanic Rituals.* The Idu Mishmi Cultural & Literary Society (IMCLS) Arunachal Pradesh. Bookwell. Delhi. 2021.
Dundeys, Alen. *Essays in Folkloristic*s. Folklore Institute. OrigInal from. the University of Michigan. 1978.
Dorson M. Richard. *Folklore and Folklife An Introduction*. University of Chicago Press. 1972.
Elwin Verrier. *Myths of the North-East Frontier of India.*Frontier Printers & Publishers. 2012
Malik, Basudeb. *Mishmis of Arunachal Pradesh A Study on Ethno-Archaeological & Museum aspects*. Directorate of Research, Government of arunachal Pradesh. Itanagar, 2019.
Pertin, Batem. *Ethnic Communities of Arunachal Pradesh.* Directorate of Research, Government of arunachal Pradesh. Itanagar. 2016
Pulu, Limi. *Idu Mishmi Folksongs.* Directorate of Research, Government of arunachal Pradesh. Itanagar, 2019
Pertin, Batem. Koley, R.N. Chanda. S. *Folktales of Arunachal Pradesh.* Directorate of Research Government of Arunachal Pradesh Itanagar. 2027.
Pandey, Kamlesh Kumar. *History and Culture of the Mishmis f Arunachal Pradesh.* Directorate of Research,Government of arunachal Pradesh. Itanagar, 2018

পৰিশিষ্ট

ক) সমলদাতাৰ তালিকা

১. মেগাং উম্বে, বয়স ৭২, বৃত্তি-গাঁওবুঢ়া, আওহালি গাঁও, পূৱ চিয়াং জিলা।
২. অনিতা পুলু, বয়স ৩৮, বৃত্তি-গৃহিণী, আওহালি গাঁও, পূৱ চিয়াং জিলা।
৩. মুচু উম্বে, বয়স ৬২, বৃত্তি-কৃষক, আওহালি গাঁও, পূৱ চিয়াং জিলা।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ৰূপান্তৰকামী তত্ত্বৰ দৃষ্টিৰে অসমীয়া চুটিগল্পত তৃতীয় লিংগৰ প্ৰসংগ

পূৰৰী শইকীয়া

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
ডিব্রুগড়, অসম- ৭৮৫০০৪
৬৯০০৭৫৫৪৬৯
saikiapurabi909@gmail.com

ড° স্বাতী কিৰণ

সহকাৰী প্ৰাধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ,
ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
ডিব্রুগড়, অসম- ৭৮৫০০৪
৮৪৭৩০৯০৬৪৭
swatikiran2014@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

চুটিগল্প হৈছে আধুনিক সাহিত্যৰ এটি অপৰিহার্য আৰু বিশিষ্ট শাখা। ঊনবিংশ শতিকাৰ প্ৰথমার্ধত পাশ্চাত্যত জন্ম লাভ কৰা চুটিগল্পৰ সেই শতিকাৰ শেষার্ধত ভাৰতবর্ষতো সূচনা হয়। অসমীয়া সাহিত্যত *জোনাকী* আলোচনীৰ যোগেদি লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা হাতত চুটিগল্পৰ শুভাৰম্ভ ঘটে। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ সময়ৰে পৰা আৰম্ভ কৰি সাম্প্ৰতিক সময়লৈকে ৰচিত চুটিগল্পসমূহত সামাজিক লিংগভিত্তিক প্ৰসংগই স্থান পাইছে। কিন্তু সমাজৰ সকলো ক্ষেত্ৰতে অৱহেলিত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ বিষয়ে অসমীয়া চুটিগল্পত বিংশ শতিকাৰ শেষৰ দশকৰ পৰাহে আলোচনা কৰা হৈছে। সাহিত্যত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা মূল তাত্ত্বিক আধাৰ হৈছে ৰূপান্তৰকামী তত্ত্ব। এই তত্ত্বই ৰূপান্তৰকামী আৰু হিজ্ৰা তথা তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰে। গৱেষণা পত্ৰখনত অসমীয়া চুটিগল্পত তৃতীয় লিংগৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰোঁতে এই লোকসকলৰ পৰিচয়, তেওঁলোকৰ মানসিক আৰু সামাজিক স্থিতি, শিক্ষা, জীৱিকা, অধিকাৰ আদি দিশসমূহৰ বিষয়ে এই তত্ত্বৰ জৰিয়তে বিচাৰ-বিশ্লেষণৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

সামাজিক লিংগ, ৰূপান্তৰকামী তত্ত্ব, তৃতীয় লিংগ, বৈষম্য, সামাজিক স্থিতি, মানসিক স্থিতি, শিক্ষা, জীৱিকা, অধিকাৰ ।

০.১ অৱতৰণিকা ঃ

নাৰী আৰু পুৰুষৰ দৰেই স্বাভাৱিক জন্ম প্ৰক্ৰিয়া হ'লেও তৃতীয় লিংগৰ ব্যক্তিসকলৰ শৰীৰ আৰু মন দ্বৈত লক্ষণ সম্পন্ন। ৰূপান্তৰকামী লক্ষণ সম্পন্ন এই ব্যক্তিসকলৰ জৈৱিক লিংগ পৰিচয় আৰু সামাজিক লিংগ পৰিচয় পৃথক। ভাৰতীয় সংবিধানে ৰূপান্তৰকামী লোকসকলক 'তৃতীয় লিংগ' হিচাপে পৰিচয় প্ৰদান কৰে। ৰূপান্তৰকামীসকলৰ বিভিন্ন ভাগৰ ভিতৰত ৰূপান্তৰকৃত পুৰুষ (Trans men), ৰূপান্তৰকৃত নাৰী (Trans women), ৰূপান্তৰকামী পুৰুষ (Transgender men) ৰূপান্তৰকামী নাৰী, (Transgender women) আৰু ত্ৰছ ড্ৰেছাৰ শ্চট্ৰজ্জপ্সব্দব্দ ডডজ্জঙ্গব্দব্দঙ্গজ্জগ্ন অন্যতম। ৰূপান্তৰকামীৰ ভিতৰত হিজৰাসকলকো অন্তর্ভুক্ত কৰা হৈছে। তৃতীয় লিংগৰ লোকসকল মূলসুঁতিৰ সমাজত সদায় বঞ্চিত, অৱহেলিত হৈ আহিছে। অসমৰ প্ৰেক্ষাপটত বিচাৰ কৰিলে দেখা যায় যে আমাৰ সমাজত এই লোকসকলক অমংগলীয়া, অস্পৃশ্যতা বুলি গণ্য কৰা হয়। সমাজৰ সকলো ক্ষেত্ৰতে অৱহেলিত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ বিষয়ে অসমীয়া চুটিগল্পত বিংশ

শতিকাৰ শেষৰ দশকৰ পৰাহে আলোচনা কৰা হৈছে। অসমীয়া ভাষাত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলক লৈ ৰচিত গল্পৰ সংখ্যা একেবাৰে কম। এই গৱেষণা পত্ৰত তৃতীয় লিংগ বিষয়ক অসমীয়া চুটিগল্পৰ মাজত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ পৰিচয়, তেওঁলোকৰ মানসিক আৰু সামাজিক স্থিতি, শি া, জীৱিকা, অধিকাৰ আদিৰ েত্ৰত বৈষম্য আদি দিশসমূহৰ বিষয়ে ৰূপান্তৰকামী তত্ত্বৰ দৃষ্টিৰে অধ্যয়নৰ প্ৰয়াস কৰিব খোজা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব ঃ

অসমীয়া চুটিগল্পত তৃতীয় লিংগৰ সামাজিক, মানসিক স্থিতি বিচাৰ কৰি এই স্থিতি নিৰ্মাণত সমাজৰ ভূমিকা বিশ্লেষণ কৰা।

তৃতীয় লিংগৰ অধিকাৰৰ ক্ষেত্ৰত বৈষম্য আৰু অধিকাৰৰ বাবে কৰা প্ৰতিবাদ সম্পৰ্কে গল্পৰ মাজেৰে অধ্যয়ন কৰা।

বৰ্তমান সমাজত তৃতীয় লিংগৰ অৱস্থিতি সম্পৰ্কে বিচাৰ কৰা।

সমাজত সকলো দিশতে সদায় বঞ্চিত হৈ অহা তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলক সামাজিক মৰ্যাদা প্ৰদান কৰিবলৈ, তেওঁলোকৰ প্ৰতি থকা সাধাৰণ মানুহৰ অস্পৃশ্যতাৰ ভাব দূৰ কৰিবলৈ, এইলোকসকলৰ বিৰুদ্ধে প্ৰচলিত ভ্ৰান্ত ধাৰণা কিছুমানৰ অৱসান ঘটাবলৈ বিষয়টো অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু পদ্ধতি ঃ

বিষয়টিৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰত তৃতীয় লিংগৰ অন্তৰ্ভুক্ত হিজ্ৰা আৰু হিজ্ৰা দলত অন্তৰ্ভুক্ত নোহোৱা ৰূপান্তৰকামী লক্ষণ সম্পন্ন লোকসকলকলৈ ৰচিত গল্পসমূহক সন্নিৱিষ্ট কৰা হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ বাবে নিৰ্বাচন কৰা গল্পসমূহ হ'ল ঃ

অজন্তাৰ 'কিন্নৰ', গীতালি বৰাৰ 'শীতৰ গঙাচিলনী', মৌচুমী কন্দলী, 'তৃতীয়ত্বৰ গল্প', অনুৰাধা শৰ্মা পূজাৰীৰ 'যাত্ৰাসংগী'।

গৱেষণা পত্ৰখনৰ তথ্য বিশ্লেষণৰ বাবে মূলতঃ সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ বিষয় বিশ্লেষণ আৰু সমাজ বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০ ৰূপান্তৰকামী তত্ত্ব ঃ

ৰূপান্তৰকামী তত্ত্ব হৈছে সামাজিক লিংগৰ পৰিচয়ৰ প্ৰকৃতিৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি ৰূপান্তৰকামী ব্যক্তিসকলৰ জীৱনৰ অভিজ্ঞতা বুজাৰ এক তাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগী। ১৯৯০ চনৰ আৰম্ভণিতে কুইয়ৰ তত্ত্বৰ সৈতে ঘনিষ্ঠভাৱে জড়িত হৈ ৰূপান্তৰকামী তত্ত্বৰ উদ্ভৱ হৈছিল।[১] ৰূপান্তৰকামী অধ্যয়নে এইটো বুজায় যে নাৰী আৰু পুৰুষ - এই দুই জৈৱিক লিংগৰ উপৰিও মানুহৰ শৰীৰৰ পাৰ্থক্যৰ একাধিক ৰূপ আছে। ৰূপান্তৰকামী তত্ত্বই ৰূপান্তৰকামী বা হিজ্ৰা তথা তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰে। ইয়াত অধ্যয়ন কৰা বিষয়বোৰ হ'ল - এই লোকসকলৰ সামাজিক লিংগ, জৈৱিক লিংগ, স্বকীয় পৰিচয়, সামাজিক প্ৰস্থিতি, সম অধিকাৰ আৰু দৈহিক ৰাজনীতি। উত্তৰ-আধুনিকতাবাদী আৰু উত্তৰ-গঠনবাদীৰ পৰা উদ্ভৱ হোৱা কুইয়ৰ তত্ত্বই ৰূপান্তৰকামী বিষয়সমূহৰ ভুল উপস্থাপন কৰাৰ বাবে ইয়াক সমালোচনা কৰা হয় কাৰণ কুইয়ৰ তত্ত্বই লেজবিয়ান 'নাৰী সমকামী' আৰু গে' 'পুৰুষ সমকামী' লোকসকলৰ ওপৰত অধিক গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। কুইয়ৰ তত্ত্বৰ পৰা পৃথকভাৱে ৰূপান্তৰকামী তত্ত্বৰ সৃষ্টি হ'ল। এই তত্ত্বই ৰূপান্তৰকামীসকলৰ পৰিচয়ৰ ৰাজনীতি বুজিবলৈ সুযোগ দিয়ে, যিয়ে সামাজিক লিংগৰ বিষয়ে আধিপত্যবাদী ধাৰণাক প্ৰত্যাহ্বান জনায়। নাৰী বা পুৰুষৰ জন্ম যেনেদৰে ভাগ্যৰ ফল নহয় সেইদৰে ৰূপান্তৰকামী বা তৃতীয় লিংগৰ জন্মও ভাগ্যৰ নিৰ্ধাৰণ নহয়।

পণ্ডিতসকলে ৰূপান্তৰকামী তত্ত্বৰ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবলৈ সামাজিক লিংগৰ (Gender) ৰ তিনিটা মুখ্য তত্ত্ব ব্যৱহাৰ কৰিছে। সেইকেইটা হ'ল - অত্যাৱশ্যকীয়তাবাদ তত্ত্ব (Essentialist Theory), সামাজিক নিৰ্মাণবাদ (Social Constructionism) আৰু প্ৰদৰ্শনকামী তত্ত্ব (Performativity Theory)।[2] অত্যাৱশ্যকীয় তাবাদ তত্ত্বই ৰূপান্তৰকামী ব্যক্তিসকলে নিজকে সদায় তেওঁলোকে প্ৰকৃততে জন্মৰ সময়ত লাভ কৰা জৈৱিক লিংগৰ বিপৰীত লিংগ শ্ৰেণীৰ সদস্য আছিল বুলি নিজকে সদায় অনুভৱ কৰা বুলি আলোচনা কৰে। ৰূপান্তৰকৃত নাৰী বা পুৰুষৰ (Transsexual men & women) লগত জড়িত দিশবোৰ এই তত্ত্বই অধ্যয়ন কৰে। আনহাতে সামাজিক নিৰ্মাণবাদৰ মতে জৈৱিক লিংগ আৰু সামাজিক লিংগ পৃথক ধাৰণা আৰু দুয়োটাকে সামাজিকভাৱে গঢ় লৈ উঠা ধাৰণা হিচাপে বুজায়। সেয়ে ৰূপান্তৰকামী (Transgender) ব্যক্তিসকলে বিশ্বাস কৰে যে তেওঁলোকৰ সামাজিক লিংগ জৈৱিক লিংগৰ ওপৰত

ভিত্তি কৰি লোৱাৰ কোনো কাৰণ নাই। ইয়াৰ ফলতেই ৰূপান্তৰকামী ব্যক্তিয়ে সমাজৰ গতানুগতিক সামাজিক লিংগৰ নীতি-নিয়ম ভংগ কৰি নিজৰ জৈৱিক লিংগৰ পৰা পৃথক সামাজিক লিংগ গঢ়ি তোলে। আকৌ প্ৰদৰ্শনকামী তত্ত্ব অনুসৰি ৰূপান্তৰকামীসকলে তেওঁলোকৰ সামাজিক লিংগ পৰিচয়ক তেওঁলোকৰ জৈৱিক লিংগৰ অভিব্যক্তি হিচাপে নহয়, বৰঞ্চ সামাজিক লিংগ অভিব্যক্তি বা প্ৰদৰ্শন হিচাপেহে চাব খোজে। ক্ৰছ ড্ৰেছাৰ শচট্ৰজস্নব্দব্দ ডডজ্জঙ্গব্দব্দঙ্গজ্জগ্ন হৈছে সামাজিক লিংগক এক প্ৰদৰ্শন হিচাপে লক্ষ্য কৰাৰ এটা ভাল উপায়। ৰূপান্তৰকামী তত্ত্বৰ এই তিনিওটা দিশে জৈৱিক লিংগ আৰু সামাজিক লিংগক সমাজ জীৱনত বিভিন্ন দিশৰ পৰা গুৰুত্বপূৰ্ণ বিচাৰ-বিবেচনা কৰে। এই তত্ত্বই ৰূপান্তৰকামীসকলৰ লগতে ভাৰতীয় হিজৰাসকলকো ইয়াৰ আলোচনাৰ পৰিসৰত অন্তৰ্ভুক্ত কৰে। এই তত্ত্বই সমাজত অতীজৰে পৰা অৱহেলিত হৈ অহা ৰূপান্তৰকামী আৰু হিজৰাসকলৰ সামাজিক মৰ্যাদা, সুবিধা, অধিকাৰ আদিৰ সম্পৰ্কে সাহিত্যতআলোচনা আগবঢ়ায়।

২.০ অসমীয়া চুটিগল্পত তৃতীয় লিংগৰ প্ৰসংগ ঃ

২.১ তৃতীয় লিংগৰ পৰিচয় ঃ

ভাৰতীয় সংবিধানে ৰূপান্তৰকামী লোকসকলক 'তৃতীয় লিংগ' হিচাপে পৰিচয় প্ৰদান কৰে। ইংৰাজী 'Trangender' শব্দৰ অসমীয়া প্ৰতিশব্দ ৰূপে 'ৰূপান্তৰকামী' শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। এই ৰূপান্তৰকামী লোকসকল সেইসকল ব্যক্তি যাৰ সামাজিক লিংগৰ পৰিচয় জন্মৰ সময়ত লাভ কৰা জৈৱিক লিংগৰ পৰা পৃথক। উদাহৰণ স্বৰূপে নাৰী হৈ জন্ম ল'লেও সামাজিক লিংগ পৰিচয় পুৰুষ হিচাপে জীৱন যাপন কৰিব পাৰে। ৰূপান্তৰকামী ব্যক্তিৰ জৈৱিক লিংগ পৰিচয় আৰু সামাজিক লিংগ পৰিচয় পৃথক। বহুতো ৰূপান্তৰকামী ব্যক্তিয়ে নিজৰ বাহ্যিক ৰূপটোক তেওঁলোকৰ সামাজিক লিংগ পৰিচয়ৰ সৈতে মিলাবলৈ শাৰীৰিক, সামাজিক বা দুয়োটা দিশতে পৰিৱৰ্তন হোৱাটো বিচাৰে। এইপ্ৰক্ৰিয়াত হৰম'ন থেৰাপী, অস্ত্ৰোপচাৰৰ দৰে চিকিৎসা পদ্ধতি, সামাজিক প্ৰদৰ্শনৰ ক্ষেত্ৰত পৰিৱৰ্তন আদি অন্তৰ্ভুক্ত হ'ব পাৰে। অস্ত্ৰোপচাৰৰ জৰিয়তে জৈৱিক লিংগ সলনি কৰা ৰূপান্তৰকামীসকলক ৰূপান্তৰকৃত মানৱ (Transsexual) বোলা হয়। কিন্তু সকলো ৰূপান্তৰকামী ব্যক্তিয়ে জৈৱিক লিংগ পৰিৱৰ্তনৰ অস্ত্ৰোপ্ৰচাৰৰ প্ৰয়োজনবোধ নকৰে। ৰূপান্তৰকামীসকলৰ বিভিন্ন ভাগৰ ভিতৰত ৰূপান্তৰকৃত পুৰুষ (Trans men), ৰূপান্তৰকৃত নাৰী (Trans women), ৰূপান্তৰকামী পুৰুষ (Transgender men) ৰূপান্তৰকামী নাৰী, (Transgender women) আৰু ক্ৰছ ড্ৰেছাৰ (Cross Dresser) অন্যতম। যিসকল ৰূপান্তৰকামী ল ণসম্পন্ন লোকে হ'ৰম'ন সংস্থাপন আৰু গুপ্তাংগৰ অস্ত্ৰোপ্ৰচাৰৰ জৰিয়তে নাৰীৰ পৰা পুৰুষলৈ ৰূপান্তৰ হয় তেওঁলোকক ৰূপান্তৰকৃত পুৰুষ বোলা হয়। একেদৰেই শাৰীৰিকভাৱে পুৰুষ হ'লেও মানসিকভাৱে নিজকে নাৰী বুলি ভবা লোকসকলে শৰীৰ আৰু মনৰ স্থিতি একে কৰিবলৈ অস্ত্ৰোপ্ৰচাৰৰ কৰি সম্পূৰ্ণৰূপে নাৰী হৈ পৰে তেওঁলোকক ৰূপান্তৰকৃত নাৰী বুলি কোৱা হয়। আনহাতে জন্মগতভাৱে নাৰী হ'লেও মানসিকভাৱে নিজকে পুৰুষ বুলি ভবা আৰু সেইদৰেই সামাজিক লিংগৰ পৰিচয় পুৰুষ হিচাপে দিব খোজা ব্যক্তিক ৰূপান্তৰকামী পুৰুষ বুলি কোৱা হয়। আকৌ জন্মলিংগ পুৰুষ হ'লেও মনেৰে নিজৰে নাৰীৰূপে ভবা আৰু তেনেদৰেই সামাজিক লিংগৰ পৰিচয় নাৰী হিচাপে দিব বিচৰা এইলোকসকলক ৰূপান্তৰকামী নাৰী বোলা হয়। আৰু যিসকলৰ সামাজিক লিংগ আৰু জৈৱিক লিংগ মিল থকাৰ পাছতো বিপৰীত লিংগৰ সাজ-পাৰ, প্ৰসাধন পৰিধান কৰি নিজৰ সামাজিক লিংগ পৰিচয় গঢ়ি তোলে তেওঁলোকৰ বাবে ক্ৰছ ড্ৰেছাৰ শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰি। ৰূপান্তৰকামীৰ ভিতৰত হিজ্ৰাসকলকো অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে।উল্লেখযোগ্য যে সকলো ৰূপান্তৰকামী লোক হিজ্ৰা নহয় কিন্তু সকলো হিজ্ৰাই ৰূপান্তৰকামীৰ অন্তৰ্ভুক্ত। হিজ্ৰা দলত যোগ নিদিয়া শাৰীৰিকভাৱে ৰূপান্তৰকামী লক্ষণবিশিষ্ট লোকসকলক ৰূপান্তৰকামী লোক বুলি ক'ব পাৰি।

ভাৰতবৰ্ষত ২০১৪ চনৰ ১৫ এপ্ৰিল তাৰিখে উচ্চতম ন্যায়ালয়ে ৰূপান্তৰকামীসকলক 'তৃতীয় লিংগ' হিচাপে আইনী স্বীকৃতি দিয়ে। ৰূপান্তৰকামীসকল ভাৰতৰ নাগৰিক আৰু তেওঁলোক যিকোনো পুৰুষ বা মহিলাৰ দৰে একেই স্থিতি আৰু অধিকাৰ আছে। ভাৰতীয় সংবিধানৰ অধীনত প্ৰদান কৰা শিক্ষা, সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক, চিকিৎসা, সামাজিক সমতা তথা মৰ্যাদা অধিকাৰ আদি মৌলিক অধিকাৰবোৰ তেওঁলোকৰ বাবে সমানে প্ৰযোজ্য হ'ব এই উদ্দেশ্যে উচ্চতম ন্যায়ালয়ে

এইলোকসকলক 'তৃতীয় লিংগ' হিচাপে স্বীকৃত প্রদান কৰে।

২.২ তৃতীয় লিংগৰ সামাজিক স্থিতিঃ

প্রকৃততে মানুহৰ লিংগ পৰিচয় এক সামাজিক-ৰাজনৈতিক নির্মাণহে। সামাজিক লিংগ পৰিচয়ৰ দৃষ্টিৰে নাৰী বা পুৰুষ এই দুই লিংগৰ শ্রেণীত অন্তর্ভুক্ত নোহোৱা লোকসকল তৃতীয় লিংগ হিচাপে স্বীকৃত। মানুহ হিচাপে সমাজত জীয়াই থকাৰ অধিকাৰ তেওঁলোকৰো আছে। কিন্তু কেৱল মাত্র লৈংগিক ব্যতিক্রমৰ বাবেই এইলোকসকলক পৰিয়াল আৰু সমাজত ঘৃণাৰ দৃষ্টিৰে চোৱা হয় আৰু সামাজিক স্বীকৃতিৰ পৰা বঞ্চিত কৰা হয়। এই তৃতীয় লিংগৰ লোকসকল যুগ যুগ ধৰি সমাজৰ প্রতিটো স্তৰতে শোষিত-নির্যাতিত হৈ আহিছে।

২.২.১ পাৰিবাৰিক আৰু সামাজিক স্তৰত বৈষম্য ঃ

সমাজৰ প্রতিটো স্তৰতে তৃতীয় লিংগৰ লোকসকল নির্যাতিত- অস্পৃশ্যৰ বলি হৈ আহিছে। বর্তমান সমাজতো ইয়াৰ ব্যতিক্রম নহয়। এই ক্ষেত্রত প্রধান ভূমিকা গ্রহণ কৰে পৰিয়ালে। তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ শাৰীৰিক আৰু মনৰ দ্বৈত ৰূপৰ বাবে পৰিয়ালতেই এই লোকসকলে প্রথম লাঞ্ছিত-অপমানিত হয়। পৰৱর্তী সময়ত সামাজিক স্তৰৰ বিভিন্ন স্থান (যেনে- বিদ্যালয়, চিকিৎসালয়, ৰাজহুৱা স্থান আদি) আৰু ক্ষেত্রত (সামাজিক, শৈক্ষিক, অর্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক আদি) তেওঁলোকৰ ওপৰত চলি অহা নির্যাতন বৃদ্ধি পাবলৈ ধৰে। স্বাভাৱিক জীৱন-যাত্রাৰ আশা-আকাংক্ষা, সুখ-অনুভূতিবোৰ উপভোগ কৰাৰ পৰা এইসকল বঞ্চিত। পৰিয়ালৰ বেলেগ মানুহ দূৰৰে কথা জন্মদাত্রী মাতৃৰ পৰা পোৱা অৱহেলা, অনাদৰে পৰিয়ালত এইলোকসকলৰ স্থিতি কেনেধৰণৰ সেয়া ভালদৰেই প্রকাশ কৰিছে। নিজা ঘৰখনৰ মাক-দেউতাৰ পৰা পোৱা অৱহেলা-মানসিক নির্যাতনৰ বিষয়ে অজন্তাৰ 'কিন্নৰ' গল্পটোৰ সুমন নামৰ ৰূপান্তৰকামী চৰিত্রটোৰ মাজেৰে প্রতিফলন ঘটিছে। সুমন ডাঙৰ হৈ অহাৰ লগে লগে শৰীৰৰ অস্বাভাৱিক গঠন আৰু পুৰুষৰ লক্ষণ ফুটি উঠাৰ বাবেই ঘৰৰ সকলোৱে তাইক অৱহেলা আৰু ঘৃণাৰ দৃষ্টিৰে চাবলৈ ধৰিলে। আনকি জন্মদাত্রী মাতৃয়েও সুমনৰ ব্যতিক্রমী শৰীৰটোৰ বাবে বাকী ল'ৰা-ছোৱালীকেইটাৰ প্রতি কৰা মৰমৰ পৰাও বঞ্চিত কৰিবলৈ ধৰিলে গল্পটোত সুমন চৰিত্রটোৰ জৰিয়তে তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ প্রতি পৰিয়াল আৰু সমাজত আৰম্ভ হোৱা নির্যাতন-অৱহেলাৰ ছবি এখন ফুটি উঠিছে এনেদৰেঃ

দেউতা দিনে দিনে বেছি নির্দয় হৈ পৰিল। তেওঁৰ বন্ধু-বান্ধৱ-সহকর্মী বা অন্য কোনোবা আলহী আহিলে মোক ওলাবলৈ নিদিয়া হ'ল।...মোৰ বাবে কাৰো কোনো ধৰণৰ সহানুভূতি নাছিল।...ঘৰখনৰ বাবে যে মই অপদার্থ হৈ পৰিছিলো। মাথোঁ ঘৰখনৰেই নহয় , মই উভয়লিংগী প্রাণীটো বংশটোৰ কলংক। ভন্টিহঁত ডাঙৰ হৈ অহাৰ লগে লগে মই ঘৰখনৰ চকুৰ কুঁটা দাঁতৰ শূল যেন হ'বলৈ ধৰিছোঁ। মাহঁতৰ চিন্তা। এই অদ্ভুত প্রাণীটো থাকিলে কোনে আমাৰ ঘৰৰ লগত সম্পর্ক কৰিবলৈ আহিব। ... সকলোৱে মোৰ মৃত্যু কামনা কৰে। মোৰ সামান্য জ্বৰ-কাহ হ'লেও সকলোৱে উদগ্রীৱ হৈ মোৰ মৃত্যুলৈ বাট চায়। ('কিন্নৰ', *নির্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতার্থ (সম্পা.), পৃ. ৫৮)

পৰিয়ালৰ সকলোৰে পৰা পোৱা অৱহেলা , সমাজৰ পৰা পোৱা ইতিকিং আদিৰ বাবে মৃত্যুসম জীৱন যাপন কৰা সুমনে এনে জীৱনৰ পৰা মুক্তি পাবলৈ তাইৰ দৰে মানুহবোৰ থকা সমাজখনলৈ গুচি গৈছিল। নাৰীক যৌন সত্তা ৰূপে গণ্য কৰা লিংগসর্বস্ব পুৰুষতান্ত্রিক সমাজখনে নাৰীৰ ওপৰত বলপূর্ব্বক যৌন আতিশয্য কৰাৰ দৰে নাৰী মনৰ বিকৃত শৰীৰৰ হিজৰাসকলকো এৰি নিদিয়ে। তেওঁলোকৰ ওপৰতো বলপূর্ব্বক যৌন উৎপীড়ন চলায়। তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলো যৌন শোষণৰ বলি হয়। গল্পটোত এইসম্পর্কেও উল্লেখ আছে এনেদৰেঃ

এবাৰ ভাৰতৰ এঠাইত আমাৰ দৰে মানুহ ধর্ষিতা হ'ল । ('কিন্নৰ', *নির্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতার্থ (সম্পা.), পৃ. ৫৯)

২.২.২ শিক্ষাৰ ক্ষেত্রত বৈষম্য ঃ

ব্যক্তি হিচাপে নাৰী-পুৰুষ-তৃতীয় লিংগ সকলোৰে শিক্ষা গ্রহণৰ অধিকাৰ সমান। কিন্তু প্রচলিত সমাজ-মানসিকতাই তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ শিক্ষা গ্রহণৰ ক্ষেত্রত বাধাৰ প্রাচীৰ ৰূপে ধৰা দিয়ে। কিয়নো ঘৰ আৰু সমাজৰ পৰা পোৱা অৱহেলা আৰু ঘৃণাৰ পৰা নিজকে নিলগাই আছুতীয়াকৈ ৰাখিবলৈ তেওঁলোকে আধাতে আনুষ্ঠানিক শিক্ষা সামৰিবলগীয়া হয়। বহুতে শিক্ষানুষ্ঠানলৈ গৈয়ে নাপায় ঘৰৰ কঠোৰ অনুশাসন আৰু সমাজৰ নিন্দাৰ

ভয়ত। তেওঁলোকৰ শিক্ষা গ্ৰহণত প্ৰত্যাহ্বান ৰূপে ঠিয় দিছে পাৰিবাৰিক অস্বীকাৰ, শিক্ষানুষ্ঠানত শাৰীৰিক আৰু মানসিক উৎপীড়ন, মানুহৰ পৰা বিচ্ছিন্নতা আৰু অগ্ৰাহ্য। তৃতীয় লিংগৰ শিাৰ ত্ৰেত ঘৰখনৰ ভূমিকা একান্তই প্ৰয়োজনীয়। কিন্তু তেওঁলোকৰ শিাৰ ত্ৰেত ঘৰখনৰ পৰা যেতিয়া কোনোধৰণৰ সহাঁৰি নাপাই আৰু শিক্ষানুষ্ঠানতো শিক্ষক, ছাত্ৰী-ছাত্ৰীৰ পৰা পোৱা অৱহেলাই তৃতীয় লিংগৰ শিক্ষাৰ দিশত বাধা প্ৰদান কৰে। অজন্তাৰ 'কিন্নৰ' গল্পটোৰ মাজেৰে এনে এখন ছবিয়ে পৰিস্ফুট হৈছে। পঢ়াত অত্যন্ত মেধাৱী, পৰীক্ষাত সদায়ে প্ৰথম হোৱা সুমনে তাইৰ ব্যতিক্ৰমী শাৰীৰিক গঠনৰ বাবেই শিক্ষক, ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ লগতে ঘৰখনৰ পৰাও পোৱা অৱহেলা, ইতিকিঙৰ বাবে তাই বিদ্যালয়লৈ যোৱা বন্ধ কৰে। তাই বিদ্যালয়লৈ নোযোৱাৰ কাৰণটো ঘৰৰ কোনো মানুহে জানিবলৈ ইচ্ছা নকৰিলে, আনকি শিক্ষকসকলেও হঠাৎ স্কুল এৰি দিয়া সুমনৰ খবৰ কৰিবলৈ অহা নাছিল। লিংগনিৰ্বিশেষে সকলো শিক্ষাৰ্থীক সম দৃষ্টিৰে চোৱাটো শিক্ষকৰ দায়িত্ব। তৃতীয় লিংগৰ ব্যক্তিসকল যে সমাজৰ আচহুৱা প্ৰাণী নহয়, অস্পৃশ্য নহয় আৰু ব্যতিক্ৰমী শৰীৰেৰে জন্ম হোৱাটো অস্বাভাৱিক কথা নহয় এনেধৰণৰ সজাগতামূলক কথাবোৰ শিক্ষকে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ মাজত বুজোৱা উচিত। কিন্তু গল্পটোত শিক্ষকৰ এনে কাৰ্যৰ পৰিৱৰ্তে সুমন স্কুললৈ যোৱাটোও তেওঁলোকে বিচৰা নাছিল এনে মানসিকতাৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। শিক্ষক, ছাত্ৰ-ছাত্ৰী তথা ঘৰখনৰ পৰা অৱহেলিত হৈ সুমনে বিদ্যালয়লৈ যোৱা বন্ধ কৰা আৰু তাইৰ এই সিদ্ধান্তত সকলোৱে যেন ভালহে পোৱাৰ বৰ্ণনা গল্পকাৰে দাঙি ধৰিছে এইদৰে ঃ

... মই ছোৱালী হৈ থাকিবলৈহে ভাল পাইছিলো। ল'ৰাৰ পোছাক পিন্ধিবলৈ মোৰ ভাল লগা নাছিল। কাৰণ মোৰ মনটো যে ছোৱালীৰ দৰে কোমল। মই কাকো নোকোৱাকৈ স্কুললৈ যাবলৈ এৰিলোঁ। কোনেও এই বিষয়ে মোক একো নুসুধিলে। সকলোৱে যেন সকাহ হে পালে।...শ্ৰেণীত প্ৰথম স্থান সদায়ে ময়েই অধিকাৰ কৰি আহিছিলোঁ। প্ৰথম ছাত্ৰীগৰাকীয়ে হঠাৎ স্কুল এৰি দিয়াৰ খবৰ কৰিবলৈ শিক্ষকসকলৰ এজনৰো মনত নপৰিল। ('কিন্নৰ', *নিৰ্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতাৰ্থ (সম্পা.), পৃ. ৫৫-৫৭

২.২.৩ জীৱিকাৰ ক্ষেত্ৰত বৈষম্য ঃ

ৰাষ্ট্ৰীয় অৰ্থনীতিৰ মূলসুঁতিৰ লগত ৰূপান্তৰকামীসকল সক্ৰিয়ভাৱে জড়িত নহয়। কাৰণ ভাৰতবৰ্ষৰ অধিকাংশ ৰূপান্তৰকামী লক্ষণ সম্পন্ন লোকে সমাজৰ পৰা পোৱা ঘৃণা-অৱহেলাৰ বাবেই হিজ্ৰা দলত যোগ দিয়ে। শিক্ষা, প্ৰশিক্ষণ, উদ্যোগীকৰণৰ বিকাশ, নেতৃত্বৰ বিকাশ, আৰ্থিক সাহায্য আৰু বৃত্তিৰ লগত জড়িত অৰ্থনৈতিক সুবিধাৰ পৰা তেওঁলোকক বঞ্চিত কৰা হয়। তেওঁলোকৰ প্ৰধান জীৱিকা হৈছে ট্ৰেইন, বাছ, দোকান, ৰাজহুৱা স্থান আদিত মানুহৰ পৰা ভিক্ষা খোজা। গীতালি বৰাৰ 'শীতৰ গঙাচিলনী' গল্পটোত তৃতীয় লিংগৰ লোকে জীৱিকাৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰচলিত সমাজত কৰিবলগীয়া সংগ্ৰামৰ কথা উল্লেখ কৰা হৈছে। ঘৰ, সমাজ আৰু শিক্ষানুষ্ঠানৰ সকলোতে অৱহেলিত ৰাধেশ্যামৰ বাবে তাৰ ঘৰখনে সমাজৰ দৃষ্টিত কংলকিত হৈছে বুলি ভাবি আনুষ্ঠানিক শিক্ষা আধাতে এৰি হিজ্ৰা দলত যোগ দি অৰ্থ উপাৰ্জনৰ সংগ্ৰামত নামে। অৰ্থ উপাৰ্জনৰ বাবে হিজৰাসকলে ৰে'ল, বাছ আদিত ভিক্ষা খোজাৰ লগতে বহুতে বেশ্যা বৃত্তিও গ্ৰহণ কৰিব লগা হয়। ৰাধেশ্যামেও ৰে'লত ভিক্ষা খুজিবলৈ লোৱাৰ লগতে পেটৰ ভোকৰ তাড়নাত বেশ্যা বৃত্তিও গ্ৰহণ কৰিবলৈ বাধ্য হৈছিল। গতানুগতিক সমাজখনত জীৱিকাৰ ক্ষেত্ৰত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলে যথেষ্ট বাধাৰ সন্মুখীন হৈ আহিছে। কাৰণ এই সমাজখনে অস্পৃশ্যৰ দৃষ্টিৰে চোৱা হিজ্ৰাসকলক সমাজৰ ঠাঁচত গঢ় নোলোৱা অমংগলীয়া জীৱ হিচাপে জ্ঞান কৰে আৰু প্ৰচলিত সমাজ-ব্যৱস্থাত তেওঁলোকৰ পৰা কু-প্ৰভাৱ পৰিব বুলি নাৰী-পুৰুষৰ সমাজত কৰ্মসংস্থাপন দিব নিবিচাৰে। কিন্তু হিজ্ৰা সকলো মানুহ। তেওঁলোকৰো সমাজত স্বাধীনভাৱে জীয়াই থকাৰ অধিকাৰ আছে। সেয়ে হিজ্ৰা দলৰ পৰা ওলাই আহি ৰাধেশ্যামে কম্পিউটাৰৰ অসমাপ্ত শিক্ষাৰে যুঁজি যুঁজি অফিচ এটাত সৰু চাকৰি এটা পাবলৈ সক্ষম হয়। কিন্তু কৰ্মক্ষেত্ৰতো নিজৰ অস্তিত্বক লৈ সমাজ আৰু ঘৰৰ পৰা বৈষম্যৰ বলি হৈছিল। গল্পটোত গতানুগতিক সমাজত তৃতীয় লিংগৰ ব্যক্তিসকলৰ উপাৰ্জনৰ ক্ষেত্ৰখন যে সহজ নহয়, সেয়া প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে ঃ

কোনোবা এজনে আগবঢ়াই দিছিল ৰাধেৰ ফালে এশটকীয়া নোট এখন হয় হয়। তিৰোতা বা মুনিহ নোহোৱা ৰাধেৰ শৰীৰতে আছিল কোনোবা মানুহৰ লালসাক চৰিতাৰ্থ

কৰিব পৰা কিবা এটা।...কিছুদিনৰ পাছত দগ্ধ আত্মা আৰু ভগ্ন শৰীৰ লৈ ৰাধেশ্যাম ওপজা চহৰখনলৈ উভতি আহিছিল। বহু কষ্টৰ শেষত কম্পিউটাৰৰ অসমাপ্ত শিক্ষাৰে অফিচ এটাত ডাটা এন্ট্ৰি কৰাৰ চাকৰি এটাৰ যোগাৰ হৈছিল। মাক-দেউতাকৰ ইচ্ছাৰ সাঁচত নিজকে এৰি দি জীৱনৰ স'তে আপোচ কৰি লৈছিল ৰাধেই আৰু মুনিহ আৰু তিৰোতাৰ পৃথিৱীত নিজৰ অপাংক্তেয় স্থিতিক বৰ্তাই ৰাখিবলৈ যত্ন কৰিছিল। ('শীতৰ গঙাচিলনী', *নিৰ্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতাৰ্থ (সম্পা.),, পৃ. ১০০-১০১

গতানুগতিক সমাজৰ পৰা অৱহেলিত হিজৰাসকলে জীয়াই থাকিবৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় অৰ্থৰ বাবে বহু কষ্টকৰ সংগ্ৰাম কৰিবলগা হয়। আকৌ আৰ্থিকভাৱে দৰিদ্ৰ পৰিয়ালৰ বহু হিজৰাই পৰম্পৰাগত নাৰী-পুৰুষৰ সমাজখন ত্যাগ কৰিলেও সমাজৰ পৰা গোপনে ঘৰখনৰ প্ৰতি সকলো দায়িত্ব পূৰণ কৰিবলগা হয়। সেয়ে নিজৰ লগতে নিজৰ আৰ্থিকভাৱে দৰিদ্ৰ ঘৰখনৰ একমাত্ৰ সম্বলস্বৰূপ বহু হিজৰাই ৰে'লত ভিক্ষা খুজি অতি কষ্টেৰে ঘৰৰ দায়িত্ব পালন কৰিব লগা হয়। কাৰণ মূলসুঁতিৰ সমাজত হিজৰাসকলক কোনেও কৰ্ম সংস্থাপন দিব নিবিচাৰে। সকলোৱে তেওঁলোকক ঘৃণাৰ চকুৰে লক্ষ্য কৰে। অনুৰাধা শৰ্মা পূজাৰীৰ 'যাত্ৰাসংগী' গল্পটোতো এনে এখন ছবি প্ৰকাশ পাইছে। গল্পটোত বৰ্ণনা কৰা হিজৰা চৰিত্ৰটোৱে সমাজৰ পৰা অৱেহিলত হৈ ঘৰ-সমাজ সকলো এৰিব লগা হৈছে। গল্পটোত হিজৰাৰ জীৱিকাৰ প্ৰসংগটো উত্থাপনৰ জৰিয়তে সমাজত তেওঁলোকৰ শোষিত অৱস্থিতিটো প্ৰতিফলিত হৈছে ঃ

হিজৰাজনী এইবাৰ তাইৰফালে ঘূৰিল। তৎক্ষণাত তাই দহ টকা আগবঢ়াই দিলে। ...এ মই অসমীয়া বাইদেউ , বঙাইগাঁৱৰ। বিৰজৰা স্কুলৰ পৰা এনেকৈয়ে পৰীক্ষা দি মেট্ৰিক পাছ কৰিলোঁ। কি কৰিব এইদৰে ঘৰ পোহপাল দিছোঁ। ভনীক বিয়া দিলোঁ, ভাইক বি.এ পঢ়ুৱাইছোঁ, মা-দেউতাক খৰচ দিছোঁ। ('যাত্ৰাসংগী', *তৃতীয় আকাশ, প্ৰাপ্তি ঠাকুৰ* (সম্পা.), পৃ. ১১৮)

২.২.৪ বিপৰীত লিংগৰ সাজ-পাৰ ঃ

শৰীৰ আৰু মনৰ দ্বৈত ৰূপ স্থিত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলে নিজৰ মনৰ দৃষ্টিৰে সামাজিক লিংগ পৰিচয় গঢ়ি তোলাৰ মানসেৰে কিছুমানে বিপৰীত লিংগৰ পৰিচয়ৰে নিজৰ সামাজিক লিংগ পৰিচয় প্ৰদৰ্শন কৰিবৰ বাবে বিপৰীত লিংগৰ সাজ-পাৰ, প্ৰসাধনৰ প্ৰতি আগ্ৰহী হয়। এইসকলক 'ক্ৰছ-ড্ৰেচাৰ' বুলি কোৱা হয়। এইসকলে নাৰীৰ পোছাক পিন্ধাসকলে নাৰীসুলভ ব্যৱহাৰ কৰে। গুৰুত্বপূৰ্ণ কথাটো হ'ল তেওঁলোকে নিজকে ৰূপান্তৰকৃত (transsexual) বুলি নাভাবে। ক্ৰছ -ড্ৰেচাৰসকলৰ আচৰণ প্ৰচলিত সমাজ-পৰম্পৰাৰ বিপৰীতে হোৱাৰ বাবে সমাজে তেওঁলোকক গ্ৰহণ কৰিব নিবিচাৰে, তেওঁলোকক ইতিকিং, ঘৃণাৰ দৃষ্টিৰে চাবলৈ ধৰে। মৌচুমী কন্দলীৰ 'তৃতীয়ত্বৰ গল্প' নামৰ গল্পটোৰ মূল চৰিত্ৰটো জন্মগতভাৱে পুৰুষ হ'লেও মানসিকভাৱে নাৰী। প্ৰচলিত সামাজিক লিংগ পৰিচয়ৰ সাঁচত ধৰা নিদিয়া এটা চৰিত্ৰ। চৰিত্ৰটোৰ মাজত 'ক্ৰছ-ড্ৰেচাৰ'ৰ আচৰণ ফুটি উঠিছে। তেওঁৰ জন্মগত পুৰুষ শৰীৰত নাৰীসুলভ মন এটি বিৰাজ কৰাৰ বাবে সাজ-পাৰ, প্ৰসাধন, আচৰণবোৰত নাৰীৰ অভিব্যক্তি প্ৰকাশ পাইছে। নায়কজনৰ সেই আচহুৱা ৰূপটো দেখি বাটে-পথে মানুহে তেওঁক ইতিকিং কৰে। আনকি চাকৰিৰ ইণ্টাৰভিউ ব'ডতো তেওঁৰ মেধাশক্তিৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়াৰ পৰিৱৰ্তে তেওঁ পৰিধান কৰা সাজ-পোছাক, প্ৰসাধন, আচৰণৰ ওপৰতহে পৰীক্ষকে অধিক গুৰুত্ব দিছিল। সেইদৰে তেওঁৰ ব্যতিক্ৰমী আভৰণ-আচৰণ সমাজ বাঞ্ছিত নোহোৱাৰ বাবে তথাকথিত সমাজৰ লোকসকলে তেওঁৰ ঘৰখনৰ বয়-বস্তু ভঙাৰ লগতে ভাৰতীয় সংস্কৃতি বিকৃত কৰাৰ অপৰাধত তেওঁলৈ সামাজিক লিংগ নীতি-নিয়মৰ সম্পৰ্কে সচেতন মহলৰ তৰফৰ পৰা ডাকযোগে শাস্তিমূলক বাঁতাও আহিছিল। এনেদৰে গল্পটোৰ তৃতীয় লিংগৰ নায়ক চৰিত্ৰটোৰ প্ৰতি সমসাময়িক সমাজখনে কৰা অন্যায়-অত্যাচাৰৰ মাজেৰে বিপৰীত লিংগৰ সাজ-পোছাক আৰু প্ৰসাধন পৰিহিত তৃতীয় লিংগৰ ব্যক্তিৰ প্ৰতি লিংগসৰ্বস্ব সমাজৰ শোষণৰ স্বৰূপটো ফুটি উঠিছে এনেদৰে -

বাট-পথৰ অলি-গলিত কিছুমান ফুচফুচনিয়ে তেওঁক সিঞাৰিছিল ঃ ইণ্টাৰভিউ ব'ৰ্ডৰ পৰীক্ষকে তেওঁৰ গধুৰ গধুৰ চাৰ্টিফিকেট আৰু গৱেষণা-পত্ৰবোৰ দেখা নাছিলঃ দেখিছিল তেওঁৰ হাতৰ ৰূপৰ বালা আৰু কাণৰ কুণ্ডল। ঘৰৰ তলা খুলি তেওঁ দেখিছিল লণ্ড-ভণ্ড হোৱা কিতাপ-আচবাবপত্ৰ আৰু মজিয়াত বিষ্ঠাৰ স্তুপ, পোষ্ট বাকচত আহিছিল "ভাৰতীয় সংস্কৃতি বিকৃত কৰাৰ অপৰাধত ঘোৰ শাস্তিৰ" বিধান দিয়া বেনামী চিঠিৰ মিছিল ।('তৃতীয়ত্বৰ গল্প', *নিৰ্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতাৰ্থ (সম্পা.), পৃ. ৭০)

২.৩ মানসিক স্থিতিঃ

তৃতীয় লিংগৰ লোকসকল প্ৰচলিত সমাজ-ব্যৱস্থাৰ দ্বাৰা সদায় শোষিত -নিৰ্যাতিত হৈ আহিছে। এই লোকসকলৰ নিজৰ কোনো দোষ নথকাকৈ কেৱল জন্মগত লিংগৰ বিসংগতিৰ বাবেই পৰম্পৰাগত লিংগবাদী সমাজ-সংস্কৃতিয়ে লোকসকলক পৰিয়াল আৰু সমাজৰ পৰা প্ৰান্তীয়কৰণ কৰি আহিছে। শৰীৰৰ গঠনৰ বিসংগতিৰ বাবে সমাজৰ পৰা পোৱা ঘৃণা আৰু অৱহেলাই এইলোকসকলৰ মানসিক অৱস্থিতিত বাৰুকৈয়ে প্ৰভাৱিত কৰে। সেয়ে বহুতো তৃতীয় লিংগৰ ব্যক্তিয়ে হতাশা, উদ্বেগ, দুখ, হীনমন্যতা আৰু বিচ্ছিন্নতা অনুভৱ কৰে। তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ মানসিক স্থিতিৰ প্ৰতি অহা প্ৰত্যাহ্বানৰ কাৰণ হৈছে সাধাৰণতে আভ্যন্তৰীণ আৰু বাহ্যিক কাৰকৰ সংমিশ্ৰণ। শৰীৰৰ গঠনৰ বিসংগতিৰ বাবে পৰিয়াল আৰু সমাজৰ পৰা পোৱা অৱহেলা, ঘৃণাৰ লগতে আভ্যন্তৰীণ স্তৰত আত্মকলংকৰ হতাশাই হীনমন্যতাত ভুগা ৰূপান্তৰকামী ব্যক্তিৰ মানসিকত অৱস্থাটোৰ চিত্ৰণ ঘটিছে অজন্তাৰ 'কিন্নৰ' গল্পটোত। গল্পটোত সুমন নামৰ ৰূপান্তৰকামী চৰিত্ৰটোৰ ল'ৰা বা ছোৱালীৰ শ্ৰেণীত অন্তৰ্ভুক্ত নোহোৱা এনে ব্যতিক্ৰমী শাৰীৰিক অৱস্থিতিৰ বাবেই ঘৰখনৰ পৰা আবেগিক অৱহেলা আৰু আত্মকলংকত চৰিত্ৰটোৱে হীনমন্যতাত ভুগা ছবিখন প্ৰতিফলন ঘটিছে এনেদৰে ঃ

দিনে দিনে বাঢ়ি অহা মোৰ শৰীৰৰ গঠনে লজ্জাজনক গোপন দিশটো উজাগৰ কৰি দিলে। মোৰ মা-দেউতাক যেন সেই সত্যই ৰাজহুৱাকৈ উলংগ কৰিহে পেলালে।... কাৰণ মই নিজেই বুজি পোৱা নাছিলোঁ যে মোৰ শৰীৰত কিবা এটা বিৰাট বিসংগতিয়ে ধৰা দিছে। কিন্তু যেতিয়া এজনী এজনীকে মোৰ লগত ওমলি ফুৰা ছোৱালীবোৰ পুষ্পিতা হ'ল আৰু শৰীৰৰ গঠন লনি হৈ আহিল তেতিয়া মই দিনেদিনে হীনমন্যতাত ভুগিবলৈ ধৰিলোঁ। মোৰ কিবা লাজ লাজ লগা হ'ল। অনেকজন মানুহৰ কটাক্ষ, ৰহস্যজনক মিচিকনি আৰু ইতিকিংবোৰ মই বুজি পোৱা হ'লো। মা যে মোৰ লগৰ ছোৱালীবোৰৰ নোৱাই তোলনি বিয়ালৈ নোযোৱাই হ'ল, মই লক্ষ্য কৰিব পৰা হৈছিলোঁ। ('কিন্নৰ', *নিৰ্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতাৰ্থ (সম্পা.), পৃ. ৫৩-৫৪)

২.৪ অধিকাৰৰ ক্ষেত্ৰত বৈষম্য আৰু সম-অধিকাৰ দাবী ঃ

মূলতঃ সামাজিক সজাগতামূলক চিন্তাধাৰাৰ অভাৱৰ বাবে তৃতীয় লিংগৰ লোকসকল সমাজত হিংসা আৰু নিৰ্যাতনৰ বলি হয়। অভিভাৱকসকলে মানৱীয় বিবেচনা আৰু বৈজ্ঞানিক মূল্যবোধৰ ভিত্তিত তৃতীয় লিংগৰ ব্যক্তিৰ মনস্তত্ত্ব বুজি পোৱা নাই। পৰম্পৰাগত মূল্যবোধ ব্যৱস্থাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি গঢ় লৈ উঠা সমাজৰ মনোভাৱৰ প্ৰতি পিতৃ-মাতৃ, পৰিয়াল তথা সমাজখন অধিক সচেতন। সেয়ে এই লোকসকলক সকলো অধিকাৰৰ পৰা বঞ্চিত কৰি যন্ত্ৰণাদায়ক আৰু অপমানজনক পৰিস্থিতিত ঘৰৰ পৰা ওলাই যাবলৈ বাধ্য কৰাৰ লগতে সমাজৰ পৰা প্ৰান্তীয়কৰণ কৰা হয়। তেওঁলোকক সমাজৰ কলংক বুলি ধৰা হয়। সেয়ে তৃতীয় লিংগৰ সংস্থাপন, আশ্ৰয় আৰু নিৰাপত্তাৰ ব্যৱস্থা কৰা নহয়। চৰকাৰী-বেচৰকাৰী প্ৰতিষ্ঠানসমূহেও তেওঁলোকক সংস্থাপন দিবলৈ অস্বীকাৰ কৰে এই সামাজিক কলংকৰ বাবেই। কিন্তু লোকসকলেও সমাজত নিজা পৰিচয় এটাৰ লগতে আত্মনিৰ্ভৰশীল হ'ব বিচাৰে। কিন্তু বৰ্তমানেও সমাজত তেওঁলোকে সম অধিকাৰ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা নাই।

তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলেও জীয়াই থাকিবৰ বাবে কৰ্মসংস্থাপন এটি বিচাৰে। তেওঁলোকৰ স্বাধীনভাৱে জীৱন-যাপনৰ অধিকাৰ আছে। কিন্তু সমাজত অস্পৃশ্যৰ দৃষ্টিৰে চোৱা এইলোকসকলক কোনেও কৰ্ম সংস্থাপন দিবলৈ নিবিচাৰে। সুমনো স্ব-নিৰ্ভৰশীল হ'ব বিচাৰিছে। কিন্তু প্ৰচলিত সমাজ ব্যৱস্থাত তাইক কোনে সংস্থাপন দিব সেই লৈ চিন্তিত হৈছে। এনেদৰে সমাজত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলক কৰ্মৰ অধিকাৰৰ পৰা বঞ্চিত কৰা ছবি এখন গল্পটোৰ সুমনৰ কথাখিনিৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে ঃ

মোৰো নিজাকৈ কিবা এটা কৰাৰ মন। জীয়াই থাকিবলৈ। ঘৰখনৰ পৰা আতৰি গুচি যাবলৈ। কিন্তু কি কৰিমহুঁ কোনে মোৰ কামৰ উচিত মূল্য দিব, স্বীকৃত দিব? মাথোঁ ফিচিঙা-ফিচিং কৰিব, হাঁহিব। ('কিন্নৰ', *নিৰ্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতাৰ্থ (সম্পা.), পৃ. ৫৮)

বৰ্তমান ভাৰতীয় সংবিধানে তৃতীয় লিংগৰ অধিকাৰৰ হকে আইন প্ৰণয়ন কৰিছে আৰু তেতিয়াৰে পৰা বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত তেওঁলোকে প্ৰাপ্য অধিকাৰ-সুবিধা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। বিভিন্ন চৰকাৰী-বেচৰকাৰী প্ৰতিষ্ঠানৰ কৰ্মৰ আবেদন পত্ৰত নাৰী-পুৰুষৰ লগতে তৃতীয় লিংগৰ বাবেও

সুবিধা কৰা হৈছে। কৰ্ম সংস্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁলোকৰ বাবে কিছুমান পদৰ সংৰক্ষণ ব্যৱস্থা কৰা হৈছে। এইটো তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰ কাৰণে চৰকাৰৰ আদৰণীয় পদক্ষেপ, ইয়াৰ দ্বাৰা তেওঁলোকে সামান্য হ'লেও প্ৰাপ্য অধিকাৰ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। সেয়ে হ'লেও কিন্তু সমাজ-মানসৰ দৃষ্টিত আজিও তেওঁলোক অস্পৃশ্য হৈয়ে আছে, মানুহ হিচাপে তেওঁলোকে স্থান পোৱা নাই। গল্পটোত এই সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে ঃ

শুনিছোঁ আজিকালি হেনো বিভিন্ন চৰকাৰী-বেচৰকাৰী প্ৰতিষ্ঠানত ফৰ্মবিলাকত পুৰুষ আৰু নাৰীৰ লগতে আমাৰ হিজৰাবোৰৰ বাবেও ঠাই ৰাখিছে। শুনিছোঁ আমাৰ বাবে কিছুমান পদ সংৰক্ষিক কৰা হৈছে। মানুহৰ মনত কিন্তু আমি এতিয়াও 'মানুহ' হ'ব পৰা নাই। হিজিৰা-কিন্নৰ-নপুংসকেই হৈ আছোঁ। ('কিন্নৰ', *নিৰ্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতাৰ্থ (সম্পা.), পৃ. ৬০)

কিন্তু বহুতো প্ৰতিষ্ঠানৰ চাকৰিৰ ক্ষেত্ৰ কেৱল নাৰী আৰু পুৰুষেহে আবেদন কৰাৰ সুবিধা থাকে, তৃতীয় লিংগৰ কোনো সুবিধা নাথাকে। গীতালি বৰাৰ 'শীতৰ গঙাচিলনী' গল্পটোত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলে কৰ্ম সংস্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰাপ্য অধিকাৰৰ পৰা বঞ্চিত হোৱাৰ ছবি এখন পৰিস্ফুট হৈছে ৰাধেশ্যাম নামৰ তৃতীয় লিংগৰ চৰিত্ৰটোৰে সন্মুখীন হোৱা পৰিস্থিতৰ মাজেৰে ঃ

পৰীক্ষা বা ইণ্টাৰভিউ দিবলৈ, কোনো ক'ৰ্চত ভৰ্তি হ'বলৈ নামভৰ্তিৰ সময়ত থমক খাই ৰৈ থাকে ৰাধেশ্যাম।

Nationality - Indian, Religion - Hindu, Male / Female- ?

তেনেহ'লে পৃথিৱীৰ সকলো দুৱাৰ কেৱল পুৰুষ অথবা নাৰীৰ বাবেহে খোলা আছে? ৰাধেশ্যামহঁতৰ বাবে সকলো কপাট বন্ধ। ('শীতৰ গঙাচিলনী', *নিৰ্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প*, জুৰি দত্ত আৰু জিন্তু গীতাৰ্থ (সম্পা.),পৃ. ৯৭)

তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলো মানুহ। জৈৱিক দিশৰ পৰা চাবলৈ গ'লে তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলক 'যৌন প্ৰতিবন্ধী' বুলিব পাৰি। যৌন ক্ৰম'জমৰ তাৰতম্যৰ বাবেই তৃতীয় লিংগৰ মানুহৰ জন্ম হয়। তেওঁলোকৰো সমাজত নাৰী-পুৰুষৰ সম-মৰ্যাদাৰে জীয়াই থকাৰ অধিকাৰ আছে। সমাজৰ প্ৰচলিত ধাৰণাৰ বিপৰীতে যোৱা বুলি তেওঁলোকৰ ওপৰত শোষণ-নিৰ্যাতন কৰাটো অনুচিত। গতিকে সমাজ-মানসত বিজ্ঞানসন্মত চিন্তাধাৰাৰ বিকাশ ঘটাই তৃতীয় লিংগৰ মনোজগত বুজিবলৈ চেষ্টা কৰি সমাজৰ অংশ স্বৰূপে তেওঁলোকক সকলো ক্ষেত্ৰতে আগবাঢ়ি যোৱাৰ অধিকাৰ-ক্ষমতা-সুবিধা প্ৰদান কৰিলে এইলোকসকলে সমাজত স্বাধীনভাৱে জীৱন-যাপন কৰিব পাৰিব।

৩.০ উপসংহাৰ ঃ

ৰূপান্তৰকামী তত্ত্ব দৃষ্টিৰে অসমীয়া চুটিগল্পত তৃতীয় লিংগৰ প্ৰসংগ শীৰ্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ অন্তত প্ৰাপ্ত সিদ্ধান্তসমূহ হৈছে এনেধৰণৰ ঃ

তৃতীয় লিংগ সম্পৰ্কীয় গল্পসমূহত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকল পৰিয়াল আৰু সমাজৰ দ্বাৰা শাৰীৰিক আৰু মানসিকভাৱে নিৰ্যাতিত হৈ অহা দিশটো প্ৰকাশ পাইছে। আনহাতে পুৰুষৰ দ্বাৰা ধৰ্ষণৰ বলি হোৱা তৃতীয় লিংগৰ লোকৰ যন্ত্ৰণাময় জীৱনৰ প্ৰসংগও ইয়াত উল্লেখ পোৱা গৈছে।

শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলে সংবিধান স্বীকৃত অধিকাৰ লাভ কৰিলেও সমাজৰ দৃষ্টিত আজিও অস্পৃশ্য এইলোকসকলে পৰিয়াল, শিক্ষানুষ্ঠান তথা সমাজৰ পৰা পোৱা অৱহেলা-অপমানৰ বাবেই আধাতেই শিক্ষা সামৰিবলগীয়া হোৱাৰ প্ৰসংগই তৃতীয় লিংগ সম্পৰ্কীয় গল্পসমূহত ঠাই পাইছে।

তৃতীয় লিংগ বিষয়ক গল্পসমূহ অধ্যয়ন কৰি দেখা গৈছে যে মূলসুঁতিৰ সমাজত তৃতীয় লিংগৰ লোকসকল অস্পৃশ্য হিচাপে পৰিগণিত হৈ অহাৰ ফলত নাৰী-পুৰুষ স্থিত এই সমাজত তেওঁলোকে বিশেষকৈ হিজ্ৰাসকলে কৰ্ম সংস্থাপনৰ অধিকাৰৰ পৰা বঞ্চিত হৈ ভিক্ষা, বেশ্যাৰ দৰে বৃত্তি গ্ৰহণ কৰিবলগীয়া হয়।

তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলে শিক্ষা, কৰ্মসংস্থাপন, নিৰাপত্তা আদি সকলো ক্ষেত্ৰতে পুৰুষপ্ৰধান সমাজ ব্যৱস্থা দ্বাৰা বাধাৰ সন্মুখীন হৈ অহাৰ লগতে এই ক্ষেত্ৰত সম-অধিকাৰৰ পোষকতা কৰাৰ প্ৰসংগও গল্পসমূহত প্ৰকাশ পাইছে। কাৰণ ব্যক্তি হিচাপে নাৰী-পুৰুষৰ দৰে তৃতীয় লিংগৰ লোকসকলৰো সম-মৰ্যাদাৰে জীয়াই থকাৰ অধিকাৰ আছে। সেয়া তেওঁলোকৰ প্ৰাপ্য, এই দৃষ্টিভংগী তৃতীয় লিংগ সম্পৰ্কীয় গল্পসমূহত প্ৰকাশ পাইছে। ❑

প্রসংগ সূত্র ঃ

1. Susan Stryker, "An Introduction to Trangender Studies", *The Trangender Studies Reader*, Susan Styker & Stephen Whittle (ed.), P. 7
2. S. Nanjundaswamy, *An Antropological Study of Male to Female Transsexuals in Mysore and Bangalore Cities, Karnataka, India*, p. 14
3. "India court recognises transgender people as third gender". BBC News, 15 April 2014, https://www.bbc.com/news/world-asia-india-27031180.Accessed 3 November 2024.

গ্রন্থপঞ্জী ঃ

মূল গ্রন্থ ঃ

ঠাকুৰ প্ৰাপ্তি (সংক. ! সম্পা.). *তৃতীয় আকাশ.* গুৱাহাটী, বর্ণ, প্রথম প্রকাশ, ডিচেম্বৰ, ২০২২.

দত্ত, জুৰী আৰু জিন্তু গীতার্থ (সম্পা.). *নির্বাচিত অসমীয়া কুইয়ৰ গল্প.* গুৱাহাটী, ষ্টুডেন্ট হাউছ, প্রথম সংস্কৰণ, নৱেম্বৰ, ২০২২.

সহায়ক গ্রন্থ ঃ

বাংলা ঃ

ৰায়, অভিজিৎ. *সমকামিতা ঃ একটি বৈজ্ঞানিক এবং মনস্তাত্ত্বিক অনুসন্ধান.* শুদ্ধস্বৰ, ঢাকা, প্রথম প্রকাশ, ২০১০

ইংৰাজী ঃ

Stryker, Susan and Stephen Whittle (ed.). *The Trangender Studies Reader*. New York,1968, Routledge Published, reprint, 2006.Stryker, Susan. *Trangender History : The Roots of Today's Revolution.* New York, Seal Press, 2nd Edition, 2017.

পিএইচ. ডি. গৱেষণা গ্রন্থ ঃ

Nanjundaswamy, S.. *An Antropological Study of Male to Female Transsexuals in Mysore and Bangalore Cities, Karnataka, India.* Department of Anthropology, Mysore University, 2014.

ৱেবছাইট ঃ

"India court recognises transgender people as third gender". BBC News, 15 April 2014, https://www.bbc.com/news/world-asia-india-27031180, Accessed 3 November 2024.

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

এবছার্ড নাট্যতত্ত্বৰ আলোকত ‘গুণধৰেৰ অসুখ নাটক’ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

ৰিঙ্কা দে

সহকাৰী অধ্যাপক, বাংলা বিভাগ
জাগীৰোড মহাবিদ্যালয়
মৰিগাওঁ, (অসম)- ৭৮২৪১০
৮৬৩৮৭৪০০০৬
rinkaday1@gmail.com

ড° কণিমা পাঠক

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
জাগীৰোড মহাবিদ্যালয়
মৰিগাওঁ, (অসম)- ৭৮২৪১০
৮৪৭১৯২৫৪৬৯
kanimapathak6@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

বাংলা নাটকৰ উৎপত্তি, ক্রমবিকাশত বিশেষকৈ পাশ্চাত্য নাট্যসাহিত্য আৰু নাট্যান্দোলনৰ গভীৰ প্রভাৱ দেখিবলৈ পোৱা যায়। ভাৰতীয় নাটকত এবছার্ডতত্ত্ব কোনো নতুন বিষয় নহয়। এবছার্ডবাদৰ জন্ম ইউৰোপৰ দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ ফলস্বৰূপে হৈছিল। দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ ধ্বংসাত্মক প্রভাৱৰ ফলতত মানুহৰ মনত যি নৈৰাশ্য হতাশাৰ উদ্ভৱ হৈছিল, সেই অবক্ষয়ৰ কালছোৱাত এবছার্ডবাদে জন্ম লাভ কৰিছিল। দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ আগৰ পৰাই পাশ্চাত্য নাট্যৰীতিৰ প্রভাৱ বাংলাৰ লগতে ভাৰতীয় সাহিত্যত বিভিন্নভাবে পৰিছিল। এটা সময় আছিল, যেতিয়া মলিয়ৰ প্রমুখ্যে নাট্যকাৰসকলৰ বিষয়-বিন্যাস আৰু আঙ্গিক বাংলা সাহিত্যৰ নাট্যকাৰসকলে আর্দশ হিচাপে গ্রহণ কৰিছিল। ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ প্রচেষ্টাত বাংলা নাটকৰ বিশেষ পৰিৱর্তন সংগঠিত হ’লেও এই ক্ষেত্রত তেঁওলোকৰ নাটকত ৰমাৰোঁলা প্রমুখ নাটকৰ প্রভাৱ অস্বীকাৰ কৰিব পৰা নাযায়। প্রথম বিশ্বযুদ্ধৰ পিছত আন্তর্জাতিক বিভিন্ন নাট্য আন্দোলন আৰু নাট্য চেতনাৰ প্রবাহ বাংলা নাট্য জগতক বহুতো দিশৰ পৰা স্পন্দিত কৰি তুলিছিল। বাংলা নাট্যৰ ক্ষেত্রত গণনাট্য তথা নবনাট্য আদি আন্দোলনে গঢ় লৈ উঠিছিল, তাত বাংলা নাট্য-সাহিত্যৰ যথেষ্ট সমৃদ্ধি সাধন হৈছিল। ইয়াৰ পিছত ক্লাচিকেল, ৰোমান্টিক, শিম্বলিক, ৰিয়ালিষ্টিক, এক্সপ্রেশনিষ্ট, এপিক থিয়েটাৰ ইত্যাদি নাট্য চেতনাৰ প্রবাহৰ পিছত বাংলা নাট্যজগতত এবছার্ড নাটকৰ লক্ষণ কোনো কোনো ক্ষেত্রত প্রতিফলিত হৈ উঠিছিল । ভাৰতৰ উত্তৰ পূর্বাঞ্চলৰ বাংলা সাহিত্যৰ বিশিষ্ট নাট্যকাৰ শ্রীযুত প্রদ্যোত চক্রবর্তীৰ ‘গুণধৰেৰ অসুখ’ (১৯৯০) নাটকত এবছার্ড নাটকৰ বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হয়। উক্ত গবেষণাপত্রখনত এবছার্ডতত্ত্বৰ আলোকত *গুণধৰেৰ অসুখ* নাটকখনৰ জড়িয়তে এই বৈশিষ্ট্যবোৰৰ আলোচনা কৰাৰ লগতে ইয়াৰ মূল্যায়নৰ পৰিসৰত ইউৰোপীয় নাট্যসাহিত্যত এবছার্ডতত্ত্বৰ সামান্য পৰিচয় দাঙি ধৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ

এবছার্ডতত্ত্ব, বাংলা নাটক, উত্তৰ-পূর্বাঞ্চলৰ সাহিত্য।

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

বাংলা নাট্য সাহিত্যই আৰম্ভণিৰ পৰা আধুনিক কাললৈকে সময়ৰ লগে লগে নতুন নতুন ধাৰা গ্রহণ কৰি বিভিন্ন নাটকৰ জন্ম দিছে। এটা সময় আছিল, যেতিয়া মলিয়ৰ প্রমুখ নাট্যকাৰসকলৰ বিষয়-বিন্যাস আৰু আঙ্গিক বাংলা সাহিত্যৰ নাট্যকাৰসকলে আর্দশ হিচাপে গ্রহণ কৰিছিল। ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ প্রচেষ্টাত বাংলা নাটকৰ বিশেষ পৰিৱর্তন সংগঠিত হ’লেও এই ক্ষেত্রত তেঁওলোকৰ নাটকত ৰমাৰোঁলা প্রমুখ নাটকৰ প্রভাৱ অস্বীকাৰ কৰিব পৰা নাযায়। প্রথম বিশ্বযুদ্ধৰ পিছত আন্তর্জাতিক

বিভিন্ন নাট্য আন্দোলন আৰু নাট্য চেতনাৰ প্ৰবাহ বাংলা নাট্য জগতক বহুতো দিশৰ পৰা স্পন্দিত কৰি তুলিছিল। বাংলা নাটকৰ ক্ষেত্ৰত গণনাট্য তথা নবনাট্য আদি আন্দোলনে গঢ় লৈ উঠিছিল, তাত বাংলা নাট্য-সাহিত্যৰ যথেষ্ট সমৃদ্ধি সাধন হৈছিল। ইয়াৰ পিছত ক্লাচিকেল, ৰোমান্টিক, শিম্বলিক, ৰিয়ালিষ্টিক, এক্সপ্ৰেশনিষ্ট, এপিক থিয়েটাৰ ইত্যাদি নাট্যচেতনাৰ প্ৰবাহৰ পিছত বাংলা নাট্যজগতত এবছাৰ্ড নাটকৰ লক্ষণ কোনো কোনো ক্ষেত্ৰত প্ৰতিফলিত হৈ উঠিছিল। বাংলা নাট্য ক্ষেত্ৰত এইবোৰ আন্দোলনৰ প্ৰভাৱৰ ফলত বাংলা নাট্যসাহিত্য সমৃদ্ধ তথা শক্তিশালী হৈ উঠিছিল। বাংলা সাহিত্য তথা সংস্কৃতিৰ প্ৰাণকেন্দ্ৰ পশ্চিমবঙ্গৰ পৰা ইয়াৰ প্ৰভাৱ সুদূৰ উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ সাহিত্যতো প্ৰভাৱ পৰিছিল। নাট্যকাৰ প্ৰদ্যোত চক্ৰবৰ্তী কলমৰ কালজয়ী সৃষ্টি হৈছে *গুণধৰৰ অসুখ* (১৯৯০)। এবছাৰ্ডতত্ত্বৰ নিখুঁত প্ৰয়োগত নাটকখন লাভ কৰিছে চমৎকাৰিত্ব। 'এবছাৰ্ডতত্ত্বৰ আলোকত *গুণধৰৰ অসুখ : এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন' শীৰ্ষক গবেষণাপত্ৰখনত* এবছাৰ্ডতত্ত্বৰ বৈশিষ্ট্য উল্লেখ কৰি এই নাটকখন আৰ্দশ নাটক হ'ব পাৰিছে নে, নাই তাকে আলোচনাৰ প্ৰয়াস মাত্ৰ কৰা হৈছে।

০.০১ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

বাংলা সাহিত্যত প্ৰথমে মোহিত চট্টোপাধ্যায়ে এবছাৰ্ড নাটকৰ ৰচনা কৰাৰ পৰৱৰ্তী সময়ত ইয়াৰ প্ৰভাৱত পশ্চিমবংগত এবছাৰ্ড তত্ত্বৰ আধাৰত বহুতো নাটকৰ ৰচনা হয়। আনকি ইয়াৰ প্ৰভাৱ ইমান গুৰুতৰ আছিল যে সুদূৰ উত্তৰ পূৱ ভাৰতৰ বাংলা সাহিত্যত পৰিছিল। আমাৰ আলোচনাত কেৱল উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ বাংলা সাহিত্যিক তথা নাট্যকাৰ প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তীৰ 'গুণধৰৰ অসুখ' নাটকখনৰ বিষয়েহে আলোচনা কৰা হৈছে।

০.০২ গবেষণাৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

এই গবেষণাপত্ৰৰ একমাত্ৰ লক্ষ্য হৈছে উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চল ভাৰতৰ বাংলা নাট্যকাৰ শ্ৰীযুত প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তীৰ এবছাৰ্ডধৰ্মী নাটক *গুণধৰৰ অসুখ* গবেষণাক্ষেত্ৰখনত বৰ্তমানলৈ পোহৰ নহা এটা দিশ, আৰু এই দিশটোৰ মূল্যায়নৰ প্ৰয়াস মাত্ৰ কৰাৰ লগতে ইয়াক গবেষণাধৰ্মী মাত্ৰা প্ৰদান কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। দেখা যায় যে, বাংলা নাট্যজগতত নিৰ্দিষ্টভাবে কোৱা যায় উত্তৰপূৰ্ব ভাৰতৰ বাংলা নাটকত প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তীৰ যথেষ্ট অৱদান আছে। কিন্তু সেই অনুপাতে তেওঁৰ নাটকৰ এখন দুখন গ্ৰন্থ তথা প্ৰবন্ধৰ বাহিৰে এই বিশেষ বিষয়টোৰ ওপৰত পূৰ্বে কোনো অধ্যয়ন বা গবেষণা হোৱা নাই। গতিকে বাংলা নাট্যজগত নাট্যকাৰ গৰাকীৰ অৱদানৰ কথা স্মৰণ কৰি বাংলা গবেষণাক্ষেত্ৰত এই সামান্য গবেষণা আগবঢ়োয়া এই গবেষণাপত্ৰখনৰ আন এটা উদ্দেশ্য।

০.০.৩. গবেষণা উৎস ঃ

বাংলা সাহিত্যৰ প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তীৰ *গুণধৰৰ অসুখ* নাটকৰ মূল উৎস হিচাপে লোৱা হৈছে। লগতে বাংলা নাট্যতত্ত্বৰ লগতে জড়িত গৌণ উৎস হিচাপে বিভিন্ন গ্ৰন্থৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৩. গবেষণাৰ পদ্ধতিঃ

উক্ত গবেষণাপত্ৰত এবছাৰ্ডবাদৰ বৈশিষ্ট্যৰ আলোচনা কৰোতে বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অবলম্বন কৰা হৈছে।

১. ০০. প্ৰস্তাবিত বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

পাশ্চাত্য সাহিত্যত তথা নাটকত এবছাৰ্ডতত্ত্বৰ উদ্ভৱৰ মূখ্য কাৰণ দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ ধ্বংসাত্মক প্ৰভাৱেই আছিল বুলি ক'ব পাৰি। এই প্ৰসংগত সমালোচকৰ এটি প্ৰনিধানযোগ্য মন্তব্য হৈছে —

"একথা হয়তো বা স্পষ্ট কৰেই বলা যায়, দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ আবিৰ্ভাব না ঘটলে ইউৰোপীয় সাহিত্যৰ চেহাৰাটাই অন্যৰকম হত। কি ব্ৰেখটেৰ নাটক, কি বেকেটেৰ এবছাৰ্ড থিয়েটাৰ কিংবা 'অ্যাংৰি ইয়ংম্যান'-এৰ নাটক— সবেৰ পেছনে ৰয়েছে দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ ভয়াবহ অভিজ্ঞতা "যেখান থেকে জন্ম নিয়েছে 'anxiety', 'confusion' এবং 'despair।"[১] দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ পৰ্বটোত এলবেয়াৰ কামু তেওঁৰ ' দ্য মিথ অফ সিসিফাস '(১৯৪২) প্ৰবন্ধ গ্ৰন্থত 'এবছাৰ্ড' শব্দটো সৰ্বপ্ৰথম প্ৰয়োগ কৰিছিল। এই গ্ৰন্থত তেওঁ ঘোষণা কৰিছিল 'Sisyphus is the Absurd Hero''।[২] গোটেই দিন অশেষ প্ৰচেষ্টা কৰাৰ পিছতো সিসিফাসে প্ৰকাণ্ড এটি শিলক ঠেলি পাহাৰৰ শীৰ্ষত উঠাব পৰা নাছিল। এই ব্যৰ্থতা আৰু নিঃসঙ্গতাৰ সূত্ৰ ধৰি এলবেয়াৰ ৰামুয়ে জাৰ্মান সাহিত্যিক কাফ্‌কা(১৮৮৩-১৯৬৯) আৰু হাইডেগাৰৰ চিন্তাৰ বিশ্লেষণৰ পৰা এই তত্ত্বৰ বাবে প্ৰেৰণা লাভ কৰিছিল। দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ ধ্বংসাত্মক ৰূপ দেখি মানুহৰ মনত যি জীৱনধাৰণৰ মূল্য তথা তাৎপৰ্যক

লৈ প্রশ্ন জাগিছিল আৰু জীৱন সম্পর্কে যি সন্দেহ দেখা দিছিল "Whether or not life had to have a meaning to be lived"।[৩] এই প্রশ্নৰ পৰাই এবছার্ডতত্ত্বৰ জন্ম হৈছিল। এবছার্ডতত্ত্বক ব্যাখ্যা কৰোতে কামুয়ে কৈছে "This divorce between man and his life, the actor and his sitting, truly constitutes the feeling of Absurdity. ইয়াত উল্লেখ্য যে, কামুয়ে যাক 'divorce' বুলি কৈছে, কার্ল মার্কসৰ তত্ত্বত সেয়া হ'ল 'বিচ্ছিন্নতা' আৰু 'এলিয়েনেশন'। মাকর্স শ্রম আৰু মুনাফাৰ ক্ষেত্রৰ মাজেৰেই তেওঁৰ তত্ত্বক সীমাবদ্ধ ৰাখিছিল, কিন্তু কামু মানুহৰ অস্তিত্ব আৰু আচৰণৰ মাজে সকলো শোক আৰু পৰাজয়ৰ অনুভৱক সন্ধান কৰিছিল।"[৪] এলবেয়াৰ কামুৰ এই জীৱন-জিজ্ঞাসাৰ উপলব্ধিক অনুসৰণ কৰি ছেমুৱেল বেকেট আৰু ইউজিন আয়নোস্কো নামৰ দুই গৰাকী নাট্যকাৰে বিশ্ব নাট্যসাহিত্যত এবছার্ড নাটকৰ সূত্রপাত কৰিছিল।[৫] বাংলা সাহিত্যৰ প্রখ্যাত নাট্যকাৰ বাদল সৰকাৰৰ ' এবং ইন্দ্রজিৎ' (১৯৬৫), 'বাকী ইতিহাস' (১৯৬৭) আৰু মোহিত চট্টোপাধ্যায়ৰ 'মৃত্যু সংবাদ' (১৯৬৫), 'কণ্ঠনালীতে সূর্য' (১৯৬৩) প্রভৃতি নাটকত এই নাট্যৰীতিৰ প্রয়োগ লক্ষ্য কৰা যায়।

উত্তৰ পূর্ব ভাৰতৰ এগৰাকী বিশিষ্ট নাট্যকাৰ প্রদ্যোত চক্রবর্তী, তেওঁৰ 'গুণধৰেৰ অসুখ' নাটকত এবছার্ডতত্ত্বৰ বিশেষ কিছু লক্ষণ ফুটি উঠিছে। এবছার্ড নাটকত কোনো সুসংবদ্ধ প্লটৰ সন্ধান পোৱা না যায়, আৰু সেইকাৰণে 'এবছার্ড নাটকক প্লটহীন নাটক বুলি কোৱা হয়"। [৬] আলোচিত নাটকখনৰ ভিতৰত আন এটা নাটকৰ কাহিনীক দেখুওৱা হৈছে। ইয়াৰ দৃশ্যখিনিও পৰস্পৰ বিচ্ছিন্ন; খণ্ড খণ্ড আৰু বিচ্ছিন্ন ঘটনা বা দৃশ্যৰ দ্বাৰা নাটকৰ প্লট গঠিত হৈছে। নাটকৰ দ্বিতীয় দৃশ্যৰ আৰম্ভণিত দেখা গৈছে যে, নিৰুদিষ্ট গুণধৰৰ সন্ধান বিচৰাৰ প্রচেষ্টাত আৰু শেষও হৈছে গুণধৰক বিচৰাৰ প্রচেষ্টাত। নাটকৰ আৰম্ভণিত পবিত্র, উজ্জ্বল আৰু গুণধৰৰ দেউতা বা বাবা চৰিত্রৰ ভূমিকাভিনেতাসকলে যি আবেদন কৰিছিল গুণধৰক বিচাৰি উলিওৱাৰ কাৰণে, নাটকৰ শেষতো তেওঁলোকে সেই বক্তব্যৰ পুনৰাবৃত্তি কৰিছে। অর্থাৎ ক'ব পাৰি নাটকখন যি বিন্দুৰ পৰা আৰম্ভ হৈছিল, গুণধৰ চৰিত্রৰ পৰিচয় আৰু স্বভাব-বৈশিষ্ট্য প্রদর্শন কৰি আকৌ শেষ বিন্দুত শেষ হৈছে। আকৌ যি বিন্দুত নাটকখনৰ মূল পর্ব শেষ হৈছিল, বা গুণধৰৰ নিৰুদেশ হৈছিল, সেই বিন্দুৰ পৰাই নাটকখন আৰম্ভ হৈছে। এই সূত্রত দেখিব পোৱা যায় যে, নাটকখন এক অনন্ত পৌনঃপুনিকতাৰে আবদ্ধ। 'গুণধৰেৰ অসুখ' নাটকখনৰ প্লটৰ এই ধৰনৰ উত্তৰণবিহীন স্থিতাবস্থা এবছার্ড নাটকৰ বৈশিষ্ট্যক নির্দেশিত কৰিছে।[৭]

মানুহৰ ব্যক্তিগত জীৱন তথা সামাজিক জীৱনত এক নিৰালম্ব শূন্যতা আৰু অমূর্ততাৰ অনুভৱৰ পৰাই এবছার্ডতত্ত্বৰ বীজ সৃষ্টি হৈছে। অর্থাৎ এটি চৰম অর্থহীনতাৰ গহীনত নিমগ্নতা—এই তত্ত্বৰ প্রভাৱতই নাট্যকাৰ কামুৰ ' দি ষ্ট্রেঞ্জাৰ বা 'আউটসাইডাৰ' হই পৰে এক নিৰাসক্ত তথা নির্লিপ্ত মানুহ। আলোচিত নাটকখনৰ কেন্দ্রীয় চৰিত্র গুণধৰ এক আপনভোলা নিৰাসক্ত, নির্লিপ্ত ব্যক্তি। [৮] নাটকখনত দেখিব পোৱা যায় যে, গুণধৰ নিজৰ স্বার্থৰ কথা চিন্তা কৰিব নাজানে। বেলেগৰ আনন্দত নিজৰ আনন্দ বিচাৰি পায়। তাৰ দেউতায়ে যেতিয়া চক্রবর্তীৰ ওচৰৰ পৰা পোৱা টকা আদায় কৰিবলৈ তাক পঠায়, সি তাত গৈ তাগিদা দিব পাহৰি গৈ চক্রবর্তীৰ সৰু নাতিনীৰ লগত লুডো খেলিব কাৰণে ছোৱালিজনীক সঙ্গ দিয়ে। বিমর্ষ চক্রবর্তীক হুঁহুৱাবৰ কাৰণে কাগজৰ মিছা নেজ লগাই ভাও জুৰিছে। গুণধৰে টকাৰ মূল্য নুবুজে। নিজে জানি বুঝিও এক দুখীয়া মহিলাৰ নসলা এক টকাৰ কয়েন তাৰ পৰা লৈ দুটা আধুলিত ভঙাই দিয়ে। দেউতাকে আন এজন লৰাক এক টকাৰ এটা নোট দিবলৈ গলে, গুণধৰে আপত্তি জনাই দেউতাকক কয় এখন সৰু কাগজৰ টুকুৰাত এখন ভাল নাঁও বনাব পৰা যায়। কেতিয়াবা তাৰ নাঁও বনাব কাৰণে ডাঙৰ জোখৰ কাগজৰ প্রয়োজন হ'লে দেউতাৰ্ক্ষ দোকানৰ হিচাপৰ বহীৰ পৰা বহী পাত ছিণ্ডি ল'ব যায়। তাক ঠগাই বহুতে বিনা পইচাত দেউতাৰ্ক্ষ দোকানৰ পৰা ফুন কৰি কথা পাতে। জীৱন-মৃত্যুৰ সংবেদনশীল দিশটোৰ পৰাও উদাসীন গুণধৰ চৰিত্রটো। গুণধৰৰ এই পগলামী স্বভাবৰ কাৰণে হতাশগ্রস্ত দেউতায়ে কৈছে, "আমি মৰে গেলে তোৰ কি হবে?' লৰায়ে নির্বিকাৰ মনেৰে উত্তৰ দিছে, ' মাথা ন্যাড়া হবে' দেউতায়ে মর্মাহত হৈ উত্তৰ দিছে , ' এৰ কাছে বাঁচা-মৰা, সুখ-দুঃখেৰ কোনো পার্থক্য নেই।"[৯] গুণধৰৰ গাৱঁৰ ল'ৰাবোৰৰ লগতে 'গেধা' (গাধা) লিখি দিয়া কাগজখন নিজৰ পিঠিত লগাই লৈ নিজক হাঁহিৰ পাত্র কৰি গাওঁখন ঘূৰিবলৈ ওলোৱাৰ দৃশ্য তাৰ মাকে সহ্য কৰিব নোৱাৰে। ল'ৰাৰ এই অস্বাভৱিক ব্যবহাৰদেখি মর্মাহত গর্ভধাৰিনী কান্দি লৰাক সাবতি ধৰে। মাকে তেনেকে অন্তৰৰ দুখ প্রকাশ কৰিবলৈ গলে, তেনেকুৱা মুহূর্ততো গুণধৰৰ হাঁহি

ওলায়। মাকক আপত্তি জনাই সি কয়, ' ওভাবে জাপটে ধৰলে আমাৰ সুড়সুড়ি লাগে না।'[১০] গুণধৰ চৰিত্ৰৰ এই আচৰণ আৰু নিৰ্লিপ্ততা এবছার্ড চৰিত্ৰৰ বৈশিষ্ট্যক প্ৰতিফলিত কৰে।

এবছার্ড নাটক সম্পৰ্কে বেকেটে কৈছিল, "জীৱনকে সিৰিয়াসলি গ্ৰহণ কৰাটাই হাস্যকৰ। শুধু কমিকেই সিৰিয়াস। . . . এই অনিশ্চয়তা, এই নিশ্চিন্তেৰ অভাব সম্পূৰ্ণতাৰ অভাব। আশা সংগতিৰ অভাব এবছার্ড নাটকে ওতপ্ৰোত।"[১১] ইয়াৰ ফলত এবছার্ড নাটকৰ কলা কৌশল হিচাপে নাট্যজগতত মূকাভিনয় তথা নানা বিধ শাৰীৰিক ক্ৰিয়া কৌশল তথা ৰঙ্গ-ব্যঙ্গ আৰু ধেমালিৰ পৰিচিতি লাভ কৰিছিল। প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তীৰ 'গুণধৰেৰ অসুখ' নাটকতো এই বৈশিষ্ট্যসকল প্ৰকাশ পাইছে। দ্বিতীয় দৃশ্যত মানসিক ৰোগৰ চিকিৎসকৰ ওচৰত যোৱাৰ সময়ত নাট্য নিৰ্দেশনাৰ বাবে নাট্যকাৰে কৈছে, ' বাবা ছাতা খোলে । দুজনে ৰাস্তা দিয়ে হাঁটাৰ মাইম কৰে।'[১২] আকৌ গোপাল মাষ্টাৰৰ প্ৰসংগত মাষ্টাৰে গুণধৰক দি যিদৰে দুখন ঠেং থকা গৰুৰ অভিনয় কৰি দেখুৱায়, তাত শাৰীৰিক ক্ৰিয়া-কৌশলৰ ব্যবহাৰ লক্ষণীয়।

এবছার্ড নাটকত এটা চৰিত্ৰয়ে বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন ভূমিকাত অভিনয় কৰিবলৈ দেখা পোৱা যায়। বাংলাৰ প্ৰথম এবছার্ড নাটক হিচাপে পৰিচিত 'এবং ইন্দ্ৰজিৎ' নাটকত এই বৈশিষ্ট্য লক্ষ্য কৰা যায়। আলোচিত নাটকত গুণধৰ, গুণধৰৰ দেউতাক, উজ্জ্বল,আৰু পবিত্ৰ নামৰ মোট চাৰিটা চৰিত্ৰৰ অভিনয়ৰ কাৰণে চাৰিটা অভিনেতা নিৰ্দিষ্ট হ'লেও এই অভিনেতাসকলৰ মাজত গুণধৰৰ বাহিৰে বাকী সকলেই একাধিক চৰিত্ৰত অভিনয় কৰিছে। সেই সম্পৰ্কে নাট্যকাৰে জনাইছে, " মঞ্চায়নেৰ প্ৰথম প্ৰয়াসে নাটৰে সীমিত সামৰ্থেৰ কথা ভেবে মাষ্টাৰ, উজ্জ্বলেৰ বাবা ও ডাক্তৰ চৰিত্ৰেৰ অভিনয়েৰ জন্য যথাক্ৰমে পবিত্ৰ,গুণধৰেৰ বাবা বা দেউতা, এবং উজ্জ্বল চৰিত্ৰেৰ অভিনেতাদেৰ কথা ভাবা হয়েছে, ৰূপসজ্জাৰ সামান্য পৰিবৰ্তন সাপেক্ষ"[১৩] অৰ্থাৎ পবিত্ৰই মাষ্টাৰ চৰিত্ৰত অভিনয় কৰিছে। আকৌ গুণধৰৰ দেউতাকে উজ্জ্বলৰ দেউতৰূ চৰিত্ৰত আৰু উজ্জ্বল অৱতীৰ্ণ হৈছে ডাক্তৰ চৰিত্ৰত। নাট্যকাৰে তেওঁৰ নাট্য নিৰ্দেশনাক 'প্ৰয়োজন সঞ্জাত' অৰ্থাৎ বুলি উল্লেখ কৰিছে। একেই চৰিত্ৰৰ এনে ধৰণৰ একাধিকবাৰ বিভিন্ন ভূমিকাত অভিনয় কৰাৰ বাবে 'গুণধৰেৰ অসুখ' নাটকখনক এবছার্ড নাটকৰ অৰ্ন্তভুক্ত কৰা হৈছে।

এবছার্ড নাটকৰ প্ৰধান বৈশিষ্ট্য সম্পৰ্কে অজিতকুমাৰ ঘোষৰ এটি মন্তব্য ইয়াত বিশেষভাবে উল্লেখ কৰিব পাৰি — " অ্যাবসার্ড নাটকে জীবন সম্পৰ্কে বিতৃষ্ণা, অবসাদ, ক্লান্তি ও হতাশাই ফুটিয়া উঠিয়াছে, সৰ্ত্রে , কামু, বেকেট ও আয়োনেস্কোৰ নাটকেৰ মধ্যে এই ধৰনেৰ জীবন দৰ্শন ব্যক্ত হইয়াছে।"[১৪] 'গুণধৰেৰ অসুখ' নাটকৰ গোটেই চৰিত্ৰৰ জীৱন হতাশগ্ৰস্ত তথা জীৱন সম্পৰ্কে চৰিত্ৰবোৰ যেন নিৰ্বিকাৰ। গুণধৰৰ দেউতাকে বহু চেষ্টা কৰিও নিজৰ ল'ৰাক স্বাভাবিক অবস্থালৈ আনিব নোৱাৰি ব্যৰ্থ হৈ হতাশসগ্ৰস্ত হৈছে, ইয়াৰ বাহিৰেও দেউতাক আৰু অন্যান্য চৰিত্ৰৰ সংলাপত এই হতাশাৰ সুৰ শুনিব পোৱা যায়। যেনে —

১) আমাৰ ছেলে গুণধৰ। এই ফাল্গুনে তিৰিশে পা দেবে। একে মোটামুটি একটা মানুষেৰ আদল দেবাৰ জন্য, সমস্ত প্ৰচেষ্টা ব্যৰ্থ হলে, বাধ্য হয়ে আমাৰ দোকানেই লাগিয়ে দিলাম। [১৫]

২) এৰকম বোকা-হাঁদাকে ৰেখে মৰেই বা সুখ কোথায়?[১৬]

৩) আমাৰ দুঃখ হচ্ছিল তাৰ (বোকা হাবা ছেলেটাৰ) বাপ-মায়েৰ জন্য। আমি জানি নিৰ্বোধেৰ বাপ-মা হবাৰ যন্ত্ৰণা।"[১৭]

নাটকত দেখিব পোৱা যায়, গুণধৰৰ মাকৰ জীৱনতো হতাশাৰ বাহিৰে অবশিষ্ট একো নাই। নাটকৰ অন্তিম পৰ্বটোত গুণধৰ নিৰুদ্দেশ হৈ যোৱাৰ পিছতো ল'ৰাৰ কাৰণে খিৰকীৰ ফালে বাট চাই অপেক্ষা অবস্থাত বহি থকাৰ দৃশ্যত, গুণধৰৰ কেতিয়াও ওভতি নাহাৰ ইঙ্গিত এক অনন্ত প্ৰতীক্ষাৰ নিৰাশাৰ গভীৰে এই নাৰী সত্তা যায়। নাটকৰ আন এটা চৰিত্ৰ হ'ল গোপাল মাষ্টাৰ, তেওঁ মানুহক খুব হুঁহুৰাব জানে কিন্তু তেওঁৰ নিজৰ জীৱনত আছে গভীৰ যন্ত্ৰণাৰ চিহ্ন। তেওঁৰ গালিত নিজ পুত্ৰসন্তানেও ঘৰ এৰিছিল। নিজ ল'ৰাক হেৰুৱাৰ যন্ত্ৰণাত গোপাল মাষ্টাৰ জীৱনত হতাশাত ভুগিছিল। মানসিক ৰোগৰ চিকিৎসক বা ডাক্তৰ চৰিত্ৰটো ৰে নিজৰ বৃত্তিগত জীৱনত সার্থকতা লাভ কৰিলেও ব্যক্তিগত জীৱনত দৰাচলতে এজন হতাশাগ্ৰস্ত ব্যক্তি। তেওঁক কোনোও ভাল নাপায়, তেওঁৰ ৰাতিৰে টোপনি নাহে। তেওঁৰ দৰে প্ৰতিষ্ঠিত ব্যক্তি সমস্যাত হতাশাৰ দ্বাৰা সংক্ৰমিত হৈছে। যেনে পবিত্ৰ নামৰ চৰিত্ৰটো হ'ল জীৱনযুদ্ধত হাৰি যোৱা এজন যুবক। সি জীৱনত একো কৰিব পৰা নাই। ব্যৰ্থতা তাৰ প্ৰেম জীৱন আৰু ব্যক্তিজীৱনক গ্ৰাস কৰিছে। সেই কাৰণে যুৱকজনে কৈছে, ' আমি হেৰে গেছি উজ্জ্বল'[১৮] ইয়াৰ বাহিৰেও উজ্জ্বলৰ দেউতাক , দুখিয়া মহিলা চৰিত্ৰ আৰু আন চৰিত্ৰবোৰেও—কোনো জীৱনত

সুখী নহয়। জীৱন সম্বন্ধে সর্বব্যাপী এই হতাশা এই এবছার্ড নাটকৰ অন্তর্ভুক্ত কৰা হৈছে।

উক্ত নাটকখনত গুণধৰ চৰিত্র দৰাচলতে এক অবাস্তব, অসম্ভব কল্পনাশক্তি বা ভূত-ভবিষ্যত বক্তাৰ মূর্তৰূপ, ইও এবছার্ড নাটকৰ এটা লক্ষণ বুলি গণ্য কৰিব পাৰি। এই প্রসঙ্গত সমালোচকৰ মন্তব্য বিশেষভাবে উল্লেখ কৰিব পাৰি, "জগৎ, জীবন ও মানুষকে বিশ্লেষণ কৰে দেখতে গিয়ে উপলব্ধি কৰলেন, তা পেঁয়াজেৰ মতো; খোসা ছাড়ানোই সাৰ, শূন্যতাই শেষ পৰিণতি। এৰ ফলে এলো ব্যঙ্গ, বিদ্রূপ, কৌতুক; এল ফ্যান্টাসি, অসম্ভব স্বপ্ন কল্পনা। অতি বাস্তব, অধিবাস্তব, মিলেমিশে ৰচিত হলো অ্যাবসার্ড জগৎ। যাকে কেউ কেউ বলেছেন উদ্ভট। কেননা এখানে সবই যুক্তি ছুট কিম্ভূত ব্যাপাৰ। "[১৯] 'গুণধৰেৰ অসুখ' নাটকখনত উত্তৰণ আৰু পৰিণতিতে গুণধৰ চৰিত্রৰ এই অদ্ভূত বৈশিষ্ট্যয়ে প্রধান নিয়ন্ত্রক হৈ উঠিছে। যদিওবা এবছার্ডবাদ কোনো তত্ত্বত, আদর্শত বা যুক্তিত বিশ্বাসী নহয়। ' [২০] এই নাটকৰ পৰিণতিৰ মাধ্যমেৰে কোনো তত্ত্ব, কোনো ৰাজনৈতিক-সামাজিক কিংবা অর্থনৈতিক বা ধর্মীয় কোনো আদর্শ বা যুক্তি নাট্যকাৰে দাঙি ধৰিব বিচৰা নাই। নাটকত জীৱনৰ যি বিভিন্ন জটিল সমস্যাবোৰৰ চিত্র পোৱা যায়, তাৰ সমাধানৰ ইঙ্গিতও নাট্যকাৰে দিব লৈ যত্ন কৰা নাই। এনে ধৰণৰ বৈশিষ্ট্যই আচলতে এবছার্ড নাটকৰো বৈশিষ্ট্য তথা চিন্তাৰ ফচল বুলিব পাৰি।

'গুণধৰেৰ অসুখ' নাটকত 'Psychological realism'-ৰ বৈশিষ্ট্য লক্ষ্য কৰা যায়। কাৰণ 'গুণধৰ চৰিত্রত ভূত-ভবিষ্যত বর্ণনাৰ অবাস্তব আৰু অবিশ্বাস্য ক্ষমতাৰ মাজত এক অধিবাস্তবতা নিহিত হৈ আছে।'[২১] তাৰ কাৰণে চৰিত্রটোৰ আচৰণ এই সূত্রত একেবাৰেই অবিশ্বাস্য বুলি কোৱা নাযায়। মানৰ চেতনাৰ গূঢ়, অতিগূঢ় ক্রিয়া প্রতিক্রিয়াৰ মিশ্র জটিল ফলাফল এবিধ দুর্বোধ্য চৰিত্রৰ পৰিচয় দাঙি ধৰে। আকৌ গুণধৰ চৰিত্রৰ কিছুমান সদগুণৰ প্রকাশ নাটকখনত দেখুওৱা হৈছে। আনৰ দুখত সি দুখী, পৰোপকাৰী, অন্তৰত কোনো কলুষতা নাই— সি নির্মল আৰু সুন্দৰ। এই সমূহ সদগুণ আমাৰ সামাজিক তথা দৈনন্দিন জীৱনৰ পৰা দিনে দিনে হেৰাই গৈ আছে। কিন্তু নাটকৰ শেষত গুণধৰ নিৰুদ্দেশ হৈ গ'লে, তাৰ এই সদগুণবোৰৰ পৰিচয় সমাজৰ প্রতিটো স্তৰত বিয়পি পৰাৰ এক সম্ভাবনা ব্যক্ত হৈছে। সেই কাৰণে শেষত দেউতা বা বাবা চৰিত্রৰ পৰা শুনিব পোৱা যায় — " হঠাৎ কখনো শোনা যায়, অমুক অমুক অফিসাৰ ঘুষ খান না। কোনো কোনো পুলিশেৰ কবিতাৰ বই বেৰোয়। একজন দুস্থ মহিলা একটি ভ্যানিটি ব্যাগ ভর্তি টাকা এবং সোনাৰ গয়না কুড়িয়ে পেয়েও থানায় জমা দিয়ে আসেন। বিশ্বাস কৰতে হবে, এদেৰ কাৰো সঙ্গেই গুণধৰেৰ দেখা হয়নি?"[২২] একেদৰে উজ্জ্বল আৰু পবিত্রৰ সংলাপত স্পষ্ট হৈ উঠিছে, যেতিয়া উজ্জ্বলে কৈছে, " আপনাদেৰ কাছে অনুৰোধ, বাসেৰ ভেতৰ যদি কোনো তিৰিশ বছৰেৰ ছেলে কখনও আপনাদেৰ কাউকে সিট ছেড়ে দেয়, তাৰ নাম জিজ্ঞাসা কৰবেন।"[২৩] পবিত্রয়ে কৈছে, আপনাদেৰ কাৰো সামান্য দুঃখে যদি কোনো অনাত্মীয় যুবকেৰ চোখ জলে ভৰে ওঠে, লক্ষ কৰবেন "[২৪] নাটকখনৰ এই পৰিণতিটোও এবছার্ড ধাৰণাৰ লগত জড়িত বুলি ক'ব পাৰি।

আধুনিক বাংলা ভাৰতীয় লোক মনত আস্তিক্যবাদত বিশ্বাসী হোৱাৰ ফলত আধুনিক বাংলা সাহিত্যত এবছার্ডৰ প্রভাৱ সম্পূর্ণৰূপে পৰা নাই বুলি ক'ব পাৰি। কাৰণ "বাদল চৰকাৰেৰ 'এবং ইন্দ্রজিৎ', মোহিত চট্টোপাধ্যায়য়েৰ 'মৃত্যু সংবাদ', সমৰেশ বসুৰ 'বিবৰ' উপন্যাস, জীবনানন্দ দাশেৰ 'আট বছৰ আগেৰ একদিন' কবিতা ইত্যাদিৰ মত প্রদ্যোত চক্রবর্তীৰ 'গুণধৰেৰ অসুখ' ও সর্বতোভাৱে অ্যাবসার্ড নাটক হৈ উঠে নি।"[২৫]

উপসংহাৰ ঃ

প্রাচ্য নাট্য সাহিত্যধাৰা উদ্ভৱ আৰু ক্রমবিকাশত পাশ্চাত্য নাট্য সাহিত্য তথা বিভিন্ন নাট্য আন্দোলনৰ প্রভাৱ অনস্বীকার্য। মধুসূদন দত্ত, জ্যোতিৰিন্দ্র নাথ ঠাকুৰ, গিৰিশচন্দ্র ঘোষ, দ্বিজেন্দ্রলাল ৰায় প্রমুখ নাট্যকাৰসকলৰ ৰচনাত পাশ্চাত্য নাটৰ স্পষ্ট প্রভাৱ লক্ষ্য কৰা যায়। শেক্সপিয়্যৰ তত্ত্বৰ, মলিয়ৰ প্রমুখ নাট্যকাৰৰ নাটকৰ বিষয় বিন্যাস আৰু আংগিক বিন্যাস এটা সময়ত বাংলা সাহিত্যৰ নাট্যকাৰসকলৰ আদর্শ হৈ উঠিছিল। পৰৱর্তী পর্যায়ত ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ প্রচেষ্টাত বাংলা নাটকৰ পৰিবর্তন আহিলেও এই পর্যায়ত ৰমাঁ ৰ'লা প্রমুখ চিন্তাবিদৰ প্রভাৱ বিশেষকৈ পৰিলক্ষিত হৈছিল। প্রথম বিশ্বযুদ্ধৰ পিছত সাহিত্য ক্ষেত্রত বিশ্বব্যাপী পৰিৱর্তনৰ যি ঢৌ আহিছিল বাংলা সাহিত্যতো তাৰ প্রভাৱ পৰিছিল। বিভিন্ন আন্তর্জাতিক নাট্য আন্দোলন বাংলা নাট্য জগতক বিকশিত কৰি সমৃদ্ধ কৰি তুলিছিল। এই কালচোৱাত বাংলা নাট্যজগতত এৱছার্ড নাট্যতত্ত্বৰ প্রভাৱ পৰিছিল। বাংলা নাট্য সাহিত্যত বাদল চৰকাৰে তেওঁৰ 'এবং ইন্দ্রজিৎ' নাটকৰ জড়িয়তে এৱছার্ডিজমৰ সম্প্রসাৰণ ঘটাইছিল।

উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চলৰ বাংলা সাহিত্যৰ বিশিষ্ট নাট্যকাৰ প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তীৰ নাটক ‘গুণধৰৰ অসুখ’ (১৯৯০)। নাটকখনত এবছাৰ্ড নাট্যতত্ত্বৰ কিছু বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হৈছে। নাটখনৰ প্লট পৰিকল্পনাত, সংলাপত, হাস্যৰস উপস্থাপনত, মূকাভিনয়ৰ ব্যৱহাৰ ইত্যাদিৰ ফলত নাটকখন হৈ পৰিছে এক এৱছাৰ্ড অনুপ্ৰাণিত নাটক। আনফালে এৱছাৰ্ড চৰিত্ৰ হিচাপে নাটকৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ গুণধৰ এজন নিৰ্বোধ আৰু নিৰাসক্ত, নিৰ্লিপ্ত মানুহ। গুণধৰ নিঃস্বাৰ্থভাৱে আনৰ কাৰণে চিন্তা কৰে, আনৰ আনন্দকেই নিজস্ব নিজস্ব আনন্দ বুলি মানে; কিন্তু নিজৰ আপোন মানুহবোৰৰ কাৰণে তাৰ ব্যক্তিগত কোনো কোনো অনুভূতি নাই বুলি ক’ব পাৰি। তাৰ মা- দেউতাকৰ মৃত্যুৰ কথা ওলালে সি কোনো দুখ অনুভৱ নকৰে। নাটকৰ অন্যান্য চৰিত্ৰবোৰৰ অধিকাংশই জীৱনত হতাশগ্ৰস্ত আৰু জীৱন সম্বন্ধত নিৰ্বিকাৰচিত্ত দেখা যায়। নাটখনত গুণধৰ চৰিত্ৰত, গুণধৰৰ দেউতাকৰ চৰিত্ৰত আৰু মাষ্টৰ আদি চৰিত্ৰত অসংগতি অসামঞ্জস্য আৰু অৰ্থহীনতাৰ ছাপ স্পষ্টকৈ লক্ষ্য কৰা যায়। আনকি নাটকৰ মূল চৰিত্ৰ গুণধৰৰ ভিতৰত এক অবাস্তৱ, অসম্ভৱ কল্পনা শক্তি তথা ভবিষ্যৎতৰ বৰ্ণনা কৰাৰ ক্ষমতা আছে। তাৰ ভিতৰৰ অধিবাস্তৱতাৰ এক বিশেষ দিশ লক্ষ্য কৰা। যি এৱছাৰ্ড নাটকৰ এটা অন্যতম বৈশিষ্ট্য। উল্লিখিত এই বৈশিষ্ট্যসমূহ এই নাটকখনক থাকিলেও সম্পূৰ্ণ ৰূপত এবছাৰ্ড নাটক হৈছে বুলি ক’ব নোৱাৰি। কিয়নো আধুনিক ভাৰতীয় সাহিত্যত এবছাৰ্ডবাদৰ প্ৰভাৱ পৰিলেও ভাৰতীয় মনোলোকত আস্তিক্যবাদত বিশ্বাসী হোৱাৰ ফলত কোনো ভাৰতীয় সাহিত্যকৃতিয়ে প্ৰকৃত ৰূপত এবছাৰ্ড হোৱা নাই। সেয়েহে ক’ব পাৰি যে ‘গুণধৰৰ অসুখ’ নাটকখন এবছাৰ্ডবাদ প্ৰভান্বিত এখন উল্লেখযোগ্য নাটক। ❑

প্ৰসংগ টীকা ঃ

১। ‘দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধোত্তৰ বাংলা নাট্য আন্দোলনৰ গতিপ্ৰকৃতি’, বিনয়কুমাৰ বন্দ্যোপাধ্যায়, এবং মুশয়েৰা, পৃ-১৪
২। উল্লিখিত, পৃ- ১৫-১৬
৩। উল্লিখিত, পৃ- ৪৩
৪। ‘সাহিত্যকোষঃ কথাসাহিত্য’, আলোক ৰায় (সম্পা.), পৃ- ২০
৫। ‘দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধোত্তৰ বাংলা নাট্য আন্দোলনৰ গতিপ্ৰকৃতি’, বিনয়কুমাৰ বন্দ্যোপাধ্যায়, এবং মুশয়েৰা, পৃ-৪৩।
৬। উল্লিখিত, পৃ-৪৪
৭। ‘গুণধৰৰ অসুখঃ অনাত্মীয় ৰক্তবন্ধনৰ কোলাজ’, শান্তনু ৰায়চৌধুৰী, ভিকি পাবলিশার্ছ, পৃ-১১০
৮। ‘সাহিত্যকোষঃ কথা সাহিত্য’, আলোক ৰায় (সম্পা.), সাহিত্যলোক, পৃ.-২০
৯। ‘গুণধৰৰ অসুখ’, প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তী, পৃ-৩৫
১০। উল্লিখিত, পৃ-৩৬
১১। এ্যাবসার্ড থিয়েটাৰ, অঞ্জন দাশগুপ্ত, পৃ-৬৭৭-৬৭৮
১২। উল্লিখিত, পৃ.- ৫৫
১৩। উল্লিখিত, পৃ.- ২৩
১৪। ‘বাংলা নাটকৰ ইতিহাস’, অজিত কুমাৰ ঘোষ, জেনাৰেল প্ৰিন্টার্স অ্যান্ড পাবলিশার্স, পৃ-৪৬২
১৫। গুণধৰৰ অসুখ’, প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তী, পৃ-৩২
১৬। উল্লিখিত, পৃ.- ৩৩
১৭। উল্লিখিত, পৃ.- ৬৬
১৮। উল্লিখিত, পৃ.- ৪৮
১৯। সাহিত্যকোষঃ কথা সাহিত্য, পৃ-২১
২০। উল্লিখিত, পৃ.- ২০
২১। ‘গুণধৰৰ অসুখঃ অনাত্মীয় ৰক্তবন্ধনৰ কোলাজ’, শান্তনু ৰায়চৌধুৰী, ভিকি পাবলিশার্ছ, পৃ-১১৬
২২। গুণধৰৰ অসুখ’, প্ৰদ্যোত চক্ৰৱৰ্তী, পৃ.-৮৭-৮৮
২৩। উল্লিখিত, পৃ.- ৮৮
২৪। উল্লিখিত, পৃ.- ৮৮
২৫। ‘গুণধৰৰ অসুখঃ অনাত্মীয় ৰক্তবন্ধনৰ কোলাজ’, শান্তনু ৰায়চৌধুৰী, ভিকি পাবলিশার্ছ, পৃ-১১৭

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

বাংলা গ্ৰন্থ ঃ

ঘোষ, অজিত কুমাৰ ঃ ***নাটকৰ কথা***, সাহিত্যলোক, কলকাতা, পৰিবৰ্ধিত তৃতীয় সংস্কৰণ, ১৯৮৬
ঘোষ, অজিত কুমাৰ ঃ ***বাংলা নাটকৰ ইতিহাস***, জেনাৰেল প্ৰিন্টার্ছ এণ্ড পাৱলিচার্ছ প্ৰাইভেট লিমিটেড, কলকাতা, পৰিৱৰ্ধিত সপ্তম সংস্কৰণ, ১৯৮৫
চক্ৰৱৰ্তী, প্ৰদ্যোত ঃ ***গুণধৰৰ অসুখ***, বাংলা সাহিত্য সংস্কৃতি সমাজ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৯
বন্দোপাধ্যায়, অসিত কুমাৰ ঃ ***বাংলা সাহিত্যৰ সম্পূৰ্ণ ইতিবৃত্ত*** , মডার্ণ বুক এজেন্সি প্ৰাইভেট লিমিটেড, কলকাতা, ১৩৯৫ শকাব্দ
বন্দোপাধ্যায়, বিনয় কুমাৰ ঃ ***দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ বাংলা সাহিত্যৰ গতি-প্ৰকৃতি***, এবং মুশায়েৰা, কলকাতা, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৩
ৰায়, আলোক (সম্পাদিত) ঃ ***সাহিত্যকোষ কথাসাহিত্য***, সাহিত্যলোক, কলকাতা, ২০১০
ৰায়চৌধুৰী, শান্তনু ঃ ***গুণধৰৰ অসুখ*** ঃ অনাত্মীয় ৰক্তবন্ধনৰ কোলাজ, ভিকি পাৱলিছার্ছ, গুৱাহাটী, ২০১৫

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতা ঃ এটি তুলনামূলক আলোচনা

("মনত পৰেনে অৰুন্ধতী" আৰু "সাগৰ দোলা" কবিতা দুটিৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)

অপূর্ব নাথ

ছাত্র, স্নাতকোত্তৰ চতুর্থ ষান্মাসিক
অসমীয়া বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী- ১
৯৯৫৭৯০৭০৫৪
apurbanath108@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

কবিতা হৈছে সাহিত্যৰ অন্যতম বিভাগ। মানুহৰ মনত সৌন্দর্যবোধৰ সৃষ্টি কৰি আনন্দ দান কৰাই হৈছে কবিতাৰ প্রাথমিক উদ্দেশ্য। আধুনিক অসমীয়া কবিতাৰ বুৰঞ্জীত নৱকান্ত বৰুৱা এটি স্মৰণীয় নাম। তেখেতৰ কবিতাই অসমীয়া আধুনিক কবিতাক এক অনন্য মাত্রা প্রদান কৰিছে। কেৱল কবি হিচাপেই নহয়, নৱকান্ত বৰুৱা ঔপন্যাসিক আৰু গীতিকাৰ হিচাপেও অসমীয়া সাহিত্যত প্রতিষ্ঠিত। ১৯৫১ চনত তেখেতৰ প্রথমখন কবিতাপুথি **"হে অৰণ্য হে মহানগৰ "** প্রকাশিত হয়। প্রতিজন সচেতন পঢ়ুৱৈৰ অন্তৰত নৱকান্ত বৰুৱাৰ স্থান অতি উচ্চ। তেখেতৰ কবিতাত নগৰীয়া জীৱনৰ কঠিন বাস্তৱতা সঠিক ৰূপত ৰূপায়িত হৈছে। বুদ্ধদেব বসু আধুনিক বাংলা কবিতাৰ পথিকৃৎ। অসমীয়া কাব্য সাহিত্যত নৱকান্ত বৰুৱাৰ যি স্থান বাংলা কাব্য জগততো বুদ্ধদেব বসুৰ একেই স্থান। সমাজ চেতনা আৰু নগৰ চেতনা দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাৰ প্রধান বিশেষত্ব। সমাজত বিপ্লৱ ঘটাবলৈ নহয়, নিজে প্রকৃত অর্থত অনুভৱ কৰা হতাশা,বিড়ম্বনা,অনিয়ম আদি স্বাভাৱিকভাৱে দুয়োগৰাকী কবিয়েই কবিতাৰ মাধ্যমেৰে প্রকাশ কৰিছিল। আমাৰ এই গৱেষণা পত্রৰ জৰিয়তে দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাৰ এটি তুলনামূলক আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ব । তদুপৰি, নৱকান্ত বৰুৱাৰ এটি বিখ্যাত কবিতা **" মনত পৰেনে অৰুন্ধতী"** আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ **"সাগৰ দোলা"** কবিতা দুটিৰ মাজত থকা সাদৃশ্য সম্পর্কে বিশদভাৱে আলোচনা কৰা হ'ব ।

বীজ শব্দ ঃ

কবিতা, আধুনিক, তুলনামূলক, সাদৃশ্য, প্রভাৱ।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

অসমীয়া কবিতাত আধুনিকতাবাদী দৃষ্টিভংগী প্রৱর্তনৰ ক্ষেত্রত নৱকান্ত বৰুৱা অন্যতম পথিকৃৎ। নৱকান্ত বৰুৱা একেধাৰে কবি, ঔপন্যাসিক, শিশুসাহিত্যিক, প্রবন্ধকাৰ আৰু গীতিকাৰ। তেখেতৰ প্রতিটো সৃষ্টিয়েই অসমীয়া সাহিত্যত এক বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰি আছে। প্রতীক,চিত্রকল্প প্রয়োগৰ ক্ষেত্রত নৱকান্ত বৰুৱা সুদক্ষ। ইংৰাজ কবি টি.এছ. এলিয়টৰ কবিতাৰ দ্বাৰা প্রভাৱান্বিত হৈ নৱকান্ত বৰুৱাই অসমীয়া কাব্য জগততো প্রতীক চিত্রকল্পৰ প্রয়োগ কৰিছিল। আধুনিক নগৰীয়া সভ্যতাত বসবাস কৰা মানুহৰ মনস্তত্ত্ব নৱকান্ত বৰুৱাই প্রতীক চিত্রকল্পৰ সহায়ত সুন্দৰকৈ অংকন কৰিছে। তেখেতৰ এটি বিখ্যাত কবিতা হ'ল *'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী'*। নৱকান্ত বৰুৱাৰ দৰে আধুনিক বাংলা সাহিত্যত কবিতা ৰচনা কৰা এগৰাকী অন্যতম পুৰোধা কবি হ'ল

বুদ্ধদেব বসু। বুদ্ধদেব বসু প্ৰধানতঃ প্ৰেমৰ কবি যদিও তেওঁৰ প্ৰেম ৰোমান্টিক যুগৰ কবিসকলৰ প্ৰেম নহয়। ৰোমান্টিক যুগৰ কবিসকলৰ দৰে তেখেতে প্ৰেমক অতিন্দ্ৰীয় বা অমূৰ্তভাৱে প্ৰত্যক্ষ কৰা নাই; প্ৰত্যক্ষ কৰিছে মূৰ্ত আৰু শৰীৰীৰূপে। তেখেতৰ এটি বহুল চৰ্চিত কবিতা হ'ল *'সাগৰ দোলা'*। নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতাত ভাৰতীয়ত্বৰ সন্ধান পোৱা যায়। দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাতে আধুনিক সমাজ ব্যৱস্থাৰ স্বৰূপ অতি বাস্তৱিকৰূপত ফুটি উঠিছে। কলিকতাৰ নাগৰিক জীৱনে দুয়োজন কবিকে স্পৰ্শ কৰিছে। আমাৰ এই প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা পত্ৰৰ জৰিয়তে দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাৰ মাজত থকা সাদৃশ্য সম্পৰ্কে এটি তুলনামূলক অধ্যয়ন আগবঢ়োৱা হ'ব ।

০.১ **অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ** *"নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতা ঃ এটি তুলনামূলক আলোচনা"* শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে তলত উল্লেখ কৰা লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্যকেইটাক সন্মুখত ৰাখি গৱেষণা কাৰ্যত আগবঢ়া হৈছে ঃ

ক) নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ চমু কবি পৰিচয় আগবঢ়োৱা।

খ) দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাৰ লক্ষণ সম্পৰ্কে চমু আলোচনা আগবঢ়োৱা।

গ) দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাৰ এটি তুলনামূলক আলোচনা দাঙি ধৰা।

ঘ) 'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী' আৰু 'সাগৰ দোলা' কবিতা দুটিৰ মাজত থকা সাদৃশ্য সম্পৰ্কে সম্যক অধ্যয়ন কৰা।

০.৩ **অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ** *"নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতা ঃ এটি তুলনামূলক আলোচনা"* শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্যতঃ তুলনামূলক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। তদুপৰি, প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা পত্ৰখনত প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিও প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

১.০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

১.১ নৱকান্ত বৰুৱাৰ চমু কবি পৰিচয় ঃ নৱকান্ত বৰুৱা (১৯২৬-২০০২) অসমীয়া সাহিত্য জগতৰ এটি উজ্জ্বল নক্ষত্ৰ। ছাত্ৰ অৱস্থাতে কাব্য-চৰ্চা আৰম্ভ কৰা নৱকান্ত বৰুৱাই জয়ন্তী আলোচনীত কবি হিচাপে আত্মপ্ৰকাশ কৰে আৰু হেম বৰুৱাৰ দ্বাৰা সম্পাদিত পছোৱা আলোচনীৰ জৰিয়তে প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰে। নৱকান্ত বৰুৱা নিঃসন্দেহে আধুনিক কবিতাৰ বুৰঞ্জীত আটাইতকৈ তাৎপৰ্যপূৰ্ণ নাম।[১] ইংৰাজী সাহিত্যত টি.এছ. এলিয়টৰ দ্বাৰা জনপ্ৰিয় হৈ পৰা প্ৰতীক চিত্ৰকল্পবাদী কাব্যধাৰা ৰামধেনু আলোচনীৰ জৰিয়তে অসমীয়া সাহিত্যত বিকাশ লাভ কৰে। এই ধাৰাত কাব্য ৰচনা কৰা কবিসকলৰ ভিতৰত নৱকান্ত বৰুৱা উল্লেখযোগ্য। নৱকান্ত বৰুৱা এগৰাকী অধ্যয়নশীল কবি। দেশ-বিদেশৰ কবি, সাহিত্যিক, দাৰ্শনিক, পণ্ডিত আদিৰ ৰচনা তেওঁ অধ্যয়ন কৰি সিৰোৱৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈছিল। ড° মহেন্দ্ৰ বৰাই নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতা সম্পৰ্কে উচিত মন্তব্যই কৰিছিল ঃ

"এহাতে ৰবীন্দ্ৰনাথ ; আনহাতে এলিয়ট। এয়ে বোধকৰোঁ, নৱকান্ত বৰুৱাৰ কাব্য পৰিক্ৰমাৰ কুমেৰু -সুমেৰু।"

নৱকান্ত বৰুৱাই প্ৰতীক চিত্ৰকল্পৰ সহায়ত আধুনিক মানুহ তথা সমাজৰ মানসিক চিত্ৰ অপূৰ্ব ৰূপত অংকন কৰিছে। টি.এছ. এলিয়টৰ দৰে কবি নৱকান্ত বৰুৱা অতীতৰ শৌৰ্য-বীৰ্যৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধাশীল। সমসাময়িক কালৰ ক্ষয়িষ্ণু পৰিবেশৰ তিক্ততাই তেওঁক অতীতমুখী কৰি তুলিছিল। অসমীয়া নতুন কবিতাৰ ধাৰাটোক ঐতিহ্যমণ্ডিত কৰা আটাইতকৈ সফল আৰু আকৰ্ষণীয় কবিগৰাকীয়েই হ'ল নৱকান্ত বৰুৱা। ১৯৫১ চনৰ পৰা ১৯৬১ চনলৈ- এই এটা দশকৰ ভিতৰতে তেখেতৰ তিনখন কবিতাপুথি প্ৰকাশিত হৈছিল। সেই তিনিখন কবিতা পুথি হ'ল -ঃ *হে অৰণ্য হে মহানগৰ, এটি দুটি এঘাৰটি তৰা, যতি আৰু কেইটামান স্কেচ্*।

নগৰীয়া জীৱনৰ ধাতৰ কঠিন প্ৰাণ আৰু ব্যস্ত চলমান জীৱনৰ অসহিষ্ণুতা তেওঁৰ কবিতাত ফুটি উঠাৰ লগে লগে কোনোবা গাঁৱৰ নিৰিবিলি গধূলিৰ দৰে শান্ত স্নিগ্ধ গুণ এটিও ফুটি উঠিছে।[২] নৱকান্ত বৰুৱাৰ কাব্যিক জীৱনৰ প্ৰথমখন কবিতাপুথি 'হে অৰণ্য হে মহানগৰ' ১৯৫১ চনত প্ৰকাশ হৈছিল। এই কবিতাপুথিখন প্ৰকাশৰ লগে লগে অসমীয়া কবিতাৰ ক্ষেত্ৰখনত এক নতুন দিশৰ উন্মোচন হ'ল । এই কবিতাপুথিখনত মুঠ ১৬ টা কবিতা আছে। উল্লেখ্য যে, 'হে অৰণ্য হে মহানগৰ' কবিতা পুথিখনত সংকলিত কবিতাবোৰে বিশিষ্ট সাহিত্যিক হোমেন বৰগোহাঞিকো প্ৰভাৱিত কৰিছিল। বৰগোহাঞিৰ ভাষাত ঃ

"প্ৰত্যেকটো কবিতাই মোক শিহৰিত কৰিছিল কিন্তু মোৰ হৃদয়ত গভীৰতম তলীলৈকে আলোড়িত কৰি তুলিলে পুথিখনত সন্নিৱিষ্ট 'সন্ধ্যাৰ চিলং' নামৰ কবিতাটোৱে।"

নৱকান্ত বৰুৱাৰ কাব্য সংকলনসমূহৰ নাম তলত প্ৰকাশৰ চন অনুসৰি যথাক্ৰমে উল্লেখ কৰা হ'ল ঃ

ক) হে অৰণ্য হে মহানগৰ (১৯৫১);
খ) এটি দুটি এঘাৰটি তৰা (১৯৫৮);
গ) যতি আৰু কেইটামান স্কেচ্ছ (১৯৬১);
ঘ) সম্রাট (১৯৬২);
ঙ) ৰাৱণ (১৯৬৩);
চ) মোৰ আৰু পৃথিৱীৰ (১৯৭৩);
ছ) ৰত্নাকৰ (১৯৮৩);
জ) এখন স্বচ্ছ মুখাৰে (১৯৯০);
ঝ) সূর্যমুখীৰ অংগীকাৰ (১৯৯০);
ঞ) মহাকাব্যৰ পাণ্ডুলিপি (১৯৯০);
ট) নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাৱলী (১৯৯৮);
ঠ) ৰাতি জিলমিল তৰা জিলমিল (১৯৯৮);
ড) দলঙত তামীঘৰা (১৯৯৯) ।

১.২ বুদ্ধদেব বসুৰ চমু কবি পৰিচয় ঃ বুদ্ধদেব বসু (১৯০৮-১৯৭৪) আধুনিক বাংলা কবিতাৰ এগৰাকী আগশাৰীৰ কবি। তেখেত একেধাৰে কবি, নাট্যকাৰ, অনুবাদক আৰু বাংলা সাহিত্য সমালোচনাৰ পথ প্রদর্শক। অসমীয়া কাব্য সাহিত্যত হীৰেন ভট্টাচার্য, নীলমণি ফুকন, নৱকান্ত বৰুৱাৰ যি স্থান বাংলা সাহিত্যতো বুদ্ধদেব বসুৰ তেনে স্থান। তেখেত বাংলা সাহিত্যৰ কল্লোল যুগৰ কবি। বাংলা সাহিত্যত ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ প্রভাৱ সদূৰপ্রসাৰী আছিল। কবিগুৰু ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ সাহিত্যই সমগ্র বিশ্বৰ সাহিত্যকে প্রভাৱিত কৰিছিল। বাংলা সাহিত্যত ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰক অতিক্রম কৰি সাহিত্য চর্চা কৰাটো সহজ নাছিল। এনে পৰিস্থিতিত অতি কষ্ট আৰু সাধনাৰে জীৱনানন্দ দাশ আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ দৰে কবিসকলে আত্মপ্রকাশ কৰিছিল।

বুদ্ধদেব বসু প্রেমৰ কবি। প্রেমে নানা ৰূপে, নানা ভাবে তেওঁৰ কবিতাত খেলা কৰিছে; কিন্তু ইয়াত ৰোমান্টিক কবিৰ ভাব-বিলাস আৰু স্বর্গীয় অনুভূতিৰ উপলব্ধি নাই। বুদ্ধদেব বসু প্রথমাৱস্থাত ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ অনুগামী আছিল বুলি বহু সমালোচকে উল্লেখ কৰিছে। বুদ্ধদেব বসু পাশ্চাত্যৰ কবিৰ দ্বাৰাও প্রভাৱিত হৈছিল। পাশ্চাত্য সাহিত্যৰ গ্যেটে, এলিয়ট, বোড্‌লেয়াৰ আদিৰ প্রভাৱ বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতাত দেখিবলৈ পোৱা যায়। আধুনিক কবিতাৰ প্রায়বোৰ লক্ষণেই বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতাত আছে। সমাজ চেতনা আৰু নাগৰিক চেতনা আধুনিক কবিতাৰ প্রাথমিক বৈশিষ্ট্য। এই দুয়োটা বৈশিষ্ট্যই বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতাত ফুটি উঠিছে। বুদ্ধদেব বসুক আত্মমগন কবি বুলি কোৱা হয় যদিও তেখেতৰ কবিতাত সমাজৰ বিভিন্ন দ্বন্দ আৰু সংঘাতৰ চিত্র অংকিত হৈছে।

বুদ্ধদেব বসুৰ দ্বাৰা ৰচিত প্রথমখন কবিতাপুথি হৈছে *'মর্মবাণী'*। এই কবিতাপুথিখন ১৯২৫ চনত প্রকাশ হৈছিল। কবি বসুৰ অন্যান্য কবিতা পুথিসমূহৰ নাম তলত উল্লেখ কৰা হ'ল ঃ

ক) বন্দীৰ বন্দনা (১৯৩০);
খ) একটি কথা (১৯৩২);
গ) পৃথিৱীৰ পথে (১৯৩৩);
ঘ) কঙ্কাবতী (১৯৩৭);
ঙ) দময়ন্তী (১৯৪৩);
চ) দ্রৌপদীৰ শাৰী (১৯৪৮);
ছ) স্বাগত বিদায় ও অন্যান্য কবিতা (১৯৭১) ইত্যাদি।

১.৩ দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাৰ এটি তুলনামূলক আলোচনা ঃ নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসু দুয়োগৰাকী কবিয়েই প্রচলিত কাব্যধাৰাৰ বিপৰীতে গৈ কবিতা ৰচনা কৰিছিল। পৰম্পৰাবাদী কাব্যধাৰাৰ বিপৰীতে নতুন আংগিকৰ সহায়ত কবিতা ৰচনাত হাত দিছিল। নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতাৰাজিৰ মাজত বিভিন্ন সাদৃশ্য পৰিলক্ষিত হয়।

কবি নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত অসম তথা ভাৰতীয় পৰম্পৰাৰ প্রভাৱ স্পষ্ট আৰু উজ্জ্বল ৰূপত দেখা যায়। ভাৰতবর্ষৰ অনেক পৌৰাণিক কাব্য, কাহিনী, মহাকাব্যিক চৰিত্র, ঐতিহ্য ইত্যাদিৰপৰা কবি নৱকান্ত বৰুৱাই প্রেৰণা লাভ কৰিছিল আৰু তাৰ আলমত বিভিন্ন কবিতা ৰচনা কৰিছিল। ভাৰতীয় প্রাচীন মহাকাব্যৰ তিনিটা বিখ্যাত চৰিত্র ৰাৱণ, ৰত্নাকৰ আৰু ধৃতৰাষ্ট্রক ৰূপক হিচাপে তিনিটা গুৰুত্বপূর্ণ কবিতা ৰচনা কৰিছে। মহাভাৰতৰ বিখ্যাত চৰিত্র কুন্তী পুত্র অর্জুনক বিষয়বস্তু হিচাপে লৈও নৱকান্ত বৰুৱাই কবিতা ৰচনা কৰিছিল। নৱকান্ত বৰুৱাৰ দৰে বুদ্ধদেব বসুৰেও পৌৰাণিক কাব্য, মহাকাব্যৰ চৰিত্রক প্রতীক হিচাপে লৈ বিভিন্ন কবিতা ৰচনা কৰিছে। এই প্রসংগত বুদ্ধদেব বসুৰ ***দময়ন্তী ,হনুমানের জীৱন ও মৃত্যু, দ্রৌপদীর শাড়ি*** অন্যতম। "শিল্পীৰ উত্তৰ" কবিতাটিত বুদ্ধদেব বসুৱে কুন্তী পুত্র 'অর্জুন'ক শিল্পীৰ প্রতীকৰূপে গ্রহণ কৰিছে ঃ

"গাণ্ডীবের অবিচ্ছেদ ব্যৱসায়ে পূর্ণ থাকে তূণ?
সারথি নিস্পৃহ যবে, সেই ক্ষণে নিঃশেষ অর্জুন।"
(শিল্পীর উত্তর)

মুঠতে, দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাতে প্রাচীন ভাৰতীয়ত্বৰ সন্ধান পোৱা যায়। অর্থাৎ দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাতে ভাৰতীয় পৰম্পৰাৰপৰা উদ্ভুত দেশীয় উপাদানসমূহে এক

চিন্তনীয় আবেদন লাভ কৰিছে।

দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাতে ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ কবিতাৰ প্রভাৱ লক্ষ্য কৰা যায়। নৱকান্ত বৰুৱা শিক্ষা গ্রহণৰ বাবে শান্তিনিকেতনলৈ গৈছিল। শান্তিনিকেতনৰ বহুতৰপীয়া অভিজ্ঞতাই নৱকান্ত বৰুৱাৰ সৃষ্টিশীল সত্বাক নতুন ৰূপত গঢ় দিছিল । নৱকান্ত বৰুৱাই নিজেই উল্লেখ কৰিছিল - *"ৰবীন্দ্রনাথ নোহোৱা হ'লে মই কিজানি কবিয়েই নহলোঁহেঁতেন।"* বৰুৱাৰ ***আশ্রয়, লখিমী , চকুপানী ঃ ফাগুনৰ*** আদি কবিতাত ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ কবিতাৰ প্রভাৱ লক্ষ্য কৰা যায়। বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতাতো ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ কবিতাৰ প্রভাৱ দেখিবলৈ পোৱা যায়। ৰবীন্দ্রনাথৰ চিন্তা আৰু পন্থা অনুসৰণ কৰি তেওঁ **'মর্মবাণী'** নামৰ কবিতাপুথিখন প্রকাশ কৰিছিল। কবি বসুৱে ১৯৪১ চনত ***শান্তিনিকতনে বর্ষা*** নামৰ কবিতা এটা লিখিছিল। এই কবিতাটোত ৰবীন্দ্রনাথ ঠাকুৰৰ প্রভাৱ স্পষ্ট। আকৌ, *' ৰবীন্দ্রনাথের প্রতি ঃ ১'* কবিতাটোত কবিয়ে এনেদৰে কৈছে -

"সুখে-দু:খে ক্ষোভে দ্বন্দ্বে
অনিন্দ্য অক্লান্ত ছন্দে
আমার বীণায় যেন বাজে বিশ্বমানবের সুর,
দাও সেই বাণী দাও মোর প্রাণে, রবীন্দ্র ঠাকুর।"
(রবীন্দ্রনাথের প্রতি ঃ ১)

দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাতে আছে সমাজ চেতনা আৰু নাগৰিক চেতনা। কলিকতা মহানগৰৰ যান্ত্রিকতাই দুয়ো কবিকে স্পর্শ কৰিছে। নৱকান্ত বৰুৱাৰ 'হে অৰণ্য হে মহানগৰ' কবিতাটো কলিকতা মহানগৰৰ পটভূমিত ৰচিত। অসমৰ আৰণ্যক নৈসর্গ আৰু কলিকতা মহানাগৰিক পাৰিপার্শ্বৰ মাজত বিৰাট ব্যৱধান কবিয়ে অন্তকৰণেৰে অনুভৱ কৰিছিল আৰু তাৰেই ফলশ্রুতিত 'হে অৰণ্য হে মহানগৰ' কবিতাটিৰ সৃষ্টি হৈছিল। উক্ত কবিতাটিত আছে ঃ

"কার্ফুৰ সময় হ'ল
সূর্যস্নাতা নগৰীৰ আঁচলৰ শেষ ৰশ্মিকণো
শুহি ললে ৰাতিৰ আকাশে;
নিস্তব্ধ মৰণ নামে । নগৰীৰ ধমনীত কৰোঁ অনুভৱ
কাজিৰঙা ডবকাৰ আৰণ্যক অপস্মাৰ
সৰীসৃপ-ক্রুৰ মৃত্যু.... সর্পিল জীৱন "
(হে অৰণ্য হে মহানগৰ)

'হে অৰণ্য হে মহানগৰ' কবিতাপুথিত সংকলিত আন এটি কবিতা **'স্বপ্নাৰম্ভ'** ত মহানগৰৰ বাস্তৱতা ফুটি উঠিছে ঃ

"মহানগৰী ওলমি থাকে
ডাৱৰৰ চিপজৰীত
চেঁপা খায়
সৌধৰ গম্বুজ"
(*স্বপ্নাৰম্ভ* ; হে অৰণ্য হে মহানগৰ)

ঠিক একেদৰে নৱকান্ত বৰুৱাৰ সর্বং প্রাণ এজতি, পঞ্চম অংক , আমাৰ আকাশ আদি কবিতাতো নাগৰিক চেতনা প্রতিফলিত হৈছে।

বাংলা কবি বুদ্ধদেব বসুৰ বহু কবিতাত নাগৰিক চেতনা লক্ষ্য কৰা যায়। তেখেতৰ ***ঘাম, কলকাতা*** আদি কবিতাত নাগৰিক জীৱনৰ চিত্র সুন্দৰভাৱে প্রতিফলিত হৈছে। ***ঘাম*** কবিতাত বসুৱে এনেদৰে কৈছে ঃ

"শ্রাৱণের ঘাম। শ্রাৱণের স্নান ঝরে ঘাসে-শুধু-ঘাসে
ট্রাম লাইনের পাশে
বালিগঞ্জে"
(*ঘাম*, 'শীতের প্রার্থনা ঃ বসন্তের উত্তর')

ঠিক একেদৰে বুদ্ধদেব বসুৰ 'কলকাতা' শীর্ষক কবিতাটিতো কলিকতা মহানগৰীক কেন্দ্র কৰি নাগৰিক জীৱনৰ বাস্তৱ তথা জীৱন্ত চিত্র অংকিত হৈছে।

আলোচ্য দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাত বৌদ্ধধর্মৰ দার্শনিক প্রভাৱ দেখিবলৈ পোৱা যায়। বৌদ্ধ দর্শনে নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত ভুমুকি মাৰিছে। তেখেতৰ এটি বিখ্যাত কবিতা ***'বোধিদ্রুমৰ খৰি'*** ত কবিয়ে গৌতম বুদ্ধৰ জ্ঞান, ঐতিহ্য আৰু ধ্যান-ধাৰণাক আধুনিক সভ্যতা আৰু সেই সভ্যতাই সৃষ্টি কৰা যুগ মানসৰ দ্বিধা আৰু সংশয়ৰ আধাৱত বিচাৰ কৰি চাইছে। বুদ্ধৰ ধ্যান-ধাৰণাৰ যি জ্ঞান,যি মুক্তি বা নির্বানৰ সন্ধান তাৰ স্থিতি স্বীকাৰ কৰিও আধুনিক যুগ চেতনাৰ সেই জ্ঞানৰ যি ৰূপান্তৱ তাৰ চিত্র কবিতাটিত সার্থকৰূপে ৰূপায়িত হৈছে। নৱকান্ত বৰুৱাৰ ***বুদ্ধ পূর্ণিমা, চিৰন্তন ১৯৮২, তিনিজন জ্ঞানী বান্দৰ, উভতি নহাৰ কবিতা*** আদি কবিতাত বৌদ্ধধর্মৰ দার্শনিক প্রভাৱ লক্ষ্য কৰা যায়। আনহাতে, বাংলা কবি বুদ্ধদেব বসুৰ ***'ৰাত তিনিটের সনেট ঃ ১'*** নামৰ কবিতাটিত বৌদ্ধ ধর্মৰ প্রভাৱ আছে। এই কবিতাটিত বুদ্ধদেব বসুৱে যীশুখ্রীষ্টৰ লগতে গৌতম বুদ্ধদেবৰ প্রসংগও উত্থাপন কৰিছে । তলত কবিতাটিৰ এটি স্তৱক দাঙি ধৰা হ'ল ঃ

"দূরের বন্ধুকে লেখা। যীশু কি পরোপকারী
ছিলেন, তোমার ভাবো ? না কি বুদ্ধ কোনো সমিতির
মাননীয় , বাচাল, পরিশ্রমী,অশীতির

মোহগ্রস্ত সভাপতি?" *(রাত তিনিটের সনেট ঃ ১)*

আমাৰ আলোচ্য দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাতে পাশ্চাত্যৰ কবিৰ কবিতাৰ প্ৰভাৱ পৰিছে। নৱকান্ত বৰুৱাৰ কবিতাত টি.এছ. এলিয়ট, হুইটমেন আদি পাশ্চাত্য কবিৰ কবিতাৰ প্ৰভাৱ দৃষ্টিগোচৰ হয় । *ক্ৰমশঃ , ইয়াত নদী আছিল* আদি কবিতাত এলিয়টীয় ভাব, চিত্ৰকল্পৰ প্ৰভাৱ সুস্পষ্ট। কবিৰ *'ইয়াত নদী আছিল'* কবিতাটোত টি.এছ. এলিয়টৰ The Waste Land নামৰ কবিতাটিৰ প্ৰভাৱ পৰিছে। টি.এছ. এলিয়টৰ দৰে কবি নৱকান্ত বৰুৱাও অতীতৰ শৌৰ্য-বীৰ্যৰ প্ৰতি গভীৰ শ্ৰদ্ধাশীল। আনহাতে, বঙালী কবি বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতাতো পাশ্চাত্যৰ কবিৰ প্ৰভাৱ লক্ষণীয়। ডি. এইচ. লৰেন্স, বোড্‌লেয়াৰ আদিৰ প্ৰভাৱ বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতাত দেখিবলৈ পোৱা যায়।

১.৪ নৱকান্ত বৰুৱাৰ 'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী' আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ 'সাগৰ দোলা' ঃ এটি তুলনামূলক আলোচনা ঃ

নৱকান্ত বৰুৱাৰ এটি বিখ্যাত কবিতা হৈছে 'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী'। এই কবিতাটোৰ শিৰোনাম দুই ধৰণে পোৱা যায়। মহেশ্বৰ নেওগৰ দ্বাৰা সম্পাদিত 'সঞ্চয়ন' ত এই কবিতাটি ***এটি প্ৰেমৰ পদ্য***[৩] নামেৰে আৰু অসম প্ৰকাশন পৰিষদে প্ৰকাশ কৰি উলিওৱা নৱকান্ত বৰুৱা ৰচনাৱলীৰ প্ৰথম খণ্ডত ***মনত পৰেনে অৰুন্ধতী***[৪] নামেৰে সংকলিত হৈছে। কবিতাটি কবিৰ দ্বিতীয় কাব্যসংকলন "এটি দুটি এঘাৰটি তৰা" (১৯৫৮) ত সন্নিৱিষ্ট হৈ আছে। আনহাতে, আধুনিক বাংলা কবি বুদ্ধদেব বসুৰ এটি বহুল চৰ্চিত কবিতা হৈছে 'সাগৰ দোলা'। এই কবিতাটি কবি বসুৰ "দময়ন্তী" (১৯৪৩) কবিতাপুথিত সংকলিত হৈ আছে।

'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী' আৰু 'সাগৰ দোলা' কবিতা দুটিৰ মাজত পৰিলক্ষিত হোৱা সাদৃশ্য ঃ

দুয়োটা কবিতাতে কবিদ্বয়ে বাস্তৱতাক স্বীকাৰ কৰি প্ৰেমৰ বৰ্ণনা কৰিছে আৰু দেহজ প্ৰেমৰ মাজেৰে সফল হ'ব বিচাৰিছে। *'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী'* ত থকা অৰুন্ধতী আৰু *'সাগৰ দোলা'* ত থকা সুৰঙ্গমা তেজ মঙহেৰে গঢ়া নাৰী।

বিষয়বস্তুৰ ফালৰপৰাও দুয়োটা কবিতাৰ মাজত সাদৃশ্য আছে। প্ৰেয়সীৰ সৈতে কটোৱা মধুৰ সময়ৰ স্মৃতি দুয়োটা কবিতাতে অনুৰণিত হৈছে। অৰ্থাৎ দুয়োটা কবিতাতে অতীত প্ৰীতি দেখা যায়। অতীতত প্ৰেয়সীৰ সৈতে কটোৱা স্মৃতি বিজড়িত কথাবোৰ কবি দুগৰাকীয়ে প্ৰতীক চিত্ৰকল্পৰ সহায়ত সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰিছে। **'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী'** আৰু **'মনে কি পড়ে সুৰঙ্গমা'** - এই বাক্য দুটিৰ মাজেৰে কবি দুগৰাকীৰ মনৰ মাজত যে অতীতৰ মধুৰ স্মৃতি জীৱন্ত হৈ আছে সেই বিষয়ে পাঠকে অনুধাৱন কৰিব পাৰে। দুয়োজন কবিয়েই আধুনিক কালৰ হোৱা বাবে দুয়োটা কবিতাতে আধুনিক কবিতাৰ লক্ষণ পূৰামাত্ৰাই প্ৰকাশ ঘটিছে। ইয়াৰোপৰি দুয়োজন কবিয়ে প্ৰায় একে পৰিমণ্ডলতে (কলিকতা মহানগৰ) ডাঙৰ-দীঘল হোৱাৰ বাবে তেওঁলোকৰ চিন্তা-ভাৱনাৰ সাদৃশ্য ঘটিছে।

পাশ্চাত্যৰ এগৰাকী বিখ্যাত কবি হ'ল হিলাৰে বেলক (Hilaire Belloc)। তেখেতে শ্বেইক্সপীয়েৰৰ জনপ্ৰিয় নাটক "The Tempest" ৰ চৰিত্ৰ Miranda ৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈ ১৯২৯ চনত 'Tarantella' নামৰ কবিতাটি ৰচনা কৰিছিল। আমাৰ আলোচ্য দুয়োটা কবিতাতে Hilaire Belloc ৰ 'Tarantella' কবিতাৰ প্ৰভাৱ বিদ্যমান। তিনিওটা কবিতাৰ আৰম্ভণি একেধৰণৰ।

'Tarantella' কবিতাটি আৰম্ভণি হৈছে ঃ

"Do you remember an inn, Miranda?"

নৱকান্ত বৰুৱাৰ 'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী' কবিতাটি আৰম্ভণি হৈছে ঃ

"বাৰিষাৰ ৰাতি তোমাৰ কবিক
মনত পৰেনে ,অৰুন্ধতী?"

বুদ্ধদেব বসুৰ 'সাগৰ-দোলা' কবিতাটি আৰম্ভণি হৈছে ঃ

"ছোটো ঘৰখানি মনে কি পড়ে,
সুৰঙ্গমা?"

উল্লেখ্য যে, নৱকান্ত বৰুৱাই 'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী' কবিতাটিৰ আৰম্ভণিতে কৃতজ্ঞতা প্ৰকাশৰ অৰ্থে পাশ্চাত্যৰ কবিগৰাকীৰ কবিতাৰ এটি শাৰী উদ্ধৃতি কৰিছে ঃ

"Do you remember an inn, Miranda?"

আলোচ্য দুয়োটা কবিতাতে প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পৰ প্ৰয়োগ ঘটিছে। দুয়োজন কবি প্ৰতীক চিত্ৰকল্প প্ৰয়োগত সিদ্ধহস্ত। নৱকান্ত বৰুৱাৰ 'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী' কবিতাটোৰ মনোৰম চিত্ৰকল্পটি হৈছে ঃ

"চুলিৰ মেঘত লাহী আঙুলিৰ বহুতো জোন
(জোৱাৰৰ বাবে সাগৰ নাছিল)
বৰফৰ দৰে চেঁচা পৰশতো
সি যে কি শান্তি
অৰুন্ধতীহ্ল
অৰুন্ধতীহ্ল" *('মনত পৰেনে অৰুন্ধতী')*

ঠিক একেদৰে, বুদ্ধদেব বসুৰ 'সাগৰ দোলা' কবিতাটিত প্রয়োগ হোৱা এটি চিত্রকল্প হৈছে ঃ

"আকাশ-মাতাল জানালা খোলা
দিগন্ত থেকে দিগন্তরে,
দিগন্ত -জোড়া সাগর ভ'রে
ঢেউয়ের দোলা।" *('সাগর-দোলা')*

এই দুয়োটা চিত্রকল্পৰ জৰিয়তে কবি দুগৰাকীয়ে প্রেমৰ বর্ণনা অধিক মনোগ্রাহী কৰি তুলিছে।

কবি নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ মতে প্রেম হ'ল আশ্রয় আৰু শান্তি, ই ৰামধেনুৰ দৰে ক্ষণস্থায়ী যদিও সমগ্র জীৱনৰ বাবে পোহৰ বিলাব পৰা শক্তিৰ অধিকাৰী। জীৱন সুন্দৰ কৰি তোলে নাৰীৰ মমতা আৰু প্রকৃতিৰ প্রেৰণাই। প্রকৃতিৰ বিনন্দীয়া ৰূপৰ সৈতে নাৰীক তুলনা কৰা হয়। আমাৰ আলোচ্য দুয়োগৰাকী কবিয়েই প্রকৃতিৰ অনাবিল সৌন্দর্যৰ প্রতি গভীৰ অনুৰাগী। প্রকৃতিৰ উপাদানবোৰক সাৰথি কৰি দুয়োগৰাকী কবিয়েই তেওঁলোকৰ প্রেয়সীৰ ৰূপৰ সন্ধান কৰিছে। দুয়োটা কবিতাতে প্রকৃতিৰ অসংখ্য উপাদান দেখিবলৈ পোৱা যায়। 'মনত পৰেনে অৰুন্ধতী' কবিতাটিত উল্লিখিত প্রকৃতিৰ উপাদানবোৰ হ'ল - বাৰিষাৰ ৰাতি, দূৰৰি বনত মুকুতাৰ মণি, সাগৰ, ডাৱৰ,আকাশ, ধুমুহা পখীৰ এটি লহমাৰ নীড় । ঠিক একেদৰে বুদ্ধদেব বসুৰ 'সাগৰ দোলা' কবিতাটিত আছে ঃ নীল আকাশ, তীক্ষ্ণ তাৰাৰ নিবীড় ভিড়ে, সূর্যৰ বাণ ইত্যাদি। প্রকৃতিৰ এই অনুষংগবোৰৰ যোগেদি কবিদ্বয়ে মনৰ বিষাদ-যন্ত্রণা, আনন্দ- প্রেম , ভালপোৱাৰ চিত্র জীৱন্ত ৰূপত অংকন কৰিছে। অর্থাৎ প্রকৃতিৰ অনুষংগবোৰৰ প্রয়োগত প্রেয়সীৰ সৈতে কটোৱা স্মৃতি উজ্জ্বল ৰূপত মূর্ত হৈ উঠিছে।

২.০ অধ্যয়নৰ ফলাফল ঃ নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসু দুয়োগৰাকীয়ে আধুনিক যুগৰ পথিকৃৎ কবি। তেওঁলোকৰ দুয়োটা কবিতাই প্রেমৰ কবিতা যদিও সেই প্রেম ৰোমান্টিক যুগৰ কবিৰ কবিতাৰ প্রেম নহয়। ৰোমান্টিক যুগৰ কবিসকলে অতীন্দ্রিয় প্রেমত বিশ্বাস কৰিছিল। কিন্তু, আধুনিক যুগৰ কবিসকলৰ কবিতাত দৈহিক প্রেমৰ বাস্তৱ চিত্র অংকন হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। আলোচ্য দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাতে প্রেম গঢ়ি উঠিছে বাস্তৱতাৰ ভেঁটিত। কবিতা দুটিৰ মাজেৰে প্রকাশ পোৱা প্রেম ৰোমান্টিক প্রেম নহয়। *"নৱকান্ত বৰুৱা আৰু বুদ্ধদেব বসুৰ কবিতা ঃ এটি তুলনামূলক আলোচনা"* শীর্ষক গৱেষণা পত্রখন প্রস্তুত কৰাৰ অন্ততঃ আমি তলত উল্লেখ কৰা সিদ্ধান্ত কেইটাত উপনীত হ'ব পাৰিলোঁ ঃ

ক) দুয়োগৰাকী কবিয়েই আধুনিক সমাজ ব্যৱস্থাৰ চিত্র বাস্তৱসম্মতভাৱে অংকন কৰাত সুদক্ষ।

খ) দুয়োগৰাকী কবিৰ কবিতাতে আধুনিক কবিতাৰ লক্ষণ প্রতিফলিত হৈছে।

গ) দুয়োগৰাকী কবিয়েই অধ্যয়নশীল । যাৰ বাবে, দেশী-বিদেশী কবিৰ কবিতাৰ প্রভাৱ দুয়োজন কবিৰ কবিতাত লক্ষ্য কৰা যায়।

ঘ) ভাৰতীয় পৰম্পৰা আৰু ঐতিহ্যৰ প্রতি দুয়োগৰাকী কবি গভীৰ শ্রদ্ধাশীল। ❑

প্রাসংগিক টোকা ঃ

১) ডেকা, নমিতা (সম্পা.)। *কেৱল এমুঠি প্রেম* । বাণী মন্দিৰ। পৃ. ৩৯
২) হাজৰিকা , কৰবী ডেকা। *অসমীয়া কবিতা* । বনলতা , পাণবজাৰ,২০২০। পৃ. ১৯৩
৩) নেওগ, মহেশ্বৰ। *সঞ্চায়ন* । সাহিত্য অকাডেমি,২০১৯। পৃ. ৩৯২
৪) কলিতা, প্রমোদ (প্রকাশক)। *নৱকান্ত বৰুৱা ৰচনাৱলী, প্রথম খণ্ড*। অসম প্রকাশন পৰিষদ,২০২১। পৃ. ৪০

গ্রন্থপঞ্জী ঃ

কলিতা, প্রমোদ (প্রকাশক)। *নৱকান্ত বৰুৱা ৰচনাৱলী,প্রথম খণ্ড*। অসম প্রকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী,২০২১
কটকী, চন্দ্র। *আধুনিক অসমীয়া কবিতা* । অসম সাহিত্য সভা।
চক্রৱর্তী, অমৰেন্দ্র (সম্পা.)। *কবিতা পৰিচয়* । স্কাশ্মৰপ্রকাশনী প্রা: লিমিটেড। কলি-১৯, প্রথম প্রকাশ১৯৯৮
ডেকা, হৰেকৃষ্ণ। *আধুনিকতাবাদ আৰু অন্যান্য প্রবন্ধ*। লয়ার্চ বুক ষ্টল। প্রথম প্রকাশ,১৯৯৮
ডেকা, নমিতা। *কেৱল এমুঠি প্রেম* । বাণী মন্দিৰ, গুৱাহাটী।
ত্রিপাঠী,দীপ্তি। *আধুনিক বাংলা কাব্য পৰিচয়* । দে'জ পাবলিশিং ,কলি-৭৩। ষষ্ঠ সংস্কৰণ, জুলাই,২০০৩
নেওগ, মহেশ্বৰ। *সঞ্চয়ন* । সাহিত্য অকাডেমি,২০১৯
মুখোপাধ্যায়, তৰুণ (সম্পা.)। *বুদ্ধদেব বসু মননে অন্বেষণ* । পুস্তক বিপনি, কলি-৯, প্রথম প্রকাশ,১৯৯৮
হাজৰিকা,কৰবী ডেকা। *অসমীয়া কবিতা* । বনলতা, পানবজাৰ,২০২০

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

(বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ 'মৃত্যুঞ্জয়' উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লিখনেৰে)

গীতা কেওঁট

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
মাজুলী, অসম - ৭৮৫১০৪
৬০০৩৮০৩১৯২
gitakeot71@gmail.com

ড° হিমাদ্রী শইকীয়া

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়
মাজুলী, অসম - ৭৮৫১০৪
৯৭৬৫২২১১৭২
himarimeec@gmail.com

প্রস্তাৱনা ঃ

সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ অনুবাদ কৰা কিছু ক্ষেত্রত অত্যন্ত জটিল। প্রায়বোৰ সৃষ্টিশীল সাহিত্যসমূহ ব্যক্তি বা সমাজ জীৱনক কেন্দ্র কৰি ৰচনা কৰা হয়। এনে সাহিত্যৰাজিৰ ক্ষেত্রত ভাষিক দিশ আৰু সাংস্কৃতিক দিশৰ গুৰুত্ব থকাটো স্বাভাৱিক। ভাষা কেৱল শব্দৰ সমষ্টি নহয়। ভাষাৰ শব্দৰ লগতে ভাৱ-অনুভূতি, সমাজ-সংস্কৃতি ওতঃপ্রোতভাৱে জড়িত হৈ থাকে। সেয়ে কোনো ভাষাৰ সংস্কৃতিৰ বিষয় এটাক আন এটা ভাষাত প্রতিষ্ঠাপন কৰাত সমস্যাৰ উদ্ভৱ হয়। অনুবাদত দেখা দিয়া এনে সমস্যাবোৰৰ কাৰণে সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ধাৰণাৰ উদ্ভৱ হৈছে। সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ধাৰণা অনুসৰি সাংস্কৃতিক কাৰণত কিছুমান প্রসংগ অনুবাদ কৰা অসম্ভৱ। আমাৰ এই গৱেষণা পত্রত বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে উদ্ভৱ হোৱা সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতাৰ সম্পর্কে অধ্যয়ন কৰা হয়।

বীজ শব্দ ঃ

সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা, লক্ষ্য পাঠ, উৎস পাঠ, অসমতুল্যতা

পৰিচয় ঃ

বিশ্বত বসবাস কৰা ভিন্ন ভাষা-ভাষী লোকসকলৰ মাজত যোগাযোগৰ একমাত্র মাধ্যম হৈছে অনুবাদ। শৈক্ষিক প্রেক্ষাপটত অনুবাদ শব্দটো যিকোনো লিখিত পাঠ অনুবাদ কৰাটো বুজায়। প্রাচীন কালৰে পৰা অনুবাদৰ জৰিয়তে লিখিত পাঠ এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ অন্তৰণ কৰা হৈছে। যদিও সাংস্কৃতিক আৰু ভাষিক বৈচিত্র্যতাৰ কাৰণে পাঠ এখন এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে সমস্যাৰ সৃষ্টি হয়। কিছু অনুবাদবিদসকলৰ মতে সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত বিষয়সমূহ অনুবাদ কৰাটো অসম্ভৱ। সংস্কৃতিৰ উপাদানসমূহ অনুবাদ কৰাৰ সমস্যাৰ বাবেই সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ধাৰণাৰ উদ্ভৱ হৈছে। ইংৰাজী (Cultural Untranslatability) শব্দৰ প্রতিশব্দ ৰূপে অসমীয়া ভাষাত সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা শব্দটো অনা হৈছে। এই ধাৰণা অনুসৰি সাংস্কৃতিক কাৰণত কিছুমান প্রসংগ অনুবাদ কৰাটো প্রায় অসম্ভৱ। অননুবাদ্যতা (Untranslatability)ক জে.চি কেটফোর্ডে A Linguistic theory of Translation শীর্ষক গ্রন্থখনত দুটা ভাগত আলোচনা কৰিছে। তেখেতে ভাষিক অননুবাদ্যতা আৰু সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা সম্পর্কে আলোচনা আগবঢ়াইছিল। সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতাৰ তেতিয়াই উদ্ভৱ হৈ যেতিয়া এটা সংস্কৃতিৰ অভিব্যক্তি বা উপাদানক আন এটা ভাষাত সঠিকভাৱে অন্তৰণ কৰিব নোৱাৰি। "Cultural Untranslabality arises when a situational feature, functionally relevant for the SL text, is completely absent from the culture of which the TL is a part".

নিডা আৰু টাৱাৰৰ মতে, "The best Translation does not sound like a Translation" অর্থাৎ শ্রেষ্ঠ অনুবাদ অনুবাদৰ দৰে শুনা নাযায়। তেওঁলোকে অনুবাদৰ ক্ষেত্রত 'naturalness' ক অগ্রাধিকাৰ দিছে। লক্ষ্য পাঠত naturalness ক অগ্রাধিকাৰ দিলে মূল পাঠৰ সমাজ সংস্কৃতিৰ পৰা বিছিন্ন হৈ পৰাটো স্বাভাৱিক। কেতিয়াবা সাংস্কৃতিক প্রসংগসমূহ এটা ভাষাৰ পৰা আন এটা ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে কোনো সমতুল্য পোৱা নাযায় তেতিয়া বিষয়টো সঠিকভাৱে অনুবাদ কৰা নহয়।

আটাইতকৈ কঠিন হৈছে সাংস্কৃতিক অনুবাদ। প্রতিটো সংস্কৃতিৰে কিছু সুকীয়া বিশেষত্ব থাকে। যি বিশেষত্বসমূহ কেৱল সেই সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত ভাষাৰ মাধ্যমেৰে প্রকাশ কৰিব পাৰি। আন এটা ভাষাত এনে উপাদানসমূহ অনুবাদ কৰিলে সাংস্কৃতিক সুঐতা বজাই ৰাখিব নোৱাৰে। ফলত মূল অভিপ্রায়ক প্রতিনিধিত্ব কৰাত বিফল হয়। সেয়ে কোনো এটা সমাজৰ সৈতে সম্পর্কিত সংস্কৃতিৰ উপাদানসমূহ সদায় স্পষ্ট আৰু শুদ্ধ ৰূপত অনুবাদ কৰাটো আৱশ্যক। কাৰণ ভূল অনুবাদে মূল সংস্কৃতিক গভীৰভাৱে প্রভাৱিত কৰিব পাৰে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন শীর্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য হ'ল—

• মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে কেনেধৰণৰ সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতাৰ সন্মুখীন হৈছে সেই সম্পর্কে আলোচনা কৰা।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন শীর্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব হ'ল—

• মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখনৰ হিন্দী ভাষাত অনুদিত পাঠখনে সাংস্কৃতিক সুঐতা বজাই ৰখাত সক্ষম হৈছে নে নাই নির্ণয় কৰা।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন শীর্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে বর্ণনামূলক পদ্ধতি আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। বর্ণনামূলক পদ্ধতিৰ জৰিয়তে সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতাৰ বিষয়ে বর্ণনা কৰা হৈছে। বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত অসমীয়া ভাষাত ৰচিত মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে দেখা দিয়া সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা সম্পর্কে বিশ্লেষণ কৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন শীর্ষক বিষয়টো যথেষ্ট বহল। সেয়েহে বিষয়ৰ সীমাবদ্ধলৈ লক্ষ্য ৰাখি বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ অসমীয়া ভাষা ৰচিত মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে দেখা দিয়া সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা সম্পর্কে অধ্যয়নৰ পৰিসৰলৈ অনা হৈছে।

তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন শীর্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে মূখ্য উৎস আৰু গৌণ উৎসৰ সহায় লোৱা হৈছে। মূখ্য উৎস হিচাপে বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ অসমীয়া ভাষাত ৰচিত মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাস আৰু কৃষ্ণ প্রসাদ সিং মগধে হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰা মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন লোৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে প্রাসংগিক উৎস, আলোচনীৰ সহায় লোৱা হৈছে।

মূল আলোচনা ঃ

অনুবাদ হ'ল এনে এক প্রক্রিয়া যাৰ জৰিয়তে এটা ভাষাত থকা কোনো পাঠ্য সামগ্রী আন এটা ভাষালৈ লৈ যাব পাৰি। কিন্তু সাংস্কৃতিক, ভাষিক বা ভৌগোলিক কাৰণতে হওক প্রত্যেক ভাষাত এনে কিছু দিশ বা অভিব্যক্তি থাকে যিবোৰৰ অনুবাদ প্রায় অসম্ভৱ। আমাৰ আলোচ্য বিষয়টো হৈছে বীৰেন্দ্র কুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসত পৰিলক্ষিত হোৱা সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা বিশ্লেষণ কৰা।

মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন অসমীয়া সাহিত্যৰ জগতত এখন উল্লেখযোগ্য উপন্যাস। ১৯৪২ চনৰ ঘটনাক কেন্দ্র কৰি বীৰেন্দ্র কুমাৰ ভট্টাচার্য্যই মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন ৰচনা কৰিছিল। পৰৱর্তী সময়ত কৃষ্ণ প্রসাদ সিং মগধে এই উপন্যাসখন হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰে। হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰা এই উপন্যাসখনত ঠায়ে ঠায়ে সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতা পৰিলক্ষিত হয়।

মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখনত বংগলা উৎসৱৰ বিষয়ে এনেদৰে পাওঁ— "ডিমিয়ে এটা চিগাৰেট উলিয়াই দিলে

গাত ওলমি থকা এটা মোনাৰ পৰা। ভিবিয়ে জেপত ভৰাই থলে। নাটনি পৰিলে সি কামত লাগিব। চিগাৰেটটো মুখত সোমালত নিসঙ্কোচভাৱে ডিমিয়ে তাক; লাই দিলে। ডিমিয়ে কলে আমাৰ নোকমাৰ ঘৰত বংগলা হৈ আছে।" (পৃষ্ঠা ৯৩) *"यह तो कीमती सिगरेट है कहाँ से लायी? कहते हुए भिभिसार बे बीढ़ी अपने जेब में रख ली। वह कभी अभाव मे काम आएगी। सबलाइट सिगरेट मुहँ म लगासे ही डिमि बे उसे बिस्संकोच भाव ले जला दिया और कहा- "हमारे बोक्मा, गाँव के मुखिया के यहाँ बगँला उत्सव हो रहा है। आज छत्तछत्त छोवा हुआ है। वही बहुत सारी सिगरेटें लाया है।"* (পৃষ্ঠা ৯৩)

বংগলা উৎসৱ হৈছে গাৱোসকলৰ কৃষিভিত্তিক উৎসৱ। বংগলা উৎসৱ সাধাৱণতে দুই তিনিদিনৰ পৰা আৰম্ভ কৰি এসপ্তাহ পর্যন্ত পালন কৰা হয়। এই উৎসৱত তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত ৰঙীন সাজ পৰিধান কৰি ঢোলৰ তালে তালে নৃত্য কৰে। এক সুন্দৰ পৰিৱেশৰ সৃষ্টি হয়। কিন্তু বংগলা উৎসৱ আয়োজনৰ সময়ত সৃষ্টি হোৱা চিত্রকল্প এই পৰিৱেশৰ লগত অপৰিচিত ব্যক্তিসকলৰ চকুত আহিব কেনেকৈ? বংগলা উৎসৱত ডেকা জেষ্ঠ্যসকলে কৰা ফুর্তি-আনন্দ, গীত-নৃত্যৰ অনুভৱ সেই সংস্কৃতিৰ লগত পৰিচয় নথকা ব্যক্তিৰ মনত অনুভৱ হব কিদৰে? সাংস্কৃতিক ভিন্নতাৰ বাবে হিন্দী ভাষাৰ পাঠকে এনে অনুভৱ উপলব্ধি কৰাৰ পৰা বঞ্চিত হব।

উপন্যাসখনৰ এঠাইত অসমীয়া বিবাহৰ কথা পাওঁ। বিবাহ এক সামাজিক অনুষ্ঠান। ভাষা-জাতি-ধর্ম অনুসৰি বিবাহ বেলেগ বেলেগ নীতি-নিয়মেৰে কৰা হয়। একেখন গাৱতে ভাষা-জাতি-ধর্ম অনুসৰি বিবাহত ভিন্ন পৰিৱেশৰ সৃষ্টি হয়। মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখনত বিয়ানাম কিছুমান পোৱা যায়। যিসমূহ অনুবাদ কৰোঁতে অনুবাদকৰ সমস্যাৰ সৃষ্টি হৈছে। বিয়ানামবোৰ হিন্দীলৈ অনুবাদ কৰা হৈছে যদিও মূলৰ সমান বঞ্চিত হোৱা নাই।

"আৰতিয়ে কিবা কব খুজিছিল, কিন্তু নোৱাৰিলে। তাই হুকহুককৈ কান্দিবলৈ ধৰিলে। মাকে কলে, বল দৈয়ন দিবৰ হবই। আয়তীসকল তোৰ বিচাৰ ল'ব পৰ হৈছে।" (পৃষ্ঠা ২৫৪)

आरती कुछ कहना चाहती थी, पर कुछ कह नहीं सकी। वह फफक-फफककर रोने लगी। च्च्चल, दैयन का समय हो रहा है। हल्दी चढ़ाने वहाँ औरतें तुझे खोज रही होंगी। आरती की माँ के स्वर में रुखाई थी। (पृष्ठा २५४)

দৈয়ন দিয়া অসমীয়া সমাজত বিবাহৰ এক পর্ব। এই পর্ব কাহিলী পুৱাতে কৰা হয়। ইয়াৰ বাবে প্রয়োজন হৈ কাঁহৰ কাঁহী, পাণ, তিল, দৈ কলপাত, পটাগুটি আৰু চাকি আদি। দৈয়ন দিয়াৰ সময়ত আয়তীসকল উৰুলি দিয়ে আৰু বিয়ানাম গায়। আয়তীৰ মাতত সকলোৱে সাৰ পাই। শোৱাৰ পৰা উঠি আহি দৰা বা কইনাৰ গাত দৈ সানে। তাৰ পিছত ধেমালিৰ চলেৰে ইটোৱে-সিটোৰ গাত দৈয়ন সানে। অসমীয়া সমাজৰ এক অনন্য পৰিৱেশ। দৈয়ন দিয়া পর্বৰ কথা হিন্দী পাঠকৰ বাবে বুজাত সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰিব। অনুবাদকে দৈয়ন দিয়া পর্বৰ কথা বন্ধনীৰ ভিতৰত বা বর্ণনা ৰূপে উপস্থাপন কৰিলে হিন্দী পাঠকে অর্থটো ঠিকেই বুজিব পাৰিব। কিন্তু দৈয়ন দিয়াৰ সময়ত যি ৰজনজনাই যোৱা পৰিৱেশৰ সৃষ্টি হৈ সেই পৰিৱেশৰ চিত্রকল্প অনুভৱ কৰিব কেনেকৈ? যিটো উপলব্ধি কৰাৰ অত্যন্ত আৱশ্যক।

অসমীয়া সমাজত তামোল-পাণৰ এক বিশেষ স্থান আছে। মাংগলিক কাম-কাজ, মান ধৰা, নিয়ন্ত্রণ জনোৱা, আলহীক শোধ-পোছ কৰা, দায় জগৰ গুছোৱা, মুখশুদ্বি কৰা আদিত তামোল পাণৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়।

বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখনত আৰম্ভণিৰ পৰা অন্তলৈকে কেইবাবাৰো তামোল পাণৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। কৃষ্ণপ্রসাদ সিং মাগধে অনুবাদ কৰা মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখনত অসমীয়া সমাজত বিশেষ স্থান দখল কৰা তামোল-পাণৰ ঠাইত কেৱল পাণৰ কথা পোৱা যায়। হিন্দী ভাষাৰ লোকসকলৰ মাজত তামোলৰ প্রয়োগ নথকাৰ বাবে হয়তো অনুবাদকে কেৱল পাণৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। এনে কৰাৰ ফলত অসমীয়া সংস্কৃতিৰ লগত ওতঃপ্রোতভাৱে জড়িত তামোলৰ কথা হিন্দী ভাষাৰ পাঠকৰ মাজত উপস্থাপন কৰা নহ'ল।

মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখনত আৰম্ভণিৰ পৰা শেষলৈকে জতুৱা ঠাচ, বচন, ভিন্ন সাংস্কৃতিক অভিব্যক্তিৰে ভৰি আছে যিবোৰ অনুবাদ কৰা প্রায় অসম্ভৱ। যেনে নকৰিবৰ চকৰি কৰিলে (পৃষ্ঠা ৮), অহুকাণে-পহুকাণে (পৃষ্ঠা ১৫), গুণা-গথা (পৃষ্ঠা ১৫), হিয়াৰ আমঠু (পৃষ্ঠা ৫২), যাই লাং থাকে লাং (পৃষ্ঠা ৫২), এনেও মৰো, তেনেও মৰো বাপৰ চূণ খায়ে মৰো (পৃষ্ঠা ৫২), আনিব কৈলো মৈখান, আনি দিলে ধনুখন (পৃষ্ঠা ৫৩), তৰিলে দেশ, মৰিলেস্বর্গ (পৃষ্ঠা ৫৪), ধানটোৰ প্রতি কনটো মানুহটোৰ প্রতি মনটো (পৃষ্ঠা ৫৯), দেহাই বেহা (পৃষ্ঠা ৫৬), পাগত উঠা (পৃষ্ঠা ৫৯),

কাকুতি-মিনতি (পৃষ্ঠা ৬৫), আলৈ আথানি (পৃষ্ঠা ৭১), গাই-বাই চাব লাগিব (পৃষ্ঠা ৭৫), অমাতৰ মাত (পৃষ্ঠা ৮০), দহো আঙুলিয়ে খায়, বুঢ়াই হেঁচুকিলেহে যায় (পৃষ্ঠা ৮২), গাজত লগা (পৃষ্ঠা ৮৫), তেল ফাটিছে (পৃষ্ঠা ১০৮), ফুটুকাৰ ফেন (পৃষ্ঠা ১০৯), আঁচলৰ ধন (পৃষ্ঠা ১১৪), দেহে কেহে (পৃষ্ঠা ১১৫), আমোল মোলাই (পৃষ্ঠা ১১৮), আকোৰ গোজ (পৃষ্ঠা ১২৭), মোমাইতকৈ কণা মোমায়েই ভাল (পৃষ্ঠা ১৬১), আটোম টোকাৰি (পৃষ্ঠা ২১৪), কেতিয়া কেনেকৈ মানুহৰ গাত জুই; লে, সৰিয়হ ফুটে তাক ক'ব নোৱাৰি (পৃষ্ঠা ২১৭) নাও উঠোতে বুৰে, নামোতে বুৰে (পৃষ্ঠা ১৮০), জয়ৰামৰ গা বাজিল (পৃষ্ঠা ২০১), গা বেজাইছে (পৃষ্ঠা ২২৬), জাকত জিলিকা (পৃষ্ঠা ২৩২), হৰি হৰি (পৃষ্ঠা ৫৯), তর্জন গর্জন (পৃষ্ঠা ২৪৪), যেনে কুকুৰ তেনে টাঙোন (পৃষ্ঠা ২৩৯), পুৰুষৰ ৰণ, তিৰীৰ বিয়ন (পৃষ্ঠা ২৩৩), আলচা কথা নহয় সিন্ধি, বাটত আছে কণা বিধি আদি। তলত মূল পাঠ আৰু লক্ষ্য পাঠৰ জতুৰা ঠাঁচৰ উদাহৰণ দিয়া হল-

মূল পাঠত - কৃষ্ণক চিন্তি, তুমি গাজত লগা কথা এটা কৈছা। উৰহী গছৰ ওৰ পোৱা টান। (পৃষ্ঠা - ৮৫)

লক্ষ্য পাঠত — *"है कृष्ण, आपकी यह बात भी एकदम सही है। सेम की लता का और-छोर पाना बड़ा मुश्किल होता है।"* (পৃষ্ঠা - ৮৫)

গাজত লগা কথা (হৃদয়ত বিদাৰক, হিয়াত লগা কথা) এই জতুৰা ঠাঁচৰ ঠাইত অনুবাদকে (*आपकी यह बात भी एकदम सही है*) বাক্যৰ প্রয়োগ কৰিছে।

মূল পাঠ - বৃটিছ গলে আকৌ গাই-বাই চাব লাগিব। (পৃষ্ঠা ৭৫)

লক্ষ্য পাঠ - *अंगरेजों के चले जाने पर उन्हे पुनः अपना राज-पाट तो सँभालना ही पड़ेगा।*

মূল পাঠ - তই জোন নহৰ সঁচা কথা। কিন্তু জোনক কোৱা মানে আঁচলৰ ধনক কোৱা। (পৃষ্ঠা ১১৪)

লক্ষ্য পাঠ — *"यह सच है की तुम चाँद नहीं हो, वरना मेरे इतना नजदीक कैसे होती? लेकीन चाँद से कहना का कुछ मतलब होता है, यानी अपनी प्रियतमा से कुछ कहना।"*

অনুবাদকে মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে সাংস্কৃতিক প্রসংগসমূহৰ ক্ষেত্রত ঠায়ে ঠায়ে আদান প্রক্রিয়াৰ সহায় লৈছে। আদান প্রক্রিয়াৰ জৰিয়তে মূল পাঠৰ পৰা লক্ষ্য পাঠলৈ লৈ যোৱা শব্দবোৰ হল— দৈয়ন দিয়া, বংগলা উৎসৱ, জলপান, পিঠাগুৰি, বিহু, পদ, কীর্ত্তন, নামঘোষা, আর্ণাম আটুম, ৰংকেৰ উৎসৱ, জ্বৰ, সত্র, পীনি, ৰয়, লেক, বাট, ব্যভিচাৰ-ত্যভিচাৰ ঢেঁকীয়া, মণিকূট, পীৰা আদি। এই শব্দবোৰ পোনপটীয়াকৈ উৎস পাঠৰ ৰা লক্ষ্য পাঠলৈ অনা হৈছে। কিছুমান শব্দ আকৌ আদান নকৰি সাল-সলনি কৰি অনুবাদ কৰিছে যেনে -

নামঘৰ - কীর্ত্তনঘৰ
বাঁহৰ পানী খোৱা চুঙা - জগ কা পানী
হৰি হৰি - ৰাম ৰাম
কৃষ্ণক চিন্তি - হে কৃষ্ণ
জহা চাউল - বাসমতী চাউল
তামোল পাণ - পাণ

গীত, পদ, ঘোষা আদি সংস্কৃতিৰ অন্তর্গত। গীত, পদ, ঘোষাৰ জৰিয়তেও একোখন সমাজৰ বহু কথা জানিব পাৰি। মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন নানা গীত, পদ, ঘোষাৰে ভৰি আছে। গীত, পদ, ঘোষা আদিৰ অনুবাদৰ ক্ষেত্রত অনুবাদকে কিছুমান সম্পূর্ণকৈ অনুবাদ কৰিছে। কিছুমান আংশিকভাৱে অনুবাদ কৰিছে আৰু কিছুমানৰ গীত বা পদ ৰূপে অনুবাদ নকৰাকৈ ৰৰং মূল ভাৱখিনি বর্ণনা কৰিছে। বীৰেন্দ্র কুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখনত ঘোষা পাও—

নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন হৰি
নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন
হৰি হৰি ৰাম, নিৰঞ্জন নিৰঞ্জন হৰি। (পৃষ্ঠা - ১৬৩)

একেটা ঘোষা অনুবাদ গ্রন্থখনত এনেদৰে পাও -

निरंजन निरंजन निरंजन हरि।
निरंजन निरंजन निरंजन निरंजन.....
हरि हरि राम, निरंजन निरंजन हरि!... (পৃষ্ঠা - ১৬০)

মূল গ্রন্থখনত ঘোষাৰ প্রথম শাৰীত নিৰঞ্জন শব্দটো ৬ বাৰ পুণৰাবৃত্তি হৈছে আনহাতে লক্ষ্য পাঠত কেৱল মাত্র ৩ বাৰ পুণৰাবৃত্তি হৈছে। মূল পাঠত লেখকে দাৰি প্রয়োগ কৰা নাই কিন্তু অনুবাদকে প্রথম শাৰীত দাৰি প্রয়োগ কৰিছে।

মূল উপন্যাসখনত পদ এফাঁকি পোৱা যায়—

নাহি মৃত্যু ভয় ইটো শৰীৰৰ
অৱশ্যে আছে বিচ্ছেদ।
নেদেখিবো আৰ চৰণ তোমাৰ

ইসে বৰ হৃদি খেদ।
ভকতৰ ধন আমাৰো জীৱন
ইসে সংসাৰ সাৰ।
জানি ভয়হাৰী তেজিতে নপাৰি
চৰণ আৰ তোমাৰ।। (পৃষ্ঠা - ২৬)

এই একেই ফাঁকি পদ লক্ষ্য পাঠত অনুবাদকে কেৱল মূল ভাৱ বর্ণনা কৰিছে এনেদৰে—

हठात माणिक बुरा गुणगुणाने लगा। भाव था, हमे मृत्यु का भय नहीं है। देह नश्वर है, एक दिन इसका नाश होगा ही। खेद और पीढ़ा इस बात की है की शरीर न रहने पर तेरे श्रीचरणों के दर्शन क्यों कर होंगे। (পৃষ্ঠা - ২৯)

মূল উপন্যাসখনৰ তিনি নম্বৰ অধ্যায়ৰ শেষৰ ফালে পদ এফাঁকি পোৱা যায়। এই ফাঁকি পদৰো অনুবাদকে পদ আকাৰে অনুবাদ নকৰাকৈ কেৱল মূল ভাৱখিনি বর্ণনা কৰিছে। মূল পাঠৰ পদ ফাঁকি -

বিনা আপদত যিটো নিজ ধর্ম ছাড়ে।
যমদূতে ধৰি তাকে অসিপত্রে পাৰে।
চাবুকে কোবাৰে আতি ত্রাসতে লৱৰে।
ছেদে অঙ্গে অসিতে মূর্চ্ছা গৈয়া পৰে।
ঘোৰ তাল বনপত্র খুৰতৰ ধাৰ।
স্বধর্ম ত্যাগীক কাটি কৰে বন্দামাৰ।
তেজি নিজ ধর্ম পাষণ্ডৰ পাৱে গতি।
শুকৰ মুখৰ কথা শুনিয়ো সম্পতি। (পৃষ্ঠা - ৬৬)

লক্ষ্য পাঠত পদ ফাঁকিৰ বর্ণনা—

तभी मधु एक पद गुणगुणा उठा। भाव था.

"आपत्ति सिर पर हो न हो, फिर भी यदी कोइ धर्म को छोड़े, तब यमदूत भी उसे छोड़ते नहीं।" (পৃষ্ঠা - ৬৫)

এই অধ্যায়টিত মূল ৰচনাখনত আৰু এফাঁকি গীত পাও—

সমহৰে আদি নৰতনু উদ্যম কোটিয়ো নপায় পুনু
কোনো ভাগ্যোদয়ে পায়া নাৱ দৃঢ় আতি।
গুৰু ভৈলা আত কর্ণধাৰ কৃষ্ণ ভৈলা অনুকূল বায়ু
তথাপি সংসাৰ নতৰয় আত্মঘাতী।। (পৃষ্ঠা - ৫৬)

এই গীতটো অনুবাদকে হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে গীতৰ প্রথম শাৰীটো অনুবাদ কৰা নাই তাৰ পিছৰ শাৰী কেইটাহে অনুবাদ কৰিছে। ফলত লক্ষ্য পাঠত গীতটিৰ এটি অংশ লোপ পাইছে।

बड़भागों मिलती नर-तन जैसी हढ़ नाव
गुरु बनते कर्णधार अनुकूल वायु कृष्ण
नहीं तिर पाते संसार आत्मघाती मन - (পৃষ্ঠা - ৫৯)

লক্ষ্য পাঠত সম্বন্ধ বুজোৱাৰ ক্ষেত্রতো বিচ্যুতি পৰিলক্ষিত হয়। যেনে— অসমীয়া উপন্যাসখনত থকা 'কদম বাই' শব্দটো হিন্দী উপন্যাসখনত 'কদম কাকী' বুলি অনুবাদ কৰিছে। অনুবাদকে 'কাকী'ৰ সলনি 'দিদি' শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰা হলে সম্পর্কটো সলনি নহ'লহেঁতেন। কাৰণ অসমীয়া ভাষাৰ বাই, বা শব্দৰ সমার্থক শব্দ ৰূপে হিন্দী ভাষাত 'দিদি' শব্দৰ প্রয়োগ পৰিলক্ষিত হয়। আনহাতে অসমীয়া ভাষাৰ 'খুৰী' শব্দৰ সমার্থক শব্দ ৰূপে হিন্দী ভাষাত 'কাকী' শব্দটোৰ প্রয়োগ কৰা হয়।

সামৰণি ঃ

প্রাচীন কালৰে পৰা অনুবাদে সাংস্কৃতিক বিনিময় তথা সাংস্কৃতিক যোগসুত্র স্থাপনৰ ক্ষেত্রত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা পালন কৰি আহিছে। ইয়াৰ গুৰুত্ব বর্তমান অধিক হোৱাৰ প্রয়োজন। মূল পাঠ একোখন লক্ষ্য ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে অনুবাদকে বহু সময়ত সাৱধানতাৰে আগবাঢ়িব লাগে কাৰণ ভূল অনুবাদে মূল সংস্কৃতি, লক্ষ্য সংস্কৃতি, মূল সমাজ, লক্ষ্য সমাজ, মূল লেখক, লক্ষ্য লেখক, মূল পাঠক, লক্ষ্য পাঠক সকলোতে প্রভাৱ পেলাব পাৰে।

পৰিশেষত ক'ব পাৰি বীৰেন্দ্রকুমাৰ ভট্টাচার্য্যৰ মৃত্যুঞ্জয় উপন্যাসখন হিন্দী ভাষালৈ অনুবাদ কৰোঁতে সাংস্কৃতিক অননুবাদ্যতাৰ সৃষ্টি হৈছে। অসমীয়া সমাজ আৰু হিন্দী ভাষাৰ সমাজ দুয়োখন সুকীয়া সমাজ। দুয়োখন সমাজৰে নিজস্ব বৈশিষ্ট্য আছে। দুয়োখনৰ সমাজ ব্যৱস্থা, সংস্কৃতি, ভাষা, ৰীতি-নীতি, লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস আদি বেলেগ বেলেগ। উৎসৱ পার্বন, বিয়া বাৰু আদিৰ লগত জড়িত গীত মাত, লোকাচাৰসমূহ অনুবাদ কৰোঁতে অনুবাদকে পাদটীকা বা অতিৰিক্ত ব্যাখ্যাৰ সহায় লোৱা হলে কিছুমান বস্তু হিন্দী ভাষাৰ পাঠকে বুজাত সহজ হ'লহেঁতেন যদিও সেই পৰিৱেশৰ চিত্রকল্প অনুবাদ কৰাটো অসম্ভৱ। ঠিক তেনেদৰেই সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত অন্য উপাদানসমূহ যেনে গীত মাত, যোষা পদ, ফকৰা-যোজনা, জতুৱাঠাচ, প্রবাদ প্রবচন আদি ভিন্ন অভিব্যক্তিৰে মূল উপন্যাসখন ভৰি আছে। যিসমূহ অনুবাদ কৰোঁতে অনুবাদকে কিছুমান সম্পূর্ণৰূপে অনুবাদ কৰিছে কিছুমানৰ আংশিক অনুবাদ কৰিছে আৰু কিছুমানৰ কেৱল ভাৱটো অনুবাদ কৰিছে। ❑

হিন্দী ঃ
অয়য়ৰ, এন, ঈ, বিশ্বনাথ, অনুবাদ কলা, প্রভাত প্রকাশন, দিল্লী. ১৯৯০.
কুমাৰ, সুৰেশ, অনুবাদ সিদ্ধান্ত কী ৰূপৰেখা নতুন দিল্লী, বাণী প্রকাশ. ১৯৯৬.
তিৰাৰী, ভোলানাথ, অনুবাদ বিজ্ঞান, শব্দকাৰ, দিল্লী, ১৯৭২.
মাগধ, সিংহ কৃষ্ণপ্রসাদ, মৃত্যুঞ্জয় (অনুবাদ). ভাৰতীয় জ্ঞানপীঠ. নতুন দিল্লী, দ্বাদশ সংস্কৰণ, ২০১৬.
অসমীয়া ঃ
মহন্ত বেজবৰা, নীৰাজনা, অনুবাদ ঃ তত্ত্ব আৰু প্রয়োগ, ডিব্রুগড়, বনলতা. ২০১১.
ভট্টাচার্য্য, বীৰেন্দ্র কুমাৰ. মৃত্যুঞ্জয়. চন্দ্র প্রকাশ, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী. একাদশ প্রকাশ. ২০২৪
শর্মা, মদন, অনুবাদ অধ্যয়ন তত্ত্ব আৰু প্রয়োগ, গুৱাহাটী, বান্ধৰ. ২০১৭.
ইংৰাজী ঃ
Balupuri, Chinta(ed). Translation as serious business. Bahri Publication. New Delhi.1997.
Bhatnagar, Y.C. Theory and Practice of Translation. Ajanta Publication. Delhi.1993.
Bell, Roger. Translation and Translating theory and Practice. New York Longman. 1993.
Catford, J.C. A Linguistic theory of Translation. Oxford University press.Landon.1969.
Nida, Eugene A. & Charles Taber. The theory and practice of translation. Leiden, E.J.Brill. 1974
প্রবন্ধ ঃ
ইংৰাজী ঃ
Aluzuhdy, yoga Abduh. Analisis Translating Shift dolam penlenjemahan bilin- gual bosha inggris bohasa Indonesia. Diksi22.185-193. 2014.
Kitamura, Kanji. Cultural Untranslatability. Translation Journal. Loyola University. Chicago, 2009
Halim, Abdul. The Strategies for overcoming Cultural Untranslatability. the case of Rabindranath Tagore Gora. Journal Asiatic society. Bangladesh 2023
[1]Carford J.C (1965) A Linguistic Thery of Translation. Oxford University, Press. p. 99
[2]Nida and Taber (1974) the theory and Practice of translation. Leiden; E.J. Brill. p. 12

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং জনগোষ্ঠীৰ ‘কাতিগাছা’ উৎসৱ ঃ এক তুলনামূলক অধ্যয়ন

ৰূপম মজুমদাৰ

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
অসম - ৭৮১০১৪
৭০০২৩৬৭০৩১
rupamnitjcse@gmail.com

ড° ললিত চন্দ্র ৰাভা

অধ্যক্ষ, দুধনৈ মহাবিদ্যালয়
গোৱালপাৰা, অসম - ৭৮৩১২৪
৮৬৩৮১০৩৩৩৭
lalitcrabha@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

কোনো বিষয় বা ঘটনাৰ বিষয়ে জ্ঞান আহৰণ কৰাৰ উদ্দেশ্যে মানুহে প্ৰাচীন কালৰে পৰা তুলনাৰ সহায় লৈ আহিছে। তুলনা হৈছে দুই বা ততোধিক বস্তু একেলগে ৰাখি সিঁহতৰ মাজত থকা গুণসমূহৰ সাদৃশ্য আৰু বৈসাদৃশ্যৰ পৰীক্ষা কৰা কার্য। সমাজ জীৱনৰ প্ৰতিটো দিশতে এই তুলনা দেখা যায়। যিহেতু সংস্কৃতি সমাজৰ অঙ্গ; সেয়েহে সংস্কৃতিৰ জগততো তুলনাৰ সহায় লোৱা দেখা যায়। পাশ্চাত্য জগতত ষষ্ঠদশ শতিকাতে তুলনামূলক সাহিত্যৰ আৰম্ভণি হৈছিল যদিও ভাৰতবর্ষত বিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দশকৰ পৰা তুলনামূলক সাহিত্যৰ দুৱাৰ মুকলি হয়।

অসম বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লীলাভূমি। অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীসমূহে অসম ভূমিত একেলগে বসবাস কৰি এক সমন্বয়ৰ সংস্কৃতি সৃষ্টি কৰিছে। কিছুমান জনগোষ্ঠীয়ে এই সমন্বয়ৰ প্ৰক্ৰিয়াৰ মাজতে সামাজিক-সাংস্কৃতিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা নিজৰ ঐতিহ্য আৰু স্বকীয়তা জীয়াই ৰাখিছে। এনে দুটা উল্লেখযোগ্য জনগোষ্ঠী হ’ল প্ৰাচীন কালৰে পৰা অসমত বসবাস কৰা কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং। এই দুয়োটা জনগোষ্ঠী সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশৰ পৰা অত্যন্ত চহকী। দুয়োটা জনগোষ্ঠীয়ে পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি অনুসৰি বিভিন্ন ধৰণৰ উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰি সামাজিক-সাংস্কৃতিক চেতনাৰ পৰিচয় দিছে।

উৎসৱ-অনুষ্ঠানসমূহ একধৰণৰ সামাজিক আচৰণ। মানৱ সমাজৰ হৃদয় উপচি পৰা আনন্দৰ বহিঃপ্ৰকাশ হৈছে উৎসৱ-অনুষ্ঠান। প্ৰত্যেক জাতিৰ জাতীয় জীৱনৰ সৈতে উৎসৱ-অনুষ্ঠানৰ এক আত্মিক সম্পর্ক থাকে। কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজংসকলসকলেও পৰম্পৰাগতভাৱে নানাধৰণৰ উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰি আহিছে। জনগোষ্ঠী দুটাই কৃষিমূলক, ধর্মীয়, ঋতুকালীন, সীমিত অংশগ্ৰহণকাৰী, সংস্কাৰমূলক আদি উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰে। এই দুয়োটা জনগোষ্ঠীয়ে পালন কৰা এটি উল্লেখযোগ্য কৃষিভিত্তিক উৎসৱ হ’ল ‘কাতিগাছা’। আমাৰ গৱেষণা পত্ৰখনিত দুয়োটা জনগোষ্ঠীয়ে পালন কৰা ’কাতিগাছা’ উৎসৱৰ সাদৃশ্য আৰু বৈসাদৃশ্য বিচাৰ কৰি তুলনামূলক অধ্যয়ন কৰা হ’ব।

বীজ শব্দ ঃ কোচ-ৰাজবংশী, হাজং, কাতিগাছা, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, লোকাচাৰ , জনগোষ্ঠী।

আৰম্ভণি ঃ

‘তুলনা’ হৈছে সাদৃশ্য আৰু বৈসাদৃশ্য পৰীক্ষা কৰা কার্য। মানৱ সভ্যতাৰ আদিম অবস্থাৰ পৰাই মানুহে কোনো বিষয় জানিবলৈ বা কোনো বিষয়ে জ্ঞান আহৰণ কৰিবলৈ তুলনা কৰা দেখা যায়। সংস্কৃতি সমাজৰ অঙ্গ; সেয়েহে সময়ৰ ক্ৰমবিকাশৰ লগে লগে

ক'লা, বিজ্ঞান, সাহিত্য,সংস্কৃতি আদি সকলো দিশতে তুলনাৰ সহায় লোৱা দেখা যায়। তুলনামূলক সাহিত্য হ'ল সাহিত্য অধ্যয়নৰ দৃষ্টিভংগী।"তুলনাত্মক সাহিত্য নামেৰে কোনো বিশেষ সাহিত্যক বুজোৱা নহয়। ই হ'ল সাহিত্য অধ্যয়নৰ এটি বিশেষ পদ্ধতি মাথোন"।[১] এই পদ্ধতিৰ দ্বাৰা পৃথিৱীৰ বিভিন্ন ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ বিভিন্ন দিশসমূহৰ গুণসমূহৰ সাদৃশ্য আৰু পার্থক্য বিচাৰ কৰা হয়।

অসম দেশ বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লীলাভূমি।প্রাচীন কালৰে পৰা অসমত বসবাস কৰা কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজংসকল বসবাস কৰি আছে। দুয়োটা জনগোষ্ঠীয়ে পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি অনুসৰি বিভিন্ন ধৰণৰ উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰি সামাজিক-সাংস্কৃতিক চেতনাৰ পৰিচয় দিছে। আনন্দ প্রদানেই উৎসৱ অনুষ্ঠানৰ প্রধান উদ্দেশ্য যদিও ইয়াৰ লগত সামাজিক, আধ্যাত্মিক, ধর্মীয় বিশ্বাস, পৰম্পৰাগত লোকবিশ্বাস আদি বিভিন্ন দিশ জড়িত হৈ থাকে। কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজংসকলসকলেও পৰম্পৰাগতভাৱে নানাধৰণৰ উৎসৱ-অনুষ্ঠান পালন কৰি আহিছে।

কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজংসকলসকলে পালন কৰা বিভিন্ন উৎসৱ-অনুষ্ঠানৰ ভিতৰত অন্যতম প্রধান কৃষিভিত্তিক উৎসৱ-অনুষ্ঠান। এই এই কৃষিভিত্তিক উৎসৱ-অনুষ্ঠানসমূহ প্রকৃতি জগত আৰু ঋতু পৰিৱর্তনৰ লগত সম্পর্কিত। সেয়ে কৃষিভিত্তিক উৎসৱ অনুষ্ঠানক ঋতুকালীন উৎসৱ-অনুষ্ঠান বুলিও কোৱা হয়। কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজংসকল দুয়োটা জনগোষ্ঠীয়ে পালন কৰা এটি অন্যতম প্রধান কৃষিভিত্তিক উৎসৱ হ'ল 'কাতিগাছা' ।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

কোনো এটা বিষয় অনুসন্ধান কৰাৰ ঘাই উদ্দেশ্য হ'ল বিষয়টো সম্পর্কে সত্য অন্বেষণ কৰা আৰু তাৰ দ্বাৰা বিষয়টো সম্পর্কে নতুন তথ্য, নতুন জ্ঞান আৰু নতুন সিদ্ধান্ত আগবঢ়োৱা। আমাৰো উদ্দেশ্য সেয়াই। অবিভক্ত গোৱালপাৰা জিলাৰ কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং জনগোষ্ঠীৰ 'কাতিগাছা' উৎসৱৰ তুলনামূলক অধ্যয়ন আমাৰ দৃষ্টিগোচৰ হোৱা নাই। সেয়ে দুয়োটা জনগোষ্ঠীৰ 'কাতিগাছা' উৎসৱৰ তুলনাত্মক অধ্যয়নৰ দ্বাৰা কিছু পৰিমাণে হ'লেও নতুন তথ্য পোহৰলৈ অনাৰ উদ্দেশ্য আগত ৰাখি গৱেষণা পত্রখন আগবঢ়োৱা হৈছে। এয়াই হৈছে আমাৰ গৱেষণা পত্রখনৰ বিষয়বস্তু নির্বাচনৰ উদ্দেশ্য।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

আমাৰ গৱেষণাৰ কার্যৰ পৰিসৰ সীমিত। অবিভক্ত গোৱালপাৰা জিলাৰ কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং জনগোষ্ঠীৰ 'কাতিগাছা' উৎসৱৰ বিভিন্ন পর্ব আৰু তাৰ লগত জড়িত লোকাচাৰেই গৱেষণাৰ পৰিসৰ।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

এই গৱেষণা পত্রখন প্রস্তুত কৰোঁতে তুলনাত্মক আৰু বর্ণনাত্মক দুয়োটা পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে। তদুপৰি ক্ষেত্র অধ্যয়নৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হৈছে।

পূর্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা ঃ

কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং জনগোষ্ঠীৰ উৎসৱ-পার্বণৰ বিষয়ে যথেষ্ট অধ্যয়ন হৈছে। কিন্তু আমি নির্বাচন কৰি লোৱা 'কাতিগাছা'উৎসৱৰ ওপৰত তুলনাত্মক দৃষ্টিকোণৰ পৰা অধ্যয়ন আমাৰ দৃষ্টিগোচৰ হোৱা নাই।

কোচ-ৰাজবংশী জনগোষ্ঠীৰ 'কাতিগাছা' উৎসৱ ঃ

বিহু অসমীয়া জাতিৰ জাতীয় উৎসৱ। অসমৰ প্রতিটো জাতি-জনগোষ্ঠীয়ে নিজ নিজ পৰম্পৰা অনুসৰি বিহু পালন কৰে। বহাগ আৰু মাঘ বিহুৰ দৰে কাতি বিহুৰ লগত সম্পর্কিত নানাধৰণৰ লোকাচাৰ বিভিন্ন সম্প্রদায়ে পালন কৰে। নামনি অসমৰ কোচ-ৰাজবংশীসকলে পালন কৰা কাতি বিহুৰ সমগোত্রীয় অনুষ্ঠান হৈছে কাতি গাছা। প্রতিবছৰ আহিনৰ সংক্রান্তিৰ দিনা এই অনুষ্ঠানটি পালন কৰা হয়। কোনো কোনো ঠাইত ইয়াক আদাদেউল নামেৰেও জনা যায়। কৃষিৰ লগত কোচ-ৰাজবংশী সমাজ আৰু সংস্কৃতিৰ ওত:প্রোত সম্পর্ক। ধন, ধান আৰু গৃহস্থৰ অধিষ্ঠাত্রী হৈছে লখিমী দেৱী। সেয়ে ধনৰূপী লখিমী দেৱীক সন্তুষ্ট কৰিবলৈ আহিন মাহৰ সংক্রান্তিৰ দিনা বন্তি জ্বলায়। ধানৰ খেতি পোক-পৰুৱা, কীট-পতঙ্গৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ আৰু প্রচুৰ ধানৰ উৎপাদনৰ কামনাৰে লক্ষী দেৱীলৈ শ্রদ্ধা-ভক্তি নিবেদন কৰি খেতি পথাৰত বন্তি জ্বলায়।

কাতিগাছা হৈছে লখিমী দেৱীক আদৰা বছৰৰ প্রথম অনুষ্ঠান। আহিনৰ সংক্রান্তিৰ ৰাতিপুৱাই পৰিয়ালৰ মূৰব্বীজনে খেতি পথাৰলৈ যায় আৰু ধানৰ শীষবোৰলৈ ভক্তিভাবেৰে সেৱা জনায়। উক্তদিনাখন মহিলাসকলে খেতিপথাৰত যোৱা নিষেধ। তিৰোতাসকলে ৰাতিপুৱাৰ পৰা ঘৰ-দুৱাৰ পৰিষ্কাৰ কৰি সন্ধিয়া বন্তি প্রজ্বলনৰ আয়োজন কৰে। বন্তি প্রজ্বলনৰ বাবে ঔটেঙাৰ খলপ চাকি হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰে আৰু প্রতিটো চাকিৰ বাবে একো একোটা গছা প্রস্তুত কৰে। গছাৰ বাবে সৰু কলপুলিক কাটি 'গছা প্রস্তুত কৰে। সন্ধিয়াৰ সময়ত কৃষকে নিজ নিজ পথাৰত বন্তি জ্বলাই গছাত প্রতিষ্ঠিত কৰে

আৰু কিছুমান গীত গায়। তলত এনে এটি গীত উল্লেখ কৰা হ'ল-

"দোল দোল দোল
লোকেৰ ধান আউল ঝাউল
আমাৰ ধান মোখৰা চাউল।"[২]

কাতিগাছাৰ দিনাখন গৃহস্থই চোতালৰ মূৰত সাধাৰণতে মন্দিৰ বা ঠাকুৰ ঘৰৰ সন্মুখত তুলসীপুলি ৰোৱে। তুলসী পুলিৰ কাষতে এজোপা আদাৰ গছ ৰুই দিয়ে। সেয়ে কাতি গাছাক 'আদাদেউল' বুলিও কোৱা হয়। সন্ধিয়াৰ সময়ত তুলসী গুৰিত "আগলতি কলপাত পাৰি তাতে সেন্দুৰৰ ফোঁটা দি এযুৰি তামোল-পাণসহ নকৈ কাটি অনা বান্নিসোটা (বাঢ়নীটাৰ)থিয়কৈ বহুৱাই বস্তি প্রজ্বলনেৰে সেৱা ভক্তি কৰা হয়।[৩] উল্লেখযোগ্য তুলসী গুৰিৰ লগতে পদুলিমুখ, থকা ঘৰ, গোহালী ঘৰ, তাঁতশাল, ভঁড়াল ঘৰ আদি সকলো ঠাইতে চাকি দিয়া হয়। উল্লেখযোগ্য যে সকলোবোৰ চাকি সাধাৰণ মাটিৰ চাকিৰ পৰিৱর্তে ঔটেঙাৰ বাকলিত বা খোলত দিয়া হয়। ৰাজবংশী ভাষাত ঔটেঙাক 'পাঁচখোল' বুলি কোৱা হয়। পাঁচখোলত চাকি দিয়াৰ মূল কাৰণ হৈছে, পাঁচটা খোলৰ লগত পঞ্চভাৱৰ লগত তুলনা কৰা। এই পঞ্চভাৱ হৈছে - শান্ত, দাস্য, সখ্য, বাৎসল্য আৰু মধুৰ।[৪]

কোনো কোনো গৃহস্থই পিছদিনাৰ পৰাই আকাশবস্তি জ্বলায় আৰু আঘোণৰ প্রথমদিনা এই আকাশবস্তি নমোৱা হয়। সকলো গৃহস্থই আকাশবস্তি জ্বলায় যদিও গোটেই কাতিমাহ তুলসী তলত বস্তি প্রজ্বলন কৰে। কোনো কোনো কোচ-ৰাজবংশী পৰিয়ালে কাতি মাহটোক 'দামোদৰ মাহ' বা 'ধর্ম মাহ' হিচাপে পালন কৰি গোটেই মাহ নিৰামিষ খায়। আকাশবস্তি জ্বলালে, 'দামোদৰ মাহ' পালন কৰিলে স্বর্গলোক পায় বুলি কোচ-ৰাজবংশীসকলে বিশ্বাস কৰে।

হাজং জনগোষ্ঠীৰ 'কাতিগাছা' উৎসৱ ঃ

বিহু অসমৰ জাতীয় উৎসৱ। অসমৰ প্রায় সকলো জাতি-জনগোষ্ঠীয়ে স্বকীয় ৰীতি-নীতি অনুসৰি বিহু পালন কৰে। হাজংসকলে পালন কৰা বিহু তথা বিহুৰ সমগোত্রীয় এটি অনুষ্ঠান হৈছে কাতিগাছা । এই অনুষ্ঠান কাতি বিহুৰ সমগোত্রীয় যদিও হাজংসকলৰ কাতিগাছা অসমীয়া কাতি বিহুৰ দৰে কঙালী নহয়; হাজংসকলে এই অনুষ্ঠানৰ সময়ত মাছ, মাংস, দৈ-চিৰা, পিঠা-পনা আদি নিজে খোৱাৰ লগতে অতিথি আপ্যায়ন কৰে। মেঘালয়ৰ গাৰোপাহাৰ অঞ্চলত কাতিগাছা উৎসৱক ভোগালী বিহুৰ দৰে পালন কৰে।[৫]

কাতিগাছা অনুষ্ঠান কৃষি, কৃষক আৰু কৃষিভূমিৰ লগত জড়িত। আহিন মাহৰ সংক্রান্তিৰ দিনা হাজংসকলে কাতিগাছা অনুষ্ঠান পালন কৰে। সেই দিনাখন সন্ধিয়া সময়ত খেতিপথাৰৰ চুকত ভালদৰে লেপি- মছি আগলতি কলপাতত এযোৰ তামোল-পাণ, কল, গাখীৰ, চেনী, গুৰ, বুটমাহ, দুবৰী বন, তুলসী পাত আদিৰে পূজা আগবঢ়ায়। পথাৰত কৃষিভূমি আৰু লখিমী দেৱীৰ নামত এক বিশেষ ধৰণৰ চাকি জ্বলোৱা হয়। সাধাৰণতে এক-ডেৰফুট মান জোখৰ তিনিডাল সমান দৈর্ঘ্যৰ মৰাপাটৰ ঠাৰিৰে গছা তৈয়াৰ কৰা হয়। এই গছাৰ ওপৰত ঔটেঙাৰ বাকলিত সৰিয়হ তেল আৰু কপাহৰ শলিতাৰে চাকি জ্বলোৱা হয়। সেউজীয়া ধাননি পথাৰক পোক- পৰুৱা, কীট-পতঙ্গৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ আৰু ধানৰ উৎপাদন বৃদ্ধি হোৱাৰ কামনাৰে লখিমী দেৱীৰ ওচৰত প্রার্থনা কৰে। খেতিপথাৰৰ উপৰি তুলসী তল, ভঁৰাল ঘৰ, গোহালি ঘৰ, পদুলিমুখ আদিত চাকি জ্বলায় আৰু কিছুমান গীত গায়। তলত এনে এটি গীত উল্লেখ কৰা হ'ল -

দ'ল দ'ল দ'ল
পৰ্লা ধান লৰ্ফৰ্
আম্লা ধান উফছি পৰ্। [৬]

কাতিগাছা উৎসৱৰ লগত জড়িত আন এক লোকাচাৰ হৈছে 'আকাশ বস্তি'। হাজংসকলে বিশ্বাস কৰে যে, আকাশ বস্তি জ্বলালে স্বর্গগত পূর্বপুৰুষসকল স্বর্গৰ পৰা নামি আহে আৰু আকাশবস্তি দর্শন কৰি উত্তৰ পুৰুষসকলক আশীর্বাদ দিয়ে। কাতিগাছাৰ সকলো ৰীতি-নীতি পালন কৰাৰ পিছত হাজং ডেকাসকলৰ মাজত একধৰণৰ খেল-ধেমালিৰ পৰম্পৰা দেখা যায়। ডেকা-ল'ৰাসকলে শুকান মৰাপাটৰ ঠাৰিৰে জোৰ বনাই জুই জ্বলাই গাঁৱৰ ইমূৰৰ পৰা সিমূৰলৈ গীত গাই দৌৰা-দৌৰি কৰে। ইয়াক মহ'খেদা অনুষ্ঠানৰ লগত তুলনা কৰিব পাৰি। ইয়াৰ উদ্দেশ্য হৈছে আন্ধাৰ নাশি পোহৰৰ আগমন; আন্ধাৰ দূৰ কৰি পোহৰেৰে উজলাই তুলিবলৈ ডেকাসকলে এইদৰে গীত গাই ফুৰে -

"কাতি আহে, আহিন যায়
মসা মাও, পোৰা যায়"।[৭]

অর্থাৎ মহঁ-ডাহ, কীট-পতঙ্গ, সকলো দূৰ হ'ব। প্রকৃততে হাজংসকলে বিশ্বাস কৰে যে, আহিনৰ সংক্রান্তিত এইদৰে মশাল লৈ খেদিলে মহঁ, কীট-পতঙ্গ আদি নাইকিয়া হয় আৰু ৰাতিপুৱালে অর্থাৎ কাতিমাহৰ পৰাই নতুন পোহৰে খেতিপথাৰ আৰু সমাজক উজলাই তুলিব। উল্লেখযোগ্য যে, ডেকাসকলৰ দৌৰা-দৌৰি কার্য শেষ হ'লে মৰাপাটৰ জোৰবোৰ প্রতিঘৰৰ নঙলা মুখ বা সন্মুখত জ্বলাই ঘৰাঘৰি হয়।

'কাতিগাছা' উৎসৱৰ তুলনামূলক আলোচনা ঃ

কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং জনগোষ্ঠীৰ 'কাতিগাছা' উৎসৱৰ আলোচনাৰ পৰা স্পষ্ট যে, দুয়োটা জনগোষ্ঠীৰ কাতিগাছা উৎসৱৰ মাজত যথেষ্ট মিল আছে; অৱশ্যে কেতবোৰ পার্থক্যও নথকা নহয়। তলত 'কাতিগাছা' উৎসৱৰ তুলনামূলক আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ল-

সাদৃশ্য ঃ

• কাতিগাছা উৎসৱ পালনৰ তিথিৰ ক্ষেত্রত সাদৃশ্য বিশেষভাৱে মন কৰিবলগীয়া। দুয়োটা জনগোষ্ঠীয়ে আহিন মাহৰ সংক্রান্তিৰ দিনা কাতিগাছা অনুষ্ঠান পালন কৰে।

• কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং উভয়ে কৃষিজীৱি; কৃষি-কৃষক-কৃষিভূমিৰ লগত দুয়োটা জনগোষ্ঠীৰ অতি গভীৰ সম্পর্ক। সেইবাবে উভয়ে কৃষিভূমিৰ মঙ্গল কামনাৰে সেউজীয়া ধাননি পথাৰক পোক-পৰুৱা, কীট-পতঙ্গৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ আৰু প্রচুৰ ধানৰ উৎপাদনৰ কামনাৰে লখিমী দেৱীলৈ শ্রদ্ধা-ভক্তি নিবেদন কৰি খেতি পথাৰত বস্তি জ্বলায়।

• কাতিগাছা উৎসৱত মহিলাসকলে খেতিপথাৰত যোৱা নিষেধ। এই নিয়ম কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং উভয়ে পৰম্পৰাগতভাৱে মানি আহিছে। পৰিয়ালৰ মুৰব্বী বা পুৰুষসকলেহে পথাৰত গৈ চাকি জ্বলায়। দুয়োটা জনগোষ্ঠীয়ে চাকি জ্বলাবলৈ ঔটেঙাৰ বাকলি ব্যৱহাৰ কৰে। গছাৰ ওপৰত ঔটেঙাৰ বাকলিত সৰিয়হ তেল আৰু কপাহৰ শলিতাৰে চাকি জ্বলোৱা হয়।

• খেতিপথাৰৰ উপৰি তুলসী তল, ভঁৰাল ঘৰ, গোহালি ঘৰ, তাঁতশাল, পদুলিমুখ আদিত চাকি জ্বলায়। চাকি জ্বলোৱাৰ সময়ত কিছুমান গীত গায়। গীতৰ মাজত সাদৃশ্য মন কৰিবলগীয়া; তলত দুটি গীতৰ নিদর্শন উল্লেখ কৰা হ'ল -

কোচ-ৰাজবংশীসকলে গোৱা গীত: "দোল দোল দোল
লোকেৰ ধান আউল ঝাউল
আমাৰ ধান মোখৰা চাউল।"

হাজংসকলে গোৱা গীত: দ'ল দ'ল দ'ল
পৰ্‌লা ধান লৰ্‌ফৰ্‌
আম্‌লা ধান উফছি পৰ্‌।

• কাতিগাছা উৎসৱৰ লগত জড়িত আন এক লোকাচাৰ হৈছে 'আকাশ বস্তি'। কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং- উভয়ে বিশ্বাস কৰে যে, আকাশ বস্তি জ্বলালে স্বর্গগত পূর্বপুৰুষসকল স্বর্গৰ পৰা নামি আহে আৰু আকাশবস্তি দর্শন কৰি উত্তৰ পুৰুষসকলক আশীর্বাদ দিয়ে। উল্লেখযোগ্য যে, কোনো কোনো গৃহস্থই গোটেই কাতিমাহ আকাশবস্তি জ্বলায় আৰু আঘোণৰ প্রথমদিনা এই আকাশবস্তি নমায়।

বৈসাদৃশ্য ঃ

• কাতিগাছা উৎসৱত চাকি জ্বলাবলৈ একো একোটা গছা প্রস্তুত কৰে। কোচ-ৰাজবংশীসকলে সৰু কলপুলিক কাটি 'গছা' প্রস্তুত কৰাৰ বিপৰীতে হাজংসকলে এক-ডেৰফুট মান জোখৰ তিনিডাল সমান দৈর্ঘ্যৰ মৰাপাটৰ ঠাৰিৰে গছা তৈয়াৰ কৰে। অৱশ্যে আজিকালি মৰাপাটৰ ঠাৰিৰ সলনি বাঁহৰ টুকুৰাৰেও গছা তৈয়াৰ কৰে।

• কোচ-ৰাজবংশীসকলে কাতিগাছাৰ দিনাখন মন্দিৰ বা ঠাকুৰ ঘৰৰ সন্মুখত তুলসীৰ পুলি ৰোৱে। তুলসীৰ পুলিৰ কাষতে এজোপা আদাৰ গছ ৰুই দিয়ে। সেয়ে কাতি গাছাক 'আদাদেউল' বুলিও কোৱা হয়। কিন্তু হাজংসকলৰ মাজত আদা গছ ৰোপণৰ কোনো পৰম্পৰা নাই।

• কোচ-ৰাজবংশীসকলে সন্ধিয়াৰ সময়ত তুলসী গুৰিত আগলতি কলপাত পাৰি তাতে সেন্দুৰৰ ফোঁট দি এযুৰি তামোল- পাণসহ নকৈ কাটি অনা বান্নিসোটা থিয়কৈ বহুৱাই বস্তি প্রজ্বলনেৰে সেৱা ভক্তি কৰে। কোচ-ৰাজবংশীসকলে তুলসী গুৰিত কৰাৰ বিপৰীতে হাজংসকলে খেতিপথাৰৰ চুকত ভালদৰে লেপি- মছি আগলতি কলপাতত এযোৰ তামোল-পাণ, কল, গাখীৰ, চেনী, গুৰ, বুটমাহ, দুবৰী বন, তুলসী পাত আদিৰে পূজা আগবঢ়ায়।

• কোচ-ৰাজবংশীসকলে গোটেই কাতিমাহ পুৱা-গধূলি তুলসী তলত বস্তি প্রজ্বলন কৰে। কোনো কোনো কোচ-ৰাজবংশী পৰিয়ালে কাতি মাহটোক 'দামোদৰ মাহ' বা 'ধর্ম মাহ' হিচাপে গোটেই মাহ নিৰামিষ খায়। কিন্তু হাজংসকলৰ মাজত এনেধৰণৰ পৰম্পৰা দেখা নাযায়। "অৱশ্য কোনো কোনো ঠাইত বিশেষকৈ বৈষ্ণৱপন্থী হাজংসকলে কাতি মাহটোক 'ধর্ম মাহ' হিচাপে পালন কৰি গোটেই মাহ নিৰামিষ খোৱা দেখা যায়"।[৮]

• কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং-উভয়ে কাতিগাছা অনুষ্ঠান পালন কৰে যদিও হাজংসকলৰ কাতিগাছা কোচ-ৰাজবংশীসকলৰ দৰে কঙালী নহয়; হাজংসকলে এই অনুষ্ঠানৰ সময়ত মাছ, মাংস, দৈ-চিৰা, পিঠা-পনা আদি নিজে খোৱাৰ লগতে অতিথিও আপ্যায়ন কৰে। মেঘালয়ৰ গাৰোপাহাৰ অঞ্চলত কাতিগাছা উৎসৱক ভোগালী বিহুৰ

দৰে পালন কৰে। অৱশ্য বৰ্তমান সময়ত বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱত আৰু অৰ্থনৈতিক অভাৱ-অনাটনে হাজংসকলৰ কাতিগাছা অনুষ্ঠানক কোচ- ৰাজবংশীসকলৰ দৰে কঙালী কৰিছে।

• কাতিগাছা অনুষ্ঠানত হাজং ডেকাসকলৰ মাজত একধৰণৰ খেল-ধেমালিৰ পৰম্পৰা দেখা যায়। ডেকা-ল'ৰাসকলে শুকান মৰাপাটৰ ঠাৰিৰে জোৰ বনাই জুই জ্বলাই গাঁৱৰ ইমূৰৰ পৰা সিমূৰলৈ গীত গাই দৌৰা-দৌৰি কৰে। ইয়াক মহ'খেদা অনুষ্ঠানৰ লগত তুলনা কৰিব পাৰি। ইয়াৰ উদ্দেশ্য হৈছে আন্ধাৰ নাশি পোহৰৰ আগমন; আন্ধাৰ দূৰ কৰি পোহৰেৰে উজলাই তুলিবলৈ ডেকাসকলে গীত গাই ফুৰে। কিন্তু কোচ-ৰাজবংশী সমাজত এনেধৰণৰ পৰম্পৰা নাই।

উপসংহাৰ ঃ

"কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং জনগোষ্ঠীৰ 'কাতিগাছা' উৎসৱ: এক তুলনামূলক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনৰ পৰা স্পষ্ট যে কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং- উভয়ে প্ৰাচীন কালৰে পৰা পৰম্পৰাগতভাৱে 'কাতিগাছা' উৎসৱ পালন কৰি আহিছে। জনগোষ্ঠী দুটাই কাতিগাছা অনুষ্ঠানৰ লগত জড়িত নানাধৰণৰ ৰীতি-নীতি তথা আচাৰ-অনুষ্ঠান পালন কৰে; যাৰ মাজেদি সামাজিক-সাংস্কৃতিক চেতনাৰ পৰিচয় পোৱা যায়।

কোচ-ৰাজবংশী জনগোষ্ঠীয়ে পালন কৰা 'কাতিগাছা' উৎসৱৰ মাজেদি জনগোষ্ঠীটোৰ কৃষি আৰু কৃষিভূমিৰ প্ৰতি আন্তৰিকতা প্ৰকাশ পাইছে। 'কাতিগাছা' উৎসৱত পথাৰত চাকি জ্বলোৱা, আদা গছ ৰোৱা, আকাশবন্তি জ্বলোৱা, কাতিমাহত নিৰামিষ খাদ্যগ্ৰহণ, নাম-কীৰ্তন কৰা আদিৰ মাজেদি কোচ-ৰাজবংশীসকলৰ লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস, ধৰ্মীয় বিশ্বাস আদিৰ আভাস পোৱা যায়। সেইদৰে হাজংসকলেও 'কাতিগাছা' উৎসৱৰ মাজেদি পথাৰত চাকি জ্বলোৱা, আকাশবন্তি জ্বলোৱা, মৰাপাটৰ ঠাৰিৰে জোৰ বনাই জুই জ্বলাই গীত গাই দৌৰা-দৌৰি আদি বিভিন্ন পৰম্পৰাৰ আভাস পোৱা যায়। জনগোষ্ঠী দুটাই পালন কৰা 'কাতিগাছা' উৎসৱত কেতবোৰ সাদৃশ্য আৰু কেতবোৰ পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হয় । এনে সাদৃশ্যতাৰ মূলতে জনগোষ্ঠী দুটাৰ কৃষি আৰু কৃষিভূমিৰ প্ৰতি আন্তৰিকতা , ধন-ধান-লখিমী দেৱীৰ প্ৰতি থকা ভক্তি-শ্ৰদ্ধা , বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱ যেন অনুমান হয়। আনহাতে, পাৰ্থক্যৰ কাৰণ হিচাপে আৰ্যীকৰণৰ প্ৰভাৱ, আঞ্চলিকতা, স্বকীয় পৰম্পৰাগত লোকাচাৰৰ কথা কব পাৰি। কোচ-ৰাজবংশী আৰু হাজং উভয়ে পৰম্পৰাগতভাৱে 'কাতিগাছা' উৎসৱ পালন কৰি আহিছে। কিন্তু সময়ৰ পৰিবৰ্তনৰ লগে লগে কৃষিভূমি আৰু উৎপাদন পদ্ধতিৰ ব্যাপক পৰিবৰ্তনৰ সাধন হৈছে । আধুনিক যুগত বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ অভূতপূৰ্ব উন্নতিৰ ফলত শস্য উৎপাদনৰ পৰম্পৰাগত পদ্ধতি আৰু উপকৰণৰ সলনি আধুনিক পদ্ধতি, উন্নত যন্ত্ৰপাতি, ৰাসায়নিক আৰু কীটনাশক প্ৰয়োগ কৰা হৈছে। বৰ্তমান সময়ত যন্ত্ৰপাতিৰ মাধ্যমত শস্য ৰোপণ তথা চপোৱা হৈছে; যাৰ ফলস্বৰূপে কাতিগাছা, গছা দিয়া, আগ অনা আদিৰ দৰে পৰ্ব লাহে লাহে বিলুপ্তিৰ দিশত অগ্ৰসৰ হৈছে। ❑

অন্ত্যটীকা:

১। ডেকা হাজৰিকা, কৰবী : তুলনাত্মক সাহিত্য আৰু অনুবাদ ক'লা, পৃষ্ঠা-৩
২। তথ্যদাতা : কমল কিশোৰ অধিকাৰী, বইটামাৰী, ৬৬
৩। হাকাচাম, উপেন ৰাভা : অসমৰ জনজাতীয় সংস্কৃতি, পৃষ্ঠা-১৯৩
৪। তথ্যদাতা : প্ৰ াদ কুমাৰ ৰায়, গৌৰীপুৰ, ৪৭
৫। হাজং, কানুৰাম : হাজং লোক-সংস্কৃতি, পৃষ্ঠা-৩৯
৬। তথ্যদাতা : সুবৰ্ণ হাজং, ধামৰ, ৫০
৭। হাজং, ৰতন কুমাৰ ৰায় : হাজং সমাজ আৰু সংস্কৃতিত দৃষ্টিপাত, পৃষ্ঠা-২৯
৮। তথ্যদাতা : সুবৰ্ণ হাজং, ধামৰ, ৫০

গ্ৰন্থপঞ্জী:

ডেকা হাজৰিকা, কৰবী। তুলনামূলক সাহিত্য আৰু অনুবাদ-কলা। ডিব্ৰুগড়: বনলতা, ২০১৪। মুদ্ৰিত।
নাথ, প্ৰফুল্ল কুমাৰ। তুলনামূলক ভাৰতীয় সাহিত্য: বিচাৰ আৰু বিশ্লেষণ। গুৱাহাটী: বনলতা, ২০১১। মুদ্ৰিত।
ভকত, দ্বিজেন্দ্ৰ নাথ। অসমৰ কোচ-ৰাজবংশী জনজাতি। ধুবুৰী : অনন্যা ভকত, ২০১৪। মুদ্ৰিত।
ভকত, লাৱণ্য। কোচ-ৰাজবংশী সংস্কৃতি কোশ। ধুবুৰী : বনমালী প্ৰকাশন, ২০২১। মুদ্ৰিত।
ভকত, লাবণ্য। ৰাজবংশী লোক-সংস্কৃতি। ধুবুৰী : বনমালী প্ৰকাশন, ২০১৪। মুদ্ৰিত।
হাকাচাম, উপেন ৰাভা। অসমৰ জনজাতীয় সংস্কৃতি। গুৱাহাটী : বাণী মন্দিৰ, ২০০৮। মুদ্ৰিত।
হাজং , কানুৰাম। হাজং লোক-সংস্কৃতি । ধামৰ, গোৱালপাৰা: হাজং সাহিত্য সভা, ২০১৯। মুদ্ৰিত।
হাজং , ৰতন কুমাৰ ৰায় । হাজং সমাজ আৰু সংস্কৃতিত দৃষ্টিপাত। গুৱাহাটী : ফুইলাম প্ৰকাশ, ২০১৭। মুদ্ৰিত।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

চাহ শ্রমিক সমাজত প্রচলিত নিচুকনি গীত ঃ এক চমু অৱলোকন

লুহিতা নায়ক

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয় ডিফু চৌহদ
ডিফু চৌহদ- ৭৮২৪৬০
৬০০৩৬৯২০৯১
luhitanayak2017@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমৰ এক অন্যতম গোষ্ঠী হৈছে চাহ জনগোষ্ঠী তথা শ্রমিকসকল। অসমীয়া জাতিৰ বৃহৎ অংশ চাহ শ্রমিকৰ সমাজতো লোকসংস্কৃতি, উৎসৱ-পার্বণ, পৰম্পৰাগত ৰীতি-নীতি, আচাৰ-লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস, ধর্মীয়বিশ্বাস আদি দেখিবলৈ পোৱা যায়। অতীজৰে পৰা নিজা ৰীতি-নীতিৰ মাজেৰে এই উৎসৱ, পূজা-পৰ্ব আদি পালন কৰি আহিছে। চাহ শ্রমিক সমাজত প্রচলিত লোকগীতো অন্যতম।

মুখে মুখে চলি অহা এই লোকগীতসমূহ চাহ শ্রমিক সমাজৰ এক গভীৰ সাংস্কৃতিক পৰম্পৰা হিচাপে পৰিচিত হৈ আহিছে। লোকগীতৰ অন্যতম ভাগ হৈছে নিচুকনি গীত। প্রত্যেক ভাষা-ভাষী, জাতি-জনজাতিৰ লোকৰ সমাজত নিচুকনি গীতৰ প্রচলন অতীজৰে পৰা চলি আহিছে। যদিও প্রত্যেক জাতি-গোষ্ঠীৰ মাজত চলিত নিচুকনি গীতসমূহ কিছু পৃথক আৰু সুকীয়া।

চাহ শ্রমিক সমাজত প্রচলিত নিচুকনি গীতসমূহক 'ছেনা খেলা' বা 'ছৱা খেলা' গীত বুলি কোৱা হয়। এই গীতসমূহৰ এক সুকীয়া বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হয়। অতীজৰে পৰা চলি অহা নিচুকনি গীতসমূহ বর্তমান লুপ্তাৱস্থাত। কিছু পৰিৱর্তনো হৈছে। এই আটাইবোৰ বিষয়ৰ অধ্যয়নৰ প্রয়োজন আছে। এই বিষয়সমূহ আলোচনা কৰাৰ থল আছে।

এই গৱেষণা পত্রখনত কেৱল চাহ শ্রমিক সমাজত প্রচলিত নিচুকনি গীতৰ সম্পর্কে আলোকপাত কৰাৰ প্রয়াস কৰা হ'ব।

সূচক শব্দ ঃ চাহ শ্রমিক, সমাজ, নিচুকনি গীত, লোকবিশ্বাস, পৰিবর্তন, সংৰক্ষণ

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

০.০১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

অসমৰ অন্যতম গোষ্ঠী হৈছে চাহ জনগোষ্ঠী। এই জনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ পূর্বজসকলক বৃটিছ শাসন কালছোৱাত চাহ বনুৱা হিচাপে মধ্য-পূৱ ভাৰতৰ বিভিন্ন প্রান্তৰৰ পৰা অনা হৈছিল। ৰাঁচী, ঝাৰখণ্ড, উৰিষ্যা, মধ্য প্রদেশ, পশ্চিম বংগ আদি ঠাই আছিল চাহ জনগোষ্ঠীয় লোকৰ পূর্বপুৰুষসকলৰ বসতিস্থল। ইয়াৰ উপৰিও তেওঁলোকে জীৱিকা অর্জনৰ বাট বিচাৰিও অসমলৈ আহিছিল। পৰৱর্তী সময়ত তেওঁলোকৰ উত্তৰ প্রজন্মই 'চাহ জনজাতি', 'চাহ বাগানীয়া', 'চাহ শ্রমিক', 'চাহ বনুৱা', 'চাহ বনুৱা' আদি নামেৰে জনাজাত হ'ল।

প্রত্যেক জাতি-গোষ্ঠীৰে নিজা সাংস্কৃতিক বৈশিষ্ট্য থকাৰ দৰে চাহ জনগোষ্ঠী তথা চাহ শ্রমিক লোকসকলৰো সংস্কৃতিৰ এক সুকীয়া পৰিচয় দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই নিদিষ্ট জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল অসমলৈ অহাৰ সময়ত নিজা ভাষা,

লোকসাহিত্য, লোকগীত, লোক সংস্কৃতি, পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি, আচাৰ-লোকাচাৰ আদি লগত লৈ আহিছিল। চাহ জনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ লোক-জীৱন, ভাষা, লোকসাহিত্য, লোক সংস্কৃতি, পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি, আচাৰ-লোকাচাৰ আদি অন্য জাতি-জনজাতিতকৈ কিছু সুকীয়া আৰু পৃথক বুলিব পাৰি।

বৰ্তমান আধুনিকতাৰ কৱলত পৰি নিজা ভাষা, লোকসাহিত্য, লোক সংস্কৃতি, পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি, আচাৰ-লোকাচাৰ আদি হেৰুৱাই পেলাইছে। আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱৰ ফলত সকলো ক্ৰমান্বয়ে লুপ্তপ্ৰায় হ'বলৈ ধৰিছে। একমাত্ৰ নিৰক্ষৰ, অশিক্ষিত চহা লোকসকলৰ মাজত লোক সাহিত্য, লোক সংস্কৃতি, ভাষা, পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি, আচাৰ লোকাচাৰ আদি জীয়াই আছে।

লোকসাহিত্যৰ অন্যতম ভাগ হৈছে লোকগীত। লোকগীতৰ অন্য এক ভাগ হৈছে নিচুকনি গীত। অন্য জাতি-জনজাতিৰ দৰে চাহ জনগোষ্ঠী তথা চাহ শ্ৰমিক সমাজতো নিচুকনি গীত, শিশু উমলোৱা গীত, শিশু নিচুকোৱা গীত, ধাই গীত আদিৰ প্ৰচলন অতীজৰে পৰা চলি আহিছে। বৰ্তমান প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ চৰম উন্নতিৰ ফলত কেৱল গাঁও আৰু বাগিচা অঞ্চলৰ বিশেষকৈ নিৰক্ষৰ সমাজৰ মাজত নিচুকনি গীতৰ প্ৰচলন বেছি। নিচুকনি গীতসমূহৰ এক সুকীয়া বৈশিষ্ট্য দেখিবলৈ পোৱা যায়।

০.০২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

"চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত ঃ এক চমু অৱলোকন" শীৰ্ষক বিষয়টোৰ আলোচনাৰ উদ্দেশ্য হৈছে—

ক) অসমৰ চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ চমু পৰিচয় আগবঢ়োৱা।

খ) চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত লোকগীতৰ চমু আভাস দিয়া।

গ) চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতৰ বিষয়ে এই আলোচনাত আলোকপাত।

ঘ) চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতৰ পৰিৱৰ্তনৰ সম্পৰ্কে আলোচনা।

ঙ) চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ নিচুকনি গীতৰ সংৰক্ষণৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ সম্পৰ্কে এই আলোচনাৰ জৰিয়তে পোহৰলৈ অনা।

০.০৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতৰ সম্পৰ্কে কম বেছি পৰিমাণে আলোচনা হোৱা দেখা গৈছে। কিন্তু, এই চৰ্চাত আলোচক আৰু সমালোচকসকলে চাহ জনগোষ্ঠীয় তথা চাহ শ্ৰমিক সমাজ-সংস্কৃতিৰ বিভিন্ন দিশসমূহক অধিক গুৰুত্ব দিয়া পৰিলক্ষিত হয়। ইয়াৰ পৰিৱৰ্তে চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতসমূহৰ বিজ্ঞানসম্মত আৰু গৱেষণামূলক দৃষ্টিভংগীৰে চৰ্চাৰ পৰা বাদ পৰি ৰোৱা এটা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয় হৈছে চাহ শ্ৰমিক লোকসকলৰ জীৱন আৰু সামাজিক স্থিতি। গতিকে নিৰ্বাচিত **"চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত ঃ এক চমু অৱলোকন"** শীৰ্ষক বিষয়টোৰ জৰিয়তে চাহ শ্ৰমিক সমাজত নিচুকনি গীত, ছৱা খেলা গীত বা ছেনা খেলা গীতৰ প্ৰচলন, সংৰক্ষণ আৰু পৰিৱৰ্তনৰ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাৰ ক্ষেত্ৰত বিষয়টোৰ গুৰুত্ব আছে।

০.০৪ তথ্য আহৰণৰ উৎস আৰু অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবলৈ যাওঁতে মুখ্যতঃ দুটা উৎসৰ পৰা তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। মুখ্য উৎস হিচাপে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন পদ্ধতি আৰু বিভিন্নজন বিজ্ঞ ব্যক্তিৰ সৈতে হোৱা আলোচনাৰ আধাৰত আলোচনা আগবঢ়োৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে বিষয় সম্পৰ্কীয় গ্ৰন্থৰ সহায় লোৱা হৈছে।

এই অধ্যয়নত বিশেষকৈ চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ অভিজ্ঞ ব্যক্তিৰ সাক্ষাৎকাৰ আৰু তথ্য সংগ্ৰহৰ পাছত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰে আলোচনা আগবঢ়োৱা হৈছে। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে ক্ষেত্ৰ ভিত্তিক অধ্যয়ন পদ্ধতি আৰু ঠায়ে ঠায়ে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হৈছে।

১.০০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

বৃটিছৰ শাসন কালত অসমত চাহ উদ্যোগ গঢ়ি উঠাৰ পিছত অসমত স্থানীয় শ্ৰমিকৰ অভাৱ হৈছিল। সেয়েহে বৃটিছ সকলে সিদ্ধান্ত মৰ্মে ভাৰতৰ বিভিন্ন ঠাইৰ পৰা বিভিন্ন জাতি-গোষ্ঠী, ভাষা-ভাষীৰ লোকসকলক অসমলৈ আনি চাহ বনুৱা হিচাপে চাহ বাগানত নিয়োজিত কৰে। অসমলৈ প্ৰব্ৰজিত চাহ বনুৱা লোকসকলৰ উত্তৰীপুৰুষসকলেই পৰৱৰ্তী সময়ত চাহ জনগোষ্ঠী নামে পৰিচয় লাভ কৰে। এই চাহ শ্ৰমিকসকল অসমলৈ আহোঁতে নিজা সম্পত্তি নামত ভাষা, মৌখিক সাহিত্য, লোকসংস্কৃতি আদি লগত লৈ আহিছিল।

অন্য জাতি-জনজাতিৰ দৰে চাহ জনগোষ্ঠীয় তথা চাহ শ্ৰমিক সমাজতো মৌখিক সাহিত্য তথা লোকসাহিত্যৰ প্ৰচলন আছে। লোকসাহিত্যৰ অন্যতম ভাগ হৈছে লোকগীত। লোকগীত হৈছে অনাক্ষৰী লোকৰ মৌলিক সৃষ্টি।

অসমীয়া সাহিত্যৰ দৰে চাহ জনগোষ্ঠীয় সমাজত প্ৰচলিত লোকগীতসমূহকো আলোচনাৰ সুবিধাৰ্থে কেইবাটাও ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি।

নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই মৌখিক লোকবিদ্যাক — ক) কৃষিভিত্তিক বা ঋতুকালীন উৎসৱ-অনুষ্ঠান সম্পৰ্কীয় গীত, খ) বিবাহ সম্পৰ্কীয় গীত, গ) প্ৰাৰ্থনাসূচক গীত, ঘ) আধ্যাত্মিক ভাবসম্পন্ন গীত, ঙ) শ্ৰম গীত আৰু প্ৰেমৰ গীত আদি ভাগত ভাগ কৰিছে।

ঠিক তেনেদৰে চাহ জনগোষ্ঠীয় মৌখিক লোকবিদ্যাক এনেদৰে ভাগ কৰি আলোচনা কৰিব পাৰি। যেনে—

ক) কৃষিভিত্তিক বা ঋতুকালীন উৎসৱ-অনুষ্ঠান সম্পৰ্কীয় গীত

১) ঝুমুৰ গীত
২) টুচু গীত
৩) সঁহৰাই গীত
দম্‌কইচ গীত
৫) কৰম পৰৱৰ গীত

খ) বিবাহ সম্পৰ্কীয় গীত

১) চাদী বা বিবাহ গীত

গ) প্ৰাৰ্থনাসূচক গীত

১) ফাগুৱা পৰৱৰ গীত আৰু কাঠি নাচৰ গীত
২) মনসা পূজাৰ গীত

ঘ) আধ্যাত্মিক ভাবসম্পন্ন গীত

১) ঘেৰা গীত

ঙ) শিশুৰ লগত জড়িত গীত

১) নিচুকনি গীত
২) ওমলা গীত বা খেল গীত

চ) শ্ৰম গীত আৰু প্ৰেমৰ গীত

চাহ জনগোষ্ঠীয় অন্যতম লেখক সঞ্জয় কুমাৰ তাঁতীয়ে এনেদৰে ভাগ কৰিছে—

ক) বিষয়বস্তুৰভিত্তিত গোৱা গীত
খ) ঋতু অনুসাৰে গোৱা গীত
গ) আঞ্চলিক ৰীতি আৰু বৈশিষ্ট্য অনুসাৰে গোৱা গীত
ঘ) গোৱাৰ সময় অনুসাৰে গোৱা গীত
ঙ) অসমলৈ অহাৰ পিছত সৃষ্টি হোৱা ঝুমুৰ গীত

চাহ শ্ৰমিক সমাজত শিশুৰ লগত জড়িত গীতসমূহক প্ৰধানত দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি।

১) নিচুকনি গীত
২) ওমলা গীত বা খেল গীত

যিকোনো সমাজত নিচুকনি গীতৰ ভূমিকা গুৰুত্বপূৰ্ণ বুলিব পাৰি। নিচুকনি গীতবোৰৰ অন্যতম স্থান আছে লোকসমাজৰ মাজত। অন্য জাতি-জনজাতিৰ দৰে চাহ শ্ৰমিক সমাজতো শৈশৱকালৰ বিভিন্ন চিত্ৰ, হঁহা-কন্দা, ঠেহ পতা, দুষ্টামি কৰা আদিৰ বৰ্ণনা নিচুকনি গীতৰ প্ৰচন আছে। চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতসমূহক তেওঁলোকৰ ভাষাত **'ছৱা খেলা'** বা **'ছেনা খেলা'** গীত বুলি কয়। কেঁচুৱাক নিচুকাবৰ বাবে নানৰকমৰ জীৱ-জন্তু কথা, ভয়-শংকা সৃষ্টি কৰা, প্ৰলোভন দেখুৱাই মাছ ধৰা আকাশৰ জোন, বেলি, তৰা আদিৰ কথা নিচুকনি গীতবোৰত স্থান পাইছে।

শিশুৱে কান্দিলে নিচুকাবৰ বাবে 'শিয়ালী এ নাহিবি ৰাতি, তোৰে কাণে কাটি লগামে বাতি' বুলি গোৱাৰ দৰে চাহ শ্ৰমিক সমাজতো এনে গীতৰ প্ৰচলন দেখিবলৈ পোৱা যায়। যেনে—

'নাই আসবি ৰে কুড়িয়া শিয়াল
পিণ্ডাৰ দিগে থাক
বাবুৰ মায়ে জলকে গেছে
বাবুৰ কাণ কাট।'[১] (অধিকাৰী, পৃ. ১৪৩)

ভাবাৰ্থ— 'আহ অ' এলেহুৱা শিয়াল, পিৰালিতে থাক। ভাইটিৰ মা পানী আনিব গৈছে, সেয়ে টোপনি যাব নোখোজা ভাইটিটোৰ কাণ কাট।'

শিশুৱে মাছ ধৰিবলৈ যোৱাৰ কথা, মাছ ধৰোঁতে ভৰিত কাঁইটে বিন্ধাত পাল্কীত বহি টেঙা খাই খাই অহাৰ কথাৰেও গীত ৰচনা কৰা উদাহৰণ পোৱা যায়। ইয়াৰ উপৰিও বাঘ-বাঘিনী, বান্দৰ, কুকুৰা আদি জীৱ-জন্তুৰ কথাৰেও গীত গাই শিশুক ওমলোৱা গীতৰ প্ৰচলন আছে। যেনে—

'হৌ জেৰে বাঘ বাঘিন
ঘৰ ঘৰাইকে যাচ্ছে
বান্দৰ ভায়া ডালে বসে

চ'খ মুদে আছে।
বাঘ বাঘিন সতা সতীন
কলাই বনে বাস
মুর্গী দেখে কৰ কৰাইল
হাঁস বুঢ়ী হাঁস।'[২] (শইকীয়া, পৃ. ৯৩)

ভাবার্থ— 'সৌৱা বাঘ-বাঘিনী খৱখেদাকৈ গেছে, বান্দৰ ভাইটি ডালত বহি চকু মুদি আছে। বাঘ-বাঘিনীৰ একেলগে জংগলে বাস, মুর্গী চাই গর্জি উঠিল হাঁহি দে বুঢ়ী হাঁহি দে।'

সৌৱজগতৰ চন্দ্র, সূর্য, তৰা আদিৰ উল্লেখ নিচুকনি গীতবোৰত পোৱা যায়। চন্দ্র-সূর্যক মামা বুলি সম্বোধন কৰা বর্ণনা পোৱা যায়। যেনে—

'চান্দো মামা চান্দো মামা
তাৰা কাঁহা গেল?
সূৰ্য্য মামাৰ চাদী হয়েছে
তাৰা উহা গেল।
সূৰ্য্য মামাৰ চুমান বসেছে
তাৰা উহা গেল।
লটীয়া শাক বুঢ়াইল,
চান্দো মামা জ্যোস্না ঘাটেছে
হাম্‌দেৰ বাবু ঘুমাইছে।'[২] (শইকীয়া, পৃ. ৯৩)

ভাবার্থ— 'চন্দ্র মামা চন্দ্র মামা তৰা ক'লৈ গ'ল? সূর্য মোমায়েকৰ বিয়া হৈছে, তৰা তালৈ গ'ল। চন্দ্র মামা চন্দ্র মামা তৰা ক'লৈ গ'ল? সূর্য মোমায়েকৰ চুমান বহিছে তৰা তালৈ গ'ল। লটীয়া শাক বুঢ়া হ'ল, চন্দ্র মোমাইয়ে জ্যোস্না কম কৰিছে, আমাৰ ভাইটি শুইছে।'

সৰু সৰু ল'ৰা-ছোৱালীবোৰে কেতিয়াবা নিজৰ ভিতৰতে কিছুমান গীত গাই খেলা-ধূলা কৰে। এনে গীতবোৰক **ওমলা গীত বা খেল গীত** বোলা হয়। ভিন ভিন খেলৰ লগত ভিন ভিন ওমলা গীত বা খেল গীত শুনিবলৈ পোৱা যায়।

পূর্বৰ চাহ শ্রমিক সমাজ বাৰুকৈয়ে পিছপৰা সমাজ আছিল। অৱশ্যে বর্তমান চাহ শ্রমিক সমাজ শৈক্ষিক আৰু প্রযুক্তি দিশত আগবঢ়া হৈছে। পূর্বৰ সমাজত চাহ শ্রমিক লাইনবোৰত বিদ্যুৎৰ সুবিধা নাছিল। সেই সময়ছোৱাত বাগানৰ লাইনবোৰত কেৰাচিন তেলৰ চাকিৰে ঘৰৰ পোহৰাইছিল। শ্রমিক লাইনবোৰত শিশুৱে যেতিয়া মাতৃক বেছিকৈ আমনি কৰিছিল তেতিয়া মাতৃসকলে নিচুকাবলৈ নিচুকনি গীত গাইছিল। উদাহৰণস্বৰূপে—

"আই ৰে বাতি আই
বাবুকেৰ চামনে আই।" (সংগৃহীত, চুমিত্রা নায়ক)
"আই ৰে ছেনা পুনা
মাছ মাৰতে যাব
মাছেৰ কাটা পাৰে লাগলে
কলাই চাপে যাব।" (সংগৃহীত, চুমিত্রা নায়ক)

চাহ শ্রমিক লোকসকলৰ সমাজত প্রায় সংখ্যক পিতৃ-মাতৃসকল চাহ বাগিচাত কর্মৰত। তাৰ ফলত শিশুসকল নিজৰ মাজতে খেলাৰ সময় বেছিকৈ পায়। ইয়াৰ উপৰিও চাহ বাগিচাত কর্মৰত মহিলাসকলে শিশুসকলক বাগানলৈ লৈ গৈ বাগানত থকা ল'ৰা ওমলোৱা ঘৰত থৈ বাগানৰ কামত ব্যস্ত হৈ পৰে। চাহ শ্রমিক সমাজৰ শিশুসকলৰ মাজত প্রচলিত নিচুকনি গীতসমূহ যেনে—

ক) ইচিক মিচিক গীত, খ) লুকলুকনি গীত, গ) আগুৰ গীত, ঘ) আটুল-পাটুল গীত, ঙ) ঢাৰিগুৰিয়া গীত, চ) চ'ৰ গীত, ছ) দিংলা পাটুং, জ) গুটি চোৰ, ঝ) মুর্গী আৰু চিলনী গীত, ঞ) কাই-কুতোৱা আদি গীত।

ক) ইচিক মিচিক গীত— এই খেলত গোটেইজাক ল'ৰা-ছোৱালীৰ মাজৰ এজনক 'ঘাইদাৰ' কৰি লোৱা হয়। আনবোৰৰ প্রত্যেকে হাত মেলি মাটিত বহি থাকে। এঘাইদাৰ ৰূপে নির্দিষ্ট কৰা ল'ৰাজনে প্রতিখন হাতত গীত গাই গাই টুকুৰিয়াই যায়। এইদৰে যাওঁতে যিজনৰ হাতত টুকুৰিয়াওতে গীতটো শেষ হয় সেইখন হাততে জোৰেৰে কেঁকো�ৱা চেপা দিয়ে। এই খেলৰ নাম ইচিক-মিচিক। আৰু এই খেলত গোৱা গীতটিয়ে হৈছে ইচিক-মিচিক গীত।

'ইচিক মিচিক দাঁতকিচ্ কিচ্
লতা লতী বেল পাত,
বাৰীয়ে আছে নিম গছ
নিম ঝৰ ঝৰ কৰে,
সতা-সতীনেৰ বেটী
নীত লঢ়াই লাগে
খাক্‌ড়া ন কুচিয়া?'[৩] (শইকীয়া, পৃ. ৯৪)

খ) লুকলুকনি গীত— এই খেলত ল'ৰা-ছোৱালীয়ে এজনক মুখ্য কৰি সেইজনকে 'বুড়ী' আখ্যা দিয়ে। সেই বুড়ীজনৰ হাত আৰু হাতৰ আঙুলিত ধৰি লগৰ আনবোৰ ল'ৰা-ছোৱালীয়ে অগা-পিছাকৈ দোলন দি দি আটায়ে একেলগে গীত গায়—

'ঝিম্ ঝিমাইল ঝিম্ ঝিমাইল
মায়ে বাপে খাইল,
ছট চাহাবেৰ ছট ঘড়া,
বড় চাহাবেৰ বড় বেটা,
চাবুক মাৰে ঝড়া ঝড়া,
দাদা গুড়ুং
নাকে সুং হইল ন নাই?'[৩] (শইকীয়া, পৃ. ৯৪)

গ) আগুৰ গীত— এই খেল খেলোঁতে শিশুবোৰে সোঁমাজত সিহঁতৰ লগৰে এজনক কেন্দ্ৰ কৰি লৈ আন শিশুবিলাকে হাতত ধৰাধৰিকৈ বৃত্তাকাৰে আগুৰি ধৰে আৰু মাজৰ শিশুটোক বাওঁপিনৰ পৰা আৰৰি বান্ধি ৰাখে। মাজত থকাজনে আগুৰি থকা সমনীয়াহঁতৰ হাতৰ বান্ধ খুলি বাহিৰলৈ ওলাই আহিব লাগে। এই খেল খেলোঁতে আটায়ে গোৱা গীতটি হেছে—

'এত এত পানী
ৰাজা ৰাণী
এত এত কাদা
চাহেব দাদা
এই ডাং মাৰি
লহা ডাং মাৰি
এই খুঁটা মাৰি
আগুৰ খেল খেলি।'[৪] (শইকীয়া, পৃ. ৯৪)

বুড়ীজনৰ হাত আৰু হাতৰ আঙুলিত ধৰি লগৰ আনবোৰ ল'ৰা-ছোৱালীয়ে অগা-পিছাকৈ দোলন দি দি আটায়ে একেলগে গীত গায়—

'ঝিম্ ঝিমাইল ঝিম্ ঝিমাইল
মায়ে বাপে খাইল,
ছট চাহাবেৰ ছট ঘড়া,
বড় চাহাবেৰ বড় বেটা,
চাবুক মাৰে ঝড়া ঝড়া,
দাদা গুড়ুং
নাকে সুং হইল ন নাই?'[৩] (শইকীয়া, পৃ. ৯৪)

গ) আগুৰ গীত— এই খেল খেলোঁতে শিশুবোৰে সোঁমাজত সিহঁতৰ লগৰে এজনক কেন্দ্ৰ কৰি লৈ আন শিশুবিলাকে হাতত ধৰাধৰিকৈ বৃত্তাকাৰে আগুৰি ধৰে আৰু মাজৰ শিশুটোক বাওঁপিনৰ পৰা আৰৰি বান্ধি ৰাখে। মাজত থকাজনে আগুৰি থকা সমনীয়াহঁতৰ হাতৰ বান্ধ খুলি বাহিৰলৈ ওলাই আহিব লাগে। এই খেল খেলোঁতে আটায়ে গোৱা গীতটি হেছে—

'এত এত পানী
ৰাজা ৰাণী
এত এত কাদা
চাহেব দাদা
এই ডাং মাৰি
লহা ডাং মাৰি
এই খুঁটা মাৰি
আগুৰ খেল খেলি।'[৪] (শইকীয়া, পৃ. ৯৪)

ঘ) আটুল পাটুল গীত — জোনাক নিশা চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ মানুহখিনিয়ে দিনৰ ভাগৰ নাইকিয়া কৰিবলৈ চোতালত বহি থকা সময়ত শিশুসকলেও নানাভাৱে ওমলি-জামলি থাকে। সেই সময়তে বিশেষভাৱে খেলা এটা খেলৰ নামেই হ'ল আটুল পাটুল।

'আটুল পাটুল চিমলা
চিমলা গেল হাট
দুন্দু বাৰে ঢাঁক বাজিল
দে পূৰ্ণিমা ভাত।
আটুল পাটুল চিমলা
চিমলা গেল হাট
দুন্দু বাৰে ঢাঁক বাজিল
দে পূৰ্ণিমা দাইল।
আটুল পাটুল চিমলা
চিমলা গেল হাট
দুন্দু বাৰে ঢাঁক বাজিল
দে পূৰ্ণিমা ভাজি।' (বেজবৰুৱা, পৃ. ৮৩)

ঙ) ঢাৰিগুৰিয়া গীত — এই খেলত শিশুবিলাকে ইজনে সিজনৰ হাতত ধৰাধৰিকৈ এখন ঢাৰিৰ দৰে দীঘল হৈ পৰে। শাৰীটোৰ আগফালে থকা প্ৰথমজনে প্ৰশ্ন সুধিবলৈ আৰম্ভ কৰে আৰু সেইদৰে ইজনৰ পিছত সিজনে এটা এটাকৈ প্ৰশ্ন সুধি যায় আনবিলাকে সেই প্ৰশ্নৰ উত্তৰ দি যায়। হঠাতে কোনোবা এজনে ঢাক বুলি কৈ দিয়াৰ লগে লগে প্ৰথমজনে দ্বিতীয়জনৰ কাষলতিৰ তলেদি সৰকি পাৰ হৈ যায়। যোৱাৰ পিছত প্ৰথম, দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় তিনিওজন একেলগে চতুৰ্থজনৰ কাষলতিৰ তলেদি সৰকি যায়। শেষত ঢাৰি সামৰাৰ দৰে আটাইকেইটা শিশু এঠাইতে গাতে গা লগাই বান্ধ খাই পৰে। এই খেলত গোৱা গীত হৈছে—

'ছাগল বাগাল ছাগল কোথায়?
হাটুং টুং গাই

খাই কি? লাতা পাতা।
মূতে কি? তেল চুতকা।
ঢাঁকে ন চাহনাই
ঢাঁকে। ঢাঁকে ঢাঁক ঢাঁক
ঢাৰিগুৰিয়া।'[৬] (বেজবৰুৱা, পৃ. ৮২)

চ) চ'ৰ গীত— এই খেলত ল'ৰা বা ছোৱালীবোৰে লগৰ ল'ৰা বা ছোৱালীক বুটী আৰু খাড়ী ৰূপে নির্ধাৰিত কৰি লয় আনবিলাকে নানন ঠাইত লুকাই থাকে। গছৰ ডালৰ আঁৰত, গছৰ ওপৰত। খাড়ীয়ে সকলো ঠাইতে আনবিলাকক বিচাৰি ফুৰে। লুকাই থকা ল'ৰা-ছোৱালীবিলাকে খাড়ীৰ চকুত ধূলি দি বুটীক আহি চুব পাৰিলেই খাড়ী হাৰে। এই খেলত খাড়ী হওঁতাজনক জুকাই বিভ্রান্ত কৰিবলৈ গীত গায়। যেনে—

'এ ডালেৰ বান্দৰ
উডালকে যায়
ডালে ডালেৰ বান্দৰ
টেচফুল খায়।'[৭] (বেজবৰুৱা, পৃ. ৮৪)

ছ) ডিংলা পাটুং গীত— এই খেলত কুকুৰা যুঁজৰ দৰে সকলো ল'ৰা-ছোৱালীয়ে এখন হাত কাষলতিত সুমুৱাই লৈ এখন ভৰি দাঙি জপিয়াই থাকিব লাগে। এই খেলত গোৱা গীত হৈছে—

'এতনা ডংগৰ ডিংলা গাছটি
পাটুং পাটুং কৰে
শিলগুটি ন শিল পহা?
কি পাতে খায়।
কোন পাতে কাটা লাগে ন নাই?
নাই লাগে
উঠলে খাবি ন বসলে
বসলে।' (বেজবৰুৱা, পৃ. ৮৪)

এনেদৰে গুটি **'চোৰ গীত'** আৰু **'কাই-কুতোৱা'** গীতো শিশুৰ মাজত প্রচলন থকা দৈখিবলৈ পাওঁ।

চাহ শ্রমিক সমাজত প্রচলিত নিচুকনি গীত বা ছৱা খেলা গীত, ছেনা খেলা গীতসমূহত ছন্দ আৰু ব্যঞ্জনাৰ প্রয়োগ বিশেষ মন কৰিবলগীয়া। চহা কবিৰ, চহা ছন্দ আৰু ব্যঞ্জনাই গীতসমূহ মধুৰ কৰি তুলিছে। উপমা আৰু ৰূপকৰ সহায়ত গীতসমূহ ৰচিত। নিচুকনি গীতবোৰত চাহ শ্রমিক সমাজৰ শ্রমজীৱী লোকসকলৰ শ্রমৰ উল্লেখ পোৱা যায়—

'আইৰে ছেনা পোণা
মাছ মাৰতে যাব
মাছেৰ কাটা পায়ে লাগ্‌লে
দলাই চাঁপে যাব
দলাই আছে কামৰেংগা
খাতে কাতে যাব।'[৮] (অধিকাৰী, পৃ. ১৪৭)

নিচুকনি গীতত প্রতিফলিত বিভিন্ন দিশ ঃ

বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ দৰেই চাহ শ্রমিক সমাজত প্রচলিত নিচুকনি গীত বা ছেনা খেলা গীত বা ছৱা খেলা গীতসমূহৰ জৰিয়তে সমাজখনৰ বিভিন্ন দিশ প্রতিফলিত হোৱা দেখা যায়। নিচুকনি গীতসমূহত সমাজৰ বাস্তৱ আৰু শিশুসকলৰ কাল্পনিক মনৰ অজস্র ভাৱ-অনুভূতি প্রকাশিত হয়। ইয়াৰ উপৰিও নিচুকনি গীতসমূহত সেই সমাজখনৰ সমাজত প্রচলিত লোকবিশ্বাস আৰু সমাজৰ বিভিন্ন দিশ প্রতিফলিত হয়।

নিচুকনি গীতসমূহ প্রধানকৈ শিশু আৰু মাতৃৰ মনৰ ভাৱ-অনুভূতি প্রকাশৰ লগতে সন্তানৰ প্রতি থকা মাতৃৰ মমতা আৰু দৰদ এই গীতবোৰত প্রকাশ পাই আহিছে। ইয়াৰ উপৰিও ওমলা গীতবোৰত শিশুৰ মনস্তত্ত্বৰ প্রকাশ ঘটে।

ঠিক তেনেদৰে, এই নিচুকনি গীত বা ছেনা খেলা গীতসমূহত লোকবিশ্বাসৰ প্রতিফলন ঘটা দেখিবলৈ পোৱা যায়। নিচুকনি গীতসমূহত একো একোটা লোকবিশ্বাসৰ প্রকাশ ঘটে। শিশুক নিচুকাবলৈ, শিশুক ওমলাবলৈ নিচুকনি গীত গোৱা হয় আৰু শিশুক ভয় খুৱাবলৈ, টোপনি নিয়াবলৈ এই নিচুকনি গীতসমূহত ভূত, দানৱ, নানান জীৱ-জন্তুৰ, জোন, তৰা আদিৰ উল্লেখ পোৱা যায়। তেওঁলোকৰ বিশ্বাস যে, এনে ভূত, দানৱ, নানান জীৱ-জন্তুৰ, জোন, তৰা আদিৰ নাম লৈ গীত গাই নিচুকালে শিশুটি ভয় খাই শুৱ, নাইবা মনে মনে থাকিব।

ঠিক সেইদৰেই, নিচুকনি গীতসমূহত সমাজৰ বিভিন্ন দিশ প্রতিফলিত হোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে—

".....
ছট চাহাবেৰ ছট ঘড়া,
বড় চাহাবেৰ বড় বেটা,

চাবুক মাৰে ঝড়া ঝড়া

.....।" (শইকীয়া, পৃ. ৯৪)

উল্লিখিত গীতটিত চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ শ্ৰমিক জীৱনৰ বাস্তৱ প্ৰতিচ্ছবি ফুটি উঠিছে। চাহ বাগানত কৰ্মৰত শ্ৰমিকসকলৰ জীৱন কষ্টৰে ভৰা। চাহাবসকলে শ্ৰমিকসকলক ওপৰত শাসন, শোষণ কৰিছিল। চাবুকেৰে কোবাইছিল। তাৰ সুন্দৰ প্ৰতিচ্ছবি নিচুকনি গীতবোৰত ফুটি উঠিছে।

"ছাগল বাগাল ছাগল কোথায়?
হাটুং টুং গাই
খাই কি? লাতা পাতা।
মূতে কি? তেল চুতকা।
ঢাঁকে ন চাহনাই
.....।"[৬] (বেজবৰুৱা, পৃ. ৮২)

উল্লিখিত নিচুকনি গীতটিত চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ শিশুসকল ছাগলী বাগাল (ৰখীয়া), গৰু বাগাল কৰাৰ দৃশ্য প্ৰতিফলিত হৈছে। ইয়াৰ উপৰিও চাহ জনগোষ্ঠীয় সমাজৰ পৰম্পৰাগত বাদযন্ত্ৰ 'ঢাঁক' আৰু 'চাহনাই' ৰ উল্লেখ পোৱা যায়।

'আটুল পাটুল চিমলা
চিমলা গেল হাট
দুন্দু বাৰে ঢাঁক বাজিল
দে পূৰ্ণিমা ভাত।
আটুল পাটুল চিমলা
চিমলা গেল হাট
দুন্দু বাৰে ঢাঁক বাজিল
দে পূৰ্ণিমা দাইল।
আটুল পাটুল চিমলা
চিমলা গেল হাট
দুন্দু বাৰে ঢাঁক বাজিল
দে পূৰ্ণিমা ভাজি।' (বেজবৰুৱা, পৃ. ৮৩)

উল্লিখিত নিচুকনি গীতটিত চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ ছবি দাঙি ধৰা হৈছে। চাহ বাগিচাত কৰ্মৰত শ্ৰমিকসকল ওৰে দিনটো বাগানত কাম কৰি গধূলি ঘৰলৈ আহে। জোনাক নিশা গৃহস্থ, ঘৰৰ সদস্য আৰু কণমাণি শিশুসকল চোতালত বহি জিৰণি লয়। বয়োজ্যেষ্ঠ আৰু গৃহস্থই জিৰণি লোৱা সময়ত কণমাণি শিশুসকলে চোতালত এনে গীত মাতি খেলে। এই গীতবোৰত ওমলা গীত বা খেল গীত ছেনা খেলা গীত বুলিও কোৱা হয়।

পৰিৱৰ্তন ঃ

সভ্যতাৰ অগ্ৰগতিৰ লগে লগে সমাজৰ পৰিৱৰ্তন স্বাভাৱিক আৰু এনে পৰিৱৰ্তনৰ একমাত্ৰ কাৰণ হৈছে আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱ। আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱৰ ফলত জনজীৱন সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা, ধ্যান-ধাৰণা, আচাৰ-লোকাচাৰ, নীতি-নিয়ম আদি সকলো দিশতে পৰিৱৰ্তন আহিছে। আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱৰ লগে লগে সাধাৰণ জনসাধাৰণৰ জনজীৱন, চিন্তা-ধাৰাতো পৰিৱৰ্তনৰ সূচনা হৈছে।

বিভিন্ন জাতি-জনজাতিৰ দৰে অসমৰ অন্যতম চাহ জনগোষ্ঠীয় সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতসমূহতো আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱ বিশেষ মন কৰিবলগীয়া। চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতসমূহ সময়ৰ লগে লগে পৰিৱৰ্তিত হৈছে। অতীতত নিচুকনি গীতসমূহ নিৰক্ষৰ জনসাধাৰণৰ মুখে মুখে প্ৰচলন আছি। নিচুকনি গীতসমূহৰ কোনো লিখিত ৰূপ নাছিল। আধুনিকতাৰ প্ৰভাৱ অৰ্থাৎ আধুনিক শিক্ষাৰ প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰৰ ফলত লোকসাহিত্য, লোকগীতসমূহ লিখিত ৰূপ পাবলৈ সক্ষম হৈছে। লিখিত ৰূপ পোৱাৰ লগে লগে লোকগীত, লোকসাহিত্য, লোকসংস্কৃতিৰ দৰেই নিচুকনি গীতসমূহৰ কিছু পৰিৱৰ্তন হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে।

পৰিৱৰ্তণৰ দ্বিতীয় কাৰণটো হৈছে অন্য জাতি-জনজাতিৰ প্ৰভাৱ। অতীজৰে পৰা চলি অহা নিচুকনি গীতৰ লগত বৰ্তমান আধুনিক যুগৰ নিচুকনি গীতৰ যথেষ্ঠ মিল-অমিল দেখিবলৈ পোৱা যায়। ইয়াৰ উপৰিও এনে গাঁও বা অঞ্চল আছে য'ত আজিও শিক্ষাৰ পোহৰ পোৱা নাই। এনে অঞ্চলবোৰত আজিও অলিখিত ৰূপত আছে। এনে অলিখিত গীতসমূহ পোহৰলৈ অনাৰ প্ৰয়োজন।

সংৰক্ষণৰ প্ৰয়োজনীয়তা ঃ

সংস্কৃতি, ভাষা আৰু লোক সাহিত্যত একোখন সমাজ নিহিত হৈ থাকে। একোটা জাতি-জনগোষ্ঠীৰ ঐতিহ্য, ভাষা, লোক সাহিত্য, লোকগীত, লোক সংস্কৃতিৰ সংৰক্ষণ কৰিবলৈ হ'লে সেই জাতিটোৰ নিজা ইতিহাস অধ্যয়ন কৰা প্ৰয়োজন। পূৰ্বপুৰুষসকলৰ পৰম্পৰা, সংহতি, ধ্যান-ধাৰণাৰ লগত উত্তৰ প্ৰজন্মই নিৰবচ্ছিন্নভাৱে জড়িত হৈ আছে। একোটা সমাজৰ ইতিহাস বা পৰিচয় বৰ্তাই ৰাখিবৰ বাবে তেওঁলোকৰ লোকসংস্কৃতি, পৰম্পৰা, লোকাচাৰ,

লোকসাহিত্য -ভাষা আদি সংৰক্ষণ কৰা উচিত। বিভিন্ন জাতি-গোষ্ঠীৰ সংস্কৃতিৰ লগত একে হ'লেও যে পৃথক সেইয়া প্ৰমাণৰ বাবে ৰক্ষণশীলৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে। সংৰক্ষণৰ বাবে প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰৰ আৱশ্যক। কোনবোৰৰ সংৰক্ষণ কৰা আৱশ্যক সেয়া অধ্যয়নৰ ফলত নিৰ্ধাৰণ কৰিব পাৰি। ভালখিনি সংৰক্ষণ কৰি নতুনত্ব গ্ৰহণ কৰা উচিত। লগতে পৰম্পৰাগত পুৰণিও বৰ্তাই ৰাখিব লাগে। পুৰণি আৰু নতুনত্বক নিদিষ্টকৈ পৃথক কৰি দেখুৱাব নোৱাৰি। এক কথাত ইয়াক মিশ্ৰণ বুলিয়ে ক'ব পাৰি। সেয়ে একোটা জাতি-জনজাতিৰ পৰম্পৰা, লোকাচাৰ, লোক সংস্কৃতি সংৰক্ষণ কৰা খুবেই আৱশ্যক। চাহ জনগোষ্ঠী সমাজেও ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। তেওঁলোকৰ সমাজৰ পূৰ্বৰ ইতিহাস অধ্যয়ন কৰি পৰম্পৰা, লোকাচাৰ, ভাষা, লোক সাহিত্য, লোকগীত, লোক সংস্কৃতি সংৰক্ষণ কৰাৰ লগতে প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰ কৰা অত্যাৱশ্যকীয়।

উপসংহাৰ ঃ

'চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত ঃ এক চমু অৱলোকন' শীৰ্ষক বিষয়টি আলোচনাৰ অন্তত কিছু দিশ পোহৰলৈ অনাৰ চেষ্টা কৰা হৈছে। চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীত বা ছৰা খেলা গীত, ছেনা খেলা গীত, নিচুকনি গীতসমূহৰ সংৰক্ষণ, পৰিৱৰ্তন আদি দিশৰ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ল।

উপৰোক্ত আলোচনাৰ পৰা চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতৰ সম্পৰ্কে কিছু সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পাৰি —

(১) চাহ শ্ৰমিক সমাজত অতীজৰে পৰা ছৰা খেলা গীত বা ছেনা খেলাৰ গীতৰ প্ৰচলন।

(২) চাহ শ্ৰমিক সমাজত প্ৰচলিত নিচুকনি গীতসমূহৰ এক সুকীয়া বৈশিষ্ট্য পৰিলক্ষিত হয়।

(৩) চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ নিচুকনি গীতসমূহ ছন্দ আৰু ব্যঞ্জনাৰ বিশেষ প্ৰয়োগ।

(৪) চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ নিচুকনি গীতসমূহত শ্ৰমিকসকলৰ সংগ্ৰামী চেতনা প্ৰকাশ।

(৫) চাহ শ্ৰমিক সমাজৰ নিচুকনি গীতসমূহৰ লিপিবদ্ধকৰণ, ডিজিটেল সংৰক্ষণৰ ব্যৱস্থা। ❑

প্ৰসংগসূত্ৰ ঃ

১। শুকদেৱ, অধিকাৰী। চাহ জনগোষ্ঠীৰ লোকগীত লোক পৰম্পৰা আৰু উৎসৱৰ ৰূপৰেখা। পৃ. ৯২
২। মানিক, শইকীয়া। অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিলৈ চাহ জনগোষ্ঠীৰ অৱদান। পৃ. ৯৩
৩। পূ. উ. পৃ. ৯৪।
৪। পূ. উ. পৃ. ৯৫।
৫। জ্যোৎস্না শৰ্মা বেজবৰুৱা। অসমৰ চাহ মজদুৰ সমাজৰ সংস্কৃতি। পৃ. ৮৩।
৬। পূ. উ. পৃ. ৮২
৭। পূ. উ. পৃ. ৮৪
৮। শুকদেৱ, অধিকাৰী। চাহ জনগোষ্ঠীৰ লোকগীত লোক পৰম্পৰা আৰু উৎসৱৰ ৰূপৰেখা। পৃ. ৯৪৭

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

অধিকাৰী, শুকদেৱ। ***চাহ জনগোষ্ঠীৰ লোকগীত লোক পৰম্পৰা আৰু উৎসৱৰ ৰূপৰেখা***। সৰস্বতী ডি. এন. প্ৰকাশন। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৫
কুৰ্মী, গণেশ চন্দ্ৰ। ***দেউৰাম তাছাৰ ৰচনাৱলী***। অসম সাহিত্য সভা। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০১
কুৰ্মী, সুশীল। ***চাহ বাগিচাৰ জীৱন আৰু সংস্কৃতি***। অসম সাহিত্য সভা। প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৯১
ঘাটোৱাৰ, নাৰায়ণ। ***বনুৱাৰ সাংস্কৃতিক জীৱনত এভূমুকি***। অসম সাহিত্য সভা। প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৭৫
তাছা, ডিম্বেশ্বৰ। ***চাহ জনগোষ্ঠী সমাজ আৰু সংস্কৃতি***। অসম প্ৰকাশনপৰিষদ। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১২
ৰৱা, লোহিত কুমাৰ। ***অসমৰ চাহ জনগোষ্ঠীৰ সমাজ আৰু সংস্কৃতি***। কৌস্তুভ প্ৰকাশন। দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০০৮
বেজবৰুৱা, জ্যোৎস্না শৰ্মা। ***অসমৰ চাহ মজদুৰ সমাজৰ সংস্কৃতি***। বনলতা। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০১
ৰাজেন, গগৈ (সম্পা.)। **চাহ জনগোষ্ঠীৰ চিন্তা-চেতনা**। অসম সাহিত্য সভা। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০১
শইকীয়া, মানিক। ***অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিলৈ চাহ জনগোষ্ঠীৰ অৱদান***। অসম চাহ জনজাতি ছাত্ৰ সস্থা। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০২২

সমল দাতা ঃ

সঞ্জয় কুমাৰ তাঁতী	৭০	তেজপুৰ	অৱসৰপ্ৰাপ্ত (এচ.বি.আই. বেংক মেনেজাৰ)
চুমিত্ৰা নায়ক	৫৪	বোকাখাত	চাহ শ্ৰমিক
ৰীমা গড়	৪৬	বোকাখাত	চাহ শ্ৰমিক
জনী নায়ক	৫৩	বোকাখাত	চাহ শ্ৰমিক

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

প্ৰথম মহাসমৰত যোগদান কৰা উত্তৰ-পূৱ ভাৰতৰ কুলি শ্ৰমিকসকলৰ অৱদান ঃ এক ঐতিহাসিক অন্বেষণ

গৌৰৱ শইকীয়া

গৱেষক, ইতিহাস আৰু পু�ৰাতত্ব বিভাগ
নাগালেণ্ড বিশ্ববিদ্যালয়
কোহিমা কেম্পাচ, মেৰিমা-৭৯৭০০৪
৮৬৩৮৪২০৩৩১
saikiagaurab98@gmail.com

সুপ্ৰিয়া দত্ত

সহকাৰী অধ্যাপক, ইতিহাস বিভাগ
বাহনা মহাবিদ্যালয়,
যোৰহাট, অসম-৭৮৫১০১
৮৭২১৯৩৭৩২৯
supriyadutta955@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

১৯১৭ চনৰ প্ৰথম মহাসমৰৰ সময়ছোৱাত মিত্ৰ পক্ষৰ পশ্চিম ইউৰোপৰ দেশসমূহে কেন্দ্ৰীয় শক্তি জাৰ্মাণীৰ বিৰুদ্ধে যুদ্ধত লিপ্ত হওঁতে যুদ্ধক্ষেত্ৰত মোতায়ণ কৰিবলগীয়া হোৱা লক্ষাধিক সৈনিকৰ গৰিষ্ঠসংখ্যক সৈনিক আছিল এছিয়া আৰু আফ্ৰিকাৰ উপনিৱেশসমূহৰ। এই যুদ্ধত সামৰিক বিভাগক সৈনিকৰ লগতে যথেষ্ট সংখ্যক যুদ্ধক্ষেত্ৰত প্ৰয়োজনীয় আনুসংগিক কামৰ কাৰণে প্ৰয়োজন হৈছিল কুলি শ্ৰমিকৰ আৰু এই শ্ৰমিকসকলৰ বেছিভাগক প্ৰেৰণ কৰা হৈছিল ইংলেণ্ডৰ অধীনৰ এছিয়াৰ দেশসমূহৰ পৰা। এই ক্ষেত্ৰত ভাৰতেও এই যুদ্ধলৈ সৈনিক আৰু কুলি শ্ৰমিক দুয়োটা পক্ষক ইংলেণ্ডৰ হৈ যুদ্ধলৈ প্ৰেৰণ কৰিছিল। ভাৰতৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ লগতে উত্তৰ-পূৱ ভাৰতৰ পৰাও যথেষ্ট সংখ্যক পাহাৰীয়া জনজাতিক ইউৰোপৰ যুদ্ধ সীমান্তলৈ কুলি হিচাপে বিভিন্ন প্ৰলোভন তথা ভাবুকি দেখুৱাই প্ৰেৰণ কৰা হৈছিল। এই গৱেষণা পত্ৰখনত উত্তৰ-পূৱ ভাৰতৰ কুলি শ্ৰমিকসকলৰ প্ৰথম মহাসমৰলৈ আগবঢ়োৱা তেওঁলোকৰ যোগদান গুৰুত্বপূৰ্ণ অৱদান আৰু যুদ্ধকালীন সময়ত কুলি সকলে আগবঢ়োৱা সেৱা আৰু তেওঁলোকৰ অৱদান সমূহৰ এক ঐতিহাসিক পৰ্যালোচনা দাঙি ধৰা প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ

প্ৰথম মহাসমৰ, কুলি, উত্তৰ পূৰ্বাঞ্চল, সাহসিকতা।

অৱতৰণিকা ঃ

১৯১৪ চনৰ পৰা ১৯১৮ চনলৈকে সমগ্ৰ বিশ্বজুৰি আৰম্ভ হোৱা সুদীৰ্ঘ ৪ বছৰীয়া মানৱ বিধ্বংসী মহাসমৰে বিশ্বৰ প্ৰতিখন দেশতে ব্যাপক ৰূপত প্ৰভাৱ পেলায়। ক্ৰমে কেন্দ্ৰীয় আৰু মিত্ৰ এই দুই শক্তি বিভক্ত হৈ পৰা পশ্চিম ইউৰোপৰ কেইবাখনো শক্তিশালী ৰাষ্ট্ৰই নিজৰ লগতে তেওঁলোকৰ প্ৰতি আনুগত্যশীল অন্যান্য সৰু সৰু দেশসমূহকো নিজ শক্তিৰ অন্তৰ্ভূক্ত কৰি লোৱাৰ ফলত অতি শীঘ্ৰে এই যুদ্ধ ইউৰোপৰ লগতে এছিয়া আৰু আফ্ৰিকাত থকা ইউৰোপৰ দেশ সমূহৰ উপনিৱেশ সমূহতো বিয়পি পৰে। সমগ্ৰ বিশ্বই প্ৰথমবাৰৰ কাৰণে সন্মুখীন হোৱা এই সৰ্বনাশী যুদ্ধৰ ফলত বিভিন্ন দেশসমূহৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ সীমান্ত অঞ্চল সমূহ ৰণক্ষেত্ৰলৈ ৰূপান্তৰিত হৈ পৰে। এই ক্ষেত্ৰত ব্ৰিটিছ উপনিৱেশিকতাবাদৰ অংগ হিচাপে ভাৰতেও মিত্ৰ পক্ষৰ সদস্য হিচাপে কেন্দ্ৰীয় শক্তি জাৰ্মানীৰ বিৰুদ্ধে যুদ্ধত নামি পৰে। এইক্ষেত্ৰত এই যুদ্ধলৈ আটাইতকৈ বেছি অৰ্থনৈতিক অৱদান আগবঢ়োৱাৰ লগতে ব্ৰিটিছ উপনিৱেশিকতাবাদৰ অৰ্ন্তভুক্ত ৰাষ্ট্ৰ হিচাপে গৰিষ্ঠ সংখ্যক ভাৰতীয় সৈনিকক ইউৰোপৰ যুদ্ধপ্ৰান্তলৈ প্ৰেৰণ কৰা হয়। উক্ত যুদ্ধত ভাৰতৰ পৰা ৯ লাখতকৈও বেছি লোকে

সশস্ত্র সৈনিক আৰু ৬ লাখতকৈও অধিক সংখ্যকে বনুৱা হিচাপে যুদ্ধক্ষেত্রত অংশগ্রহণ কৰিছিল (Noble, 2016)। কিন্তু যুদ্ধক্ষেত্রৰ সশস্ত্র সৈনিক সকলৰ বিষয়ে বহলভাৱে ইতিহাসত যিমান চর্চিত হয় তথা তেওঁলোকৰ নাম মিলিটেৰী নথিপত্রত যিধৰণে উপলব্ধ হয় তাৰ বিপৰীতে উত্তৰ-পূৰ ভাৰতৰ পৰা ব্রিটিছ কর্তৃপক্ষই শ্রমিক হিচাপে মিত্রপক্ষৰ যুদ্ধৰ শিৰিৰত মোতায়েম কৰা কেইবাহাজাৰো অসামৰিক কুলি শ্রমিকসকলৰ অৱদান আৰু ত্যাগৰ বিষয়ে ইতিহাস নিমাত। এইসকল অসামৰিক কুলি গোটে প্রথম মহাসমৰত ক্রমে ফ্রান্স, মেচোপটেমিয়া আৰু তুৰ্কীত নিজৰ সেৱা আগবঢ়াইছিল। প্রায়ভাগ ক্ষেত্রতে এই যুদ্ধৰ বিষয়ে আলোচনা আৰু নিজস্ব মতামত আগবঢ়োৱা পাশ্চাত্যৰ ইতিহাসবিদসকলৰ মাজতো অনা ব্রিটিছ লোকসকলৰ অৱদানৰ বিষয়ে চর্চা কৰা পৰিলক্ষিত নহয়, যিহেতু বেছিভাগ ক্ষেত্রতে তেওঁলোকৰ মাজত দেখিবলৈ পোৱা আলোচনা সমূহত কেৱল 'White-Man' Narrative' তত্বকহে বেছি প্রাধান্য দিয়া হয় আৰু এছিয়াৰ লোকসকলৰ এই যুদ্ধলৈ আগবঢ়োৱা বৰঙণিক গৌণ হিচাপে বিবেচনা কৰা হয়।

প্রথম মহাসমৰৰ সময়ছোৱাত যুদ্ধ সীমান্তৰ বিভিন্ন দেশত মিত্র পক্ষৰ দ্বাৰা নিয়োজিত অসামৰিক কুলি শ্রমিকসকলৰ অৱদান আৰু তেওঁলোকে আগবঢ়েঞাৱা পৰিশ্রমৰ বিষয়ে বিশেষ চর্চা হোৱা পৰিলক্ষিত নহয়। এই মহাসমৰত ইউৰোপৰ আন ঠাইৰ তুলনাত যুদ্ধক্ষেত্রত মোতায়ণ কৰা গৰিষ্ঠ সংখ্যক শ্রমিক ব্রিটিছ শাসিত ভাৰতৰ বিভিন্ন প্রান্তৰ পৰা প্রেৰণ কৰা হৈছিল আৰু ইয়াক সুকীয়াকৈ Indian Labour Corps (ILC) নামেৰে জনা গৈছিল। এই গোটৰ ভিতৰত উল্লেখনীয়ভাৱে উত্তৰ-পূৰ ভাৰতৰ বিশেষকৈ মেঘালয়, নাগালেণ্ড, মিজোৰাম আৰু মণিপুৰৰ বিভিন্ন পাহাৰীয়া জনজাতিৰ লোক সকলেও কুলি হিচাপে ফ্রান্সৰ যুদ্ধ সীমান্তত নিজৰ অৰিহণা আগবঢ়াইছিল। উক্ত গৱেষণা পত্রখনৰ জড়িয়তে 'ভাৰতীয় শ্রমিক দল'ৰ হৈ নিজৰ অৱদান আগবঢ়োৱা উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ এই জনজাতীয় সকলক কুলি হিচাপে ভর্ত্তিকৰণ প্রক্রিয়া, যুদ্ধত যোগদান, যুদ্ধক্ষেত্রত তেওঁলোকৰ ওপৰত ন্যস্ত কৰা কাম, যুদ্ধক্ষেত্রৰ অভিজ্ঞতা আৰু স্বদেশলৈ কৰা প্রত্যাৱর্তনৰ বিষয়ে এক ঐতিহাসিক পর্য্যালোচনা দাঙি ধৰাৰ প্রয়াস কৰা হৈছে।

উদ্দেশ্য ঃ

১। এই গৱেষণামূলক প্রবন্ধটোৰ জৰিয়তে প্রথম মহাসমৰত উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ পৰা 'কুলি' হিচাপে যোগদান কৰা লোকসকল প্রকৃততে কোন আছিল, তেওঁলোকৰ নৃগোষ্ঠীয় পৰিচয় আলোচনা কৰা।

২। আন এটা মুখ্য উদ্দেশ্য হৈছে সাত সাগৰ তেৰ নদীৰ সিপাৰে মোতায়ন কৰাৰ পাছত এই লোকসকলৰ প্রতিক্রিয়া কি আছিল সেই সম্পর্কে অধ্যয়ন কৰা। তেওঁলোকে কেনেধৰণৰ অর্থনৈতিক বা সামাজিক কাৰকৰ প্রভাৱত পৰি অনিশ্চিত ভৱিষ্যতৰ দিশে আগুৱাই গৈছিল সেই বিষয়ে জানিবলৈ চেষ্টা কৰা।

৩। তৃতীয়তে কুলি শ্রমিক সকলৰ বাবে কেনেধৰণৰ কাম অনুদিত আছিল আৰু তেওঁলোকক সৈন্য হিচাপে নিয়োগ কৰাৰ পৰিৱর্তে কুলি শ্রমিক হিচাপে কিয় নিয়োগ কৰা হৈছিল সেই সম্পর্কে আলোকপাত কৰা।

৪। শেষত যুদ্ধক্ষেত্রৰ পৰা উভতি অহা কুলি শ্রমিক সকলে কিদৰে নিজস্ব অঞ্চলৰ সামাজিক তথা সাংস্কৃতিক পৰিৱর্তন আনিবলৈ তৎপৰতাৰে কাম কৰিছিল সেই বিষয়ে তথ্যসহ আলোচনা কৰা।

পদ্ধতি ঃ

এই প্রৱন্ধটো প্রস্তুত কৰিবলৈ মূলতঃ ঐতিহাসিক গৱেষণা পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। সহায় লোৱা গৌণ সমলৰ ভিতৰত প্রথম মহাসমৰক কেন্দ্র কৰি লিখা গৱেষণামূলক গ্রন্থ, প্রবন্ধ, জীৱনী সাহিত্যৰ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। সমসাময়িক যুগৰ ৰাষ্ট্রীয় আৰু আন্তঃৰাষ্ট্রীয় বাতৰি কাকত, দিনলিপি আদি প্রাথমিক সমল এই প্রবন্ধটোৰ বাবে অন্যতম। ইয়াৰ লগতে বহুতো লিপিবদ্ধ মৌখিক সমলৰো সহায় লোৱা হৈছে প্রৱন্ধটো যুগুত কৰোঁতে। সমলৰ দৈন্যতাৰ বাবে কিছুমান দিশ স্পষ্ট হোৱা নাই যদিও উপৰোক্ত সমলখিনিৰ ঐতিহাসিক বিশ্লেষণৰ জৰিয়তে লাভ কৰা নির্ভৰযোগ্য তথ্যৰে এই গৱেষণামূলক প্রৱন্ধটো প্রস্তুত কৰি উলিওৱা হৈছে।

প্রথম মহাসমৰত ভাৰতৰ যোগদান ঃ

১৯১৪ চনৰ পৰা ১৯১৮ চনলৈ সুদীর্ঘ চাৰিবছৰ একেৰাহে চলা বিশ্বত্রাসী প্রথম মহাযুদ্ধই সমগ্র ইউৰোপৰ আর্থসামাজিক প্রেক্ষাপটৰ গতিচিত্র সম্পূর্ণৰূপে সলনি কৰি পেলোৱাৰ লগতে পাশ্চাত্য ইউৰোপৰ অধীনত থকা এছিয়া আৰু আফ্রিকাৰ উপনিৱেশ সমূহৰ ওপৰতো প্রভাৱ বিস্তাৰ কৰিছিল। অৱশ্যে এইক্ষেত্রত ব্রিটেইনৰ উপনিৱেশ ভাৰতীয় উপমহাদেশ এই ৰণাংগনৰ প্রত্যক্ষ ধ্বংসলীলাৰ পৰা

নিলগত থাকিলেও ঔপনিৱেশিক স্বার্থ পূৰণৰ কাৰণে ভাৰততে শাসনাধীন ইংৰাজ চৰকাৰে লক্ষাধিক সেনাজোৱানক এই যুদ্ধৰ কাৰণে ইউৰোপৰ বিভিন্ন সীমান্তলৈ প্ৰেৰণ কৰিছিল। ইয়াৰে বেছিভাগ সৈনিকক মধ্যপ্ৰাচ্য, আফ্ৰিকা তথা পশ্চিম ইউৰোপৰ ভিন্ন জলবায়ুৰ অঞ্চললৈ প্ৰস্তুত কৰি প্ৰেৰণ কৰা হৈছিল। ১৯১৮ চনৰ শেষলৈকে প্ৰায় ১.৫ মিলিয়ন ভাৰতীয়ই যুদ্ধক্ষেত্ৰৰ সৈনিক আৰু কুলি শ্ৰমিক হিচাপে মিত্ৰশক্তিৰ হৈ যুঁজিবলৈ স্বদেশ এৰিছিল। এওঁলোকৰ ৬২ হাজাৰ ৰণক্ষেত্ৰত মৃত্যু হৈছিল আৰু ঘুণীয়া হৈছিল ৬৭ হাজাৰ আৰু অগণন আক্ৰান্ত হৈছিল বিভিন্ন ৰোগত। সৈনিক তথা কুলিৰ বাহিৰেও যুদ্ধত প্ৰয়োজন হোৱা ১৭০,০০০ ৰো অধিক জন্তু আৰু ০.৭ নিযুত টন বিভিন্ন ৰচদ পাতিৰ বোজাও ভাৰতে বহন কৰিবলগীয়া হৈছিল। অন্যহাতে যুদ্ধ ক্ষেত্ৰত আহত সৈনিকৰ চিকিৎসাৰ কাৰণেও ভাৰতে ধাত্ৰী (নার্চ)ৰ যোগান ধৰিছিল আৰু ইয়াৰে দুশৰো অধিক নার্চে যুদ্ধক্ষেত্ৰত কৰ্তব্যৰ অৱস্থাতে মৃত্যুবৰণ কৰিছিল। (ওজা, ২০১৪, পৃঃ ২৩৪)। এই যুদ্ধক্ষেত্ৰত অৱতীৰ্ণ হোৱা বেছিসংখ্যক ভাৰতীয়ক ক্ৰমে ফ্ৰান্স, তুৰ্কী, মেছোপটেমিয়া আৰু আফ্ৰিকাত মিত্ৰশক্তিৰ বিভিন্ন গোটত নিয়োজিত কৰা হৈছিল। বিশ্বৰ বাকী দেশৰ তুলনাত ভাৰতৰ কাৰণে এই যুদ্ধখনৰ বিশেষত্ব আছিল যে প্ৰথমবাৰৰ কাৰণে এই যুদ্ধত ভাৰত উপমহাদেশৰ প্ৰতিটো প্ৰান্তলৈকেই সামৰিক উভয়বিভাগতে যোগদান কৰি নিজৰ সেৱা আগবঢ়াইছিল (Chetri, 2016,p.1)। যিহেতু ইংলেণ্ডৰ অধীনত থকা সেই সময়ৰ এছিয়াৰ উপনিৱেশ সমূহৰ ভিতৰত ভাৰতৰে জনসংখ্যা অত্যাধিক আছিল (২৪০ মিলিয়ন, সেই সময়ৰ ৰাছিয়াৰ জনসংখ্যাৰ তিনিগুণ অধিক) গতিকে ইউৰোপত চলা এই যুদ্ধকালীন পৰিস্থিতিত নিজৰ সহায়ৰ কাৰণে অতিৰিক্ত ভাৰতীয় সেনা যুদ্ধক্ষেত্ৰত মোতায়ন কৰাত ইউৰোপৰ অন্য দেশৰ তুলনাত আটাইতকৈ বেছি ইংলেণ্ডৰ সুবিধা হৈছিল। প্ৰথম মহাসমৰত ইউৰোপৰ মুখ্য দুখন নির্ণায়ক যুদ্ধক্ষেত্ৰ বেলজিয়াম আৰু ফ্ৰান্স উভয়তে ১৯১৪ চনৰ ২৫ আগষ্টত ভাৰতৰ পৰা প্ৰেৰণ কৰা প্ৰথমটো সৈনিক দলে ভাগ লৈছিল। অন্যহাতে "India's Contribution to the Great War " গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰা মতে ভাৰতৰ পদাতিক বাহিনীক ইউৰোপৰ বাহিৰেও ক্ৰমে পাৰস্য উপকূল, ইজিপ্ত আৰু উত্তৰ আফ্ৰিকালৈও যুদ্ধৰ নিমিত্তে প্ৰেৰণ কৰা হৈছিল। (Singh 2014, pp 61,75)।

প্ৰথম মহাসমৰত যোগদান কৰা ভাৰতীয় কুলিসকল ঃ

'কুলি' শব্দটো অর্থ হৈছে ইউৰোপিয়ান সকলে ১৮শ শতিকাত এছিয়াত সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ গিৰ্মিটিয়া প্ৰব্ৰজনকাৰী শ্ৰমিক (Indentured labourers) সকলক বুজাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰিছিল। উক্ত শ্ৰমিকসকলৰ বেছিভাগকে নির্দিষ্ট সময়ৰ ব্যৱধানত গিমিট বা অনুজ্ঞাপত্ৰ প্ৰদান কৰি ভাৰতৰ বিভিন্ন ঠাইৰ পৰা বিশেষকৈ উত্তৰ আফ্ৰিকা, ইউগাণ্ডা আদি অঞ্চললৈ কুঁহিয়াৰ খেতি, ৰে'ললাইনৰ শ্ৰমিক, ৰাষ্টা নির্মাণ, পর্টাৰ আদি বিভিন্ন কামৰ কাৰণে প্ৰেৰণ কৰা হৈছিল। (Ho, 2006,p.16)। অৱশ্যে এই গৱেষণা পত্ৰখনত 'কুলি' শব্দটো বিশেষকৈ ভাৰতীয় ব্ৰিটিছ সেনাবাহিনীৰ নিম্নখাপৰ কামত যেনে- ধোবা, ঝাৰুৱালা, মালি, ৰান্ধনি, পথ নির্মাতা শ্ৰমিক, পানীভাৰী, মুটিয়া, মুচি, নাপিত, বোজাবাহী ইত্যাদি কামত নিয়োজিত লোক সকলক সূচাবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। ব্ৰিটিছ ভাৰতীয় সেনাবাহিনীত আৰম্ভণিৰেপৰা বিভিন্ন সৈনিক বেৰেকত এনেধৰণৰ 'কুলি' শ্ৰমিক গোটক মোতায়ন কৰাৰ ব্যৱস্থা প্ৰচলিত আছিল আৰু এই পৰম্পৰা বর্তমান স্বাধীন ভাৰতৰ সৈন্য বিভাগতো পৰিলক্ষিত হয়। ব্ৰিটিছ ঔপনিৱেশিক ভাৰতত এনেধৰণৰ কুলিৰ গোটক বিশেষকৈ দেশৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ সীমান্তৱর্তী এলেকাত মোতায়ন কৰাৰ ব্যৱস্থা প্ৰচলিত আছিল। কিন্তু এই ধৰণৰ গোট ভাৰতীয় ব্ৰিটিছ সৈন্য বিভাগৰ স্থায়ী অংগ নাছিল। সি যি কি নহওঁক ব্ৰিটিছ সেনাবাহিনীৰ স্থায়ী বেতনভোগী গোট নোহোৱা সত্বেও প্ৰথম মহাসমৰৰ আৰম্ভণিৰে পৰা বিভিন্ন সময়ত দেশৰ বাহিৰত ব্ৰিটিছ চৰকাৰে চলোৱা সামৰিক অভিযান সমূহত ভাৰতীয় 'কুলি' গোটে সমানে আগভাগ লৈছিল, উদাহৰণস্বৰূপে, আবিছিনিয়া (১৮৬৮). চীন (১৯০০), ছোমালিলেণ্ড (১৯০২-০৪) ইত্যাদি। তাৎপর্যপূর্ণভাৱে ভাৰতীয় সেনাবাহিনীত মহাসমৰৰ আগলৈকে অস্থায়ী বেতনভোগী কুলি হিচাপে কাম কৰা এইসকল শ্ৰমিকৰ সকলোতকৈ বেছি প্ৰয়োজনীয়তা ব্ৰিটিছ চৰকাৰেও উপলব্ধি কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। প্ৰথম মহাসমৰৰ সময়ছোৱাত আৰু যুদ্ধৰ আৰম্ভণিৰ লগে লগে এইসকল অস্থায়ী বেতনভোগী কুলিক অতিশীঘ্ৰে ব্ৰিটিছ চৰকাৰে এক স্থায়ী ৰূপত "Indian Labour Corps" নামৰ সুকীয়া বিভাগত স্থায়ী ৰূপত অন্তর্ভূক্ত কৰাৰ প্ৰক্ৰিয়া আৰম্ভ কৰে। ইয়াৰ পৰিণতিস্বৰূপে ১৯১৪ চনৰ নৱেম্বৰত ভাৰতৰ পৰা জার্মান অধীকৃত পূৱ আফ্ৰিকালৈ ভাৰতীয় ব্ৰিটিছ সৈন্য দলৰ (Forcr B) লগত তিনিশ' কুলিৰ দুটা পৃথক গোটক ক্ৰমে ২৫ আৰু ২৬ নৱেম্বৰ ৰে'লৱে বাহিনীৰ অধীনত

প্রেৰণ কৰা হয়। (Fecitt, 2015,p.1-3)। যুদ্ধৰ দ্বিতীয় বৰ্ষত মাদ্ৰাজৰ পৰা এটা বোজাবাহী আৰু পাঞ্জাৱৰ পৰা দুটা শ্ৰমিক কুলিৰ দল মেছোপটেমিয়াৰ যুদ্ধ সীমান্তলৈ প্ৰেৰণ কৰা হয়। কিন্তু পৰৱৰ্তী সময়ত কুলি শ্ৰমিকৰ নাটনিয়ে দেখা দিয়াত ভাৰতৰ বিভিন্ন জেলত বন্দী হৈ থকা কয়দীসকলৰ সৰ্বমুঠ ১৬,০০০ কয়দীক কুলি গোটৰ (ILC) বিভিন্ন ভাগত ভাগ কৰি ক্ৰমে মালবাহী শ্ৰমিক, শৌচলয় চফাই কৰ্মী (Sweeper) আৰু অন্যান্য কামৰ কাৰণে সৰ্বমুঠ ৩১ টা দলক পুনৰ মেছেপটেমিয়ালৈ প্ৰেৰণ কৰা হয়। (Singh, 2007,p.412-45)। মহাসমৰৰ দীৰ্ঘকালীন সংঘৰ্ষৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি ১৯১৭ চনৰ ফেব্ৰুৱাৰীত ভাৰতীয় ব্ৰিটিছ চৰকাৰে ইউৰোপৰ বিশেষকৈ ফ্ৰান্সৰ যুদ্ধ সীমান্তলৈ ৫০,০০০ কুলি শ্ৰমিক পুনৰ যোগানৰ সিদ্ধান্ত লয়। এই বিপুলসংখ্যক শ্ৰমিকসকলক এটা গোটত কামৰ সুবিধাৰ্থে প্ৰতিটো গোটত একোজন ইউৰোপীয় বিষয়াৰ অধীনত ৫০০ জনকৈ ভাগ কৰি মুঠ ৮৫ টা সেনাবাহিনীৰ বিভিন্ন গোটত অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হয়। অন্যহাতে একেবছৰে অক্টোবৰ মাহত ইয়াৰে দুটা গোটক আছুতীয়াকৈ গ্ৰীচৰ চাল' নিকালৈ প্ৰেৰণ কৰা হয়। কিন্তু উল্লেখনীয়ভাৱে, নৱেম্বৰৰ ১১ তাৰিখ (১৯১৮) যুদ্ধ বিৰতি চুক্তি স্বাক্ষৰিত হোৱাৰ পিছতো ক্ৰমে মেছোপটেমিয়া আৰু পাৰস্যত ১৯১৯ চনৰ পৰা ১৯২১ চনলৈ কুলি শ্ৰমিকৰ প্ৰয়োজনীয়তা হ্ৰাস পোৱা নাছিল বৰঞ্চ আৰু শ্ৰমিকৰ যোগানৰ নিমিত্তে চৰকাৰী খচৰা ভাৰতলৈ প্ৰেৰণ কৰা হৈছিল। প্ৰায় চাৰি বছৰ ধৰি চলা এই মহাসমৰত ভাৰতে সাতখন ভিন্ন যুদ্ধক্ষেত্ৰলৈ সৰ্ব্বমুঠ ৫,৬৩,৩৬৯ জন অসামৰিক বনুৱা কুলি প্ৰেৰণ কৰিছিল আৰু যুদ্ধক্ষেত্ৰৰ বিভিন্ন কাৰ্য্যৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি উক্ত কুলি সকলক ক্ৰমে মেছোপটেমিয়া, ফ্ৰান্স, ইজিপ্ত, পাৰস্য উপকুল, পূৱ আফ্ৰিকা, গেলি'পলি, চাৰ্ল নিকা আৰু য়াদেন আদি যুদ্ধ সীমান্তত মোতায়ন কৰিছিল। (Singh, 2020,p.15)।

ব্ৰিটিছ অধিকৃত ভাৰতত ইউৰোপৰ অন্য ঠাইৰ তুলনাত ব্ৰিটিছ চৰকাৰে সামৰিক বিভাগত সৈন্য নিযুক্তিৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষকৈ ভাৰতীয় সমাজত আগৰে পৰা ক্ষত্ৰিয় সম্প্ৰদায়ৰ (Matial caste) অন্তৰ্গত লোককহে আগস্থান দিছিল। (Omissi, 2016,p.10)। কিন্তু পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে এই যুদ্ধত ভাৰতৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ নিম্ন শ্ৰেণীৰ জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লোকেও সামৰিক বিভাগত নামভৰ্তি কৰি অসামৰিক ৰূপত সেৱা (non-combatant service) আগবঢ়াবলৈ সুযোগ পাইছিল। উল্লেখনীয়ভাৱে ভাৰতীয় গোড়া সমাজ ব্যৱস্থাই অৱহেলা তথা অস্পৃশ্যতা দৃষ্টিৰে চোৱা বিভিন্ন জনগোষ্ঠী, নিম্ন সম্প্ৰদায় আৰু ব্ৰিটিছ বিষয়াৰ অফিচিয়েল ডায়েৰীত সততে অপৰাধী সম্প্ৰদায় হিচাপে স্থান পোৱা বিভিন্ন তলৰ শ্ৰেণীৰ লোকে মহাসমৰৰ সময়ছোৱাত "শ্ৰমিক বাহিনীত" (ILC) যোগদান কৰি ব্ৰিটিছ ভাৰতীয় সৈন্যবাহিনীৰ লগত যুটীয়াভাৱে মিত্ৰ শক্তিলৈ যুদ্ধক্ষেত্ৰত সেৱা আগবঢ়াইছিল (Franch, 2016, p.201,217)। এই যুদ্ধত ভাৰতীয় শ্ৰমিক দলত অংশগ্ৰহণ কৰা কুলি সকলৰ সৰ্বাধিক আহিছিল ব্ৰিটিছ অধিকৃত ভাৰতৰ গংগা উপত্যকাৰ যুক্তৰাজ্য সমূহৰ (United Provinces) পৰা। ইয়াৰোপৰি পাহাৰীয়া জনজাতিৰে পৰিপূৰ্ণ ছোটনাগপুৰ তথা চাওতাল সম্প্ৰদায় অধ্যুষিত এলেকাৰ পৰা অহা বেছিভাগ শ্ৰমিক তথা কুলিক ক্ৰমে মেছোপেটেমিয়া, ফ্ৰান্স আৰু উত্তৰ-পশ্চিম ইউৰোপৰ যুদ্ধ সংঘটিত সীমান্তলৈ ভাৰতীয় ব্ৰিটিছ চৰকাৰে তৎকালীনভাৱে সৈন্য দলত ভৰ্ত্তি কৰি প্ৰেৰণ কৰিছিল। ঠিক একেধৰণে হিমালয় অঞ্চল সমূহৰ পৰা ব্ৰিটিছ বিষয়াসকলে প্ৰধানকৈ পাহাৰৰ শিল কটা, ৰাষ্টা তথা ৰে'লৰে লাইন নিৰ্মাণ কৰাত সিদ্ধহস্ত হাজাৰ, পস্থুন আৰু কুমায়নি শ্ৰমিক সকলৰ লগতে অবিভাজিত ম্যানমাৰ আৰু অসমৰ বিভিন্ন পাহাৰীয়া অঞ্চলৰ জনজাতীয় লোকসকলক বিভিন্ন আৰ্থিক প্ৰলোভন বা ভয় দেখুৱাই কুলি দলত সুকীয়াকৈ ভৰ্ত্তি কৰি ইউৰোপৰ যুদ্ধক্ষেত্ৰলৈ পঠিয়াইছিল।

উল্লেখযোগ্য যে প্ৰথম মহাসমৰত কুলি হিচাপে নিজৰ সেৱা আগবঢ়োৱাৰ আগলৈকে উক্ত শ্ৰমিকসকলে প্ৰধানকৈ ব্ৰিটিছ চৰকাৰৰ সামৰিক, গড়কাপ্তানী আৰু ৰে'লৰে বিভাগৰ অধীনত দেশৰ প্ৰান্তত বোজা কঢ়িওৱা (porterage), সৈন্য বাহিনীৰ কাৰণে গড় বনোৱা, শিল কটা, ইটা বনোৱা, কছ কাটি হাবি মুকলি কৰা, ৰে'লৰে লাইন বহোৱা, চূণ শিল গলোৱা ইত্যাদি কামত জড়িত আছিল। (Singh, 2020, p.25-26)। ব্ৰিটিছ শাসিত সেই সময়ছোৱাৰ এছিয়া আৰু আফ্ৰিকাৰ সমগ্ৰ উপনিৱেশ সমূহৰ ভিতৰত ইংলেণ্ডে ইউৰোপত সংঘটিত ক্ৰমে দুইখন যুদ্ধত আটাইতকৈ বেছি সুবিধা ল'বলৈ সক্ষম হৈছিল ভাৰতৰ পৰা, যিহেতু ভাৰত উপমহাদেশত বিৰাজ কৰা ভিন্ন জলবায়ু তথা সুকীয়া ভৌগোলিক অৱস্থানে ব্ৰিটিছ পক্ষক একে সময়ত সুদ্ধকালী সময়ছোৱাত ৰণুৱা আৰু বণুৱা (Soldiers and labourers) উভয় শ্ৰেণীৰ লোকক সহজতে সামৰিক

বিভাগত নিয়োজতি কৰাৰ বাট প্ৰশস্ত কৰি তুলিছিল। (Wolseley, 1878, p.132-56)।

প্ৰথম মহাসমৰৰ সময়ছোৱাত ইউৰোপৰ যুদ্ধক্ষেত্ৰত প্ৰয়োজন হোৱা শ্ৰমিকৰ অভাৱ দূৰ কৰিবলৈ ১৯১৭ চনৰ জানুৱাৰী মাহত ভাৰতীয় ব্ৰিটিছ সচিব আষ্টিন চেম্বাৰলিনৰ পৰা সেই সময়ৰ ভাৰতৰ ভাইচৰয় লৰ্ড চেমচ্‌ফৰ্ডলৈ তুৰন্তে ৫০,০০০ ভাৰতীয় শ্ৰমিক বিচাৰি প্ৰেৰণ কৰা এক জৰুৰী পত্ৰ প্ৰেৰণ কৰে আৰু এই নিৰ্দেশ অনুসৰি তেতিয়াই ভাৰতৰ অন্যান্য প্ৰান্তৰ লগতে অবিভাজিত অসমৰ ব্ৰিটিছ বিষয়ালৈও শ্ৰমিক বিচাৰি উৰ্দ্ধতম ব্ৰিটিছ কৰ্তৃপক্ষৰ পৰা নিৰ্দেশ আহে। কিন্তু উল্লেখনীয়ভাৱে ভাৰতৰ অন্য ঠাইৰ তুলনাত অসমৰ ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকাত তেনেধৰণৰ কোনো সুনিৰ্দিষ্ট পৰম্পৰাগত বৃত্তিগত শ্ৰমিক গোষ্ঠীৰ অনুপস্থিতিৰ কাৰণে ব্ৰিটিছ পক্ষই যুদ্ধৰ কাৰণে প্ৰয়োজনীয় বুজন সংখ্যক শ্ৰমিক অসমৰ নিকটবৰ্তী পাহাৰীয়া অঞ্চলৰ জনজাতি সকলৰ মাজৰ পৰা ভৰ্ত্তি কৰাৰ ব্যৱস্থা আৰম্ভ কৰে। শ্ৰমিকৰ প্ৰয়োজনীয়তা দূৰ কৰিবৰ কাৰণে সেই সময়ৰ উত্তৰ-পূৰ্ব্বাঞ্চলৰ বিশেষকৈ গাৰো পাহাৰ, জয়ন্তীয়া পাহাৰ, লুচাই পাহাৰ আৰু নগা পাহাৰত বাস কৰা ক্ৰমে— গাৰো, জয়ন্তীয়া, নগা, খাচী, মিৰ্জো ইত্যাদি জনজাতিৰ কৰ্মঠ পুৰুষসকলক লৈ অসমৰ ফালৰ পৰা প্ৰথমে ৬০০০-৮০০০ কুলি শ্ৰমিক প্ৰেৰণৰ সিদ্ধান্ত লোৱা হয়। পিছলৈ ইয়াৰ সংখ্যা ১০,০০০ বৃদ্ধি কৰি তেওঁলোকক ভাৰতীয় শ্ৰমিক দলত ভৰ্ত্তি কৰি ইউৰোপৰ ফ্ৰান্সৰ সীমান্তলৈ যুদ্ধৰ কাৰণে কুলি হিচাপে প্ৰেৰণ কৰা হয়। ভাৰতৰ বিশেষকৈ অন্য ঠাইৰ পৰা ভৰ্ত্তি আৰু প্ৰেৰণ কৰা শ্ৰমিকৰ দলে এইসকল উত্তৰ-পূৱৰ পাহাৰীয়া জনজাতি লোকসকলকো শ্ৰমিক দলত সামৰিক বিভাগত ভৰ্ত্তি কৰাৰ আগত ব্ৰিটিছ পক্ষই তথাকথিত ভাৰতীয় বৰ্ণ ব্যৱস্থাৰ লগত যুক্ত ক্ষত্ৰিয় শ্ৰেণীৰ লোকক সামৰিক বিভাগত প্ৰথম স্থান দিয়া প্ৰাৰম্ভিক প্ৰৱণতাৰ পৰা নিজকে সেই সময়ত দূৰত ৰখাইছিল, যাতে যিকোনো প্ৰকাৰে যুদ্ধক্ষেত্ৰত প্ৰয়োজন হোৱা শ্ৰমিকৰ যোগান ব্যাহত নহয়। কিন্তু আভ্যন্তৰীণভাৱে ব্ৰিটিছ ভাৰতৰ সামৰিক বিভাগত সদায় বিভিন্ন নিম্ন খাপৰ কামত নিয়োজিত কুলি শ্ৰমিক সকলক সদায় ওপৰ শ্ৰেণীৰ বিষয়াই হেয় দৃষ্টিৰে চাইছিল (Guite, 2020, p.365-371)। ব্ৰিটিছ অধিকৃত অবিভক্ত অসম প্ৰদেশৰ পৰা প্ৰেৰণ কৰা জনজাতিয় শ্ৰমিক সকলক সৰ্বপ্ৰথমে শ্ৰমিক দলত ভৰ্ত্তি কৰোৱাৰ ক্ষেত্ৰত ব্ৰিটিছ পক্ষই আৰ্থিক প্ৰলোভন আৰু ভাবুকি উভয় পন্থা ব্যৱহাৰ কৰিছিল। যিহেতু নিজৰ ভৌগোলিক পৰিসীমাৰ বাহিৰ ওলাই নোপোৱা তথা কেতিয়াও আধুনিক সভ্যতাৰ পোহৰ স্পৰ্শ নকৰা এইসকল লোকৰ কাৰণে এই যুদ্ধ আছিল প্ৰথমবাৰৰ কাৰণে নিজৰ ভৌগোলিক পৰিসীমাৰ বাহিৰলৈ গৈ নতুন পৃথিৱীখনক সুকীয়া দৃষ্টিৰে চোৱাৰ লগতে যুদ্ধৰ বিভীষিকাৰ লগত নিজকে পৰিচিত কৰোঁৱাৰ বিৰল সুযোগ। (Guite, 2016, p.2)।

উত্তৰ-পূৰ্ব্বাঞ্চলৰ জনজাতীয় শ্ৰমিক সকলক ভাৰতীয় কুলি দলত অন্তৰ্ভুক্ত কৰাৰ কাৰণে ব্ৰিটিছ বিষয়া সকলে বহুক্ষেত্ৰত খ্ৰীষ্টান মিছনেৰী আৰু স্থানীয় দোভাষীৰ সহায় লৈছিল। নতুনকৈ খ্ৰীষ্টান ধৰ্মত দিক্ষীত হোৱা এইসকল সহজ-সৰল জনজাতিক মিছনেৰী সকলৰ হতুৱাই এই যুদ্ধ চয়তানৰ বিৰুদ্ধে সংঘটিত হোৱা বুলি প্ৰৰোচিত কৰা হৈছিল আৰু ইয়াৰে বহুতক এই যুদ্ধত অংশগ্ৰহণ কৰিলে আৰ্থিক মুনাফা লাভ কৰাৰ লগতে আজীৱন গৃহ কৰ (House Tax) আৰু বলপূৰ্বক শ্ৰমসেৱা আগবঢ়োৱাৰ পৰাও ৰেহাই দিয়া হ'ব বুলি আশ্বাস দিয়া হৈছিল। শ্ৰমিক নিয়োগকাৰী বিষয়া সকলকো আৰম্ভণিতে চৰকাৰৰ তৰফৰ পৰা যুদ্ধলৈ সাজু কৰা শ্ৰমিক সকলক তেওঁলোকৰ কৰিবলগীয়া কাম, কৰ্মৰত সময়, দৰমহাৰ নিৰিখ আৰু সন্মুখীন হ'বলগীয়া অনাগত যুদ্ধকালীন পৰিস্থিতি তথা ইউৰোপৰ বিশেষকৈ ফ্ৰান্সৰ জলবায়ুৰ বিষয়ে জ্ঞাত কৰোঁৱাৰ কাঢ়া নিৰ্দেশ দিয়া হৈছিল। অন্যহাতে শ্ৰমিকসকলক ভৰ্ত্তি কৰাৰ আগত তেওঁলোকক ইউৰোপৰ জলবায়ুত কঠোৰ শ্ৰম কৰিব পৰাকৈ সমৰ্থ হয়নে নহয় তাৰ কাৰণে অতি সূক্ষ্মভাৱে মিলিটেৰী চিকিৎসকৰ দ্বাৰা স্বাস্থ্য পৰীক্ষা কৰাই লোৱা হৈছিল। এই ক্ষেত্ৰত ফ্ৰান্সৰ যুদ্ধ সীমান্তলৈ কুলি হিচাপে যোৱা এজন মিজো শ্ৰমিক ছাইনিংহিংগাই যাত্ৰাৰ ওভটনিৰ পিছত দিয়া মৌখিক তথ্য অনুসৰি সৈন্য বাহিনীৰ শিবিৰত জনজাতীয় শ্ৰমিক সকলক সম্পূৰ্ণকৈ নগ্ন কৰি চিকিৎসকে শৰীৰৰ পৰীক্ষা কৰা প্ৰক্ৰিয়া বহুতৰ কাৰণে লজ্জা আৰু অস্বস্তিৰ কাৰণ আছিল। (Singh, 2020, p.216)।

অন্যহাতে যদিও ব্ৰিটিছ পক্ষৰ কাৰণে এইসকল লোক ভাৰতীয় শ্ৰমিক দলত ভৰ্ত্তি হোৱা সাধাৰণ নিম্ন শ্ৰেণীৰ কুলি আছিল, কিন্তু এইসকল জনজাতীয়ে নিজকে একোজন যোদ্ধা হিচাপে নিজৰ মানসিকতা আৰু অঞ্চল তথা জাতি প্ৰেমৰ ভাৱধাৰাৰে উদ্বুদ্ধ হৈ যুদ্ধলৈ সাজু হৈছিল, যিহেতু

ব্রিটিছ কর্তৃপক্ষই উত্তৰ-পূৱৰ পাহাৰীয়া অঞ্চল সমূহ নিজৰ দখললৈ অনাৰ আগৰে পৰা ইয়াৰ বহুসংখ্যক জনজাতিৰ মাজত (নগা, কুকী, চীন আৰু গাৰো) শত্ৰু পক্ষৰ লগত সংঘটিত সংঘর্ষত পৰাজিত পক্ষৰ মূৱ কটা প্ৰথা প্ৰচলিত আছিল আৰু সেয়েহে যুদ্ধৰ কাৰণে এইসকল শ্ৰমিক দলত ভর্ত্তি হ'লেও তেওঁলোকে কেতিয়াও নিজকে সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ বণুৱা হিচাপে স্বীকৃতি দিব বিচৰা নাছিল। ইয়াৰোপৰি এই জনজাতীয় শ্ৰমিকসকলৰ বহুতৰ কাৰণে প্ৰথম মহাসমৰত যোগদান কৰি নিজকে কৈশোৰ অৱস্থাৰ পৰা পৰিপূৰ্ণ এজন যোদ্ধালে পৰিগণিত কৰি নিজৰ সমাজত এক সন্মানীয় স্থান দখল কৰাৰ এক বিৰল সুযোগ আছিল আৰু সেয়েহে যুদ্ধলৈ এইসকল জনজাতিক বনুৱা হিচাপে প্ৰেৰণ কৰিলেও তেওঁলোকক যুদ্ধক্ষেত্ৰত পৰিধান কৰিবলৈ পৰিয়াল তথা সম্প্ৰদায়ৰ তৰফৰ পৰা পূৰ্ণাংগ যুদ্ধৰ সাজ লগত দি পঠিওৱা হৈছিল। (Guite, 2020, p.366,369,370,372)। অন্যহাতে বহু ক্ষেত্ৰত কিছুমান বিশেষ জনজাতীয় এলেকাৰ পুৰুষসকলে কোনো কাৰণতে নিজৰ পত্নী তথা পৰিয়ালক এৰি ইমান দূৰলৈ কাম কৰিবলৈ যাবলৈ অমান্তি হৈছিল, উদাহৰণস্বৰূপে ভাৰতৰ ত্ৰিচিনোপল্লীৰ ঝাৰুৱালা আৰু শৌচাগাৰ পৰিষ্কাৰ কৰা শ্ৰমিক সকলে নিজৰ পত্নীৰ অবিহনে মেছোপটেমিয়া তথা ইউৰোপৰ অন্য ঠাইলৈ কাম কৰিবলৈ যাবলৈ আমান্তি হৈছিল আৰু ঠিক আশানুৰূপ অৱস্থা দেখিবলৈ পোৱা গৈছিল মণিপুৰী শ্ৰমিক সকলৰ ক্ষেত্ৰতো। তেওঁলোকৰ বহুতে এইক্ষেত্ৰত চৰকাৰৰ শাস্তি লাভ কৰিলেও ইউৰোপৰ যুদ্ধ ক্ষেত্ৰত নিজৰ প্ৰাণ দিয়াতকৈ ঘৰত নিজৰ পৰিয়ালৰ লগত থাকি মৃত্যুবৰণ কৰাটোৱে শ্ৰেয় বুলি বিবেচনা কৰিছিল। (Singh, 2020, p.123)। বহু সময়ত আনকি জনজাতীয় গাঁওসমূহৰ (প্ৰধানকৈ কুকি সম্প্ৰদায়) মুখিয়াল সকলেও গাঁওবাসীক যুদ্ধলৈ যোৱাত হকাবধা কৰি পৰম্পৰাগত ৰীতিমতে মেঠোন বধ কৰি ইয়াৰ মাংস গাঁৱৰ ৰাইজৰ মাজত বিতৰণ কৰি প্ৰত্যেকজন লোককে শপত খোৱাই ফ্ৰান্সৰ যুদ্ধ সীমান্তলৈ যোৱাৰ পৰা বিৰত কৰিছিল। যিহেতু জনজাতীয় সমাজৰ পৰম্পৰাগত বিশ্বাস মতে কোনো ব্যক্তি নিজৰ জনম ঠাইৰ বাহিৰত মৃত্যু হ'লে প্ৰচলিত মৃতকৰ লগত জড়িত ক্ৰীয়া কৰ্মৰ পালনৰ পৰা বঞ্চিত হয় আৰু আত্মা আজীৱন দাসত্বৰ বান্ধোনত মুক্তি নোপোৱাকৈ থাকি নিজৰ বংশ লতাৰ পৰা বিচ্ছিন্ন হয়। (Chongthu, 2024, p.10)।

জনজাতীয় লোকসকলক এই ক্ষেত্ৰত সম্পূৰ্ণ পৰিকল্পিতভাৱে ব্রিটিছ প্ৰশাসনে প্ৰধানকৈ খ্ৰীষ্টান মিছনেৰী, স্থানীয় ৰাজনৈতিক বিষয়া আৰু দোভাষীৰ হতুৱাই তেওঁলোকৰ সুৰক্ষা আৰু যুদ্ধৰ পিছত পাবলগীয়া আর্থিক ভাট্টাৰ বিষয়ে জনাই মানসিকভাৱে প্ৰত্যয় নিয়াই ভাৰতীয় শ্ৰমিক দলত ভর্ত্তিকৰণৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল। অন্যহাতে পৰিস্থিতি সাপেক্ষে কোনো জনজাতীয় গাঁৱে শ্ৰমিক নিযুক্তিৰ বিৰোধিতা কৰিলে তেওঁলোকৰ গাঁৱত ব্রিটিছ বিষয়াই ভয় দেখুৱাৰ উদ্দেশ্য সেনা পঠিয়াই অগ্নিসংযোগ কৰি গাঁও জ্বলাই দিয়াৰ ভাবুকিও প্ৰেৰণ কৰিবলৈ বাধ্য হৈছিল। অৱশ্যে অন্য জনজাতিৰ তুলনাত কুকি সকলক প্ৰত্যয় নিয়াই শ্ৰমিক ভর্তি প্ৰক্ৰিয়াত চৰকাৰে আটাইতকৈ বেছি অসুবিধা সন্মুখীন হৈছিল, যিহেতু তেওঁলোকৰ বেছিভাগ গাঁৱে চৰকাৰৰ বলপূৰ্বক শ্ৰমিক নিযুক্তিত বাধা প্ৰদান কৰিবলৈ বিদ্ৰোহ ঘোষণা কৰিছিল। অন্যহাতে চৰকাৰেও তাৎক্ষনিকভাৱে তেওঁলোকৰ বিদ্ৰোহ দমন কৰাৰ বাবে চৰকাৰী বিষয়া হিগিনছৰ হতুৱাই বিদ্ৰোহী সকলৰ গাঁও জ্বলাই ধ্বংস কৰিছিল। কুকি সকলৰ বিৰোধিতাৰ তুলনাত নগাসকলৰ বেছিভাগ লোকেই শ্ৰমিক দলত স্বেচ্ছাই যোগদান কৰিছিল যুদ্ধক্ষেত্ৰত শত্ৰুৰ মূৱ কাটি আনি নিজৰ বীৰত্বৰ পৰিচয় গাঁৱৰ আগত দাঙি ধৰাৰ উদ্যেশ্যে আৰু বিবাহৰ উপযুক্ত গাঁৱৰ সুন্দৰী যুৱতী লাভ কৰাৰ স্বার্থত। ঠিক একেধৰণে লুচাই পাহাৰৰ বেছিভাগ মিজো সম্প্ৰদায়ে স্বেচ্ছাই শ্ৰমিক দলত ভাগ লোৱা যুৱকে কেৱল যুদ্ধৰ পিছত ঘৰলৈ উভটি আহোঁতে নিজৰ পৰিয়াল তথা সম্প্ৰদায়ৰ পৰা বীৰৰ সন্মান লাভ কৰাৰ প্ৰলোভনৰ দ্বাৰাও প্ৰবুদ্ধ হৈ শ্ৰমিক দলত ভর্ত্তি হৈছিল। (Guite, 2020, p.377)।

সমগ্ৰ উত্তৰ-পূৰ্ব্বাঞ্চলৰ বিভিন্ন পাহাৰীয়া এলেকাৰ পৰা শ্ৰমিক সকলক একগোট (ILC)ত ভর্ত্তি কৰোৱাৰ পিছত তেওঁলোকক পুনৰ ৫০০ জনকৈ বেলেগ বেলেগ গোটত ভাগ কৰা হয়। ক্ৰমে এইদৰে ২০০০ জনকৈ লোক লুচাই পাহাৰ, মণিপুৰ, নগা পাহাৰ, জয়ন্তীয়া আৰু খাচী পাহাৰৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা হয়। অন্যহাতে ১০০০ জন শ্ৰমিক চীন পাহাৰৰ (তেতিয়াৰ ম্যানমাৰ) আৰু ৫০০ জন লোক গাৰো পাহাৰৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা হয় (১৯১৭)। এই শ্ৰমিক দলসমূহৰ পৰা প্ৰথমটো দল মণিপুৰ গোটক (১৯ মে', ১৯১৭) সর্বপ্ৰথমে ইম্ফলৰ পৰা ডিমাপুৰ আৰু তাৰ পৰা গুৱাহাটীলৈ প্ৰেৰণ কৰা হয়। পিছত গুৱাহাটীৰ পৰা পুনৰ ৰেলত বোম্বে আৰু বোম্বেৰ পৰা জাহাজত আৰৱ সাগৰ

হৈ আদেন, ছেদ বন্দৰ (ইজিপ্ত), ইটালীৰ টাৰান্তো উপকূল আৰু পিছত আল্পছ পৰ্বতৰ ৰে'লৰ সুৰংগ পাৰ কৰি ফ্ৰান্সৰ মাৰ্ছেলিছত অৱতৰণ কৰোৱা হয়। ঠিক একেধৰণে লুচাই শ্ৰমিক দলত প্ৰথমে আইজলৰ পৰা শিলচৰ আৰু পিছত গুৱাহাটীৰ পৰা কলিকতা আৰু পুনৰ হাওৰা ষ্টেচনৰ পৰা বোম্বেলৈ প্ৰেৰণ কৰি জাহাজেৰে নি ফ্ৰান্সত উপস্থিত কৰোঁৱা হয়। পূৰ্বৰ দল দুটাৰ দৰে ক্ৰমে খাচী, জয়ন্তীয়া আৰু নগা শ্ৰমিকৰ দলকো একেধৰণে ফ্ৰান্সৰ সীমান্তলৈ প্ৰেৰণ কৰা হয়। উল্লেখযোগ্য এই সুদীৰ্ঘ যাত্ৰাৰ সময়ছোৱাত ইয়াৰে বহুতো শ্ৰমিকে যাত্ৰাৰ কষ্ট, কলেৰা, প্ৰদূষিত পৰিৱেশ আৰু পুষ্টিহীনতাত ভুগি গন্তব্যস্থান পোৱাৰ আগতেই জীৱন হেৰুৱাই। ইয়াৰে বেছিভাগ মৃতদেহ কৰ্তৃপক্ষই দুৰ্গন্ধ হোৱাৰ পৰা হাত সাৰিবলৈ আৰু লগতে অত্যাধিক মাত্ৰাত বীজাণু সংক্ৰমণৰ পৰা মুক্ত হ'বলৈ যাত্ৰা পথত সাগৰলৈ দলিয়াই থৈ যায়। (Singh, 2020, p.218-219) । যাত্ৰা পথত সন্মুখীন হোৱা বেমাৰৰ উপৰিও জনজাতীয় শ্ৰমিকসকলে জাহাজৰ ভিতৰত কৰ্তৃপক্ষই যোগান ধৰা একে ধৰণৰ খাদ্য (পিঁয়াজ, আলু আৰু শুকান আদা) খাইও অসন্তুষ্টি প্ৰকাশ কৰিছিল। তদুপৰি জাহাজত আহি থকা অৱস্থাত খাদ্যৰ নাটনিৰ বাবে শ্ৰমিক সকলৰ মাজত বিতৰণ কৰা সীমিত খাদ্যক লৈও কাজিয়াৰ সূত্ৰপাত হৈছিল। (Guite, 2020, p.382)।

ফ্ৰান্সৰ যুদ্ধ সীমান্তত উত্তৰ-পূৰ্ব্বাঞ্চলৰ কুলি শ্ৰমিকসকল ঃ

ফ্ৰান্সৰ যুদ্ধ সীমান্তত উপস্থিত হোৱাৰ পিছত উত্তৰ-পূৰ্ব্বাঞ্চলৰ পৰা যোৱা শ্ৰমিক সকলক পোনপ্ৰথমে কামত লগোৱাৰ আগত স্বাস্থ্যৰ পৰীক্ষা কৰি লোৱা হৈছিল আৰু প্ৰয়োজন সাপেক্ষে কামৰ উপৰিও শত্ৰু সেনাক ৰোধিবলৈ প্ৰাথমিক সামৰিক প্ৰশিক্ষণো দি লোৱা হৈছিল। ইয়াৰ পৰৱৰ্তী সময়ত তেওঁলোকক বিভিন্ন সৰু-বৰ গোটত ভাগ কৰি ৰে'লৰ চিৰি মেৰামতি কৰা, বিমাণ ঘাটি নিৰ্মাণ, সীমান্ত পথ নিৰ্মাণ কৰা, সৈন্যৰ কাৰণে ট্ৰেঞ্চ খন্দা, আহত সৈনিকক যুদ্ধৰ চিকিৎসা শিৱিৰলৈ ট্ৰোচাৰত কঢ়িয়াই অনা, মালবস্তু কঢ়িওৱা, সৈন্য বাহিনীৰ অস্ত্ৰাগাৰ নিৰ্মাণ কৰা, যুদ্ধ চলি থকা অৱস্থাত সেনাক গোলা-বাৰুদৰ যোগান ধৰা, ধ্বংসপ্ৰাপ্ত উৰাজাহাজৰ পৰা পাইলট আৰু প্ৰয়োজনীয় বস্তুবাহিনী কঢ়িওৱা ইত্যাদি কামত একো একোজন ইউৰোপীয় বিষয়াৰ তত্বাৱধানত নিয়োগ কৰা হৈছিল।

লুচাই শ্ৰমিকসকল ঃ

যুদ্ধক্ষেত্ৰত মোতায়ণ কৰা লুচাই শ্ৰমিক দলক (মুঠ সংখ্যা ২,১০০) ৪ টা ডিভিজনত (২৬,২৭,২৮ আৰু ২৯) ভাগ কৰা হৈছিল। ইয়াৰে ৪২৫ জন শ্ৰমিকক দক্ষিণ লুচাই পাহাৰৰ পৰা শ্ৰমিক দললৈ অনা হৈছিল। ১৯১৭ চনৰ জুন মাহত ফ্ৰান্সৰ যুদ্ধ সীমান্ত মাৰ্ছিলিছত আহি পোৱাৰ পিছত এই দলক সৈন্যবাহিনীৰ কাৰণে গড়খাৰৈ বনোৱা আৰু কাঠ-কয়লা সংগ্ৰহ কৰা কামত লেফচেনেণ্ট কৰ্ণেল মে'ফেয়াৰ ৰেভাৰেণ্ড ডি. ই. জ' নছৰ অধীনত নিয়োজিত কৰা হৈছিল। (Chetry, 2016, p.3)। যুদ্ধত অৰ্পণ কৰা বিভিন্ন কাম সমূহ সময়তকৈ আগত সমাপন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত খাছী শ্ৰমিক গোটে বিশেষ প্ৰশংসা বুতলিবলৈ সক্ষম হৈছিল। উদাহৰণস্বৰূপে ১৯১৮ চনৰ ফেব্ৰুৱাৰীত ২২ নং খাচী দলে ক্ষীপ্ৰভাৱে পথ নিৰ্মাণৰ সামগ্ৰী বোজাই কৰাৰ অভিলেখ গঢ়িছিল, যিহেতু যুদ্ধৰ কাৰণে ৰে'লৰে পৰিৱহণ ব্যৱস্থা ব্যাহত হৈছিল। (Singh, 2020, p.226)।

নগা শ্ৰমিকসকল ঃ

এই দলত সৰ্বমুঠ নগাসকলৰ বেলেগ সম্প্ৰদায়ৰ (চেমা, ল'থা, ৰেংমা, আও আৰু চাংথাং) মুঠ ২০০০ নগাই নগা পাহাৰৰ ব্ৰিটিছ উপায়ুক্ত হাবটি চাৰ্লছ বাৰ্ণিছ্ৰ অধীনত যোগদান কৰিছিল। এইসকল শ্ৰমিকক যুদ্ধত মোতায়ণ কৰাৰ আগতে পুনৰ চাৰিটা কোম্পানীত (৩৫,৩৬,৩৭ আৰু ৩৮) ভাগ কৰি লোৱা হৈছিল। তেওঁলোককো ক্ৰমে ট্ৰেঞ্চ খন্দা, ৰে'লৰে লাইন বহোৱা, অস্ত্ৰাগাৰ নিৰীক্ষণ কৰা, জাহাজ, ৰে'ল তথা মালবাহী ট্ৰাকৰ পৰা বস্তু উঠা নমা কৰা। মৃত সৈনিকৰ কাৰণে কবৰ খন্দা, পথ নিৰ্মাণ, যুদ্ধত ব্যস্ত সৈনিকক সময়ত খাদ্য আৰু ঔষধৰ যোগান ধৰা আদি কামত লগোৱা হৈছিল। (Yeptho & Sumi, 2024, p. 2-3)।

মণিপুৰী শ্ৰমিকসকল ঃ

মণিপুৰৰ ৰজা চূড়াচান্দ আৰু ব্ৰিটিছ ৰাজনৈতিক প্ৰতিনিধি লেফটেনেণ্ট এইচ. ডব্লিউ জি. ক'লৰ নেতৃত্বত গঠিত হোৱা ২০০০ জন শ্ৰমিকক লৈ গঠিত হোৱা এই দলকো সীমান্তত পুনৰ কামৰ সুবিধাৰ কাৰণে চাৰিটা কোম্পানীত (৩৯,৪০,৬৫ আৰু ৬৬)। পুনৰ ভাগ কৰা হৈছিল। এই দলটোত অন্তৰ্গত শ্ৰমিক সকলৰ বেছিভাগেই আছিল মেইটে, টাংখুল আৰু কুকি সম্প্ৰদায়ৰ লোক। যুদ্ধৰ বিষয়া লেফটেনেণ্ট জেনেৰেল ছাৰ এইচ. ভি. কস্কে দিয়া বিৱৰণমতে তেওঁলোকৰ বেছিভাগকে যুদ্ধ ক্ষেত্ৰত নষ্ট হোৱা বিমান আৰু অন্যান্য প্ৰয়োজনীয় সামগ্ৰী ধ্বংস হোৱাৰ

পৰা উদ্ধাৰ কৰা, ৰে'লৰ পৰা কাঠৰ কুন্দা নমোৱা, যুদ্ধত প্ৰয়োজনীয় বিভিন্ন কাঠৰ আচবাব নিৰ্মাণ কৰা, বিমানঘাটী আৰু ভগ্ন পথ নিৰ্মাণ ইত্যাদি কামত নিয়োজিত কৰা হৈছিল। ইয়াৰে চাৰিটা কোম্পানীৰ ভিতৰত এটা এটা কোম্পানীয়ে সময় আৰু শ্ৰমিকৰ নাটনিৰ কাৰণে একেদিনাতে কেইবাটাও বেলেগ বেলেগ কাম কৰিবলগীয়া হৈছিল। (Guite, 2020, p.383)।

গাৰো শ্ৰমিকসকল ঃ

মেঘালয়ৰ গাৰো পাহাৰৰ পৰা সৰ্বমুঠ ১০০০ জন শ্ৰমিকে ১৯১৭ চনৰ এপ্ৰিলত ৬৯ গাৰো শ্ৰমিক দলত যোগদান কৰিছিল। প্ৰথমতে তেওঁলোকক যুদ্ধৰ উৰ্দ্ধতন কৰ্তৃপক্ষৰ পৰা নিৰ্দেশ আহি পোৱা দেৰি হোৱাৰ কাৰণে চাৰি মাহৰ কাৰণে তেওঁলোকক তুৰাত ৰাখি দিয়া হয় আৰু আগষ্টত নিৰ্দেশ আহি পোৱাৰ পিছত তেওঁলোকক ফ্ৰান্সৰ কাৰণে প্ৰেৰণ কৰা হয়, কিন্তু তুৰাত থকা কালতে ইয়াৰে ভালে কেইজন শ্ৰমিক অসুস্থতাৰ সন্মুখীন হোৱাৰ কাৰণে কেৱল ৫০০ জন শ্ৰমিককহে যাত্ৰাৰ কাৰণে অনুমতি দিয়া হয় আৰু ইয়াৰে পুনৰ ভালেকেইজন শ্ৰমিকৰ সুদীৰ্ঘ ৫০০০ মইল যাত্ৰাৰ সময়ত বিভিন্ন কাৰণত মৃত্যুমুখত পৰি শেহলৈ কেৱল ৪৫৬ জন শ্ৰমিকেহে সুস্থ অৱস্থাত ফ্ৰান্সৰ যুদ্ধ সীমান্তত উপস্থিত হয়।

খাচী শ্ৰমিক দল ঃ

সৰ্বপ্ৰথমে ২৬ নং খাচী শ্ৰমিক দলত অন্তৰ্ভূক্ত কৰা খাচী পাহাৰৰ শ্ৰমিক সকলক পিছলৈ পুনৰ চাৰিটা নতুন কোম্পানীত (২২ নং, ৩৪ নং, ৫৫নং আৰু ৫৬ নং) হাৰ্বাট কানিংহাম ক্লাউ গষ্টন আৰু এফ. বি. উইলকিনছু অধীনত পুনৰ গঠন কৰা হয়। অৱশ্যে ঐতিহাসিক তথ্যত এই গোটৰ সৰ্বমুঠ সদস্যৰ সংখ্যাৰ বিষয়ে বিশেষ জনা নাযায়। যুদ্ধক্ষেত্ৰত নিজৰ শ্ৰম যোগান ধৰাৰ সময়ছোৱাত বিভিন্ন কাৰণত এই দলৰ মুঠ ৬৭ জন শ্ৰমিকে প্ৰাণ হেৰুৱাইছিল আৰু এই সকল শ্বহীদৰ স্মৃতি ধৰি ৰাখিবৰ কাৰণে শ্বিলংতে ১৯২৪ চনত যুদ্ধৰ পিছত "MotPhran" (খাছীয়া ভাষাত ফ্ৰান্সৰ শিলা) নামৰ এক শিলৰ স্মৃতিস্তম্ভও নিৰ্মাণ কৰা হয় আৰু এই স্তম্ভত শ্বহীদ শ্ৰমিক সকলৰ সন্মানাৰ্থে ৰোমান লিপিত "Dulce et decorem est pro patria moti" (ltis sweet and right tto dir for your contry) লিপিবদ্ধ কৰা হয়। (Chetry, 2016, p.3-7)।

যুদ্ধক্ষেত্ৰত কুলি সকলে লাভ কৰা সুবিধা ঃ

বহু ক্ষেত্ৰত ভাৰতৰ পৰা যোৱা অন্য কুলিৰ তুলনাত ফ্ৰান্সৰ যুদ্ধ সীমান্তত উত্তৰ-পূৰ্ব্বঞ্চলৰ পৰা কুলি হিচাপে যোৱা শ্ৰমিক সকলে যুদ্ধকালীন সময়ছোৱাত উপযুক্ত সা-সুবিধা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। কিন্তু ইয়াৰ তুলনাত মেছোপটেমিয়া, গ্ৰীচ আদি ঠাইত নিয়োজিত ভাৰতৰ অন্য প্ৰান্তৰ পৰা যোৱা শ্ৰমিক সকলে লাভ কৰা থকা-খোৱাৰ সা-সুবিধা নিচেই নিম্নমানৰ আছিল। ফ্ৰান্সৰ শ্ৰমিক সকলক গৈ পোৱাৰ আৰম্ভণিৰে পৰা থাকিবলৈ পৃথক সৈন্য বাহিনীৰ শিৰিৰৰ নিচিনা আহল বহল ঠাই দিয়া হৈছিল, য'ত যুদ্ধৰ সময়ত পাবলগীয়া ৰান্ধনি, চিকিৎসক, নাৰ্চ, ঔষধ ইত্যাদি সকলো লাগতিয়াল লোক আৰু বস্তু উপলব্ধ আছিল। এই ক্ষেত্ৰত শ্ৰমিক সকলে পাবলগীয়া সকলো প্ৰয়োজনীয় থকা মেলা, সা-সুবিধা ব্যক্তিগতভাৱে ইউৰোপীয়ান বিষয়া লেফটেনেণ্ট জেনেৰেল এইচ. ভি. কক্সে চোৱাচিতা কৰি ইয়াৰ উপৰত প্ৰতিবেদন দাখিল কৰিছিল। অন্যহাতে তেওঁলোকক থাকিবলৈ দিয়া ঘৰ সমূহ সম্পূৰ্ণ শীত আৰু পানী সৰকিব নোৱাৰাকৈ মজবুত কাঠেৰে নিৰ্মাণ কৰা হৈছিল আৰু ইয়াৰ লগতে প্ৰতিটো আবাসতে বিজুলীৰ সুবিধা, গৰম চিফাই (ষ্টভ), চিকিৎসা শিবিৰ, কেণ্টিন আৰু খোৱাপানীৰ সুবিধা আছিল। আবাস সমূহ প্ৰতিদিনেই ভালদৰে পৰিষ্কাৰ কৰি বীজাণুমুক্ত কৰি ৰখা হৈছিল। দিনটোৰ কঠোৰ পৰিশ্ৰমৰ পিছত শ্ৰমিকসকলক প্ৰতিদিনে মুখ্য আহাৰ হিচাপে বাৰ্মীজ চাউলৰ ভাত, গো আৰু ছাগলী মাংস, দাইল, ঘিঁউ, পিয়াঁজ, টিনফিছ, ফলমূল, শাক-পাচলি আৰু গাখীৰ দিয়া হৈছিল। প্ৰতি সপ্তাহত শ্ৰমিক সকলক সুকীয়াকৈ মদ আৰু আঠ পেকেটকৈ চিগাৰেটৰো যোগান ধৰা হৈছিল। (Guite, 2020, p.385)। কিন্তু ইমানখিনি পৰ্যাপ্ত সা-সুবিধা লাভ কৰাৰ পিছতো প্ৰতিকুল বতৰ তথা অন্যান্য বেমাৰ আজাৰত মুখ্যতঃ বেৰিবেৰি, যক্ষ্মা, পানীলগা, শাৰীৰিক দুৰ্বলতা, ৰক্তালপতা (anaemia), নিম'নিয়া আদিত শ্ৰমিক সকল আক্ৰান্ত হৈছিল আৰু ইয়াৰে ভালেখিনি মৃত্যুমুখতো পৰিছিল। অন্যহাতে ফ্ৰান্সৰ উৰ্দ্ধতম মেডিকেল বিষয়াৰ ডায়েৰীত লিপিবদ্ধ তথ্যমতে এবানকৰ্ট ৰে'লৰে জংচনৰ যুদ্ধ সামগ্ৰী মজুত কৰি ৰখা গুদামৰ দায়িত্বত থকা ক্ৰমে ৪০ নং নগা, ৬২ নং চীন, ৬৫ নং, ৬৬ নং মণিপুৰী আৰু ৬৯ নং গাৰো শ্ৰমিকসকলে প্ৰদূষণৰ কাৰণে শ্বাস-প্ৰশ্বাসজনিত ৰোগৰ সন্মুখীন হৈছিল আৰু একেজন বিষয়াই ৬৬ নং মণিপুৰী শ্ৰমিক গোটৰ তিনিজন

লোক নিমোনিয়াত ভুগি মৃত্যুবৰণ কৰা তথ্যও চৰকাৰী ডায়েৰীত নথিভুক্ত কৰিছিল। অন্যহাতে একেখন ঠাইৰ লুছাই শ্ৰমিকৰ দলটোৰ কেইবাজনো লোক প্ৰচণ্ড শীতত উপযুক্ত ৰৱফত ব্যৱহৃত হাতমোজাৰ অভাৱত তুষাৰ ক্ষতত ভুগিছিল (frostibite) (Singh, 2020, p.226-228)।

ঘৰমুৱা শ্ৰমিক ঃ

মহাসমৰত নিযুক্ত শ্ৰমিকসকল মাতৃভূমিলৈ ঘূৰি আহিছিল বেলেগ বেলেগ গোটত। নগা লেবাৰ কৰ্পছ ১৯১৮ চনৰ ১২ জুনত কোহিমাত উপস্থিত হয়। (Beatson Bell, 1918, p.43)। লুচাই লেবাৰ কৰ্পছ ১৯১৮ চনৰ ১৮ জুনত আইজলত উপস্থিত হয় (Sainghings, 1998)। গাৰো লেবাৰ কোম্পানী ১৯১৮ চনৰ ১৬ জুলাইত তুৰাত উপস্থিত হয় আৰু মণিপুৰ লেবাৰ কৰ্পছ ১৯১৮ চনৰ ২২ জুলাইত ইম্ফলত উপস্থিত হয় (Kanrei, 1974, p.51)। উল্লেখযোগ্য যে এই শ্ৰমিক সকলক নিজৰ নিজৰ ঠাইত বীৰৰ দৰে সম্বৰ্ধনা জনোৱা হৈছিল। নগা লেবাৰ কৰ্পছ আইজ্বলত উপস্থিত হোৱাৰ লগে লগে বেণ্ড বাজাৰে আদৰণী জনাই অসম ৰাইফলছ ময়দানলৈ নি দৰমহা বিতৰণ কৰা হয়। ইয়াৰ উপৰিও ইম্ফলৰ প'ল' খেল পথাৰত মণিপুৰ ৰজাই তেওঁৰ পত্নী আৰু সন্তানসহ উপস্থিত হৈ ঘৰমূৱা শ্ৰমিক সকলক উদ্দেশ্যি আদৰণি ভাষণ প্ৰদান কৰে। লগতে ইম্ফলত তেওঁলোকক অভ্যৰ্থনাৰ বাবে ১০০ টা গাহৰি কাটি ভোজ দিয়া হৈছিল। একেদৰে লুচাই লেবাৰ কৰ্পছক আদৰণি জনাবলৈ প্ৰায় ৫৩০০ টকা খৰচ কৰি অভ্যৰ্থনা অনুষ্ঠিত কৰা হৈছিল। কহিমাত অসমৰ চীফ কমিছনাৰ উপস্থিতিত ফ্ৰান্সৰ পৰা ঘূৰি অহা শ্ৰমিক সকলক ৰাজকীয় আদৰণি জনোৱা হৈছিল। (Hogarth, 1926, p.300)। বিভিন্ন ঠাইত যিদৰে আদৰণি জনোৱা হৈছিল, সেয়া পৰ্যবেক্ষণ কৰিলে বুজিব পাৰি যে যদিও ঘৰমুৱা শ্ৰমিক সকল প্ৰকৃততে সৈন্য বাহিনীত নাছিল তথাপি তেওঁলোকক বিজয়ী সৈন্যৰ দৰে গণ্য কৰা হৈছিল। কহিমাত আদৰণি জনোৱা মুহূৰ্তত পৰম্পৰাগত যোদ্ধাৰ পোছাক পৰিধান কৰি থলুৱা নৃত্য পৰিৱেশন কৰা হৈছিল। এইধৰণৰ নৃত্য সাধাৰণতে যুদ্ধ বা চিকাৰৰ সফল সমাপন উদ্‌যাপন কৰিবলৈ পৰিৱেশন কৰা হৈছিল। ফ্ৰান্সৰ পৰা ঘূৰি অহা অসামৰিক শ্ৰমিকসকলে লগত বিজয়ী চিহ্ন হিচাপে লৈ অহা জাৰ্মান সৈন্যৰ হেলমেট পৰিধান কৰি নৃত্যত অংশগ্ৰহণ কৰাৰ লিখিত বিৱৰণ পোৱা যায়। অৱশ্যে খ্ৰীষ্টান ধৰ্মলৈ ধৰ্মান্তৰিত হোৱা গাঁওবোৰত আদৰণি উৎসৱ আড়ম্বৰহিত আছিল। উদাহৰণস্বৰূপে লুচাই পাহাৰৰ থেইৰিয়াত গাঁৱত সম্বৰ্ধনা সম্পূৰ্ণ ব্যক্তিগত পৰ্যায়ৰ আছিল যদিও উৎসাহ অন্যান্য অঞ্চলৰ দৰেই দেখিবলৈ পোৱা গৈছিল।

সামৰণি ঃ

সাধাৰণতে যুদ্ধৰ বিষয়ে লিখা বিভিন্ন ইতিহাসমূলক গ্ৰন্থ তথা অন্যান্য লেখনি সমূহত সৈন্যবাহিনীৰ অভিজ্ঞতা, যুদ্ধৰ জয়-পৰাজায়, সৈনিক সকলৰ সাহসিকতামূলক কাৰ্য্যকলাপৰ বিষয়ে যিমান বেছি চৰ্চা কৰা হয় তাৰ বিপৰীতে যুদ্ধক্ষেত্ৰত নিজৰ শাৰীৰিক শ্ৰমৰ যোগেদি প্ৰকৃত সৈনিক হিচাপে গণ্য নকৰা এইসকলৰ কুলি বা শ্ৰমিকৰ অৱদান সম্পৰ্কে প্ৰায়ে ইতিহাস নিমাত হৈ ৰোৱা দেখা যায়। এইক্ষেত্ৰত এই কুলিসকলে যুদ্ধক্ষেত্ৰত দিয়া বিভিন্ন সেৱা যেনে— আহত শ্ৰমিকক কঢ়িওৱা, বিধ্বস্ত ৰে'ললাইন আৰু ৰাস্তা নিৰ্মাণ কৰা, যুদ্ধৰত সৈনিকক সময়ত আহাৰ-পানী যোগান ধৰা, বোজা কঢ়িওৱা ইত্যাদি দিশ সমূহ প্ৰায়ে উপেক্ষাৰ দৃষ্টিৰে চোৱা হয় আৰু কেতিয়াও ইতিহাসৰ মূল সুঁতিৰ ভিতৰত এনেধৰণৰ অৱদান সমূহক স্থান দিয়া নহয়। গতিকে এইক্ষেত্ৰত উক্ত গৱেষণা পত্ৰখনৰ জড়িয়তে প্ৰথম মহাসমৰত জড়িত উত্তৰ-পূৰ্ব্বাঞ্চলৰ কুলি শ্ৰমিকসকলৰ যুদ্ধক্ষেত্ৰলৈ আগবঢ়োৱা এই বিশেষ অৱদান সমূহক স্মৰণ কৰাৰ লগতে এই কুলিসকলে নিজৰ দেশ তথা সম্প্ৰদায়ৰ হৈ যুদ্ধ ক্ষেত্ৰত আগবঢ়োৱা সেৱাক ঐতিহাসিকভাৱে এক বহল প্ৰেক্ষাপটত স্বীকৃতি দিয়াৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। ❑

তথ্যসূত্ৰ ঃ

- ওজা, দিগন্ত। *প্ৰথম মহাসমৰঃ কাৰণ, গতিবিধি, পৰিণতি*। গুৱাহাটী, জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০১৪।
- Chhetri, Pratap. "*North East India and the First World War.*" Centre for Hidden Histories, 2016, hiddenhistorieswwi.ac.uk/uncategorized/2016/02/north-east-india-and-the-first-world-war/.
- Chongthu, T.Khaikhogin. 'Understanding the participation of the Kukis in the Indian Labour Corps to France'.*Juni Khyat* 14.3 (2024).
- Fecitt, Harry.*The Indian Railway Corps, East African Expeditionary Force,* 1914-1919. 2015,gweaa.com/wp-content/uploads/2012/02/The-Indian-Railway-Corps-East-African-Expeditionary-Force_1.pdf.

- French, Patrick.*Younghusband: The last great imperial adventurer.* Vintage, 2016.
- Guite, Jangkhomang. "Rite of passage in the Great War: The long march of Northeast Indian labourers to France,1917–1918." *The Indian Economic & Social History Review* 57.3 (2020): 363-398.
- Hogarth, D. G., F. Kingdon Ward, and J. P. Mills. 'The Assam-Burma Frontier:Discussion'. *The Geographical Journal* 67, no. 4 (1926): 299–301.
- Jung, Moon-Ho. *Coolies and cane: Race, labor, and sugar in the age of emancipation*. JHU Press, 2006.
- Kanrei, S. *Apuk Apaga Rairei Khare: France Khava*, 1917–18 (in Tangkhul). Ukhrul, 1974.
- Omissi, David.*The Sepoy and the Raj: the Indian army,1860-1940*. Springer, 2016.
- Sainghinga. Indopui 1914–1918: Mizote France Ram Kal Thu, (in Mizo). Aizawl, n.d.
- Shakespear, J. *Lushei Kuki Clans*. Aizawl, 1998(1912).
- Singha, Radhika. "Finding Labour from India for the War in Iraq: The Jail Porter and Labour Corps,1916–1920."*Comparative Studies in Society* 49.2, 2007
- Singha, Radhika.*The Coolie's Great War: Indian Labour in a Global Conflict*,1914- 1921. Oxford University Press, USA, 2020.
- The CC of Assam, Sir N. D. Beatson-Bell was there at the reception at Kohima. See ASA, File No. 9C-M-61P of 1918, Pol. A, March 1919, Nos. 1–255, pp. 43–45, 'Note' by N. D. Beatson Bell, 9 June 1918.
- Wolseley, G. I. "The Native Army of India."*The North American Review* 127.263 (1878): 132-156.
- Yeptho, Kinitoli H., and K. Hokato Sumi. "Participation of the Nagas in World War as labour corps; Awakening of the political consciousness of Naga sentimentalism."'*International Journal of Creative Research Thoughts* (IJCRT) 12.2(2024).

RNI NO. ASSBIL/2009/31008
ISSN : 2321-4945

Peer Reviewed Journal
[UGC-CARE Listed]

ঔপনিৱেশিক অসমত মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়ন ঃ এক সমীক্ষা

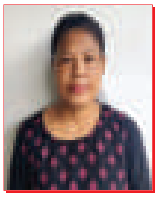

মমী পেগু

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়ৰ
ডিব্রুগড়, অসম - ৭৮৬০০৪
৬০০০৯৩৪৬৯০
momipegu113@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

মিচিং ভাষা চীন-তিব্বতীয় ভাষা পৰিয়াৰল তিব্বতবর্মী শাখাৰ উত্তৰ-অসম উপশাখাৰ অন্তর্গত ভাষা। ঔপনিৱেশিক অসমত মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাসত খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ ভূমিকা প্ৰথম আৰু সর্বাধিক প্রাচীন কালৰ পৰা দোৱান ৰূপে প্রচলিত মিচিং ভাষা সম্পর্কে খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলে প্রথম অধ্যয়ন আৰম্ভ কৰে। খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলে প্রথম অৱস্থাত পাহাৰৰ জনজাতিসকলৰ মাজত তিষ্ঠিব নোৱাৰি ভৈয়ামলৈ নামি আহি ১৮৩৬ খ্ৰীষ্টাব্দত অসমৰ শদিয়াত খোপনি পুতে। তেওঁলোকে তাত বিভিন্ন জাতি জনজাতিসকৰল মাজত মত-বিনিময় মাধ্যমৰে ধর্ম প্রচাৰ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে। কিন্তু অন্যান্য জনজাতিসকলৰ লগতে মিচিংসকলো নিৰক্ষৰ হোৱাৰ কাৰণে তেওঁলোকৰ উদ্দেশ্য সফল হ'ব পৰা নাছিল। সেয়ে তেওঁলোকে ভাষাটো শিকি ধর্ম বাণীসমূহ মিচিং ভাষাত অনুবাদ কৰিবলৈ লয়। তদুপৰি বিভিন্ন প্রশাসনিক কাম-কাজত ঘূৰি-ফূৰোতে এনে জনজাতিয় ভাষাবোৰৰ প্রতি আকৃষ্ট হৈ ভাষাটো শিকিবলৈ আৰু অধ্যয়ন কৰিবলৈ প্রয়াস কৰিছিল। এনে প্রয়াসতে মিছনেৰীসকলে দোৱান ৰূপে প্রচলিত মিচিং ভাষাটোক কোনো লিখিত ৰূপৰ নির্দশন নোহোৱাকৈ ভাষাটোৰ শব্দসম্ভাৰৰ তালিকা প্রকাশ কৰাৰ লগতে ৰৈয়াকৰণিক দিশ সম্পর্কেও অধ্যয়ন কৰি প্রবন্ধ, ব্যাকৰণ, অভিধান প্রকাশ কৰে। তেওঁলোকে ৰোমান লিপিৰে মিচিং ভাষাটোক প্রকাশ কৰিছিল। এনেদৰে মিছনেৰীসকলে মিচিং ভাষাটোক প্রথম লিখিত ৰূপ দি জনগোষ্ঠিটোৰ মাজত ভাষাটোৰ প্রতি অকনমান সচেতনতা আনিবলৈ প্রয়াস কৰিছিল। তেওঁলোকৰ এনে ভাষা সম্পর্কীয় অধ্যয়নক বাট বুলিয়ে পৰবর্তী সময়ত সংশ্লিষ্ট তথা অন্য ভাষা-ভাষী ব্যক্তিয়ে ভাষা অধ্যয়নৰ বিভিন্ন দৃষ্টিভংগীৰে অধ্যয়ন কৰি আহিছে। কিন্তু ঔপনিবেশিক শাসন কালত অর্থাৎ স্বাধীনতাৰ আগৰ সময়ত দুই এজন মিচিং তথা অসমীয়া ব্যক্তিৰ বাদে মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাসত খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ ভূমিকাই সর্বাধিক আছিল। সেয়ে এই যুগটোক সম্পূর্ণৰূপে মিছনেৰী যুগ বুলিব পাৰি। অর্থাৎ ১৮৩৬ চনৰ পৰা ১৯৪৬ চনলৈকে মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাসত মিছনেৰী যুগ বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি। অৱশ্যে সেই সময়ৰ অধ্যয়নসমূহত আধুনিক ভাষাবৈজ্ঞানিক অধ্যয়নৰ আধাৰত প্রতিষ্ঠিত নহলেও সেই সময়ৰ জনগোষ্ঠীটোৰ সামাজিক, শৈক্ষিক আৰু ভাষাটোৰ ভাষিক স্থিতিৰ পৰা বিচাৰ কৰিলেও এই বিলাকৰ ঐতিহাসিক মূল্য অপৰিসীম।

বীজ শব্দ ঃ মিচিং, মিছনেৰী, ঔপনিবেশিক, ভাষা

০.১Õঅৱতৰণিকা ঃ Ð

অসম আৰু অৰুণাচল প্রদেশত বসবাস কৰা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীসমূহৰ ভিতৰত মিচিংসকল অন্যতম। মংগোলীয় নৃগোষ্ঠীৰ অন্তর্গতঅসমৰ দ্বিতীয় বৃহৎ জনগোষ্ঠীটো

হৈছে মিচিংসকল। মিচিংসকলৰ লিখিত ইতিহাস পোৱা নাযায়। সেয়ে তেওঁলোকৰ কিংবদন্তি লগতে পুৰণি অসমীয়া সাহিত্য, আহোম বুৰঞ্জীসমূহত তেওঁলোকৰ সম্পর্কে কৰা বিৱৰণ অনুসৰি মিচিংসকল অৰুণাচল প্রদেশৰ চিয়াং জিলাৰ আবৰ পর্বতৰ পৰা সোৱণশিৰি নদীয়েদি ত্রয়োদশ শতিকাতে চুতিয়া বংশ ৰাজত্ব শেষ ছোৱাত আৰু আহোম বংশ প্রতিষ্ঠাৰ সমসাময়িক সময়ত অসমৰ শদিয়াৰ আশে-পাশে অঞ্চললৈ প্রব্রজন আৰম্ভ কৰে বুলি বিশ্বাস কৰে।[১] মিচিং ভাষাৰ মৌখিক সাহিত্যৰ পৰম্পৰা চহকী হ'লেও লিখিত ইতিহাস অর্বাচীন। তাৰ প্রধান কাৰণ হ'ল লিপিৰ অভাৰ। এনেদৰে ভাষা অধ্যয়নৰ ইতিহাসো প্রাচীন নহয়। মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাস আৰম্ভ হৈছিল ঊনবিংশ শতিকাৰ ত্রিশ দশকৰ শেষৰ ফালে। অসমত ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীৰ শাসন কালত ত্রিশ দশকত ইংলেণ্ডৰ পৰা 'ৰোমান কেথলিক মিশ্যনেৰী', বেপ্টিষ্ট মিছনেৰী অফ্ ইংলেণ্ড আৰু আমেৰিকাৰ পৰা অহা খ্রীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ ভিতৰত মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নত খ্রীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ ভূমিকা সর্বাধিক। খ্রীষ্টান মিছনেৰীসকলে ১৮৩৬ চনত ৰেভালেণ্ড নাথান ব্রাউনৰ নেতৃত্বত শদিয়াত প্রথম আহি ধর্ম প্রাচাৰ কৰিবলৈ লয়। এই উদ্দেশ্যে আগত ৰাখিয়ে অন্যান্য জনজাতিয় ভাষাৰ লগতে মিছিং ভাষা সম্পর্কেও অধ্যয়ন কৰি পাঠ্যপুথি, ব্যাকৰণ, অভিধান প্রণয়ন কৰে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ঔপনিবেশিক অসমত মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নঃ এক সমীক্ষা -শীর্ষক গৱেষণা-পত্রখনৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য হৈছে-

•স্বাধীনতা পূর্বকালত বিভিন্ন দিশত হোৱা মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়ন তথা চর্চাৰ এক সমীক্ষা আগবঢ়োৱা।

•সেই সময়ত আধুনিক ভাষাবিজ্ঞানৰ আধাৰত প্রতিষ্ঠিত নোহোৱা গ্রন্থ, প্রবন্ধসমূহৰ ঐতিহাসিক মূল্য বিচাৰ কৰা।

০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব ঃ

ঔপনিবেশিক অসমত মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নঃ এক সমীক্ষা -শীর্ষক গৱেষণা-পত্রখনৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব হৈছে-

• ঔপনিবেশিক সময়ত হোৱা মিচিং ভাষা সম্পর্কীয় অধ্যয়নসমূহ বর্তমান বিভিন্ন ক্ষেত্রত সিঁচৰতি হৈ আছে। এনেদৰে বিভিন্ন ক্ষেত্রত সিঁচৰতি হৈ থকা মিচিং ভাষা্ সম্পর্কীয় চর্চাসমূহক একত্রিত কৰি সেই সময়ত ভাষাটোৰ অগ্রগতিৰ খতিয়ান দাঙি ধৰি পোহৰলৈ অনাত গুৰুত্ব আছে।

• স্বাধীনতা পূর্বকালত হোৱা মিচিং ভাষা সম্পর্কীয় অধ্যয়নসমূহত ভাষাটোক কেনেদৰে উপস্থাপন কৰিছে আৰু ভাষাটোৰ কেনেধৰণৰ অধ্যয়নে গুৰুত্ব লাভ কৰিছে বা ভাষাটোৰ কোনবোৰ দিশক সামৰি লৈছে, তাকো পোহৰলৈ অনাত গুৰুত্ব আছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা-পত্রটোঅধ্যয়নৰ বাবে সমীক্ষাত্মক পদ্ধতিৰ উপৰিও বর্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০ মূল বিষয়বস্তুৰ আলোচনা ঃ

ঔপনিবেশিক সময়ত মিচিং ভাষালৈ অনুবাদ পৰা ধর্মীয় পুথিসমূহক বাদ দিলে সেই সময়ৰ মিচিং ভাষাৰ চর্চা তথা অধ্যয়নৰ ইতিহাসক দুটা ভাগত ভাগ কৰি আলোচনা কৰিব পাৰি। সেই দুটা হৈছে-

(১) শব্দ-সম্ভাৰধর্মী (Phrase Book) প্রবন্ধ, শব্দপুথি,অভিধান

(২) বৈয়াকৰণিক বিৱৰণ সম্বলিত প্রবন্ধ, গ্রন্থ

১.১ শব্দ-সম্ভাৰধর্মী প্রবন্ধ, শব্দপুথি,অভিধান ঃ

মিচিং ভাষাক পৃথক ভাষা হিচাপে অধ্যয়ন হোৱাৰ পূর্বে আবৰ ভাষাৰ এক উপভাষা ৰূপে অন্তর্ভক্ত কৰি ভাষাটো অধ্যয়ন কৰিছিল। আদি ভাষাৰ অন্য এটা নাম হৈছে আবৰ। কাৰণ আবৰ ভাষাৰ লগত ভাষাটোৰ সাদৃশ্য সর্বাধিক আছিল। সেয়ে খ্রীষ্টান মিছনেৰীসকলে প্রথম অৱস্থাত মিচিং ভাষাটোক পৃথককৈ আলোচনা নকৰি আবৰ ভাষাৰে উপভাষা বুলি আলোচনা কৰিছিল। তদুপৰি অকা(হুচু), ডফলা(নিচি) ভাষাৰ লগতো সাদৃশ্য আছে। সেয়ে প্রথম অৱস্থাত মিচিং ভাষাক আবৰ ভাষাৰ লগত অন্তর্ভক্ত কৰি অকা-আবৰ-ডফলা ভাষাৰ শব্দ সংগ্রহ কৰি তালিকা প্রকাশ কৰা প্রথম ব্যক্তিজনে আছিল ৰেভাৰেণ্ড নাথান ব্রাউন। নাথান ব্রাউনে শদিয়াত প্রশাসনিক কামত জড়িত হৈ থাকোতে খ্রীষ্টান পর্যবেক্ষক তথা নিৰীক্ষক হিচাপে তেওঁক ভাৰত আৰু চীনত প্রচলিত ভাষাবোৰৰ পৰা সংক্ষিপ্তভাৱে শব্দসম্ভাৰ সংগ্রহৰ বাবে দায়িত্ব প্রদান কৰিছিল। সেইমতে ব্রাউনে সাতাইশটা ভাষাৰ শব্দসম্ভাৰ সংগ্রহ কৰি ১৮৩৭ চনত Journal of the Asiatic

Society of Bangal (Vol-vi, part-ii) পত্রিকাৰ ডিচেম্বৰ সংখ্যাত প্রকাশিত *Comparison of Indo-Chinese language* -শীর্ষক প্রবন্ধ প্রকাশ কৰিছিল। ব্রাউনে এই প্রবন্ধত উত্তৰ-অসম শাখাৰ অন্তর্গত অকা, আবৰ, ডফলা, মিচিমি ভাষা শব্দবোৰৰ নমুনা দাঙি ধৰি ভাষাবোৰৰ মাজত থকা ঘনিষ্টতা দেখুৱাইছে। তেওঁ মিচিং ভাষাক মিৰি ভাষা বুলি উল্লেখ কৰি আবৰ ভাষাৰ অন্যতম উপভাষা ৰূপে আলোচনা কৰিছে। লগতে মিচিং ভাষাটো ভৈয়ামত বেছি প্রচলিত হলেও পাহাৰত প্রচলিত হোৱা ভাষাটোৰ পৰা মূলতঃ পৃথক নহয় বুলি উল্লেখ কৰিছে। সেয়ে ব্রাউনে এই সময়ত মিচিং ভাষাক পৃথক ভাষা ৰূপে শব্দ সংগ্রহ নকৰি আবৰ ভাষাৰে উপভাষা বুলি গণ্য কৰি প্রবন্ধখনত ইংৰাজী, অকা, আবৰ, মিচিমি, বার্মিজ, কাৰেন ভাষাৰ শব্দমালাৰ তালিকা দাঙি ধৰিছে। তেনেদৰে কেপ্তইন ই. ই. স্মিথৰ 1847 চনত প্রকাশিত *Vocabulary and phrase Book of Abor-Miri (1847)* গ্রন্থখনটো আবৰ-মিৰি ভাষাৰ শব্দ আৰু বাক্যংশৰ নমুনাৰ সাদৃশ্য দেখুৱাইছে।

আবৰ ভাষাৰ পৰা পৃথক ভাষা হিচাপে মিচিং ভাষাৰ শব্দসম্ভাৰ সংগ্রহ কৰা প্রথম মিছনেৰীজনে হৈছে উইলিয়াম ৰবিন্সন। উইলিয়াম ৰবিন্সনৰ ১৮৪৯ চনৰ মার্চ মাহত Journal of the Asiatic Society of Bangal (Vol-xviii, Part-i) পত্রিকাত প্রকাশিত *Note on the language spoken by the various tribes inhabiting the valley of Assam and its mountain confines*- শীর্ষক প্রবন্ধত অসম আৰু সীমান্ত পাহাৰ অঞ্চলত প্রচলিত জনজাতিয় ভাষাসমূহ যেনে-গাৰো, কছাৰী, তিব্বতীয় ভাষাৰ লগতে মিচিং ভাষা সর্ম্পকেও পৃথকৈ শব্দ নমুনা প্রস্তুত কৰিছে। প্রবন্ধখনত ২৩০ পৃষ্ঠাৰ পৰা ২৩৭ পৃষ্ঠাৰে মুঠ আঠ পৃষ্ঠা সামৰি শব্দৰ তালিকা দাঙি ধৰিছে। প্রবন্ধখনত উইলিয়াম ৰবিন্সনে প্রথম আবৰ ভাষাৰ পৰা পৃথককৈ মিচিং ভাষাৰ শব্দ সংগ্রহ কৰি শব্দ নমুনা দাঙি ধৰিছে। উইলিয়াম ৰবিন্সন তেতিয়া অসমৰ চৰকাৰী স্কুলসমূহৰ পৰিদর্শক হিচাপে কর্মৰত আছিল বাবে অসমৰ বিভিন্ন অঞ্চল পৰিদর্শন কৰিবলৈ সুযোগ পোৱাৰ সমান্তৰালভাৰে অসমৰ প্রচলিত ভাষাসমূহৰ লগতো পৰিচিত হৈছিল।

B.H. Hodgson ৰ ১৮৪৯ চনৰ চেপ্তেম্বৰ মাহত Journal of the Asiatic Society of Bangal (Vol-xviii, Part-ii) পত্রিকাত প্রকাশিত *Journal on the Aborigines of the Eastern Frontier* -শীর্ষক গৱেষণা পত্রত বর্মান ভাষা, চিংফো ভাষা, নগা ভাষাৰ দুটা উপভাষিক ৰূপ নাওগং নগা আৰু টাংছা নগা, আবৰ-মিৰি ভাষী, মিৰি ভাষাৰ শব্দৰ নমুনা ৯৬৯ ৰ পৰা ৯৭৫ লৈ মুঠ সাত পৃষ্ঠা সামৰি শব্দবোৰৰ তালিকা দাঙি ধৰিছে। প্রবন্ধখনত তেওঁৰ পূর্বে কেপ্তইন স্মিট আৰু নাথান ব্রাউনে প্রস্তুত কৰা মিৰি ভাষাৰ শব্দসম্ভাৰৰ পৰা সহায় লোৱা হৈছে বুলি স্বীকাৰ কৰিছে। তদুপৰি প্রবন্ধখনৰ শব্দ তালিকাত পৃথককৈ দেখুৱা মিৰি ভাষাৰ শব্দসমূহ শিৱসাগৰত বাস কৰা মিচিংলোক এজনৰ পৰা সংগ্রহ কৰা হৈছে বুলি উল্লেখ কৰিছে। হাডচনে প্রবন্ধখনত দিয়া শব্দৰ তালিকাত ভাষাবিলাকৰ সুৰ সম্পর্কেও নির্দেশ কৰিছে। ইয়াৰে পতিত বা অৱনত সুৰ (Falling tone) ক বুজাবলৈ ইটালিক আৰু অনুদাত্ত অর্থাৎ চুটি সুৰ (Low tone) ক নির্দেশ কৰিবলৈ চাৰিটা বিন্দুৰে বুজাইছে অৱশ্যে আবৰ-মিৰি আৰু মিৰি ভাষাৰ শব্দৰ ক্ষেত্রত পতিত সুৰ সম্পর্কে নির্দেশ কৰা নাই।

J.Beams ৰ *Outline of Indian philology with a map showing the Distribution of Indian language(1868)* গ্রন্থখনৰ ৮৬ পৃষ্ঠাত মিচিং ভাষাৰ একৰ পৰা দহলৈকে সংখ্যাবাচক শব্দৰ তালিকা দিয়া হৈছে।

এডৱার্ড টইড ডেলন্টৰ *Descriptive Ethnology of Bengal(1872)* নামৰ নৃতাত্ত্বিক গ্রন্থখনৰ প্রথম খণ্ডত ভৰতৰ উত্তৰ সীমান্তত বসবাস কৰা পাহাৰীয়া জনজাতিসকলৰ নৃতাত্ত্বিক পৰিচয় প্রব্রজন, সামাজিক, সাংস্কৃতিক জীৱন সম্পর্কে আলোচনা কৰাৰ শেষত এই জনজাতিয় ভাষাবোৰৰ শব্দৰ নমুনা তালিকাসহ দেখুৱাইছে। গ্রন্থখনত ৭৩-৭৪ পৃষ্ঠাত উত্তৰ-অসম শাখাৰ অন্তর্গত আবৰ, মিৰি, ডফলা, অকা ভাষাৰ শব্দৰ নমুনা দাঙি ধৰি ভাষাবোৰৰ মাজত সাদৃশ্যতা দেখুৱাইছে। এই শব্দসমূহ তেওঁ Jurnal of the Asietic Society of Bengal পত্রিকাত প্রকাশিত উইলিয়াম ৰবিন্সনৰ প্রবন্ধটোৰ পৰা গ্রহণ কৰা হৈছে বুলি স্বীকাৰ কৰিছে।

Sir George Cambell ৰ *Specimens of languages of India including those of the Aboriginal tribes of Bengal, the central orovines and the Eastern Frontier (1874)*

গ্ৰন্থখনত ভাৰতৰ ৰাজ্যসমূহত প্ৰচলিত প্ৰধানকৈ বংগ, মধ্য প্ৰদেশ আৰু উত্তৰ-পূব সীমাত প্ৰচলিত ভাষাসমূহৰ শব্দ আৰু ব্যাকাংশ নমুনা দেখুৱাইছে। গ্ৰন্থখনৰ পাতনিত লেখকে ইয়াৰ উদ্দেশ্য সম্পৰ্কে এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে- শব্দ, বাক্যাংশৰ যোগেদি তেওঁলোকৰ যনিষ্টতা তথা আত্মীয়তা সম্পৰ্কে পৰিক্ষা কৰা আৰু এই অনুসৰি শ্ৰেণীভুক্ত বা বৰ্গীকৰণ কৰা । গ্ৰন্থখনৰ *list of word and phrases showing languages of the ltills surrounding Assam and cachar* -শীৰ্ষক অধ্যায়ত ২২১-২৩৫ পৃষ্ঠালৈকে অসম সীমান্তত প্ৰচলিত জনজাতিয় ভাষাসমূহ যেনে- চিংফো, নগা, মনিপুৰী, কুকি, খাছী আৰু মিৰি ভাষাৰ শব্দৰ নমুনা দাঙি ধৰি ভাষাবোৰৰ সাদৃশ্যতা সম্পৰ্কে দেখুৱাইছে। লগতে গ্ৰন্থখনত languages of the North-East of Assam -শীৰ্ষক অধ্যায়টো ২৩৮-২৫১ পৃষ্ঠালৈকে অকা, ডফলা, আবৰ, চুলিকটা, মিচিমি, দিগাৰু ভাষৰ লগতে মিচিং ভাষাৰো বাক্যাংশ নমুনা দেখুৱাইছে। মূল ৰূপটো ইংৰাজীত প্ৰথমতে দি ৰোমান লিপিৰে ভাষাবোৰ প্ৰকাশ কৰিছে।

ঔপনিবেশিক শাসন কালতে বিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দশকত মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম অভিধান প্ৰকাশ পায়। এই সময়ত মিছনেৰীসকলৰ পৰাই মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম অভিধান চৰ্চা আৰম্ভ হয়। J. Herbert Lorrain ৰ *A Dictionary of the Abor-Miri Language* নামৰ অভিধানখনে মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম অভিধান। অভিধানখন প্ৰকাশ পাইছিল ১৯০৭ চনত। অভিধানখন চাৰিটা খণ্ডত বিভক্ত। প্ৰথম খণ্ডত পৰিচয়, দ্বিতীয় খণ্ডত আবৰ-মিৰি--ইংৰাজী অভিধান, তৃতীয় খণ্ডত ইংৰাজী--আবৰ-মিৰি অভিধান, চতুৰ্থ খণ্ডত দৃষ্টান্তমূলক বাক্য আৰু টোকা দিয়া হৈছে। অভিধানখনৰ আৰম্ভণিতে অভিধানখনত শব্দবোৰ সন্নিৱিষ্ট কৰোঁতে অজ্ঞাতে কিছুমান ভুল পৰিলক্ষিত হোৱাত ব্যৱহাৰকাৰীৰ সুবিধাৰ্থে লেখকে এই শব্দবোৰ চিনাক্ত কৰি শুদ্ধৰূপত ব্যৱহাৰ কৰিবৰ বাবে পৃষ্ঠা নং অনুসৰি উল্লেখ কৰি এক 'ভুলৰ তালিকা' প্ৰকাশ কৰিছে।

অভিধানখনৰ প্ৰথম খণ্ডত পাতনি, বৰ্ণবিন্যাস ৰীতি, ধ্বনিৰ মাধুয্য, ব্যৱহৃত চিন আৰু প্ৰতীক সম্পৰ্কে ব্যৱহাৰকাৰীৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি পৰিচয় দাঙি ধৰিছে। পাতনিত লেখকে শদিয়াত প্ৰশাসনিক কামত ১৯০০ ৰ পৰা ১৯০৩ চনলৈকে থাকোঁতে বৰ-আবৰ বা পাদাম আৰু মিৰি ভাষাৰ কথিত ৰূপৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা শব্দৰ সংকলন কৰা হৈছে বুলি উল্লেখ কৰিছে। লগতে ভাষাটো অধ্যয়নত তেখেতক সহায় কৰা ব্যক্তিৰ লগতে নীধামৰ চায়াং-মিৰি ব্যাকৰণখনৰ কথাও উল্লেখ কৰিছে। বৰ্ণবিন্যাসৰীতিত অভিধানখন মিচিং ভাষাৰ ২৮ টা বৰ্ণৰ ক্ৰম ব্যৱহাৰ কৰিছে। প্ৰতিটো বৰ্ণৰ উচ্চাৰণ ইংৰাজী উচ্চাৰণৰ লগত তুলনা কৰি উচ্চাৰণ ধৰণ সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে। এই ২৮ টা বৰ্ণৰ শব্দ অভিধানখনত সন্নিৱিষ্ট কৰাৰ ক্ষেত্ৰত তিনিটা দিশক গুৰুত্ব দিয়া হৈছে বুলি উল্লেখ কৰিছে। মুঠতে অভিধানখনৰ পৰিচয়ত ব্যৱহাৰকৰ্তাৰ সুবিধা হোৱাকৈ অভিধানখন প্ৰণয়নত অৱলম্বন কৰা দিশসমূহ স্পষ্টভাবে উল্লেখ কৰিছে। অভিধানখন দ্বিভাষিক অভিধান। আবৰ-মিৰি আৰু ইংৰাজী ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে। অভিধানখন দ্বিতীয় ভাষা শিকাৰু তথা ন-শিকাৰুৰ বাবে দৃষ্টি দি প্ৰণয়ন কৰিছে কাৰণে অভিধানখনক প্ৰায়োগিক অভিধান বুলিও ক'ব পাৰি। অভিধানখনত আধুনিক আভিধান প্ৰণয়নৰ সকলোবোৰ কলা-কৌশলসমূহ পৰিলক্ষিত নহলেও মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাসত প্ৰথম অভিধান হিচাপে অভিধানখন গুৰুত্বপূৰ্ণ।

ঔপনিবেশিক সময়তে মিছনেৰী L.W.B Jackman এ *Miri-Abor Primer* নামৰ এখন ত্ৰিশ পৃষ্ঠা যোৰা পুথি ১৯০৪ চনত প্ৰকাশ কৰে। পুথিখনত মিৰি-আবৰ ভাষাৰ বৰ্ণবোৰৰ পৰিচয় দিয়াৰ লগতে একৰ পৰা দহলৈকে গণনা কৰা সংখ্যাবাচক শব্দ, সাপ্তাহিক বাৰৰ নাম, বাৰ মাহৰ নাম উল্লেখ কৰিছে। তদুপৰি পুথিখনত গদ্য ৰূপত চমুকে কাহিনী কেইটামান প্ৰকাশ কৰিছে। পুথিখনত মিৰি- আবৰ ভাষাৰ শব্দ কিছুমান সংকলন কৰাৰ কাৰণে পুথিখনক সামৰি লোৱা হৈছে। পুথিখন সেইসময়ত তলৰ শ্ৰেণী বিদ্যালয়ৰ পাঠ্যপুথি হিচাপে প্ৰণয়ন কৰা হৈছিল বুলি অনুমান কৰিব পাৰি।

মিছনেৰীসকলৰ মিচিং ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা তথা গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধসমূহক বাদ দিলে মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাস আৰম্ভ হৈছে বিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয় দশকৰ মাজভাগৰ পৰা। ১৯১৫ চনত অসমৰ তথা মিচিং ব্যক্তিৰ দ্বাৰা প্ৰণয়ন কৰা শোনাৰাম মিৰি মহৰিৰ *মিৰি-দুয়ান* পুথিখনৰৰ পৰা মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাস আৰম্ভ হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। প্ৰাক স্বাধীনতা সময়ত দুই এজন শিক্ষিত তথা সংশ্লিষ্ট ভাষাৰ ব্যক্তিও ভাষাটোৰ শব্দ কিছুমান সংগ্ৰহ কৰি পুথি

আকাৰে প্ৰকাশ কৰে। তাৰে প্ৰথমজন ব্যক্তি হ'ল শোনাৰাম মিৰি মহৰি। পুথিখনত অসমীয়া লিপিৰে মিচিং ভাষাৰ শব্দসমূহ প্ৰকাশ কৰিছে। প্ৰথমতে অসমীয়াত শব্দটো দি তাৰ প্ৰতিশব্দ ৰূপে মিচিং শব্দটো প্ৰকাশ কৰিছে। শব্দৰ উপৰিও পুথিখনত কথোপকথনৰ আৰ্হিও দেখুৱাইছে। অন্য ভাষী ব্যক্তিয়ে মিচিং ভাষাটো শিকিবৰ বাবে এই পুথিখন হাতপুথি ৰূপে ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰিব বুলি লেখকে শেষত উল্লেখ কৰিছে।

আন এজন শিক্ষিত ব্যক্তি হ'ল মিচিং সমাজৰ প্ৰথম বিজ্ঞান স্নাতক মহীচন্দ্ৰ মিৰি। তেওঁ অসমীয়া লিপিত মিচিং ভাষাৰ শব্দসম্ভাৰ সংগ্ৰহ কৰিছিল বুলি জনা যায়। তেওঁ মৃত্যু পাছত পত্নী ইন্দিৰা মিৰিয়ে মিচিং ভাষাৰ ধ্বনি বৈশিষ্ট্য ৰক্ষা কৰিবলৈ কিছুমান সাংকেতিক চিহ্ন ব্যৱহাৰ কৰি প্ৰস্তুত কৰা সংক্ষিপ্ত শব্দসম্ভাৰৰ পুথি প্ৰকাশ কৰিবলৈ অসম প্ৰকাশন পৰিষদক দায়িত্ব দিছিল। কিন্তু পুথিখন বৰ্তমানলৈকে প্ৰকাশিত ৰূপত উদ্ধাৰ নাপালে।[২]

সংশ্লিষ্ট কেইজনমান শিক্ষিত মিচিং ব্যক্তিসকলৰ লগতে এই সময়ত এজন অসমীয়া ব্যক্তিয়ে প্ৰথম মিচিং ভাষাৰ শব্দ, বাক্যাংশ সংগ্ৰহ কৰি পুথি আকাৰে ১৯১৭ চনত অসমীয়া লিপিত প্ৰকাশ কৰে। শোনাৰাম মিৰি মহৰিৰ *মিৰি দুয়ান* পুথিখনৰ দুটা বছৰৰ পাছত মিচিং ভাষা সম্পৰ্কে অসমীয়া ব্যক্তিয়ে প্ৰণয়ন কৰা প্ৰথম পুথি তথা মিচিং ভাষাৰ দ্বিতীয় পুথি হ'ল ১৯১৭ চনত প্ৰকাশিত ধৰ্ম্মানন্দ দুৰৰা তামুলীৰ *মিৰি-দোৱান*। কুৰিটা অধ্যায়ত বিভক্ত পুথিখনৰ শিতান শব্দবোৰ হ'ল প্ৰথম অধ্যায়ৰ পৰা ষোড়দশ অধ্যায়লৈকে ব্যাকৰণগত ৰূপত বিভাজন কৰি বিভিন্ন বিষয়ৰ লগত জড়িত মিচিং ভাষাৰ শব্দবোৰৰ অৰ্থগত পৰিচয় আগবঢ়াইছে। সপ্তদশ অধ্যায়ৰ পৰা ঊনবিংশ অধ্যায়লৈকে সজ উপদেশ বাক্য, সকলোৰে লাগতীয়াল বিষয়ৰ বাক্য, কল ঘৰৰ মহৰী বাবু বিলাকৰ লাগতীয়াল বাক্য আদি ভাগত ভাগ কৰি বাক্যবোৰ আলোচনা কৰিছে। বিংশ অধ্যায়ত অসমীয়া বিহু নাম, ঘোষা, মিচিং গগনাৰ চেও, গগনা নোহোৱাকৈ মুখত গোৱা গীতসমূহ উল্লেখ কৰিছে। *মিৰি-দোৱান* পুথিখন মিচিং ভাষাৰ শব্দপুথি বুলি ক'ব পাৰি। পুথিখন ভাষাতাত্ত্বিক দিশৰ বৈশিষ্ট্য তথা গুণগত মানতকৈ ঐতিহাসিক গুৰুত্ব সৰ্বাধিক। যিটো সময়ত জনজাতিয় ভাষা বৌদ্ধিক সমাজৰ কাৰণে অপৰিচিত; দুৰ্বোধ্য আছিল তথা যিটো সময়ত মিচিং জনগোষ্ঠীটোৰ মাজতে ভাষাটো চিন্তা-চৰ্চা কৰি পুথি-পাজি ৰচনাৰ পৰিৱেশ নাছিল, য'ত ভাষাটো দোৱান ৰূপে প্ৰচলিত আছিল, তেতিয়াই তেওঁ ভাষাটোৰ গুৰুত্ব উপলব্ধি কৰি মিচিং ভাষাটোৰ কথিত ৰূপৰ ভিত্তিত শব্দ সংগ্ৰহ কৰিছিল। বৰ্তমান মিচিং ভাষাৰ বিকাশ তথা অধ্যয়নৰ ইতিহাসৰ ক্ষেত্ৰত এই পুথিখনৰ মূল্য অপৰিসীম।

১.২ ব্যাকৰণিক বিৱৰণ সম্বলিত প্ৰবন্ধ, গ্ৰন্থ ঃ

ঔপনিবেশিক শাসনৰ সময়তে অৰ্থাৎ ঊনবিংশ শতিকাৰ চল্লিশ দশকৰ শেষত মিচিং ভাষাটোৰ প্ৰথম বৈয়াকৰনিক দিশৰ অধ্যয়ন সম্পৰ্কীয় প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পাইছিল। এই প্ৰবন্ধখন হৈছে ১৮৪৯ চনত Journal of the Asiatic Society of Bengal (vol-xviii, Part-1) পত্ৰিকাৰ মাৰ্চ মাহত প্ৰকাশিত উইলিয়াম ৱৰিন্সৰ *notes on the Languges Spoken by the various tribes inhabiting the valley of Assam and its mountain.* প্ৰবন্ধখনত বাংলা আৰু অসমীয়া ভাষাৰ ব্যাকৰণগত সম্পৰ্কবোৰ বিচাৰ কৰাৰ লগতে চীন-তিব্বতীয় ভাষাৰ অন্তৰ্গত গাৰো, কছাৰী, তিব্বতীয় আৰু মিচিং ভাষাৰ গাঁথনিক ৰূপসমূহো কথিত ৰূপৰ ভিত্তিত আলোচনা কৰিছে।

উ ইলিয়াম ৱৰিন্সনে এই প্ৰবন্ধখনতে মিচিং জনজাতিসকলৰ মাজত দোৱান ৰূপে প্ৰচলিত হৈ থকা ভাষাটোৰ কিছু বৈয়াকৰণিক দিশসমূহ অধ্যয়ন কৰি প্ৰথম লিখিত ৰূপত পোহৰলৈ আনে। প্ৰবন্ধখনৰ তাৎপৰ্যপূৰ্ণ দিশটো হ'ল মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম আৰু মিছনেৰীয়ে প্ৰণয়ন কৰা মিচিং ভাষাৰ গাঁথনিক দিশ সম্পৰ্কীয় প্ৰথম প্ৰবন্ধ। প্ৰবন্ধখনত অন্তৰ্গত মিচিং ভাষা সম্পৰ্কীয় অধ্যয়নৰ টোকাটোৰ আৰম্ভণিতে মিচিং জনগোষ্ঠীসকলৰ প্ৰব্ৰজন কাৰণ, বাসস্থানৰ পৰিসৰ আৰু ভাষাটো যে আবৰ ভাষাৰ এক উপভাষা বুলি পৰিয়চয় আগবঢ়াইছে। মিচিং ভাষাৰ গাঁথনিক ৰূপবোৰ- বিশেষ্য, বিশেষণ, সৰ্বনাম, ক্ৰিয়া, ভাব, আদি কাৰক, বচন, লিংগ অনুসৰি গঠনৰ বৈচিত্ৰ্যক উদাহৰণ দেখুৱাই আলোচনা কৰিছে। লগতে মিচিং ভাষাৰ সৰল বাক্যৰ চানেকি দেখুৱাইছে। প্ৰবন্ধখনৰ শেষত ভুটীয়া, চাংলো, গাৰো, কছাৰী, আবৰ ভাষাৰ লগতে মিচিং ভাষাৰ শব্দৰ তালিকা দেখুৱাইছে।

প্ৰবন্ধখনত মিচিং ভাষাৰ বৈয়াকৰণিক দিশসমূহ থূলমূলকৈ এনেদৰে আলোচনা কৰি ভাষাটোৰ এটি গাঁথনিক পৰিচয় চমুকৈ আগবঢ়াইছে। আধুনিক ভাষাবিজ্ঞানৰ তাত্ত্বিক

দিশৰে ভাষাটোৰ গাঁথনিক দিশসমূহ সুঐভাৰে বিশ্লেষণ কৰিছে বুলি ক'ব নোৱাৰি। প্ৰবন্ধখনৰ শেষত তেওঁ উল্লেখ কৰিছে যে মিচিং ভাষাটোৰ সম্পৰ্কে পূৰ্বতে ভাষা সম্পৰ্কীয় অধ্যয়নৰ আহি থাকিলেহেঁতেন তেতিয়া ভাষাটোৰ বিশ্লেষণ আৰু শব্দ তুলনাক অধিক বহলভাৰে আৰু ফলপ্ৰসুৰূপত কৰিব পাৰিলোহেঁতেন। প্ৰবন্ধখনত মিচিং ভাষাটোক ৰোমান লিপিৰে প্ৰকাশ কৰি ইংৰাজী ভাষাৰে ব্যাখ্যা কৰিছে। মিচিং ভাষাৰ গাঁথনিক দিশৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাসত আৰম্ভণি বিন্দু বুলি কলে উইলিয়াম ৰবিন্সনৰ এই প্ৰবন্ধটোৰ কথা স্বীকাৰ কৰিব লাগিব।

১৮৪৯ চনৰ মাৰ্চ মাহত উইলিয়াংম ৰবিন্সনৰ মিচিং ভাষাৰ প্ৰবন্ধটো প্ৰকাশৰ চল্লিশ বছৰৰ পাছত মিচিং ভাষা অধ্যয়ন সম্পৰ্কীয় কোনো প্ৰবন্ধ বা গ্ৰন্থ প্ৰকাশ হোৱা নাছিল। চল্লিশ বছৰৰ পাছত সম্পূৰ্ণ গ্ৰন্থ আকাৰে ১৮৮৬ চনত জে. এফ. নীধামে মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম ব্যাকৰণ প্ৰণয়ন কৰে। এই ব্যাকৰণখন হৈছে *Outline Grammer of the Shaiyang Miri Languages.* ব্যাকৰণখন প্ৰণয়নৰ পটভূমি আৰু প্ৰত্যাহ্বান সম্পৰ্কে ব্যাকৰণখনৰ পাতনিত উল্লেখ কৰিছে। এই অনুসৰি নীধামে শদিয়াত দুবছৰীয়া প্ৰশাসনিক কাৰ্যকালত ওচৰৰ মিৰি গাওঁখনৰ পৰা মিৰি-আবৰ ভাষা অধ্যয়নৰ সুযোগ পাইছিল। ইয়াৰে মিৰি ভাষাৰ অন্তৰ্গত চায়াং উপভাষা বৈয়াকৰণিক দিশৰ ৰূপৰেখা দিবলৈ ব্যাকৰণখনত প্ৰয়াস কৰিছে। আবৰ ভাষাৰ সৈতে মিৰি ভাষাৰ সাদৃশ্য ঘনিষ্ট হোৱাৰ বাবে অনিবাৰ্য ভাবে ব্যাকৰণখনত আবৰ ভাষাৰ শব্দ অন্তৰ্ভুক্ত হ'ব পাৰে বুলি স্বীকাৰ কৰিছে। তদুপৰি পাতনিত মিচিংসকলৰ বাসস্থান, প্ৰব্ৰজন, জনসংখ্যা সম্পৰ্কে চমুকে দাঙি ধৰিছে।

ব্যাকৰণখনত ৰোমান লিপিৰে মিচিং ভাষাৰ উচ্চাৰণ প্ৰকাশ কৰিছে আৰু ইংৰাজী ভাষাৰে ব্যাখা আগবঢ়াইছে। ব্যাকৰণখনক শেষত দিয়া শব্দভাণ্ডাৰৰ তালিকাক সামৰিলে মুঠ চাৰিটা খণ্ডত বিভাজিত। প্ৰথম খণ্ডত ধ্বনিতত্ত্ব (Orthograpiiy), দ্বিতীয় খণ্ডত ৰূপতত্ত্ব (Accidence), তৃতীয় খণ্ডত বাক্যতত্ত্ব (Syntex), চতুৰ্থ খণ্ডত শব্দভাণ্ডাৰ (Vocabulary) সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিছে। প্ৰথম খণ্ডত মিচিং ভাষাৰ ১১ স্বৰবৰ্ণ আৰু ১৯ ব্যঞ্জনবৰ্ণৰ উচ্চাৰণৰ স্থান, ধৰণ আৰু প্ৰয়োগ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিছে। দ্বিতীয় খণ্ডতমিচিং ভাষাৰ বিশেষ্য, বিশেষণ, সৰ্বনাম, ক্ৰিয়া, ক্ৰিয়া বিশেষণ, বিভক্তি, অব্যয় আদি পদৰ গঠন সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিছে। লিংগ, কাৰক, বচন অনুসৰি হোৱা গঠন বৈচিত্ৰ্যক উদাহৰণ দেখুৱাই আলোচনা কৰিছে। তদুপৰি এই খণ্ডতে মিচিং ভাষাৰ যৌগিক শব্দ, চুটি শব্দৰ গঠন সম্পকে আলোচনা কৰিছে। ব্যাকৰণখনৰ তৃতীয় খণ্ডত মিচিং ভাষাৰ বাক্য গঠনৰ নিয়ম কছাৰী ভাষাৰ বাক্য গঠনৰ নিয়মৰ লগত সাদৃশ্য আছে বুলি উল্লেখ কৰি বাক্য গঠনৰ চাৰিটা নিয়মৰ ভিত্তিত মিচিং ভাষাৰ বাক্য গঠনৰ নমুনা দেখুৱাইছে।ব্যাকৰণখনৰ শেষত ইংৰাজী, চায়াং মিৰি আৰু আবৰ ভাষাৰ শব্দভাণ্ডাৰৰ তালিকা দিয়া হৈছে। কিছুমান শব্দৰ প্ৰত্যয় বিভক্তিৰ প্ৰয়োগ সম্পৰ্কে এটা কলমত দেখুৱাইছে। শব্দবোৰ ইংৰাজী ভাষাত বৰ্ণনানুক্ৰমিক ভাবে সজাই তাৰ প্ৰতিশব্দ ৰূপে শব্দবোৰ চায়াং মিৰি আৰু আবৰ ভাষাত দিয়া হৈছে।

ব্যাকৰণখনত মিচিং ভাষাৰ গঠনৰ সকলোবোৰ দিশ সামৰিব পৰা নাই। লগতে আধুনিক ভাষাবিজ্ঞানৰ নিয়মৰ ভিত্তিত ভাষাটো অধ্যয়ন নকৰিলেও কথিত ৰূপত প্ৰচলিত ভাষাটোৰ কিছুপৰিমানে গাঁথনিক নিয়মসমূহ প্ৰথম গ্ৰন্থৰূপত পোহৰলৈ আনি তদানীন্তন সময়ত ভাষাটোৰ নতুন শিকাৰুৰ কাৰণে সহায়ক হোৱাৰ লগতে মিচিং ভাষা প্ৰথম ব্যাকৰণৰূপে গ্ৰন্থখনৰ মূল্য অপৰিসীম। ব্যাকৰণখন ভাষাটোৰ ন-শিকাৰুৰ উদ্দেশ্যে প্ৰণয়ন কৰিছে কাৰণে ব্যাকৰণখনক প্ৰায়োগিক ব্যাকৰণ আখ্যা দিব পাৰি।

এনেদৰে ঔপনিবেশিক কালত হোৱা মিচি ভাষাৰ অধ্যয়নক দুটা ভাগত বিভাজন কৰি আলোচনা কৰিব পাৰি। মিচিংভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাসত প্ৰাৰম্ভিক স্তৰ বা পৰ্যায় বুলিলে ঔপনিৱেশিক সময়ত হোৱা মিচিং ভাষা চৰ্চাকে অভিহিত কৰিব পাৰি। সেই সময়তে ধৰ্মপ্ৰচাৰ কৰিবলৈ অহা খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলে অন্যান্য জনগোষ্ঠীয় ভাষা অধ্যয়নৰ সমান্তৰালভাৰে প্ৰথম মিচিং ভাষা সম্পৰ্কেও অধ্যয়ন কৰি প্ৰবন্ধ, ব্যাকৰণ, অভিধান প্ৰণয়ন কৰে। সেই সময়ত মিছনৰীসকলৰ মিচিং ভাষাটো সম্পৰ্কে কৰা অধ্যয়নে সৰ্বাধিক।

উপসংহাৰ ঃ

ঔপনিবেশিক অসমত মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নঃ এক সমীক্ষা -শীৰ্ষক গৱেষণা-পত্ৰখন আলোচনাৰ অন্তত উপনীত হোৱা সিদ্ধান্তসমূহ এনেধৰণৰ-

- প্ৰাচীনকালৰ পৰা কথিত তথা দোৱান ৰূপে প্ৰচলিত হৈ থকা মিচিং ভাষা সম্পৰ্কে অসমত ঔপনিবেশিক

সময়তে মিছনেৰীসকলে প্ৰথম ভাষাটোৰ শব্দ আৰু বৈয়াকৰণিক নিয়ম সম্পৰ্কীয় অধ্যয়নৰ পাতনি মেলি মিচিং ভাষাৰ অধ্যয়নৰ ইতিহাস আৰম্ভ কৰে।

• খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলে প্ৰথম অৱস্থাত আবৰ-মিৰি-ডফলা ভাষাক একেটা ভাষাৰে উপভাষিক ৰূপ বুলি ভাবি শব্দবোৰ সংগ্ৰহ আৰু সংকলন কৰি শব্দসম্ভাৰৰ তালিকা প্ৰকাশ কৰিছিল। পাছত পৃথক ভাষা হিচাপে মিচিং ভাষাৰ শব্দসম্ভাৰ সংগ্ৰহ কৰি ১৮৪৯ চনৰ মাৰ্চ মাহত প্ৰবন্ধ জৰিয়তে প্ৰকাশ কৰা প্ৰথম মিছনেৰীজনে হৈছে উইলিয়াম ৰবিন্সন।

• ঊনবিংশ শতিকাৰ চল্লিশ দশকৰ শেষৰ ফালে অৰ্থাৎ ১৮৪৯ চনত প্ৰথম মিচিং ভাষাৰ কিছু বৈয়াকৰণিক ৰূপৰ গঠন সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা প্ৰথম প্ৰবন্ধ প্ৰকাশ পাই। তাৰ চল্লিশ বছৰৰ পাছত সম্পূৰ্ণ গ্ৰন্থ আকাৰে ১৮৮৬ চনত জে. এফ. নীধামে মিচিং ভাষাৰ প্ৰথম ব্যাকৰণ প্ৰণয়ন কৰে।

• ঔপনিবেশিক অসমত মিছনেৰীসকলৰ বাহিৰে দুই এজন মিচিং আৰু অসমীয়া ব্যক্তিয়েও মিচিং ভাষাৰ শব্দ সম্পৰ্কীয় পুথি প্ৰকাশ কৰিছিল। সেইসময়ত প্ৰথম মিচিং ব্যক্তিৰ ভিতৰত শোনাৰাম মিৰি মহৰিৰ লগতে ধৰ্ম্মনন্দ দুৱাৰা তামুলি নামৰ এজন অসমীয়া ব্যক্তিয়ে মিচিং ভাষাৰ শব্দ সংগ্ৰহ কৰি পুথি আকাৰে প্ৰকাশ কৰিছিল।

• ঔপনিবেশক সময়ত প্ৰণয়ন হোৱা মিচিং ভাষা সম্পৰ্কীয় গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধসমূহত ভাষাবৈজ্ঞানিক দৃষ্টিভংগীৰে অধ্যয়নৰ অভাৱ পৰিলক্ষিত হলেও তদানীন্তন সময়ত মিচিং ভাষাটোৰ ভাষিক স্থিতি, জনগোষ্ঠীটোৰ শৈক্ষিক অবস্থাৰ পৰা বিচাৰ কৰিলেও এনে গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধসমূহৰ ঐতিহাসিক মূল্য অপৰিসীম। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ

1. Jawahar Jyoti Kuli, The Misings Their History and Culture, p. 61
2. বসন্ত কুমাৰ দলে, মিচিং ভাষাৰ ৰূপতত্ত্ব এটি চমু পৰিচয়, পৃ ২৪

গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

দলে, বসন্ত কুমাৰ, মিচিং ভাষাৰ ৰূপতত্ত্ব এটি চমু পৰিচয়, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, দ্বিতীয়, সংস্কৰণ, ২০২৩

খাউণ্ড, মৌচুমী ৰেখা, ধৰ্ম্মানন্দ দুৱৰা তামুলী, মিৰি-দোৱান, সম্প্ৰীতি যোৱহাট, ডিচেম্বৰ, ২০১৫

হাজৰিকা, জ্যোতিৰেখা (সংকলন আৰু সম্পাদিত.), শোনাৰাম মিৰি মহৰি, মিৰি-দোৱান, কংকন প্ৰকাশন, বোকাখাত, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০১৩

Brown, Nathan, Comparison of Indo-Chinese Language, Journal of the Asiatic Society of Bengal, Calcutta, vol-vi, part-ii, December, 1837

Beams, J, Outline of Indian philology with a map showing the Distribution of Indian language, london, second edition, 1868

Cambell, George, Specimens of languages of India including those of the Aboriginal tribes of Bengal, the central orovines and the Eastern Frontier, Bangal Secretarial press, Culcutta, 1874

Dalton, Edward Tuite, Descriptive Ethnology of Bengal, Superintendent of Goverment, Culcatta, 1872

Hodgson, B.H, Journal on the Aborigines of the Eastern Frontier, Journal of the Asiatic Society of Bangal Cacutta, Vol-xviii, Part-ii, September, 1849

Jackman,L.W.B, Miri-Abor Primer, Baptist Mission Press, Calcutta, 1908

Kuli, Jawahar Jyoti(edit.), The Misings Their History and Culture, Kaustubh Prakashan, Dibrugarh, Third Edition, 2024

Lorrain, J. Herbert, A Dictionary of the Abor-Miri Language, Mittal Publications, New Delhi, Second Edition, 1910

Needham, J.F, Outline Grammer of the Shaiyang Miri Languages, Mising Agom Kebang, Dhemaji, Reproduced, 2003

Robins, Wiliam, notes on the Languges Spoken by the various tribes inhabiting the valley of Assam and its mountain, Journal of the Asiatic Society of Bengal, calcutta, vol-xviii, Part-1 March 1849

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2500 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होगा।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 551802010004619
Name of Bank & Branch : Union Bank of India, Hatigaon Chariali, Dispur-781038
IFS Code : UBIN0555185

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

POSTAL REGISTRATION NO. GH-127/2025-2027 ❖ Date of Publication : 31st August, 2025 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

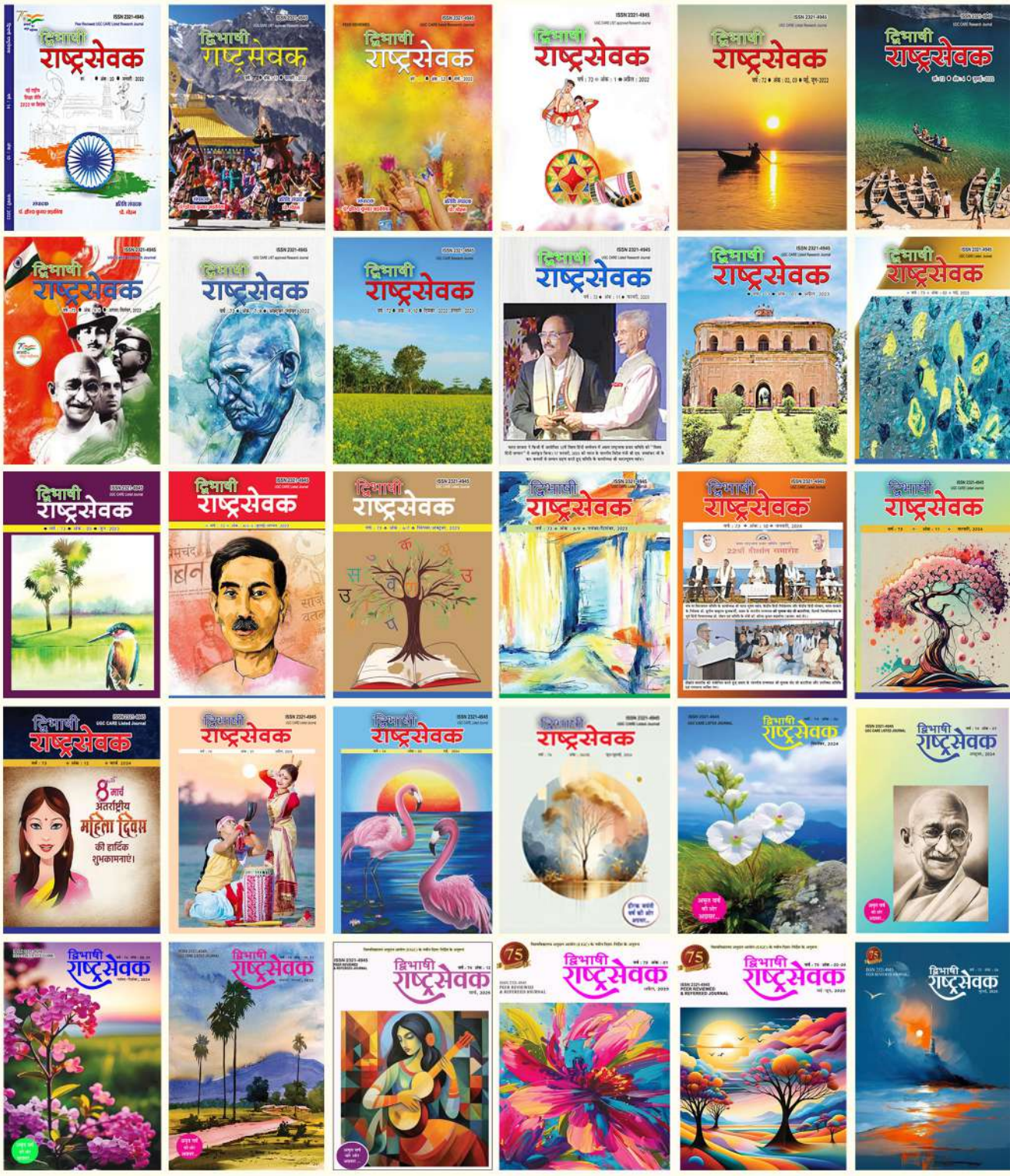

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032
arpsguwahati.com rastrasewak51@gmail.com 9101541395/9101541380
एक हृदय हो भारत जननी
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी